साईं वचनामृत-भाग ६

श्री सत्य साई वचनामृत

भाग ६

★

श्री एन० कस्तूरी, एम० ए०, बी० एल०

द्वारा संग्रहीत

भगवान् श्री सत्य साई बाबा के सम्भाषणों

का

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक :

बजरंग सिंह, बी० ए०, प्रभाकर

मानकनगर, लखनऊ-५

विषय सूची

क्र० सं०	विवरण	पृष्ठ

क्र० सं०	विवरण	पृष्ठ
६३	अन्त: प्रेरणाओं से प्रेरित होओ	२८१
६४	विष दन्त	२८६
६५	जो पाओ सो योंही न गंवाओ	२६०
६६	भगवान का खुला भण्डार	२६४
६७	संगठन का हृदय	२६७
६८	दाता को भेंट	३०२

१. दूध और पानी

पश्चिमी देशों के समान भारतवर्ष में भी ईस्वी सन् के प्रथम माह, जनवरी का प्रथम दिन नव-वर्ष दिवस के रूप में मनाया जाता है। यदि आप तनिक विचार करें तो अनुभव करेंगे कि प्रत्येक क्षण नवीन है, नव सृजन[1] का प्रतीक बना वह नवीन उपलब्धियां[2] और विजय का अवसर प्रदान करता है । भारतीय संस्कृति का लक्ष्य है प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा आत्मानुभूति[3] प्राप्त करना; न कि केवल धन, विद्या या यश कमाना। मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है सत्य का अन्वेषण[4] करना; और सत्य की प्राप्ति केवल समर्पण और भक्ति के द्वारा ही की जा सकती है। किन्तु समर्पण और भक्ति भगवान् के अनुग्रह[5] से ही मिलते हैं और भगवान का अनुग्रह केवल उन्हीं पर होता है जिनके हृदय प्रेम से परिपूर्ण होते हैं।

आजकल अक्सर एक प्रश्न किया जाता है; 'भगवान हैं कहाँ ?' प्रह्लाद ने भगवान के नाम का सतत् स्मरण करते हुए यह जान लिया था कि भगवान सर्वत्र हैं । यह कहना कि 'भगवान केवल यहां है या कि भगवान, वहां नहीं है, सत्य नहीं है। इस सत्य की अनुभूति[6] केवल गहन[7] साधना के पश्चात् ही हो सकती है। आप बड़ी-बड़ी दूकानों में नाना प्रकार की आकर्षक वस्तुयें देखते हैं, किन्तु उनके सम्बन्ध में पूंछ-तांछ करने मात्र से वे आप की नहीं हो जातीं। जब आप किसी वस्तु के मूल्य का भुगतान कर देते हैं तो वह आप की हो जाती है और आप उसे अपने घर ले जा सकते हैं। किसी वस्तु के सम्बन्ध में केवल तर्क-वितर्क करने या उसके सम्बन्ध में जानकारी रखने या अपील करने मात्र से वह आप के अधिकार में नहीं आती है। किसी देश का कोई तभी राजा हो सकता है जब वह उस पर निर्विवाद[8] रूप से आधिपत्य[9] रखता और शासन करता हो। यदि वह सिंहासन छोड़कर भाग रहा हो, शत्रु उसका पीछा कर रहे हों, उसका आधिपत्य नहीं रहे तो भला फिर वह उस देश का राजा कैसे कहलायेगा ? कौन उसे राजा की मान्यता देगा ? इसी प्रकार जब आप लोभ, मोह, क्रोध, घृणा, द्वेष, अभिमान आदि आन्तरिक[10] शत्रुओं को परास्त कर अपने स्वयं के ऊपर अपना निर्विवाद एकाधिपत्य स्थापित कर लेंगे तो आप सिंहासनारूढ़ हो सकते हैं, स्वामी कहला सकते हैं। भारतवर्ष में हम कहते हैं कि हमने स्वराज्य प्राप्त कर लिया है; किन्तु स्वराज्य तो वह स्थिति है जिसे हममें से प्रत्येक को प्राप्त करने की

---

१ नूतन कार्य २ सहज प्राप्ति ३ आत्मानुभव ४ खोज ५ कृपा आशीर्वाद
६ अनुभव, समझ ७ गहरा ८ झगड़ों से अलग ९ अधिकार १० अन्दरूनी

आकांक्षा[1] रखनी चाहिये। राजनैतिक दृष्टि से स्वराज्य का प्राय अपमानजनक विदेशी शासनतन्त्र से मुक्ति पाना और स्वतन्त्रता प्राप्त कर है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से स्वराज्य का अर्थ है हमें अधोमुख[2] करने वाली कामनाओं और वासनाओं की दासता से मुक्ति। जब वाह्य[3] दासता की, परावलम्बन[4] की वेड़ियाँ टूट जाती हैं तो हमें स्वराज्य प्राप्त होता है और जब आन्तरिक वन्धन और शृखलायें[5] टूट जाती हैं तो आन्तरिक स्वराज्य प्राप्त होता है। केवल स्वराज्य से ही सुख और शान्ति सुनिश्चित हो सकती है।

भगवान आप से दूर या किसी दूसरे स्थान पर नहीं हैं। वह तो आप में ही, आप के ही अन्तर में हैं। मनुष्य कष्ट पाता रहता है क्योंकि वह भगवान को अपने में ही खोज पाने में असमर्थ है और इसीलिये सुख और शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता। मनुष्य की स्थिति उस धोबी के समान है जो एक बहती हुई नदी में घुटनों पानी में खड़ा कपड़े धो रहा था; किन्तु प्यास के कारण मर गया, पानी पानी करता। उसे यह होश नहीं रहा कि वह जीवन-रक्षक जल में ही खड़ा था, आवश्यकता केवल उसे झुकने और पानी पीने की थी। मनुष्य भी इसी प्रकार भूला हुआ भटक रहा है। वह भगवान को बाहर इधर-उधर खोजता फिरता है, व्याकुल और निराश। बिना लक्ष्य को प्राप्त किये ही वह मर जाता है और उसके जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है।

यों तो आपको संसार में रहना है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि आप संसार के ही हो जायें। आपका ध्यान, आपका लक्ष्य ईश्वर की ओर होना चाहिये, जो और कहीं नहीं, आपके अन्तर में है। कन्नड़ प्रदेश में एक उत्सव होता है 'करग'। इसमें जो शोभा यात्रा निकलती है उसके बीच में एक व्यक्ति अपने सिर पर एक के ऊपर एक अनेकों घड़ों की एक जेगड़ रखता है और गाजे-बाजे की ताल और लय के साथ नृत्य करता हुआ चलता है और साथ में गाता भी है किन्तु उसका ध्यान सदा उसके सिर पर रखे घड़ों की मीनार के सन्तुलन को बनाये रखने में लगा रहता है। इसी प्रकार मनुष्य को चाहिये कि वह जीवन की कोलाहलपूर्ण और प्रसन्नतामय शोभा यात्रा में अपने जीवन के चरम लक्ष्य, ईश्वर की प्राप्ति, की ओर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हुये चलता रहे।

कुछ लोग समृद्ध राष्ट्रों में उच्च भौतिक जीवन स्तर के प्रति बड़े ईर्ष्यालु होते हैं किन्तु वास्तव में देखें तो पाश्चात्य देशों के उस विलासितापूर्ण, वृथाभिमानी जीवन

---

१ इच्छा २ पतन की ओर ३ बाहरी ४ दूसरे के सहारे ५ कड़ियां
६ झूठा घमंड

से भारत की गरीबी और विनम्रता, अच्छे और सच्चे जीवन के अधिक अनुरूप है। सागर में जल का विस्तीर्ण[1] विस्तार होता है किन्तु क्या वह खारा जल मनुष्य की प्यास बुझा सकता है? इसी प्रकार किसी व्यक्ति के पास कितना भी धन क्यों न हो, जब तक उसमें निर्लिप्तता[2] उत्पन्न नहीं होती, सब व्यर्थ और ऊसर[3] है। ऐन्द्रिक[4] सुखभोग और भौतिक उपलब्धियों के प्रति निर्लिप्तता और वैराग्य ही ईश्वर के प्रति प्रेम के विकास में सहायक होते हैं। बहुत से लोगों को इस बात का अभिमान होता है कि उनकी रुचि केवल खोज और तर्क में ही है, वे तो ज्ञान मार्ग के राही हैं। वे ज्ञानी बनने के महत्वाकांक्षी होते हैं। किन्तु विशुद्ध मन के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। उसे यह जिज्ञासा करने से पूर्व कि 'भगवान कौन है?' यह जानना होगा कि वह स्वयं कौन है? एक बार उसने यह खोज करली और जान लिया कि वह कौन है तो फिर उसे यह खोज करने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी कि 'ईश्वर कौन है? क्योंकि दोनों एक ही हैं। जब आप यह जान जायेंगे कि भगवान आपके ही अन्तर में है तो आप स्वयं अपने मूल्य को समझ जायेंगे क्योंकि जब कोई व्यक्ति यह जान जाता है कि जिस वस्तु को उसने एक काँच का टुकड़ा समझा था वह तो एक हीरा है, वह उसको बड़े यत्नपूर्वक किसी तिजोरी में सुरक्षित रखता है। जब एक शिल्पकार नदी किनारे उपेक्षित पड़े किसी पत्थर को गढ़ कर भगवान् की एक सुन्दर आकर्षक मूर्ति बना देता है तो उसका मूल्य बहुत बढ़ जाता है, उस मूर्ति की किसी भव्य मंदिर में स्थापना होती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसकी विधि पूर्वक नियमित रूप से पूजा होती रहती है।

संसार को ही सत्य मान लेने और अपने आप को शरीर ही समझ लेने का का[मिथ्]या विचार लोगों में जन्म-जन्मान्तर से ऐसा गहरा पैठा हुआ है कि उसे केवल एक ही प्रबल प्रभावकारी औषधि के सतत्[5] सेवन से निकाल कर दूर किया जा सकता है और वह औषधि है राम-नाम जिसके अन्त समय तक लगातार सेवन करते रहने और उसके साथ एक रूप हो जाने की आवश्यकता है। उसका गुणकारी प्रभाव अंग-अंग में, रक्त की बूंद-बूंद में, प्रत्येक स्नायु और चेतना में पहुंच जायेगा और आपके कण-कण को राम मय बना देगा। अपने आपको घड़िया[6] में द्रवीभूत कर दो, गला डालो और राम के सांचे में उड़ेल दो और स्वयं राम बन जाओ। यह है ज्ञान का फल। यदि राम नाम अथवा भगवान के अन्य किसी नाम का सतत् जप किया जाये और मन उसमें एक-रूप हो जाये तो चित्त की समस्त चंचल और उच्छृंखल वृत्तियों को, जो इधर उधर मिथ्या जंजाल में अटकाती रहती हैं, पूर्ण नियंत्रण में लाने में बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

---

१ सीमा रहित २ लिप्सा रहित ३ बंजर ४ इन्द्रियों के ५ निरन्तर नियमित
६. सुनार के एक पात्र का नाम

चित्त की वृत्तियों के नियंत्रण के क्षेत्र में भारतवर्ष में पाँच शताब्दी पूर्व की और आज की स्थितियों में बहुत बड़ा अन्तर है। आज तो इन वृत्तियों को खुलकर खेलने की छूट मिली हुई है और मनुष्य वासनाओं, लोभ, मोह, क्रोध, और अहंकार का दास बना हुआ है। इसका दोष माता-पिता और वरिष्ठ जनों पर ही है क्योंकि वे मंदिरों में जाने, धार्मिक उत्सवों में सम्मिलित होने और संभाषण सुनने को निरा पागलपन समझते हैं और यदि उनके बच्चे इनमें रुचि रखते हैं तो उन्हें प्रताड़ित[1] करते हैं। वे अपने बच्चों को समझाते हैं कि धर्म के सम्बन्ध में रुचि रखना तो बड़े-बूढ़ों का कार्य है, नव-युवकों को उस ओर गंभीरता से नहीं देखना चाहिये। किन्तु वे लोग अपने बच्चों को इस ओर रुचि रखने के लिये प्रोत्साहित करते रहें तो बच्चों पर अच्छे संस्कार पड़ते हैं और वे अपने आपको संग्राम में विजय प्राप्त करने और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सशक्त रूप से सज्जित और सन्नद्ध कर सकते हैं। माता-पिता को चाहिये कि वे अपने बच्चों को उपदेश दें कि, इस बात का विश्वास रखो कि भगवान हैं और वह सदा हमारा निर्देशन और संरक्षण करते हैं। पूर्ण कृतज्ञता के साथ सदा उनका स्मरण करो। सदा उनसे प्रार्थना करो कि वह हमें निर्मल और पवित्र बनाएं। सबसे प्रेम करो, सबकी सेवा करो। सदा सत्संगत में रहो। पवित्र स्थानों—मंदिरों तथा पवित्र और महान पुरुषों के दर्शन करो। समाचार पत्रों में आप जो संघर्ष, युद्ध, विजय और विजयोत्सवों के समाचार पढ़ते हैं वे केवल भौतिक विजय और बाहरी उल्लास की बातें हैं। आवश्यकता है चित्त की वृत्तियों से, वासनाओं से संघर्ष करने की, आन्तरिक शत्रुओं पर विजय पाने की, अहंकार को जीत लेने की। इस प्रकार की विजय प्राप्त कर लेने पर ही आप बधाई के पात्र हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। मैंने जो स्वराज्य की बात कही थी, उसका अभिप्राय इसी से था।

नया वर्ष आता है, दिवस पवित्र होता है जब आप उसे अपनी साधना के द्वारा शुद्ध बनाते हैं, अन्यथा नहीं। साधना का विकास उसी क्षेत्र में होता है जिसे प्रेम के द्वारा उर्वरा[2] बना दिया गया हो। किन्तु प्रेम भक्ति के बिना नहीं हो सकता। आप का जो प्रेम अब भौतिक पदों, नाम, यश, स्त्री, संतान आदि के प्रति है उसे ईश्वर के प्रति महान प्रेम के अन्तर्गत लाकर पवित्र बनाना होगा। यदि दो सेर दूध में दो चम्मच पानी डाल दें तो पानी भी दूध ही माना जाता है। पानी दूध बन जाता है, उसका मूल्य बढ़ जाता है। इसी प्रकार अपने क्षुद्र भौतिक प्रेम की बूंदों को ईश्वरीय प्रेम के विशाल स्रोत[3] में मिला दो और महान बन जाओ। किन्तु इस समय जो आपकी साधना है वह तो दो चम्मच दूध में दो सेर पानी मिलाने वाली साधना है जो दूध

---

१ फटकारना २ उपजाऊ ३ सोत

को भी पानी बना देती है। ईश्वर के प्रेम से अपने हृदय को परिपूर्ण कर लो, हृदय की हर धड़कन उसके प्रेम की धड़कन हो। फिर आप में किसी के प्रति घृणा नहीं होगी, आप द्वेषपूर्ण प्रतिद्वन्दिता[1] और प्रतिकारों[2] में नहीं उलझोगे, किसी में दोष नहीं ढूंढोगे। जीवन स्निग्ध, सरल और सुमधुर होगा।

श्री सत्य साई मण्डली, गुइंडी मद्रास
१-१-६७

---

१ परस्पर लड़ाई २ बदला

२. लोक नहीं, बल्कि लोकेश

आप जानते हैं कि आज प्रशान्ति निलयम् में पावन उत्सव मनाया जायेगा जिसमें भाग लेने के लिये हजारों लोग एकत्रित हो रहे हैं। अधिकांश लोग ऐसे हैं जो अपने सिरों पर दुखों के बोझ की गठरियाँ लादे हुए इस आशा से साथ आये हैं कि यहां उनका भार उतर जायेगा। अनेकों अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों और क्लेशों से छुटकारा पाने के लिये प्रार्थनायें करते हुए आये हैं। कुछ संकटों में फंसे, दुर्भाग्य के मारे संतप्त[1] हैं। अधिक लोग ऐसे ही हैं जो किसी न किसी दु:ख, पीड़ा, अभाव या संकट से ग्रस्त हैं और उससे मुक्ति की आशा लेकर यहां आये हैं। मेरा कार्य है उन्हें उनके दु:ख-दर्दों और क्लेशों में सान्त्वना प्रदान करना। वेद कहता है, "वैद्यो नारायणो हरि:"—नारायण वह वैद्य या डाक्टर है जो समस्त रोगों को दूर करता है। इसलिये मेरा तो यह कार्य है।

डाक्टर का मुख्य कार्य होता है कि वह शल्य क्रिया (सर्जिकल ऑपरेशन) करता है या रोग का निदान करके उसके लिये नुस्खा लिख देता है कि रोगी को कौन कौन सी औषधियाँ किस प्रकार दी जानी हैं। शेष कार्य तो परिचारक—नर्सें करती हैं। वे रोगी की पूर्ण सहानुभूति के साथ देख-भाल करती हैं, उनको समय पर औषधि व उपयुक्त भोजन देती हैं; रोगी के स्वास्थ्य लाभ के लिये उसके आराम करने, चलने-फिरने, उठने-बैठने आदि पर पूरा-पूरा ध्यान रखती हैं तथा उसके साथ पूर्ण सहानुभूति और प्रेम के साथ व्यवहार करते हुए रोगी की सेवा-शुश्रूषा करती हैं। मैं आप लोगों को इसी प्रकार की सेवा करने का कार्य सौंप रहा हूँ। यदि आप इन रोगियों, बीमारों के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन में चूक करेंगे, यदि आप डाक्टर द्वारा दिये गये निर्देशों और आदेशों का दृढ़ता के साथ पालन नहीं करेंगे, रोगियों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं देंगे और उन्हें निर्देशानुसार पूरा नहीं करेंगे तो उन लोगों के कष्ट बढ़ जायेंगे, अनेकों पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी और बहुत क्षति होगी।

"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेन वै अमरत्व मानुष" अमरत्व, कर्म, जन्म या धन से प्राप्त नहीं होता बल्कि वह प्राप्त होता है त्याग से—ऐसा वेद का कथन है। सेवा के जिस कार्य में आप लोगों को लगाया गया है वह त्याग की शिक्षा प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है। सेवा सर्वोच्च साधना है क्योंकि भगवान स्वयं, मानवता की सेवा

---

१ दुखी

करने, अपने आदर्शों और लक्ष्य को भूल गई मानवता को उसका ज्ञान करवाने के लिये, मनुष्य का रूप धारण करके उनके बीच में आते हैं। अतएव थोड़ा सोचो तो कि भगवान कितने प्रसन्न होते हैं जब मनुष्य, मनुष्य की सेवा करता है।

बहुत से लोग प्रशान्ति निलयम् में अकेले ही आते हैं, चाहे वे बीमार हों या वृद्ध। किसी के सहारे की आवश्यकता होते हुए भी वे किसी को अपने साथ नहीं ला सकते क्योंकि या तो वे इतने गरीब और साधनहीन हैं कि अधिक खर्च सहन नहीं कर पाते अथवा फिर उनका कोई है ही नहीं जिसे साथ लायें। ऐसे लोगों का आप को पता लगा लेना चाहिये, उन पर अपनी सहानुभूति पूर्ण निगाह रखनी चाहिये और उनकी सेवा के अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। उस समय तक की प्रतीक्षा मत करो कि कोई बेहोश होकर गिर पड़े और फिर आप उसकी सेवा करें। उन्हें पहले से ही शेड में या छाया में बैठाओ, उनकी थकान और प्यास को उन्हें आराम और पानी देकर दूर करो। इसमें प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं बल्कि त्वरितगति[1] से कार्य करने की आवश्यकता है। नवयुवकों और स्वस्थ पुरुषों से प्रार्थना करके आप इन रोगी, वृद्ध, दुर्बल और असमर्थ लोगों को शैड में स्थान दिला सकते हैं। आप लोगों को स्वयं आगे की पंक्तियों में स्थान रोक कर नहीं बैठ जाना चाहिये। जो बैज-बिल्ले आप लोगों ने लगा रखे हैं उनसे आप को कोई सुविधा या अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। बल्कि इसके धारण करने से आप लोगों पर उत्तरदायित्व आ जाता है। आप लोगों को मेरे निकटतम पहुंच कर दर्शन करने की आकांक्षा और व्यग्रता में दूसरों को धक्का देकर आगे नहीं बढ़ना चाहिये। आप कहीं भी, किसी भी दूर स्थान पर हों अपने कर्त्तव्य का प्रसन्नता के साथ पालन करते हैं तो विश्वास रखें मैं आप के साथ हूं—इसमें तनिक भी संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। आप तो मेरी तस्वीर बिल्ले में लगाये हुये पहने हैं, किन्तु मैं तो सदा ही आपके हृदय में हूं।

आजकल मौसम काफी गरम है इसलिये आपके सेवा कार्यों में प्यासे लोगों को पीने का पानी देना एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। इस शरीर को पानी की प्यास होती है जिसे कहते हैं तृष्णा[2] किन्तु आत्मा की तीव्र प्यास 'कृष्णा' के लिये होती है। सांसारिक तृष्णा बढ़ जाती है तो वह विनाशकारी होती है। उसकी तृप्ति के लिये मनुष्य अधोगामी हो जाता है, पशुवत्—जंगली—बन जाता है। उस सांसारिक तृष्णा की तृप्ति में यदि यह पृथ्वी थोड़ी छोटी होती तो मनुष्य इसे समूची ही निगल गया होता किन्तु सौभाग्य की बात है कि यह इतनी बड़ी है कि इसे पूरी निगल पाना उसके सामर्थ्य के बाहर है।

---

१ तेज चाल २ इच्छा

किन्तु आप लोगों को संसार से कोई मतलब नहीं है, आप का सम्बन्ध तो इस समय संसार के स्वामी से है—आप का सम्बन्ध लोक नहीं बल्कि लोकेश[1] से है। भगवान के आदेश का पालन करो इतना ही पर्याप्त है। आप लोगों को इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है कि जप, ध्यान, पूजा, प्रार्थना आदि के लिये आप को समय नहीं मिला। महान आचार्य शंकर के चार प्रमुख शिष्य थे—त्रोलक, हस्तपालक, सुरेश्वर, और पद्मपाद। उनमें से पद्मपाद केवल गुरु की सेवा के लिये ही नियुक्त था, उसे पढ़ने के लिये समय ही नहीं मिलता था। दूसरे शिष्य उसके अध्ययन में पिछड़ जाने के कारण उसकी हंसी उड़ाया करता थे। किन्तु उसकी अपने गुरुदेव के प्रति प्रगाढ़ व पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा थी और उनकी सेवा में ही वह अपने अध्ययन की पूर्ति समझता था। एक दिन उसने नदी में अपने गुरु के वस्त्र धोये और नदी के ही बीच में एक चट्टान पर उन्हें सुखाया। जब वह वस्त्रों को सूख जाने पर समेट और तह कर रहा था कि नदी में बड़ी तेजी के साथ बाढ़ आ गई और बड़ी कठिनाई से वह उस चट्टान की चोटी पर अपने पैर जमा कर खड़ा रह सका। देर हो रही थी। वह चिन्तित था कि गुरुदेव को धुले हुए वस्त्रों की शीघ्र ही आवश्यकता होगी। इसलिये पद्मदेव ने निर्णय किया कि इस उफनती नदी के ऊपर होकर ही चल दिया जाये—समर्थ गुरुदेव सहाय करेंगे। और वह अपने गुरुदेव का ध्यान कर चल दिया और उनकी कृपा से नदी पार कर गया। जब कभी उसका पैर लड़खड़ाता तो उसके नीचे कोई सुदृढ़ पद्म (मजबूत कमल) आ जाता और उसका पैर टिक जाता। वह इस प्रकार पार हो गया। इसीलिये उसका नाम पद्म-पाद पड़ा। गुरु की कृपा से वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में सफल हुआ और ज्ञान का प्रसार करते हुये उसने दिव्य[2] कीर्ति अर्जित की।

जीवन की अवधि बहुत सीमित है और वह बीच में ही किसी भी क्षण कट सकती है। बिना कोई पूर्व सूचना दिये शरीर का अन्त हो सकता है और आप इससे किसी भी समय छुटकारा पा सकते हैं। इसलिये जितना भी हो सके और जब भी हो सके, अपने हृदय को उस ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो जिसने इसे दिया है। आप का हृदय आप का साक्षी है, इससे प्रश्न करो कि क्या आपने भगवान के निर्देशों का पालन किया है ? हजारों का यही कहना होगा कि उन्होंने उन आदेशों का पालन नहीं किया है। किन्तु यदि आपका अन्तर इसके पालन की पुष्टि करता है तो फिर आपको डरने की आवश्यकता नहीं है। एक कंजूस बड़ा चालाक था। उसका तर्क था कि भगवान के भोग लगाने की, उन्हें कुछ भी भेंट चढ़ाने की, कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनके उदर में तो अमृत है इसलिये उन्हें भूख या प्यास नहीं लगती है। वह कहता

---

१ भगवान २ दैवी

उन्हें स्नान करवाने की क्या आवश्यकता है ? जब गंगा ही उनके चरणों से निकलती है तो उस जल को जो उनके पैरों को स्पर्श करके आता है उनके शीर्ष पर कैसे चढ़ाया जाये ? इसी प्रकार कमल पुष्प तक भगवान पर चढ़ाने के लिये उसका तर्क होता कि उसे भगवान पर कैसे चढ़ाया जाये जब कि वह उनकी नाभि से प्रकट हुआ है। किन्तु ये तो सब बहाने हैं जिनसे अपनी अन्तरात्मा को तो धोखा नहीं दिया जा सकता है। क्या लोग उस स्वर्ण आभूषण के स्वर्ण को, जिसे कभी पैरों में पहनते थे, सिर पर धारण किये जाने वाले मुकुट में उपयोग में नहीं लाते। किसी भी वस्तु को, उसके प्रति रखे जाने वाले आदर और सम्मान के भाव द्वारा, शुद्ध और पवित्र बनाया जा सकता है। भगवान की सेवा से बचने के लिये बहाने मत ढूंढो। जो ईश्वर ने पैदा किये हैं जो उसके हैं उनकी सेवा करो, सेवा से विमुख न होओ। भगवान को अपने जनों की सेवा अति प्रिय है। सेवा का सबसे बड़ा फल है अहंकार का नाश। भगवान के अनन्य[1] भक्त सूरदास प्रार्थना करते थे कि मुझे भगवान् के सेवकों का सेवक बना दो जिससे कि अभिमान का लेशमात्र भी न रहे। यही कारण है कि प्राचीन समय में जो शिष्य गुरु के पास रहते थे उन्हें भिक्षा पात्र लेना पड़ता था। "भगवान को मेरी सेवा की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनकी सेवा में तो अनेकों भक्त लगे हैं जो मुझसे कहीं अधिक निपुण और चतुर हैं, किन्तु भगवान् के भक्त कष्टों में पड़े रहते हैं, उनकी देख-भाल करने की आवश्यकता है इसलिये उनकी सेवा करके मैं अपना उद्धार करूंगा।"

आप लोगों को ऐसे ही लोगों की सेवा का सुअवसर प्राप्त है जिन्हें सेवा की आवश्यकता है। जब आप के घर में विवाहोत्सव होता है तो आप लोगों को खूब खा लेने पर भी और खाने के लिये बाध्य करते हैं जिसके परिणामस्वरूप बहुत भोजन व्यर्थ जाता है। जब कि इस प्रकार एक ओर जिनके पेट भरे होते हैं उन्हें उनकी इच्छा के विपरीत और अधिक खिलाया जाता है तो दूसरी ओर दरवाजे पर खड़े भूख से तड़पते और भोजन की मांग करने वालों को डांट-डपट कर भगा दिया जाता है। सूरदास भगवान् कृष्ण से कहते थे, "आप तो पूर्णरूप से धाये हुए हैं, सब प्रकार से पूर्ण, सबल और स्वच्छंद हैं। मैं फिर आप की सेवा क्यों करूं ? मैं तो उनकी सेवा करूंगा जिन्हें सेवा की वास्तव में आवश्यकता है"। व्यष्टि में समष्टि[2] का दर्शन करो। सबको एक ही सागर से उठती हुई लहरों के समान समझो। सबके साथ आत्मीयता, बन्धुत्व, प्रेम और सहानुभूति स्थापित करो। दूसरों की सेवा करो, इसलिये नहीं कि वे दूसरे हैं, अन्य हैं, बल्कि उस पवित्र और उच्च भावना और विचार के साथ सेवा करो जो आप भगवान् की पूजा के प्रति रखते हैं। किसी अन्य की, उसमें

---

१ अन्य कोई नहीं २ सामूहिक

भगवान का रूप देखते हुए, पूर्ण समर्पण भावना के साथ की गई सेवा ही कभी सम्पूर्ण जीवन में की गई भगवान की भक्ति के बराबर हो जाती है।

आप प्रश्न करेंगे, "स्वामी, जब कोई व्यक्ति दुर्व्यवहार कर रहा हो, दुश्चरित्रता और पाप-पूर्ण कार्य कर रहा हो तो भला हम उसके प्रति कैसे सहानुभूति और प्रेम रखें। उसके प्रति कैसे उस दृष्टि से सम्मान रखें जो आप बता रहे हैं। ऐसी स्थितियों में एक बात पर विचार करो कि किसने गल्ती की ? उस दुष्कृत्य[1] को करने के लिये उसे किससे प्रोत्साहन मिला ? किसने वह कृत्य[2] किया ? शरीर ने किया वह काम। शरीर को वह कार्य करने के लिये किसने उकसाया ? मन ने। मन ने उसे ऐसा करने के लिये क्यों बाध्य किया। पिछले अनेकों जन्मों में किये गये कर्मों और विचारों के संचित संस्कारों के प्रभावों के परिणामस्वरूप ऐसा हुआ। उसमें जो आत्मा है वह उसके किसी भी कर्म, किसी भी विचार या उद्देश्य से निर्लिप्त और अप्रभावित है। उसकी आत्मा ईश्वर का अंश है, दैविक है, उसे प्रेम करो, उसके प्रति सम्मान रखो। आपके प्रश्न का यही मेरा उत्तर है। और भी सीधे-सादे शब्दों में समझाता हूं आपको। सड़क पर जाते हुए आप किसी घर के दरवाजे पर स्वामी का एक बड़ा सा चित्र देखते हैं। आपको पता लगता है कि यह तो उस व्यक्ति का घर है जिसके साथ आपकी घोर शत्रुता है, किन्तु क्या स्वामी के प्रति आपके प्रेम और श्रद्धा में केवल इसलिये कोई अन्तर आता है कि उनका चित्र किसी ऐसे व्यक्ति के घर पर लगा है जिसके प्रति आप के हृदय में तनिक भी प्रेम नहीं है। आप स्वामी के प्रति श्रद्धा और प्रेम रखते हैं अतएव उनके चित्र के प्रति भी, फिर वह किसी के घर में क्यों न हो। क्यों, ऐसा ही होता है न ? इसी प्रकार प्रत्येक के भीतर जो आत्मा है, जो वास्तव में भगवान है उसे प्रेम करो, उसके प्रति आदर रखो। उसके गुण, दोषों और चरित्र की ओर क्यों ध्यान देते हो ? आपका कार्य तो सेवा करना (टू सर्व) है न कि दोष ढूंढना (नौट टू सर्च)। दिल लगा कर सेवा करो, विशुद्ध प्रेम भाव से, हृदय में तनिक भी मलिनता न रखते हुए। मेरी अदृश्य देख-भाल और मार्ग दर्शन में आपको सबकी सेवा करनी है और उनके दुखों और कठिनाइयों को दूर करना और उन्हें आराम पहुँचाना है।

तेलुगु में एक लोक प्रिय गीत है जिसका भाव है कि वृन्दावन सबका है, गोविन्द सबका है। इसी प्रकार प्रशान्ति निलयम् भी सबके लिये है और बाबा भी सबके हैं। जिस प्रकार एक अस्पताल में भर्ती सभी रोगियों को औषधि और उपचार पाने का अधिकार होता है इसी प्रकार जो कोई भी यहां आता है वह सम्मान और सेवा का अधिकारी होता है। यदि किसी को ज्वर हो गया हो तो उसके निकट जाओ और

---

१ बुरा कार्य २ कार्य

विनम्रता के साथ उससे पूछो कि —"आपको क्या तकलीफ है ? कहाँ दर्द होता है ? आपके लिये मैं क्या लाऊं ? क्या मैं आपके लिये कोई दवा लाऊं या किसी डाक्टर को बुलाऊं, आप किसी बात की चिन्ता न करें हम आपकी पूरी देख-भाल करेंगे।" आपके सहानुभूति और प्रेम-पगे विनम्र शब्दों को सुनकर उनका कष्ट काफी कम हो जायेगा। वे कृतज्ञता से दब जायेंगे और वे मन ही मन कहेंगे कितनी विनम्रता है, कितनी सहानुभूति है। वे माता-पिता धन्य हैं जिनकी ये संतान हैं। तथा वे आप को हृदय से आशीर्वाद देगें। ऐसी प्रेमपूर्ण हो आपकी सेवा कि वे कह उठें, "ऐसी प्रेमपूर्ण सेवा तो हमारी घर पर भी नहीं होती।" बस यही सेवा का वह फल है जिसके प्राप्त करने की आपको इच्छा होनी चाहिये। यदि कोई प्यासा हो और आप से पानी मांगे तो उस पर क्रोध से मत बरस पड़ो, "क्या मैं आप को जब पानी चाहिये तभी पानी लाकर देने के लिये हूं। जरा ठहरो, देखते नहीं स्वामी आडीटोरियम[1] में पधारने वाले हैं, उनके दर्शन तो करने दो, तुम्हारी प्यास बुझाने के लिये भागता फिरूं क्या ?" इसप्रकार कटु शब्द बोलते और व्यवहार करते हुए स्वामी के दर्शन प्राप्त करने का कोई लाभ नहीं होगा।

जो भी सेवा के अवसर उपलब्ध हों उनका उपयोग करने के लिये सजग रहो और उन्हें पूरा करो, इससे ही स्वामी को आनन्द प्राप्त होगा। कम बोलो, मृदु बोलो, स्वच्छता रखो, वातावरण को निर्मल और शान्तिमय बनाओ और जिनको आपकी सेवा की आवश्यकता है उनके लिये उपयोगी बनो। यदि कोई जोर-जोर से बातें कर रहे हों तो उनके पास दौड़ते हुए जाकर या चिल्लाकर उन्हें शान्त करने का प्रयास मत करो बल्कि उनके निकट शान्ति के साथ जाओ और उन्हें बहुत ही विन-म्रता के साथ मृदु शब्दों में समझाओ कि यहां शान्ति बनाये रखना क्यों अनिवार्य है। उन्हें बताओ कि शान्ति बनाये रखना साधना की पहली सीढ़ी है। उन्हें केवल यहीं प्रशान्ति नहीं रखनी है बल्कि जहां कहीं भी हो उन्हें प्रशान्ति बनाए रखनी चाहिये, अपने भीतर और बाहर। यहाँ जिह्वा का तो कोई कार्य ही नहीं है, केवल आँखों और कानों से ही काम चल सकता है। यदि लोगों को क्यों और किस लिये का ज्ञान हो जायेगा तो वे स्वयं ही आपके निर्देशों का पालन करने लगेंगे। उन्हें यह समझ में आ जाना चाहिये कि जोर-जोर से बोलने से उनकी स्वयं की शान्ति भंग होती है और दूसरों को भी कष्ट होता है—सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं। आवश्यकता से अधिक आवाज नहीं करनी चाहिये। यदि आपको अपना बिस्तर बिछाना है या रखना है तो उसे ऊपर से ही जमीन पर मत फेंको जिससे अनावश्यक रूप से आवाज हो बल्कि उसे धीरे से रखो, धीरे से ही खोलो और सावधानी के साथ बिछाओ जिससे आवाज न हो।

---

१ सभाभवन

मैं, पुरुष-स्वयंसेवक-वर्ग से एक बात विशेष रूप से कहना चाहता हूं कि आप लोग निलयम् के बाहर इधर उधर घूमते हैं, दूकानों पर बैठते हैं, होटलों या भोजनालयों में जाते हैं, लोगों से इधर-उधर की बातें करते हैं। आप लोगों ने यहां आने के लिये काफी धन व्यय किया है और यह आशा लेकर आये हैं कि यहाँ आकर आपको पर्याप्त शान्ति प्राप्त होगी। किन्तु आप जब एक भी बार बाजार में जाते हैं तो सांसारिक वस्तुओं की इच्छायें अपनी ओर आकर्षित करती हैं। यदि आपको आराम और सुख-सुविधायें चाहिये थीं तो आप अपने घर पर ही रह सकते थे। यदि आप को अनुग्रह, शान्ति, ज्ञान, सत्संग च हिये तो फिर आपको निलयम् की चार दीवारी में ही रहना चाहिये और अनुशासन का कठोरता के साथ पालन करना चाहिये। आप लोग मेरे द्वारा सेवा कार्य के लिये चुने गये हैं यह आपके लिये किसी प्रकार कम सौभाग्य की बात नहीं हैं, आपको इसका अनुभव करना चाहिये। तनिक विचार करें आप कि कितने हजारों लोग बाहर उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे केवल एक शब्द के लिये। यह बिल्ला आपके भीतर जो साईं है उसका प्रतीक है, यह आपको चेतावनी देता है कि आप केवल इच्छाओं, वासनाओं और संवेगों[1] के पुतले मात्र नहीं हैं बल्कि भगवान् के प्रतिबिम्ब हैं। इस बिल्ले पर ॐ भी अंकित है। इसका आपको सम्मान करना है, इसके अर्थ पर ध्यान और मनन करना है। इसको दीक्षा के समान मूल्यवान और महत्वपूर्ण समझो। जब सोओ और जब जागो तो इसे अपने नेत्रों से लगाओ और भगवान से प्रार्थना करो, "हे भगवान, मेरे सारे कर्म शुभ और पवित्र हों।"

यहाँ जो एकत्रित हुए हैं सभी आपके भाई, बहिन और नाते-रिश्तेदार ही हैं। इस बात की चिन्ता मत करो कि आपके नियमित कार्यों—जप का, ध्यान या पूजा का क्रम विगड़ जायेगा अथवा आप बिल्कुल ही नहीं कर पायेंगे, अथवा आपके दैनिक भोजन, विश्राम और निद्रा का क्रम अस्त-व्यस्त हो जायेगा और कभी-कभी आप उनसे वंचित भी रह जायेंगे। यदि शिवरात्रि के व्रत और जागरण आप नहीं भी कर पाये तो स्वर्ग प्राप्ति का अवसर आपके हाथों से नहीं निकल जायेगा। एक बार शिवजी ने पार्वती को दिखाया कि सड़क के किनारे एक भिखारी पड़ा था और वह बहुत ही रुग्ण और मरणासन्न अवस्था में था। उसकी स्त्री उसके लिये वहाँ से जा रहे लोगों से पानी मांग रही थी, लेकिन कोई उसे एक बूंद पानी देने के लिये तैयार नहीं था, जब कि सब गंगा-स्नान करके आ रहे थे और उनके सिरों पर गंगाजल से भरे घड़े रखे हुए थे जिन्हें वे विश्वेश्वर नाथ के मंदिर में भगवान् पर चढ़ाने के लिये ले जा रहे थे। सबको विश्वेश्वर नाथ पर जल चढ़ाने की जल्दी और चिन्ता थी, उस गरीब मरणासन्न भिखारी की ओर कोई क्यों सहानुभूति दिखाता! एक चोर भी

---

१ दुर्भावनाओं

रात्रि, अच्छा देखते, अच्छा सुनते, अच्छा बोलते, अच्छा सोचते, अच्छा करते हुए बीते। और ऐसा कार्यक्रम आपके सम्पूर्ण जीवन का कार्यक्रम बन जाय।

एक पिता ने अपने पुत्र को कुछ पैसे दिये और फल तथा मिठाई लाने के लिये भेजा। जब वह बालक फल और मिठाई लेकर लौट रहा था तो मार्ग में सड़क के किनारे कुछ भिखारी बैठे हुये थे और वे भूख के कारण तड़प रहे थे। बालक उन भूखे लोगों की वेदना देखकर द्रवित हो गया और उसने अनुभव किया कि उन्हें भोजन की तत्काल आवश्यकता है। बालक ने फल और मिठाई उन भूखे लोगों को दे दी और स्वयं खाली हाथ घर लौट आया। जब पिता ने उसे डांट लगाई तो पुत्र ने उत्तर दिया "मैं आप के लिये जो फल लाया हूं वह अदृश्य हैं किन्तु उन फलों से अधिक मधुर और अधिक समय तक टिकने वाले हैं जो आपने मंगवाये थे।" हां वास्तव में सुपात्र को दिये गये दान का फल अधिक मीठा, अधिक टिकाऊ होता है। जब भी शुभ कर्म करने के अवसर आयें तो उन्हें हाथ से मत जाने दो।

अब मैं प्रशान्ति पताका फहराऊंगा। यदि मैंने यह पताका केवल इस भवन के ऊपर ही फहराई तो इसका कोई लाभ नहीं होगा। प्रशान्ति तो तभी प्राप्त हो सकती है जब आप में से प्रत्येक उसे अपने हृदय पर फहराये। मैंने जो कुछ कहा है उस पर बार-बार मनन करो, जब घर पर पहुंचो तो इसे पूरी तरह पचालो, और इसके द्वारा अपनी शक्ति अपनी सहनशीलता और धैर्य को बढ़ालो। मनसा-वाचा-कर्मणा, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान के प्रति समर्पित हो जाओ। आज लिंगोद्भव होगा। बैठने के लिये अपनी इच्छा का स्थान पाने के लिये दोपहर में धूप में तीन बजे से ही मत बैठने लगना। स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। अपने आप को अनावश्यकरूप से मत कष्ट दो। जब तक आप यहाँ हैं अपना एक मिनट भी व्यर्थ की बातों में नष्ट न करें। अब मैं ऊपर जा कर ध्वजारोहण करूंगा। ऊपर से की गई पुष्प वर्षा के पुष्प एकत्रित करने के लिये एक दूसरे पर गिरा-पड़ी नहीं करना। संयम और व्यवस्था रखना बहुत आवश्यक है। इसके पश्चात् आप सब लोग सभा-कक्ष (ऑडिटोरियम) में एकत्रित होंगे। जहाँ "अभिषेक" होगा। सब कुछ पूर्ण शान्ति और अनुशासन के साथ देखें और आनन्द प्राप्त करें।

प्रशान्ति निलयम्,
९-३-१९६७

४. न दर्पण, न प्रतिबिम्ब

दीपक कह देने मात्र से अंधकार दूर नहीं हो जाता। यदि किसी को किसी औषधि विशेष के गुण और प्रभाव बता दिये जायें और वह औषधि उसे खिलाई नहीं जाय तो उसका रोग दूर नहीं होगा। आर्थिक संकट में पड़े किसी व्यक्ति को धन कमाने की अनेकों योजनायें बता देने मात्र से ही उसको अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती। किसी भोज में परोसे गये विविध सुस्वादु व्यंजनों की सूची सुना देने से क्षुधा-संतप्त व्यक्ति की भूख मिटेगी नहीं, बल्कि बढ़ ही जायेगी। इसी प्रकार यदि सनातन धर्म की खूब बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा की जाय और उसे मानव समाज और विश्व के राष्ट्रों में फैले असंतोष और असमानता को मिटाने और सुख, शान्ति और संतोष प्राप्ति का एक मात्र उपाय सिद्ध किया जाय तो उससे संसार का असंतोष मिटने वाला नहीं है। वह तो तभी संभव होगा जब सनातन धर्म द्वारा निर्देशित अनुशासन का पालन करते हुए उसके द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलेंगे, उसको जीवन में उतारेंगे, अनुभव करेंगे और अपने जीवन में उसके द्वारा स्थायी सुख, शान्ति और संतोष प्राप्त कर उसकी सार्थकता के प्रत्यक्ष साक्षी बनेंगे। किन्तु आचरण तो बिल्कुल विपरीत होता है, उपचार की उपेक्षा की जाती है और रोग बढ़ता जाता है।

वास्तव में दुःख और शोक पर विजय पाने तथा सुख और संतोष प्राप्त करने के लिए प्रयास तो बिना किसी शैथिल्य के खूब किये जाते हैं किन्तु सफलता बचकर निकल जाती है और यदि प्राप्त भी होती है तो वह भ्रान्तिपूर्ण होती है। मनुष्य अपनी अनुभव की सत्यता के संबन्ध में अपने स्वयं के अन्तर में कोई तर्क नहीं करता है। किन्तु मनुष्य को मार्ग में आने वाले गर्तों में गिरने और भूल-भुलैया में फँसने से बचने के लिए सतत आत्म विवेचन करते रहना आवश्यक है। आज का दिन पावन है, आपको चाहिये कि आज आप प्रतिपल, प्रतिक्षण, आत्म-विवेचन में लगायें। इसीलिये मैं आप से इन मूल-भूत विषयों के संबंध में कह रहा हूं कि आखिर किस उद्देश्य के लिए है जीवन का यह सारा प्रयास? जब कोई विवाह होता है, तो आप बहुत कार्य करते हैं, भाई-बन्धुओं और नाते-रिश्तेदारों को आमंत्रित करते हैं, घर की सजावट करते हैं, नाना प्रकार की मिठाइयां और पकवान बनवाते हैं, भोज की तैयारियाँ करते हैं, संगीत, नृत्य आदि की व्यवस्था करते हैं। इन सब कार्यों का क्या उद्देश्य होता है? यही न कि वर और वधू का प्रणय-सूत्र बंधन ऐसे आमोद-प्रमोद और ऐश्वर्य पूर्ण सुखद वातावरण में सम्पन्न हो जिससे कि उनका दाम्पत्य जीवन भी सुख और ऐश्वर्य पूर्ण हो। इसी प्रकार समस्त कमाई और खर्च, समस्त उत्कंठा और लालसा, समस्त

अध्ययन, जप और तप, व्यक्ति के उस समष्टि के साथ मिलन के लिए हैं जिससे वह टूटकर अलग हुआ है और कष्ट भोग रहा है तथा वह उससे पुनः मिलकर स्थायी सुख और आनन्द प्राप्त कर सके।

समष्टि का तो एक पल झपकने-मात्र में ही परिज्ञान किया जा सकता है; परमानन्द की उपलब्धि एक कौंध के साथ क्षण भर में ही हो सकती है किन्तु इसका गुर, इसकी तकनीक आनी चाहिये। आपके पास भोजन तैयार करने के सभी साधन हों। ताजी सब्जियां, अच्छे चावल, दाल, घृत, मिर्च, मसाले, खटाई आदि, किन्तु आपको भोजन बनाना नहीं आता हो तो भला इस सामग्री का क्या उपयोग? आपमें सीखने की—ज्ञानार्जन की—तड़प होनी चाहिये, प्रयत्न करने होंगे, संघर्ष करना पड़ेगा तब कहीं सफलता प्राप्त होगी। बस कर दो शुभारम्भ, रखो प्रथम चरण, दत्त-चित्त होकर सुनो, जो कुछ सुनो उस पर चिन्तन, मनन करो, जो कुछ कहा गया है उसकी एक या दो बातों को ही अपनालो और उन पर कार्य आरम्भ कर दो।

आजकल प्रत्येक क्षेत्र में आप रिश्वत देकर अपना काम बना सकते हैं, सफलता प्राप्त कर सकते हैं किन्तु ईश्वर की प्राप्ति घूस, चालाकी, आदि जैसे साधन अपना कर नहीं की जा सकती। ईश्वर को तो आप विवेक, वैराग्य, कठोर अनुशासन के साथ संघर्षपूर्ण मार्ग पर चल कर ही पा सकते हैं। भगवान के लिए आप में तीव्र लगन और तड़प चाहिये। दृढ़ता के साथ उनमें भक्ति और विश्वास बनाये रखो, अपने मन को, विचारों को भगवान् के नाम उनके रूप, उनके यश, उनकी महिमा, उनके गौरव, उनके ऐश्वर्य से परिपूर्ण रखो। मनुष्य सहज स्वाभाविक रूप से दैविक है, देव स्वतः उसकी चेतना में आ जाता है। किन्तु माया का आवरण[1] उस रोमांचकारी सम्पर्क, ज्योतिर्मय दैविक प्रकाशन को अवरुद्ध कर देता है। माया भी तो दैविक छल है। ईश्वर का फैलाया जाल है, यह भगवान की एक उपाधि, उनका एक वाहन है। एक कथानक है कि एक बार भगवान माया पर नाराज हो गये और उससे लोप हो जाने को कहा क्योंकि लोग उसके छल कपट के कारण सही मार्ग से विचलित होकर पथ भ्रष्ट हो जाते थे, माया ने कहा "मैं तो आपकी इच्छा से निर्मित धुन्ध हूं, और चारों ओर व्याप्त हूं जहां आप हैं वहीं मैं हूं। जो आवरण आप धारण किये हुए हैं मैं वही हूं, जहां आप हैं वहां मैं हूं, जहां आप नहीं हैं वही स्थान बता दीजिये ताकि मैं उसी स्थान में शरण ले लूं।" भगवान की वास्तविकता का, परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करके आप उस आवरण को दूर कर सकते हैं अथवा आप भगवान् से प्रार्थना करें कि वे स्वयं अपने इस आवरण को तनिक उठाने की कृपा करें और अपने परम सत्य का साक्षात्कार करा दें। यह संसार तो एक रंगमंच है और इसमें

---

१ पर्दा

आपको एक अभिनय करने वाले कलाकार के समान ही गतिशील होना होगा, किन्तु अपने असली रूप को, अपने घर को नहीं भुलाना चाहिये जहां से आप आये हैं और जहां आपको जाना है—और वह गन्तव्य जहां आपको पहुंचना है—वह है भगवान। जब कभी यह संसार रूपी नाटक आपको सत्य भासित होने लगे इसे दृढ़ता के साथ, पूर्ण आग्रह के साथ अस्वीकार कर दो। जिस पात्र का आप अभिनय कर रहे हैं अपने आपको वही मत समझ बैठो, अन्यथा आपकी प्रगति अवरुद्ध हो जायगी।

आपको चाहिये कि आप गीता में वर्णित 'विभाग योग' का अध्ययन करें, सीखें और उसका जीवन में अभ्यास करें। गीता में जो 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग' है उसमें विभाग का अर्थ जानते हैं क्या आप? विभाग का अर्थ होता है टुकड़े, खंड या भेद करना, एक वस्तु को दूसरी से अलग करना। क्षेत्र यह शरीर है और इस क्षेत्र को जो जानता है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं; क्षेत्र प्रकृति है क्षेत्रज्ञ पुरुष। इनके भेद को भली प्रकार समझना चाहिये। क्षेत्रज्ञ जो इस क्षेत्र का, शरीर का जानकार है, वह जो सब कुछ घटित हो रहा है उसका ज्ञाता है, जो सबका साक्षी है, देही (देह को धारण करने वाला—आत्मा) सुख-दुःख, भलाई-बुराई आदि सभी द्वन्द्वों से परे है। आधुनिक सभ्यता की अपधातु अर्थात् खोटी धातु सनातन धर्म के स्वर्ण में मिश्रित हो गई है इसलिये शुद्ध स्वर्ण को प्राप्त करने के लिए विभाग करना ही होगा। जब कोई अन्तरिक्ष की यात्रा करता है और वहां पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमायें करता है अथवा चन्द्रमा की ओर जाता है, उसके चारों ओर चक्कर लगाता है, तो इन करिश्मों के लिए आप वाह-वाह के साथ प्रशंसा करने लगते हैं। लेकिन आप नहीं सोचते कि एक ओर पृथ्वी पर मनुष्य साधनों के अभाव में भूख से तड़प रहे हैं वहाँ दूसरी ओर अन्तरिक्ष में उड़ान भर कर साधनों का अपव्यय किया जा रहा है और साथ ही यह पारस्परिक घृणा, स्पर्धा और अभिमान से कलंकित है। एक-एक राकेट की लागत इतनी होती है जितनी कि भारत के समस्त विश्वविद्यालयों का बीस वर्ष का बजट। और इस सम्पूर्ण तथाकथित प्रगति का परिणाम बस इतना-सा है कि सम्पूर्ण मानवता प्रचण्ड अग्नि के किनारे बड़ी भयंकरता की स्थिति में रह रही है, भय से त्रस्त है, मनुष्य अपने ही पदचाप की प्रतिध्वनि से डर कर कांप जाता है। फिर भी मनुष्य के अहंकार को देखो, वह समझता है कि वह विश्व का स्वामी है। और विश्व का मालिक उसकी ही दया के आधीन है। तो फिर बताइये शान्ति कैसे प्राप्त हो। इस मिथ्याभिमान से मनुष्य का पतन होगा ही। इसलिये मनुष्य को चाहिये विनम्र बने, उसे यह ज्ञात रहना चाहिये कि उसे स्वयं अपने सम्बन्ध में ही क्या ज्ञात है? जब अपने स्वयं के विषय में ही मनुष्य को कुछ ज्ञात नहीं तो फिर निरर्थक बातों से अपने मस्तिष्क को भरने का क्या अभिप्राय है? अपने आपको विनम्र, निर्मल और दूसरों के लिए उपयोगी बनाओ। इससे ही आपको सुख, शान्ति और संतोष प्राप्त होगा। आज शिवरात्रि है। शिव के आदर्श को अपनाओ, जब समुद्र मंथन के परिणामस्वरूप विनाशकारी हलाहल विष प्रकट हुआ तो पृथ्वी पर जीवन के

उसी समय समूल नष्ट हो जाने का भय उत्पन्न हो गया। भगवान शिव संसार के कल्याण और सुरक्षा के लिए, उस भयंकर विष का पान करने के लिए तत्काल तैयार हो गये। गरल पान करने के कारण ही विष के प्रभाव से उनका कंठ सदा के लिए नीला पड़ गया और तभी से वे नीलकंठ कहलाने लगे हैं। दूसरों की रक्षा, सहायता सेवा करने के अवसर प्राप्त करने के लिए उत्सुकता के साथ तलाश रखो और जब अवसर मिल जाय तो उसे अपना सौभाग्य समझ हाथ से न जाने दो। इसके लिए आप को अपने में समत्व भाव, साहस और सहनशक्ति का विकास करना होगा। अन्यथा फिर जीवन तुच्छ होगा, तिरस्कार और घृणा से पूर्ण, जैसे किसी वृक्ष के नीचे कोई पड़ा हो और ढेरों चींटियाँ उसके चारों ओर चिपटी हों। यदि असहनशीलता, क्रोध और अहंकार किसी व्यक्ति को अपने पूर्ण अधिकार में करले और वह उनसे पराभूत हो जाय तो फिर उसने अन्य कुछ भी उपलब्धियाँ प्राप्त करली हों उनका क्या लाभ? हृदय के नभोमंडल में भगवान के नामों का तारों के समान जगमगाहट, प्रकाश सदा बना रहना चाहिये और जब आत्म-ज्ञान से विश्वास का उदय हो तो पूर्ण चन्द्र का दिव्य शीतल आलोक[1] चारों ओर फैल जाना चाहिये।

भारतवर्ष के लोगों के लिए यह संकटकाल है, क्रान्तिक स्थिति है, आत्म-ज्ञान से उत्पन्न आत्म-विश्वास की नितान्त आवश्यकता है; स्त्रियों और पुरुषों के दोनों ही वर्गों को यह ज्ञान अर्जित करना चाहिये और उसे सुरक्षित रखना चाहिये। स्त्री वर्ग की उपेक्षा करने, उसे नीचे धकेलने की प्रकृति मनुष्यों को त्याग देनी चाहिये। स्त्रियां कोई दास नहीं हैं जिन पर सदा शासन किया जाय। वे भी अपना स्वाभिमान और आत्मसम्मान रखती हैं, उनका भी अपना व्यक्तित्व है। वास्तव में स्त्रियों में भक्ति, सहानुभूति, दया, त्याग, साहस तथा अन्य सद्गुण पुरुष से अधिक मात्रा में होते हैं। लेकिन पुरुषों में एक धारणा समायी हुई है कि स्त्रियों की सलाह लेना उपयुक्त नहीं है। किन्तु यह धारणा मिथ्या है और इसे त्याग देना चाहिये जहां कहीं और जिसमें भी आध्यात्मिकता, बुद्धि और विवेक की श्रेष्ठता दिखाई दे उसका सम्मान करो।

समस्त आध्यात्मिक प्रयास, अनुशासन जिस सर्वोच्च चेतना और ज्ञान तक पहुंचाते हैं, वह है, "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या", केवल ब्रह्म सत्य है और यह जगत असत्य है। प्रत्येक अणु और कोशिका शक्ति का समुच्चय है जो दैविक इच्छा को प्रकट करता है, पदार्थ और ऊर्जा वास्तव में अलग नहीं हैं। ये सब एक ही इच्छा है जो सबमें समाविष्ट, प्रेरणोदित,[2] शाश्वत[3] और प्रवृत्त[4] है। संसार के इस वास्तविक स्वरूप की अनुभूति प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को समस्त द्वन्द्वों से ऊपर उठना होगा, समग्र

---

१ प्रकाश २ प्रेरणादायक ३ चिर स्थायी ४ कार्य में लगना।

सृष्टि के उस अद्वितीय एक आधार पर पहुंचना होगा, उसे पहचानना होगा और उसके साथ एकत्व स्थापित करना होगा। जब प्रज्ञा-चक्षु खुल जाते हैं तो सम्पूर्ण विश्व ब्रह्ममय दिखाई देने लगता है। उस समय स्थिति और विकास की सम्पूर्ण जटिलता एक रंग धारण कर लेती है—ब्रह्म रंग; और आप किसी भी परिवर्तन से अप्रभावित रहते हुये पूर्ण समत्व व स्थिरता प्राप्त कर लेते हैं। न दर्पण न प्रतिबिम्ब, बस रह जाता है केवल पुरुष, बिम्ब मात्र। आपके उस चिर स्थायी परमानन्द की स्थिति तक पहुंचने की तड़प और जिज्ञासा होनी चाहिये।

इस स्थिति को आप तभी जान और समझ सकते हैं, उसका रसास्वादन और प्रशंसा कर सकते हैं जब आप साधकों और संतों का सत्संग प्राप्त करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहें और सत्संग लाभ करते रहें। जब किसी चन्दन के वृक्ष को कुल्हाड़ी से काटते हैं तो वह कुल्हाड़ी भी चन्दन की सुगन्ध से सुवासित हो जाती है। संतों का ऐसा ही स्वभाव, ऐसी ही प्रकृति होती है कि जो उनको क्षति पहुँचाते हैं; उनकी निन्दा करते हैं और उन पर मिथ्या अभियोग लगाते हैं उनका भी वे सदा शुभ चाहते हैं, उनका भी हित करते हैं। संसार में आसक्त और भौतिकतावादियों की कुटिल मुस्कान, द्वेषपूर्ण हंसी और क्रूर आलोचनाओं की ओर ध्यान मत दो। यदि आपका उनके प्रति उपेक्षाभाव बना रहा तो वे स्वयं हतोत्साहित हो जायेंगे, जैसे कि आपका कोई परिचित या रिश्तेदार आपके घर के दरवाजे पर आयें और आप उसका उठकर स्वागत करें, उसे घर में आने और बैठने का आग्रह करें तो वह भीतर आयेंगे; किन्तु यदि आप उसकी तरफ देखें तक नहीं और ऐसा व्यवहार करें मानों आप उसे जानते ही न हों तो वह अपने आपको उपेक्षित और अपमानित अनुभव करेगा और वापस लौट जायेगा।

मैं स्वयं इस प्रकार की आलोचनाओं और कुत्सित आक्षेपों का निशाना बनाया जाता हूं। वे कैसे जान सकते हैं कि कोई विशेष घटना किसी एक निश्चित समय पर एक विशेष रूप से क्यों और कैसे घटित होती है? इसे तो केवल ईश्वर ही जान सकता है किन्तु लोग तो निर्णायक बन कर बैठ जाते हैं अपने फैसले और निर्णय देने के लिए, और यदि कोई रोगी अपनी बीमारी के कारण यहां मर जाता है तो करने लगते हैं बुराइयां। कोई मृत्यु से कैसे बच सकता है? अवतार भी जो देह धारण करते हैं उसे, अपना वह कार्य पूरा करने पर जिसके लिए वह देह धारण की थी, त्याग देते हैं। यदि आप किसी की सेवा, अच्छी तरह से उसकी देखभाल कर रहे हों और वह मर जाये तो कोई कारण नहीं कि ईश्वर में आप अपना विश्वास खोदें। इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं होगी यदि किसी की मृत्यु के साथ आपका ईश्वर में विश्वास भी मर जाये। मृत्यु तो मुक्ति है, इस संसार रूपी जेल में कारावास की अवधि समाप्त हो जाने पर। न तो कोई दूसरों के लिए जन्म लेता है और न ही दूसरों के लिए इस संसार में रह सकता है। प्रत्येक को अपना बोझा उठाना पड़ता

है और उसे रखना पड़ता है। अतएव किसी भी परिस्थिति के कारण भगवान में अपने विश्वास को मत प्रभावित होने दो, न डिगने दो क्योंकि भगवान ही आपकी शक्ति और आश्रय हैं।

इसीलिये मैं आप लोगों को जीवन के प्रत्येक क्षण का सर्वश्रेष्ठ रूप में सदुपयोग करने के लिए कहता हूं, अपनी सम्पूर्ण शक्ति और योग्यता के साथ अपने मानव साथियों की सेवा करने का परामर्श देता हूं, सम्पूर्ण मानवता के प्रति अपने हृदय में प्रेम उपजाने के लिये आग्रह करता हूं। घृणा और द्वेष को त्यागने की सलाह देता हूं। यह विश्वास रखो कि आपका इष्ट, भगवान का वह रूप जिसकी आप पूजा करते हैं प्रत्येक में है, इसलिये प्रत्येक के प्रति आपका भाव, कार्य और व्यवहार अपने उस इष्ट की पूजा के पवित्र कार्य के समान हो। आज सारी रात्रि भजन होंगे, उनमें भाग लेते हुए अपने मन और मस्तिष्क को ईश्वरीय दिव्य-भावों, उनके यश-प्रताप और गौरव-गरिमा से परिपूर्ण करो, उनका गौरवगान करो—वह गौरव जो आप स्वयं हैं।

महाशिवरात्रि,
प्रशान्ति निलयम्, ९-३-१९६७

५. मरणासन्न मृतों को रोते

काम जन्म का कारण है, काल मृत्यु का कारण है, राम जीवन का संरक्षक है। इच्छा के कारण ही जन्म होता है। काल, जो अविच्छिन्न[1] और अविरल[2] गति से प्रवाहित है, किसी की परवाह किये विना, जीवन सूत्र को काट देता है। भगवान के सतत नाम स्मरण से ही जीवन सार्थक वनता है। जीवन युद्ध है जो विजय प्राप्त होने तक लड़ा जाता है। इस विजय का लक्ष्य है आत्मा के 'राजमुकुट', मुक्ति के साम्राज्य 'प्रभुत्व' प्राप्त करना। यह विजय और उपलब्धियां वेदांत में दी गयी प्रक्रिया से प्राप्त की जा सकती हैं।

वेदान्त वेदों की पूर्णावस्था, सम्पूर्णता है। जब दूध का दही जमा दिया जाता है तो मक्खन और मट्ठे को उसमें से अलग किया जा सकता है और जब मक्खन को तपाकर छान लिया जाता है तो उसका घी बन जाता है जो दूध की अन्तिम स्थिति, पूर्णावस्था होती है। इसी प्रकार मनुष्य की पूर्णावस्था, परम स्थिति, उसका अन्तिम, अपरिवर्तनीय रूपान्तरण मोक्ष है। आप जब जीवन-संग्राम में विजय के लिये तैयारी करते हैं, अपने आन्तरिक शत्रुओं, इन्द्रियों, भावनाओं और संवेगों को पराजित करने के लिये सन्नद्ध हो जाते हैं तो भगवान आपको आवश्यक सहायता प्रदान करते हैं क्योंकि आप उन्हीं से मिलने के लिये आगे बढ़ रहे हैं। जो उनकी ओर दस कदम बढ़ाता है भगवान् उसकी ओर सौ कदम दौड़े आते हैं।

एक बार रामदास विलाप करने लगे, "हे भगवन ! आप सर्वशक्तिमान हैं, सर्वज्ञ हैं, मैं अकेला, असहाय अनाथ और दीन हूं।" भगवान ने उन्हें बीच में ही टोकते हुए कहा, "नहीं ! तुम अपने आपको दीन, असहाय और अनाथ कैसे कह सकते हो ? मैं तुम्हारे साथ हूं, तुम्हारे में हूं, सदा तुम पर मेरा अनुग्रह है। यदि इस सृष्टि में कोई अनाथ है तो मैं हूं, क्योंकि मेरा कोई संरक्षक नहीं है, सहायता का कोई साधन नहीं, कोई नहीं है जिसकी ओर सहायता के लिये देख सकूं। मैं अ-नाथ हूं और तो सब स-नाथ हैं क्योंकि मैं उनका नाथ हूं।"

इसलिये अपने आप को दीन मत कहो, आप कैसे दीन हो सकते हैं जब आप धी (बुद्धि, विवेक) से युक्त हैं। जब आप धी से सम्पन्न हैं तो उसी के सहारे, बिना किसी विलम्ब के, विलाप और प्रलाप में अपना समय नष्ट न करते हुये साधना में

---

१ अविभाजित २ लगातार

लग जाओ यही आपका अपने प्रति सबसे बड़ा कर्तव्य है। साधना भगवान् की सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों में प्राप्ति के लिये हो सकती है। चलने के लिये तो दोनों ही दायें और बायें पैरों की आवश्यकता होती है, एक पैर पर फुदक-फुदक कर नहीं चला जा सकता। सगुण साधना और निर्गुण साधना तो दोनों पैरों के समान है। जब तीर्थ यात्रा पूर्ण हो जाय और देव मन्दिर में प्रवेश करने लगें तो सीधा पैर आगे रखें। सीधा पैर निर्गुण साधना—भगवान् का निराकार पक्ष है।

आप लोगों ने सम्पूर्ण रात्रि नाम उच्चारण करते हुये बिताई है किन्तु आपको इतने से ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये, यह तो आपके दैनिक जीवन का आधार बन जाना चाहिये। यहां आने को आप अन्य दूसरे स्थानों की तीर्थ यात्रा के समान मत समझना जहां से आप ऐसा कुछ भी अर्जित करके नहीं लाते जिसको आप को अपनी हृदय की तिजोरी में संभाल कर रखना पड़े। वहां तो आप घूमते फिरते हैं या पर्यटकों के समान दृश्य देखते, कला की विलक्षण वस्तुएं खरीदते हैं किन्तु यहां तो आप भगवान की साक्षात् उपस्थिति के आनन्द में पूर्ण शान्ति के साथ मग्न हो जाते हैं। इस शान्ति और आनन्द के वातावरण को आप अपने में संजोकर अपने घर ग्राम और शहर में ले जाओ और उन सभी स्थानों को पावन विचारों और कार्यों से पवित्र कर दो। इस शिवरात्रि को अखण्ड शिवरात्रि बनादो, सतत्, अविच्छिन्न और अविरल शिव चिन्तन, शिव-मनन, शिव-विचार, शिव-ध्यान का उत्सव मनाओ, जीवन को शिव मय बनाने का प्रेरणादायक प्रयास करो—"सर्वदा सर्वकालेषु सर्वत्र हरि चिन्तनम्"।

एक बार ब्रह्मा जी ने नारद से प्रश्न किया, "हे नारद, !आपने पृथ्वी पर कौन सी ऐसी वस्तु देखी जो सबसे विचित्र थी ?" नारद ने उत्तर दिया, "हे भगवन ! मैंने जो सबसे विचित्र वस्तु देखीवह यह थी कि वहां जो स्वयं मरणासन्न हैं, मृत्यु को प्राप्त होने वाले हैं वे ही मृतों को, मरे हुओं पर रोते, विलाप करते हैं"। जो स्वयं प्रतिपल प्रति-क्षण मृत्यु के निकट पहुंच रहे हैं उनका ऐसे लोगों के लिये रोना जिनकी मृत्यु हो गई है ऐसे लगता है जैसे कोई इसके कारण वे स्वयं मृत्यु से बच जायंगे अथवा जो मर चुके हैं वे जीवित हो उठेंगे।" ब्रह्मा जी ने नारद से दूसरी विचित्र बात बताने के लिये कहा तो नारद ने कहा, "प्रत्येक पाप के परिणामों से तो डरता है किन्तु फिर भी पाप किये जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पुण्य के सुफल प्राप्त करने को तो इच्छुक है किन्तु फिर भी पुण्य कर्म करने के लिये तैयार नहीं।"

लोग कहते हैं कि विनम्र वार्तालाप बड़ा मधुर होता है, मीठी-मीठी बातें बड़ी प्यारी होती हैं। किन्तु मीठी-मीठी बातें तो लोग असत्य, कृत्रिमता और निन्दा कार्यों में बड़ी बनाते हैं। वे कहते हैं आजकल के समाज में झूठ का सहारा लिये बिना कैसे

रहा जा सकता है। यह पहुँच गलत है। सत्य बोलने से तो मनुष्य को ज्ञान से उस परम सत्य की आत्मानुभूति हो जाती है जो आप स्वयं हैं, आप भी 'वह' ही हो जाते हैं क्योंकि आप तो सदा 'वह' (भगवान) ही थे, बस आप को इसका उस समय तक पता नहीं था।

प्रशान्ति निलयम्,
१०-३-१९६७

६. विनाशकारी बाढ़

भूखे को भोजन और सूखते हुए खेत को वर्षा का जल जिस प्रकार जीवन प्रदान करता है इसी प्रकार सत्य, धर्म, शांति और प्रेम को छोड़ देने के कारण विनाश की ओर तीव्र गति से लुढ़कती हुई जा रही मानवता की, आध्यात्मिक अन्वेषण का वैदिक विज्ञान, जीवन-रक्षा करता है। आप लोग इस वैदिक विज्ञान का इस विशाल देश में दूर-दूर तक प्रसार करने वाले साधन हैं, उपकरण हैं, चुने हुये कार्य करने वाले लोग हैं। आपको अनुशासन और आदर्श प्रस्तुत करते हुए यह दिखा देना है कि आत्मसाक्षात्कार का मार्ग, पूर्ण आनन्द प्राप्ति का मार्ग है। अतएव आप लोगों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, आपको अपनी शान्ति, धैर्य, विनम्रता, पवित्रता, साधुता, साहसिकता और सभी परिस्थितियों में अपने विश्वासों में अडिगता का परिचय देते हुये बता देना है कि जो साधन का मार्ग आपने अपनाया है उस पर चलते हुए आप अधिक अच्छे, अधिक सुखी और अधिक उपयोगी व्यक्ति बन गये हैं।

सागर पवित्र समझा जाता है, किसी भी नदी से अधिक पवित्र; क्योंकि सभी नदियाँ आकर सागर में ही मिलती हैं। अखिल भारतीय कार्यकर्ताओं का यह सम्मेलन एक पवित्र संगम है जिसमें भक्ति की धाराओं का समागम हुआ है। अब यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि आध्यात्मिक ज्ञान को हर घर तक पहुंचाने के लिये विधिवत आयोजन किया जाय और आधुनिक यांत्रिक सभ्यता की बाढ़ जो मनुष्य में दैवत्व का बड़ी तेजी से विनाश करती हुई बढ़ती चली आ रही है उससे रक्षा की जाये।

मनुष्य शाश्वत सुख के स्रोत; अपनी आत्मा की तो उपेक्षा करता है और नाम, प्रतिष्ठा और प्रदर्शन की अपनी आकांक्षा की पूर्ति के लिये सागर की गहराइयों और अनन्त आकाश में भटकता फिरता है। सत्य तो प्राकृतिक रूप से स्वयं ही आ जाता है। झूठ बोलना एक कृत्रिम कला है जिसे सीखना पड़ता है। क्यों मिथ्या बनावट में पड़ते हो। सहज स्वाभाविकता अपनाओ, अपने आप में ही रहो, फिर आप मिथ्यावाद में नहीं गिरेंगे। छोटी-छोटी सी बुरी बातों से, मिथ्या आचरणों से, झूठ बोलने से बचना चाहिये क्योंकि तिनके सी तनिक-तनिक बातें बार-बार दोहरायी जाने पर ऐसा भारी बोझ या जाल बन जाती हैं कि वे मनुष्य के चरित्र को दबा लेती हैं, बिगाड़ देती हैं, वह बुरी आदतों का शिकार हो जाता है। बाजार से सामान लाने के लिये कोई व्यक्ति अपनी स्त्री को दस रुपये का नोट देता है, वह बाजार में दस रुपये के स्थान पर केवल नौ रुपये ही खर्च करती है और एक रुपया बचाकर

रखती है और पति से यह तथ्य छिपाती है। यद्यपि उस व्यक्ति की पत्नी यह तर्क भले ही दे कि उसने कोई बुरा कार्य नहीं किया किन्तु उसके व्यवहार में दोष तो अवश्य है। अपने कृत्यों की, विचारों की, भावनाओं की प्रत्येक क्षण सत्य की कसौटी पर परख करते रहो।

अपने हृदय को यदि आपने असत्य आचरण की अर्गला[1] लगाकर बन्द कर दिया है तो फिर आप भगवान को कैसे दोष दे सकते हैं कि वह आपके हृदय को अपने अनुग्रह की किरणों से प्रकाशित नहीं करता ? मिथ्यावाद तो इच्छा व काम के कारण फलीभूत होता है, जब हृदय में काम हो तो वहाँ फिर राम का स्थान कहाँ रहेगा। काम और उसकी संतान क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर को हृदय से निकाल बाहर करो और जब हृदय निर्मल हो जायेगा तो उसमें राम निवास कर सकेंगे। इस सफाई के बिना केवल शरीर को हिलाते-डुलाते और जिह्वा को चलाते हुए 'राम राम राम' पुकारते रहने मात्र से कुछ नहीं होगा, यह सब व्यर्थ होगा। केवल 'विजय' 'विजय' चिल्लाते रहना तो निरी मूर्खता होगी जबकि शत्रु किले के भीतर घुस कर जम गया हो और आप इतने टूट चुके हों कि उसे बाहर निकालने में असमर्थ हों।

इसलिये अपने हृदय क्षेत्र में विनम्रता से शोधित, अच्छे विचारों का बीजारोपण करो, प्रेम के जल से सिंचाई करो, साहस के साथ उस खेती की कीटाणुओं तथा अन्य क्षतियों से रक्षा करो, चित्त की एकाग्रता की उस फसल में खाद दो, तो फिर 'भक्ति' की योजना से फसल तैयार होकर आपको ज्ञान की प्राप्ति होगी, वह आन्तरिक सत्य ज्ञान जिस के प्रकट होने पर सब भेद समाप्त हो जाते हैं, ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं। अब समय आ गया है जब कुछ लोगों को आगे बढ़कर, अपने सत्य अनुभव के आधार पर हिम्मत के साथ यह घोषणा करने और विश्व को बता देने की आवश्यकता है कि चन्द्रमा पर पहुंचने का आनन्द कुछ नहीं है यदि उसकी तुलना आन्तरिक चन्द्रलोक के आनन्द और आनन्द के स्रोत आत्मा तक पहुंचने पर प्राप्त होने वाले आनन्द से की जाय। यदि हो कुछ और कहा कुछ जायगा या कहा कुछ तथा किया कुछ और जायेगा तो उससे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। तनिक से भी दम्भ और पाखंड से भवन की नींव कमजोर हो जायगी। इसलिये यह आवश्यक है कि जो इस क्षेत्र में कार्यकर्ताओं के रूप में कार्य करें उनके लिये कुछ परीक्षण और योग्यतायें कुछ बृहद् मार्ग-दर्शक रूप-रेखायें निर्धारित की जायं। किसी भी कार्य की सफलता के लिये प्रत्येक चरण और स्थिति में यह आवश्यक है कि कुछ नियामक सिद्धान्त हों, मानक हों और विधि पूर्वक आत्म परीक्षण निरीक्षण किया जाय।

---

१ सांकल या कुण्डा

वर्तमान समय में घृणा, लोभ, मोह और अस्वस्थ प्रतिस्पर्धाओं से वातावरण दूषित है और इसके कारण सम्मान, सुहृदयता और समत्व आदि सद्गुण दबते चले जा रहे हैं। संसार और उसके क्षण भंगुर बाह्य आकर्षण मनुष्य की गतिविधियों के लक्ष्य बन गये हैं। भगवान् जो जीवन का आदि स्रोत है, आलम्बन है और चरम लक्ष्य है, वह बाह्य संसार में तथा बुद्धि विचार एवं मनोवेगों के आन्तरिक जगत में, दोनों में ही उपेक्षित है। इसलिये उन संगठनों को जिनके आप प्रतिनिधि हैं तथा आप लोगों को सदा सतर्क, सावधान और सन्नद्ध रहना होगा कि कहीं आप भी उस चक्रवात में न फंस जायं। मैं अब आप लोगों को यहां अधिक नहीं रोकूंगा क्योंकि सम्मेलन की आगे की कार्यवाही के अनुसार आप लोगों को विभिन्न समितियों और उपसमितियों के रूप में एकत्रित होना है विचार-विमर्श और स्पष्टीकरण आदि के लिये विषय और प्रश्न निर्धारित करने हैं, सम्मेलन के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये प्रतिवेदन, सुझाव और सिफारिशों की सूचियां तैयार करनी हैं। आप सब लोगों को मेरी आशीर्वाद है। आप अब अपने ठहरने के स्थानों पर लौट जायं और फिर दोपहर बाद आगे के कार्यक्रमों के लिये एकत्रित हों।

अखिल भारतीय सम्मेलन,
भगवान श्री सत्य साई सेवा संगठन, मद्रास
२०-४-१९६७

७. सत्य साई सेवा

वेद ईश्वर की पावन कृपा से प्रणीत हैं, वे मानवता को इस संसार में जीवन को सुखमय बनाने के रहस्यों को प्रकट करते हैं ग्रौर सदा के लिये मुक्ति का मार्ग बताते हैं। वेद ईश्वर के तेज, प्रताप ग्रौर महिमा का सार प्रस्तुत करते हैं। वेद सहस्रों-हजारों वर्षों से सम्पूर्ण मानवता के लिये ग्राध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत रहे हैं। भगवान ने मनुष्य को वेद ग्रौर प्रज्ञा से सम्पन्न किया है, इससे वह सत्य और ग्रसत्य, भले और बुरे का भेद कर सकता है। वेद ग्रौर वैदिक ज्ञान के द्वारा इस देश की महान संस्कृति की रक्षा की जा सकती है तथा मानवता के कल्याण के लिये उसको ग्रागे बढ़ाया जा सकता है। यदि वैदिक ज्ञान-निधि का पूर्ण बुद्धि-विवेक के साथ ग्रन्वेषण किया जाये तो ग्रात्म-तत्व स्पष्ट हो जाता है ग्रौर उसको जान लेने पर, उसका साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य परमानन्द और परम शान्ति को प्राप्त होता है। विदेशी ग्रौर ग्रसभ्य जीवन के बाह्य ग्राकर्षणों से ग्राकर्षित होकर इस अमूल्य निधि की उपेक्षा की गयी ग्रौर उसके महत्व को तुच्छ समझा गया किन्तु ग्रब कुछ वर्षों से उसके लिये लोगों में प्रायश्चित दिखाई देता है ग्रौर वेदों के प्रति सम्मान पैदा हो रहा है।

यह सम्मेलन ही इस पुनर्जागरण का प्रतीक है। ग्राप को एक बार फिर से लोगों के घरों तक ग्रात्मिक बल ग्रौर ग्रात्मिक एकता का संदेश पहुंचाने का कार्य सौंपा गया है। मानव को माधव बनाना, मनुष्यत्व को दैवत्व में परिणत करना ग्रौर उसका आनन्द प्राप्त करना ही वह एकमात्र कार्य है जिसके लिये जीवन समर्पित होना चाहिये। ग्राप ग्रपने-ग्रपने स्थानों पर जो प्रयत्न करते हैं वे प्रत्येक व्यक्ति में इसी लक्ष्य की ग्रोर जागृति पैदा करने की ग्रोर निर्देशित होने चाहियें। वास्तव में बहुत सी ऐसी सभा, संस्थायें और संगठन तथा ग्रान्दोलन पहले ही देश में चल रहे हैं जो आध्यात्मिक बुराइयों ग्रौर रोगों के निवारण के लिये उपचार बताने ग्रौर ग्रौषधियाँ वितरित करने में लगे हुये हैं। ग्रतएव प्रश्न उठता है कि फिर यह एक ग्रौर संस्था क्यों? उसकी ग्रावश्यकता इसलिये उठ खड़ी हुयी है क्योंकि इस समय इस मूलभूत ग्रौर अनिवार्य ग्रनुशासन पर बल देने की ग्रावश्यकता है जो मनुष्य में दैवत्व को प्रकट करने के लिये युगों से चला आ रहा है; व्यावहारिक है ग्रौर सर्व-व्यापी है।

इस सम्पूर्ण विश्व का वेदों में भगवान विष्णु के शरीर के रूप में वर्णन किया गया है ग्रौर भारत विश्व का नेत्र है क्योंकि भारत के पास काल के संदर्भ में ब्रह्माण्ड की विशुद्धतम दृष्टि है। माता चाहती है कि उसका पुत्र परिवार की

मान-प्रतिष्ठा को ऊँचा उठाये रखे, पुत्र को चाहिये कि वह अपने माता-पिता के नाम को ऊँचा रखे। इसलिये प्रत्येक भारतवासी को उस आध्यात्मिक विज्ञान को सीखना और व्यवहार में लाना है जो इस देश के ऋषियों और मुनियों ने अपनी तपस्या के बल पर खोज कर, पता लगा कर हमें सौंपा है। किन्तु भारतवासियों ने विरोधी शक्तियों, कुसंगतियों, अज्ञानतावश बाह्य प्रलोभनों और आकर्षणों के कारण अपने इस प्रधान और श्रेष्ठ कर्तव्य की उपेक्षा की है। यह संक्रामक रोग आ घुसा है और रचना तंत्र में जम गया है। अब इसको निकाल बाहर फेंकना है। यह सम्मेलन तथा समितियाँ और संगठन जिनका आप प्रतिनिधित्व करते हैं इस रोग के उपचार के ही प्रयत्न हैं। उद्देश्य सबका एक ही है। नाम चाहे कोई भी हो : प्रशान्ति विद्वान महासभा, सत्य साई समिति, सत्य साई सेवा दल या सत्य साई भक्त मण्डली।

प्रथम उद्देश्य है भारतीय संस्कृति का पोषण और उसकी उन्नति करना। इसकी उपयोगिता और सार्थकता का परीक्षण उसे जीवन में वास्तविक रूप में अपना कर करें और उसके मूल्यों का अपने स्वयं के अनुभव के द्वारा पता लगायें और फिर इससे प्राप्त होने वाले सुख, संतोष, शान्ति और आनन्द का अपने जीवन में स्वयं अनुभव कर लें तो फिर अपने ठोस आत्म अनुभव की बात सबको बतायें। मैं यह नहीं चाहता कि जिसने किसी औषधि का सेवन करके लाभ ही नहीं उठाया हो वह बिना अपने स्वयं के अनुभव के उसकी प्रशंसा और प्रचार करे। आज इस देश में ही जहां इस संस्कृति का जन्म हुआ और फली-फूली, अनैतिकता और भ्रष्टाचार ने सुख, शान्ति और संतोष को मिटा दिया है। अनेकों ऐसे हैं जो अनैतिकता और भ्रष्टाचार की निन्दा करते हैं वे ही लोग स्वयं इन बुराइयों के शिकार हैं। जो दूसरों के अग्रणी और नेता होने की बातें करते हैं वे ही मिथ्या प्रलोभनों में फंस कर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिये जब आप इस प्रकार के संगठन स्थापित करें और उन्हें चलायें तो आप के सामने सर्वप्रथम आदर्श होना चाहिये कि आप में पद, सम्मान, प्रतिष्ठा, अधिकार प्राप्त करने की कोई महत्वाकांक्षा न हो; कोई दिखावा, प्रदर्शन न करें, किसी के साथ किसी प्रकार की स्पर्धा, मान्यता और नाम प्राप्त करने की इच्छा न हो। कर्तव्य ही ईश्वर है। अपने कर्तव्य को निष्काम और सेवा भाव से पूरा करो और संतुष्ट रहो। आप में से बहुतों में अपना यश, अपना सम्मान बढ़ाने की बड़ी इच्छायें हैं और उनको पूरा करने के लिये उनकी योजनायें हैं। मैं यह भी जानता हूं कि कुछ लोग पद और स्थिति प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं किन्तु आप लोगों को अपने अन्तर से इस प्रकार की इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं को उखाड़ बाहर फेंकना चाहिये। बिना किसी शंका और संकोच के मेरे अनुदेशों का पालन करना सर्वश्रेष्ठ योजना है। सेवा में संलग्न रहते हुये, क्षुद्र इच्छाओं या अपने तीव्र संवेगों के वशीभूत होकर कार्य करना उचित नहीं है। वेद घोषणा करते हैं कि केवल त्याग, वैराग्य, समर्पण और वेदाज्ञानुपालन के द्वारा ही अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है।

आपने देखा होगा कि भारत के इतिहास में सभी महान आन्दोलन और साम्राज्य आध्यात्मिक अन्तर धाराओं से प्रेरित रहे हैं न कि राजनैतिक या आर्थिक प्रभावों से। यह तो केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के पश्चात ही राजनीति और राजनैतिक सत्ता के संघर्ष प्रमुख और प्रवल हो गये। आपको चाहिये कि आप राजनीति को भारतीय संस्कृति के संरक्षण और विकास में सहायक वना दें।

यह समस्त विश्व उस विराट् पुरुष की देह है। इस देह में एकत्वचेतना है भारत 'एकम् सत्' उद्घोष तो वेदों ने युगों पूर्व कर दिया था। वही आज भी भारत के हृदय का स्पन्दन है। यही कारण है कि इस भारत भू पर संत, ऋषि, मुनि, देव-पुरुष और भगवान् स्वयं अवतार लेकर आते हैं और मानव मात्र के कल्याण के लिये अपना संदेश देते हैं। यद्यपि इस बहुमूल्य संदेश का इस देश से निर्यात होने लगा है किन्तु यह विडम्वना ही है कि देश के भीतर इसका उपयोग नहीं के बरावर हो रहा है। सत्तारूढ़ लोगों तक अपनी पहुंच और प्रभाव के लिये सत्ता और शक्ति हथियाने और उस पर जम कर वैठे रहने के निमित्त लोग एक दूसरे की निन्दा-स्तुति करते, घृणा और द्वेष फैलाते और मिथ्या आचरणों में लीन रहते हैं और उनका यह क्रम पूर्ण प्रचारात्मक ढंग से रात-दिन सतत् रूप से चलता रहता है। यह स्थिति हमारी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति के मुख पर कलंक है। इसका मुख्य कारण है सस्ती लोक प्रियता, नाम और यश की उत्कंठा जो कभी नहीं टिकते हैं।

आप के संगठनों का कार्य होना चाहिए प्रभु में प्रेम और विश्वास को वढ़ाना। यदि यह आधार नहीं रहा तो पूजा, भजन और अन्य सब कार्य अर्थहीन होंगे, सामाजिक विवशता के अन्तर्गत सहज औपचारिकता मात्र। किन्तु ये सव कार्य जब श्रद्धा और विश्वास के आधार पर किये जाते हैं तो आन्तरिक परिवर्तन प्राप्त किया जा सकता है। जव सही जिज्ञासा, लगन और तड़प पैदा होती है तो उसको पूरा करने के लिये किये गये सद् प्रयत्नों के फलस्वरूप मूल से विश्वास पनपता है, बढ़ता है और दृढ़ होता है। अतएव आपको चाहिये कि आप जिनके सम्पर्क में आयें उनमें जिज्ञासा उत्पन्न करें और उनके अपनी जिज्ञासा को पूर्ण करने के प्रयत्नों को प्रोत्साहित करें, सहयोग दें और उन्हें स्वयं को सीधा अनुभव प्राप्त करने दें—फिर उनमें श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होता चला जायेगा।

मनुष्य अपने शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, भोजन, वस्त्र और आवास प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहता है, उसे अपने मन और बुद्धि को भी स्वस्थ और प्रसन्न रखने हेतु साधन प्राप्त करने चाहियें। यह मन ही तो इस शरीर को बन्धनों में रखता है। मन ही गतिपाल पहिया है, यंत्र है, मनुष्य का घनिष्टतम साथी है। मन के माध्यम से मनुष्य अपनी रक्षा भी कर सकता है और अपना

विनाश भी। नियमित और नियंत्रित, तथा सही दिशा में निर्देशित मन मुक्ति दिला सकता है तो अनियंत्रित और भटका हुआ मन जाल में फंसा भी सकता है और तीव्र बंधनों में बाँध सकता है। यह ज्ञात करने का प्रयत्न करो कि मनुष्य को वास्तव में कब पूर्ण और स्थायी शान्ति प्राप्त होती है। आप देखेंगे कि मनुष्य केवल सुषुप्ति अवस्था (गहरी नींद) में ही शान्त रहता है क्योंकि उस समय सारी इन्द्रियां निष्क्रिय हो जाती हैं, मन अक्रिय होता है और उसका उस समय इन्द्रियों और उनके विषयों से सम्बन्ध नहीं रहता है। तो जिस समय इन्द्रियां मन को बाहर खींच कर लाने में प्रभावहीन हो जाती हैं, मनुष्य शान्ति प्राप्त कर सकता है।

यही वास्तविक साधना है, मूल—आधारभूत साधना, इन्द्रियों को बाह्य जगत से हटा देना, निवृत्ति मार्ग पर ले आना। मन को बाह्य आकर्षणों से हटा कर अन्तरमुखी बनाओ और उसका अपनी भावनाओं, विचारों, संवेगों, दृष्टिकोणों, वृत्तियों और चेतना के स्तरों को शुद्ध करने और ऊंचा उठाने में उपयोग करो। इस मन को बाह्य संसार की गंदगी और कूड़े करकट को लाकर भीतर मत जमा करने दो, प्रवृत्ति मार्ग में मत पड़ने दो अन्यथा इसके परिणाम भयंकर होंगे। निवृत्ति मार्ग पवित्रतम है, इसमें मन अभिमान या निराशा से बोझिल नहीं होता। "मैंने यह किया", "यह मेरा है"—मनुष्य में दो विष दन्त हैं जो उसे विषाक्त बनाते हैं। विषैले दांतों को उखाड़ कर फेंक देने पर सर्प को हाथ में लिया जा सकता है और उससे खेला भी जा सकता है। आपके इन संगठनों को बहुत ही सतर्क रहना चाहिए कि कहीं अहंकार, अधिकार, आत्मश्लाघा[1] या उपलब्धि की भावनायें उन पर आच्छादित नहीं हो जायें। अपना लक्ष्य सदा दृष्टि के समक्ष और स्पष्ट रहना चाहिये।

जब कोई सभा, संस्था या संगठन बनाया जाता है तो उसके लिये नियम-विनियम बनाये जाते हैं। किन्तु हमारे नियम बिलकुल भिन्न प्रकार के हैं। हमारे नियम इस बात पर बल देते हैं कि सदस्य जो कहते हैं उन्हें उसे पहले अपने स्वयं के व्यवहार और आचरण में उतार लेना चाहिये। यदि आप दूसरों से किसी बात को करने की आशा रखते हैं तो आपको चाहिये कि आप स्वयं पहले उसका नियमित रूप से और दृढ़ता के साथ पालन करें। इसके पूर्व कि भजन की सार्थकता—गुण या प्रभाव के सम्बन्ध में आप किसी को उपदेश या सलाह दें आपको स्वयं नियमित रूप से विधिपूर्वक भजन करना चाहिये। यदि आप चाहते हैं कि लोग आपका सम्मान करें तो आपको चाहिये कि पहले आप लोगों का सम्मान करें। सेवा आजकल एक ऐसा शब्द है जो हर किसी की जबान पर होता है किन्तु इस शब्द

---

१ स्वयं की प्रशंसा करना

का उपयोग करने वालों में जो दंभ और पाखण्ड भरा होता है उसके कारण इसका कोई मूल्य नहीं रह गया है। वास्तव में जो पर-दुःख-कातर होते हैं, दूसरों के कष्ट और तकलीफ को देखकर स्वयं भी वैसी ही पीड़ा अनुभव करते हैं जैसी दूसरा भुगत रहा हो, वे ही दूसरों की सेवा करने के अधिकारी हैं, क्यों कि वे उस समय दूसरों की सेवा नहीं करते हैं जिससे कि वह पीड़ा जिसका वे स्वयं अनुभव कर रहे थे यथाशीघ्र दूर हो सके। इस प्रकार दूसरों की सेवा तो स्वयं के उस दर्द को दूर करने की दवा है जिसकी अनुभूति दूसरों के दुःखों और कष्टों को देखकर होती है। ऐसा अनुभव करो जैसे आप स्वयं अपनी ही सेवा कर रहे हैं, अपने ही अहंकार को दूर कर रहे हैं अन्यथा फिर सेवा आपके अभिमान को और अधिक बढ़ाने में सहायक होगी, अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझने के भाव को बढ़ावा मिलेगा जो आध्यात्मिक दृष्टि से अश्रेयस्कर और हानिप्रद है।

भूख की दवा भोजन है, प्यास की औषधि पानी है, और भवरोग (जन्म-मरण के दुख) की दवा तो स्वयं भगवान ही हैं। इच्छाओं का उपचार ज्ञान से है। साधक को सदा घेरे रहने वाले घृणा, द्वेष, शंका, संदेह आदि रोगों का सबसे अधिक प्रभावकारी उपचार परोपकार अर्थात सेवा ही है। अशान्ति के संक्रामक रोग का इलाज भजन है। आपके संगठनों को जिन संकटग्रस्तों की सेवा के लिए समर्पित होना है उन्हें ये ही औषधि-उपचार आपको प्रदान करने की आवश्यकता है।

एक आध्यात्मिक संस्था सभी नियम-क़ायदों से ऊपर होती है। आत्मा का राज्य सभी नियमों की सीमा और परिधियों से परे है। इस अर्थ में सत्य साई संगठनों के लिये नियम अर्थहीन या बेकार हैं। किन्तु जैसा कि देश में सभा, समितियों और संगठनों के विषय में जो कानून हैं उसके अनुसार इस संगटन के लिये भी नियम निर्धारित करने होंगे। उदाहरण के लिये इन संगठनों का कौन सदस्य बन सकता है। सदस्यों की क्या योग्यतायें होनी चाहिए ? (i) वास्तव में उन्हें आध्यात्मिक उन्नति के लिये जिज्ञासु होना चाहिये (ii) संगठन जिस नाम को धारण करता है, उस नाम में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये और उस नाम को उसकी महानता, प्रताप, गौरव और संदेश के अनुकूल फैलाने में भी (iii) इसके अतिरिक्त सदस्य सज्जन हो और इसी रूप में जाना जाता हो। बस यही योग्यता चाहिये, अन्य कुछ और आवश्यक नहीं है। न धन चाहिये और न ही नाम, पद या स्थिति, विद्वत्ता, प्रभाव या अधिकार। बस जो तीन बातें बताई गई हैं यदि वे आप में हैं तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपको मेरे नाम से चलने वाली किसी संस्था या समिति में कोई स्थान चाहे न भी मिले किन्तु आपको यहाँ (अपने हृदय की ओर संकेत करते हुये) अवश्य ही स्थान मिलेगा। संगठन ऐसे होने चाहियें जहाँ सदस्यों को साधना को सघन बनाने, उस पर आगे बढ़ने, सात्विकता बढ़ाने, अहं को जीतने के अनुकूल वातावरण प्राप्त हो सके, ऐसे सन्तों का,

निःस्वार्थ कर्मयोगियों का सत्संग मिल सके जिन्होंने अपने भीतर अहं के विष का लेश मात्र भी शेष न रहने दिया है। यदि यह प्राप्त कर लिया जाता है तो सफलता निश्चित है।

दूसरे सदस्यों और पदाधिकारियों के कर्त्तव्य क्या हैं? आप जानते हैं कि जब आप सरकार में कोई पद या उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं तो सरकार आप से शपथ ग्रहण करवाती है। इसी प्रकार प्रत्येक सदस्य और पदाधिकारी को संगठन की गतिविधियों में भाग लेने से पूर्व अपने हृदय के अन्तरतम से पूर्ण निष्ठा के साथ यह शपथ लेनी चाहिये, "हे स्वामी! आप मेरी रक्षा करें, मुझे ऐसे कार्य या व्यवहार से बचावें जिसके कारण आप द्वारा निर्धारित सदस्यता की तीनों शर्तों पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। अपने ही उत्थान के जिस कार्य के प्रति मैं अपने आपको समर्पित कर रहा हूं उसके लिये मुझे आवश्यक बुद्धि, विवेक, कौशल, उत्साह और लगन प्रदान करें। और आशीर्वाद दें। मेरा सही मार्ग पर मार्ग-दर्शन करने की कृपा करें, इधर-उधर भटकने और प्रलोभनों में फँसने से मेरी रक्षा करें, अपने अपार अनुग्रह की मुझ पर वर्षा करते रहें जिससे कि मैं सद्प्रयासों में संलग्न रहूँ और सफलता प्राप्त करूँ। जब प्रातः सोकर उठें तो यह प्रार्थना करें और रात्रि को सोने से पूर्व अपने दिन भर के कार्यों का सिंहावलोकन करें कि आपने कहीं कोई जाने-अनजाने ऐसा कार्य तो नहीं किया जो सदस्यता की किसी शर्त के प्रतिकूल हो और यदि कोई ऐसी चूक हो गयी हो तो उसके लिये क्षमा प्रार्थना करें, संकल्प करें कि फिर से इस प्रकार की कोई गल्ती न हो। इस प्रकार अपने कार्य और उद्देश्य को स्पष्ट रूप से समझते हुये सत्य निष्ठा और समर्पण भावना के साथ कार्य में जुट जायं।

दूसरी बात जिस पर मैं बल देना चाहता हूँ वह यह है कि इस देश में अनेकों दूसरे संगठन और संस्थायें हैं जो आध्यात्मिक उद्देश्यों को लेकर भगवान के अन्य नामों जैसे राम, कृष्ण आदि को अपनाकर कार्य कर रही हैं। आप यह जानते हैं कि भारतीय संस्कृति में भगवान् के सभी रूपों और नामों के प्रति सबके हृदय में सम्मान होना चाहिये। आपकी संस्थाओं में यदि कोई यह कहे कि केवल साई भजन ही होने चाहियें, केवल सत्य साई के नाम और रूप को ही अपनाया जाना चाहिये, तो वह गल्ती होगी। ऐसा कह कर आप साई का आदर नहीं, अनादर करते हैं। यदि आप साई के साथ तो सम्बन्ध जोड़ते हैं और कृष्ण से नाता तोड़ते हैं तो जितने अंक आपको एक से सम्बन्ध जोड़ने से मिलेंगे उतने ही दूसरे से नाता तोड़ने से कट जायेंगे और इसका परिणाम होगा आपको केवल शून्य अंक प्राप्त होंगे अर्थात आप अनुत्तीर्ण हो जायेंगे। इसलिये आप को अपने भीतर कोई कट्टर धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता के भाव पैदा नहीं होने देने चाहियें। दूसरे में इस प्रकार की कमजोरियाँ हो सकती हैं; किन्तु कोई कारण नहीं आप भी उन्हीं

दुर्बलताओं से ग्रसित हो जावें और वैसा ही व्यवहार करें। आपका यह पूरा प्रयत्न होना चाहिये कि आप में ये दोष उत्पन्न न होने पायें और आप उनसे सदा वचे रहें। जब अन्य संगठनों संस्थाओं को आपकी सहायता की आवश्यकता हो तो आपको उनकी सहायता करनी चाहिये। इससे उनको आपकी सार्वभौमिक प्रेम-भावना का परिचय प्राप्त होगा।

धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा या अन्य क्षुद्र आधारों पर भेद-भावों को कभी प्रोत्साहन प्रदान न करें। उदाहरण के लिये तामिलनाडु के लोगों को यह नहीं कहना चाहिये कि मद्रास में केवल तमिल भाषा में ही भजन होने चाहियें। आन्ध्र प्रदेश वालों को यह नहीं कहना चाहिये कि आन्ध्र प्रदेश में भजन तेलुगू भाषा में ही होने चाहिये। यदि इस प्रकार के विचारो को पोषण मिला तो वे आध्यात्मिक दृष्टिकोण को दूषित और विकृत कर देंगे क्योंकि उसका तो मूल मंत्र ही आत्मिक एकता है, समदृष्टि के साथ एक हो जाना है; सब द्वन्दों और भेदों को मिटा कर समत्व स्थापित करना है। यह क्षेत्र तो ऐसा है जिसमें वाह्य के स्थान पर आन्तरिक आनन्द, आन्तरिक शान्ति, आन्तरिक संतोष, आन्तरिक शुद्धता अधिक महत्वपूर्ण हैं।

धन एकत्रित करना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। किन्तु खर्च होता है इसलिये बहुत ही कठोर और नितान्त आवश्यक स्थितियों में ही मैं इसके लिये अनुमति देता हूं। प्रत्येक समिति में दस या पन्द्रह सदस्य होते हैं। संस्था के कार्य के लिए जब कभी वे सदस्य कोई धन व्यय करना चाहें तो उस धन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये उन्हें आपस में मिलकर धन एकत्रित कर लेना चाहिये। बाहर के लोगों से नहीं मांगना चाहिये। प्रत्येक को अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार योगदान करना चाहिये। और जितना धन इस प्रकार सुगमता से जुटा पायें उसके अनुसार ही कार्य-क्रम निर्धारित करना चाहिये। यह नहीं होना चाहिये कि आप अपनी क्षमता और साधनों की सीमाओं को लांघ जायें और फिर धन एकत्रित करने के लिये लोगों की सूचियां तैयार कर उनके घरों के चक्कर लगाते फिरें। इससे संस्था के नाम को बट्टा लगता है और आप भी उससे वच नहीं सकते। किन्तु आप शायद कहें, "किन्तु जब हमारे यहाँ स्वामी पधारें तो उनकी स्वागत व्यवस्था में तो हमको काफी कुछ व्यय करना ही चाहिये।" नहीं, मेरे लिये विशाल आधार पर सजावट करने की आवश्यकता नहीं, मुझे बड़े-बड़े पंडाल तोरण-द्वार, झण्डे-झण्डियां आदि नहीं चाहियें। अधिक से अधिक आवश्यकता एक "माइक" की होती है मेरे लिये जिससे कि मैं अपनी बात अपना संदेश, लोगों तक पहुंचा सकूं। कुर्सी रखने की भी कोई आवश्यकता नहीं, मैं खड़े रह कर बोल सकता हूँ। जो कुछ नितान्त रूप से आवश्यक हो, अपरिहार्य हो, केवल उसके लिये ही व्यय करो। विलासिता पूर्ण व्यय नहीं होने चाहियें। यदि आपके पास अतिरिक्त धन है तो उसे दूसरे सेवा कार्यों में खर्च करो जैसे भूखों और गरीबों को भोजन करवाने आदि कार्यों में।

बहुत से स्थानों पर सत्य साईं मन्दिर बनाने के प्रयास किये जाते हैं किन्तु साईं तो किसी ईंट पत्थर के मन्दिर के स्थान पर आपके हृदय मन्दिर में रहना अधिक पसन्द करेंगे यदि आप उन्हें वहां स्थापित कर सकें। मुझे हृदय मन्दिर ही अधिक पसंद है; वे नहीं, जिनके बनवाने के लिये आपको धन एकत्रित करने के लिये दान और चन्दे मांगते फिरना पड़े। इस देश में धर्म के ह्रास के कारणों में दान मांगने की और दान देने की प्रथायें काफी प्रमुख स्थान रखती हैं। यदि सही रूप से देखा जाये तो विशुद्ध निर्मल मन का दान अत्यन्त मूल्यवान होगा। आप अपनी समिति या संस्था को यह बहुमूल्य दान दें जिससे वह चमके।

मैं आप लोगों को एक उपाय बताता हूं कि समिति द्वारा जो कार्य करने का सुनिश्चय किया जाये उसके लिये धन किस प्रकार एकत्रित करना चाहिये। सबसे पहले यह अनुमान लगा लो कि कुल कितना खर्च होगा। मान लीजिये कि एक हजार रुपये का आपने अनुमान लगाया। इसकी सूचना आप अपनी समिति के १५ या १६ सदस्यों को जो भी हों, दे दीजिये और एक दिन निश्चित कर दीजिये जब सब एक स्थान पर, समय पर आपस में मिलने के लिये एकत्रित हो जायें। उस स्थान पर एक कमरे में एक बक्सा ताला लगा कर रख दें और एक-एक सदस्य वहाँ जाकर उसमें जितना कुछ वह उचित समझ कर दे सकता है उस बक्स में डाल दे। यदि वह चाहे तो उसमें कुछ भी न डालकर बाहर आ जाये, उसे ऐसा करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, कोई बाध्यता नहीं है कि वह कोई धन दे। यदि दूसरों की जानकारी के साथ कुछ दिया या नहीं दिया जाता है तो जो नहीं दे सकते हैं या कम दे पाते हैं वे अपने आपको दूसरों के सामने हीन अनुभव करते हैं और दूसरे भी उनके सम्बन्ध में शायद कुछ अन्यथा समझने लगें। इसलिये यह पद्धति सबसे अच्छी है। जब सब लोगों का यह क्रम पूरा हो जाये तो बक्स को खोलकर उसमें एकत्रित रकम गिन लो। यदि वह अनुमानित व्यय की राशि से कम है तो जितने धन की कमी पड़ रही हो तो उसे सब सदस्यों में समान रूप में फलित करके सबसे एकत्रित कर लो। यदि कुछ अधिक धन एकत्रित हो गया हो तो आगे के कार्यों के लिये सुरक्षित रख लिया जाना चाहिये। धन एकत्रित करने के जटिल अभियान मत चलाओ, कि सूचियाँ बनानी पड़ें, रसीद बहियाँ छपवानी पड़ें और फिर अपीलें निकालनी पड़ें। इन सब झंझटों से बचो क्योंकि इनसे व्यर्थ की बदनामी, प्रतिस्पर्धा, छल, कपट, आक्षेप आदि में फंसना पड़ जाता है। इसलिये जो पद्धति अभी बतायी गई है उसे अपनाते हुए शान्तिपूर्ण और पावन ढंग से कार्य करो। यही आपके पवित्र और पावन लक्ष्यों के अनुरूप है।

कुछ प्रतिनिधियों ने सुझाव दिया था कि उप समितियां बनायी जायें और उन्हें मान्यता दे दी जाये। किन्तु उसके कारण तो संख्या बढ़ेगी और अधिक त्रुटियों की सम्भावनायें रहेंगी। उत्तरदायित्व कुछ लोगों पर ही रहने दीजिये। जो कार्य में

समपर्ण भावना के साथ लगे हुये हैं। जिले के अध्यक्षों को यह देखना चाहिये कि गाँवों में गठित समितियों को उचित और पूर्ण मार्ग-दर्शन प्रदान किया जाता है और वे समितियां जो कार्य करना चाहें उसमें उन्हें पूरी सहायता दी जाती है। उन गाँवों में वैदिक विद्वानों और व्याख्याताओं को भेजा जाये जिससे कि उस क्षेत्र में वैदिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो सके और लोगों में आध्यात्मिक जीवन के प्रति आस्था और उत्साह पैदा हो और बढ़े। नवयुवकों में आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति पिपासा और आध्यात्मिक साधना के प्रति रुचि ओर उत्साह उत्पन्न करने के लिये भी अवश्य प्रयत्न किये जाने चाहियें।

सत्य साई सेवा समितियों को सेवा शब्द का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये और सेवा कार्य उत्साह के साथ करने चाहियें। सेवा शारीरिक पीड़ा को दूर करने, मानसिक क्लेश को कम करने और उसमें सान्त्वना प्रदान करने तथा आध्यात्मिक जिज्ञासा को पूरा करने की ओर लक्षित होनी चाहिये। किसी स्थान पर बाढ़ आ जाती है, कहीं सूखा पड़ जाता है। समितियों को ऐसे अवसरों पर संकटग्रस्त लोगों की सहायता करनी चाहिये और प्राकृतिक प्रकोपों तथा अन्य कारणों से सामूहिक रूप से लोगों के संकटग्रस्त हो जाने पर उनकी सहायता करने के लिये सेवा कार्य किये जाने चाहियें। जो भजन मंडलियां, सत्संग और भक्त मंडल स्थापित किये गये हैं उन्हें नामस्मरण, भजन और नाम संकीर्तन के सभी समय और सभी स्थानों पर किये जाने और करते रहने के संदेश और महत्व को व्यापक रूप से प्रचारित करना चाहिये। जयदेव गौरॉग, त्यागराजा, ये सभी गली और बाजारों में भगवान के भजन, ईश्वर का यशोगान गाते फिरते थे और उनकी आनन्द मग्न तन्मयता लाखों लोगों के हृदयों को भक्ति की भावना और दैविक आनन्द से ओत-प्रोत कर देती थी।

कल किसी ने कुछ चुने हुये पावन पर्वों की सूची सुनाई थी कि समितियों को कौन-कौन से त्यौहार मनाने चाहियें और उनमें शिव-रात्रि, नवरात्रि, स्वामी जन्म-दिवस और गुरु-पूर्णिमा का उल्लेख था, किन्तु आप लोगों को उन महात्माओं के जन्म-दिवस मनाने चाहियें जिन्होंने मनुष्य को उसके अन्तर में छिपे भगवान को पहचानने और प्राप्त करने की ओर बढ़ाया तथा ऐसे मार्ग बताये जिस पर चलकर मनुष्य दैवत्व प्राप्त कर सके। ऐसे अन्य दिवस जिन्हें आपके अन्य भाई-बन्धु और साथी पवित्र मानते हैं और मनाते हैं आपको भी मनाने चाहियें। इस प्रकार के उत्सवों, त्योहारों और पावन दिवसों को सीमाओं में मत बांधो। प्रत्येक दिवस को पावन दिवस बनाओ और भगवान की याद और उसके दिव्य संदेश को स्मरण करते हुये और उसके अनुसार पूर्ण उत्साह और प्रेम से आचरण करते हुये दिन बिताओ।

सर्व प्रथम आपस में एकता स्थापित करो। न तो दूसरों में दोष ढूंढने के प्रयास करो और न ही अपनी श्रेष्ठता का डंका पीटो। ईश्वर के पितृत्व और मनुष्य के

बन्धुत्व में पूर्ण विश्वास करो और अपने प्रत्येक कार्य को उसी प्रकार पूर्ण सम्मान और प्रेम के साथ करो। आपस में मिलते रहो, सप्ताह में एक बार या पन्द्रह दिनों में एक बार अथवा फिर कम से कम महीने में एक बार, किसी का संभाषण रखो, फिर भजन, ध्यान या अध्ययन का कोई कार्यक्रम रखो और आध्यात्मिक बन्धुत्व की भावना का अनुभव करो। समिति के प्रत्येक सदस्य को किसी न किसी कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिये और उन्हें इस प्रकार के नियमित कार्यक्रमों में सम्मिलित होना चाहिये सिवाय उस स्थिति को छोड़कर जब किसी विशेष कठिनाई के कारण किसी का आ सकना सम्भव न हो सके।

एक बात और मुझे आप लोगों को बता देनी चाहिये। आप जहां कहीं भी हों आप कोई भी कार्य करते हों उसे भगवान की पूजा के समान करो। समर्पण की भावना के साथ करो। सबके स्वामी, साक्षी और प्रेरक भगवान के यशोगान के रूप में करो। अपने कार्यों का इस प्रकार वर्गीकरण मत करो कि ये कार्य मेरे लिये हैं और ये कार्य भगवान के लिये हैं। यदि आप शून्य से शून्य को भाग देते हैं तो भी आपको एक प्राप्त होता है। जब आप कोई कार्य करें तो उसे पूरा करें, कुछ भी शेष नहीं रहना चाहिये। सब कार्यों को एक समान समझो। शास्त्र कहते हैं कि जन्म-मृत्यु के चक्र में आपको कुछ भी शेष नहीं छोड़ना चाहिये। न ऋण, न रोग, न शत्रु से बदला। सब को समाप्त कर दो। वे फिर से नहीं उठने चाहियें। यदि आप सारे कार्यों को भगवान के श्रीचरणों में समर्पित करते हुये करेंगे और अहंकार पूर्ण मोह का अंश मात्र भी नहीं रहने देंगे तो फिर उस कर्म के फल आपको बन्धन में नहीं बाँधेंगे, आप स्वतन्त्र होंगे, मुक्त होंगे, आपको मोक्ष प्राप्त होगा।

प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन
भगवान श्री सत्य साई सेवा संगठन, मद्रास
२१-४-१९६७

८. जंगल में यात्रा

भारत की महिमा वर्णनातीत[1] है। इस देश के मनीषियों ने अपने आध्यात्मिक प्रयत्नों से पर्वताधिराज हिमालय की सी दुर्जय ऊँचाइयों को पार किया है और सम्पूर्ण मानवता को ज्ञान की अपार निधि प्रदान की है। देश की संतानों को अपने पूर्वजों की महान उपलब्धियों पर गर्व होना चाहिये और जो अमूल्य रत्न उन्होंने दिये हैं, उन्हें सँभालकर सुरक्षित रखना चाहिये। वेदान्त शास्त्र व्यक्ति और समष्टि दोनों के ही सुख के लिये मूलभूत विज्ञान है। यह एकता, शान्ति और मनुष्य में ईश्वर की सत्ता का उपदेश देता है।

इस देश में उपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र तीनों ही, आध्यात्मिक साधकों को साधिकारिक रूप से मान्य हैं और ये तीनों ग्रंथ प्रस्थानत्रयी कहलाते हैं। तीनों ही उच्च आत्मिक जीवन के लिये सारभूत तत्वों की शिक्षा देते हैं। आत्म-तत्व के उपदेशों को समझाने के लिये एक के पश्चात् एक तीन महान आचार्यों ने इन ग्रंथों के विशद भाष्य प्रस्तुत किये हैं। तीनों के अपने-अपने विशेष दृष्टिकोण थे, अतएव तीनों ने, यद्यपि ग्रंथ तो वे ही थे फिर भी उनमें मुक्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग देखे जो विपरीत दिशाओं की ओर न जाकर एक ही लक्ष्य की प्राप्ति की ओर—मोक्ष की ओर, ले जाते हैं। शंकराचार्य ने उनका अद्वैत के दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण किया, रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत के दृष्टिकोण से तथा माधवाचार्य ने द्वैत की दृष्टि से।

द्वैतवाद की मान्यता है कि जीव जीव है, जगत् जगत् है और ईश्वर ईश्वर है। जगत् और जीव ईश्वर से अलग; हैं किन्तु ईश्वर द्वारा नियंत्रित हैं। अद्वैत कहता है कि केवल 'ब्रह्म ही प्रधान है, जीव और जगत उससे अभिन्न हैं। वास्तविक अभेद होने पर भी अज्ञान के कारण जीव जगत् को अपने से पृथक् समझता है। परन्तु स्वप्न संसार की तरह जागृत संसार भी जीव की कल्पना है। जीव जिस रूप में संसार में व्यवहार करता है उसका वह रूप मिथ्या है। तत्वतः सारे जीव ब्रह्म ही हैं। सब भेद अज्ञान जनित है—जीव की शुद्ध चेतनावस्था में भेद का लेश भी नहीं है। तत्वतः ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं—कोई द्वैत नहीं है। विशिष्टाद्वैत कहता है कि ईश्वर (ब्रह्म) एक स्वतंत्र तत्व है, परन्तु जीव भी सत्य है, मिथ्या नहीं। यह जीव ईश्वर के साथ संवद्ध है, जगत और जीव ब्रह्म के शरीर हैं। तीनों

---

१ जिसका कोई वर्णन न किया जा सके

मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पूर्ण स्थापित मार्ग हैं। जो इनमें से किसी एक मार्ग विशेष पर चलता है, अचानक अपना मार्ग बदल कर दूसरे मार्ग पर नहीं आ सकता। एक मोटर कार हवा में नहीं उड़ सकती और न ही एक हवाई जहाज थल मार्ग पर मोटर की तरह अपने गन्तव्य स्थल तक पहुंच सकता है। "ईश्वर मेरा पिता है।" "मैं उसका पुत्र हूँ।" "मैं और मेरा पिता एक हैं।" ईसा मसीह का यह कथन इस संबन्ध में महत्वपूर्ण है। जैसे-जैसे दृष्टि स्पष्ट और तीव्र होती है, प्रज्ञा-चक्षु खुलने लगते हैं; व्यक्ति को अपने स्वयं का और इस सम्पूर्ण जगत् का, जिसमें वह फंसा है, ज्ञान अधिक स्पष्ट, अधिक तीव्र और सत्य रूप में आता जाता है और यहां तक कि वह उसके श्वास-श्वास में, उसके अस्तित्व के मूल मर्म में समा जाता है।

एक बार एक विद्वान ने वेदान्त के व्याख्याता के रूप में बड़ी ख्याति प्राप्त की, किन्तु किसी को यह ज्ञात नहीं हो सका कि वह किस जाति के हैं, यद्यपि कि सभी जानने के लिये उत्सुक थे। अनेकों को यह संदेह था कि वह ब्राह्मण नहीं है, किन्तु इस तथ्य का पता लगाने के लिये कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। अंत में एक पण्डित जी की पत्नी ने कहा कि वह इस तथ्य का पता लगा सकती हैं। उन विद्वान महोदय को पण्डित जी के यहाँ भोजन के लिये आमंत्रित किया गया। उस दिन उन्होंने छक कर भोजन किया और पण्डित जी के आग्रह पर उनके यहाँ ही विश्राम किया। जब वह गहरी नींद में सो रहे थे, तो पण्डित जी की पत्नी ने उनके पैर के तलवे में एक गरम-गरम लोहे की सलाख छुवा दी, तो वह वैदिक विद्वान चीख पड़े, "अल्लाह" और इस तरह रहस्य प्रकट हो गया कि वह मुसलमान थे। विश्वास कोई स्पष्टीकरण देने या प्रकट करने मात्र के लिये ही नहीं है बल्कि वह तो अंतरतम में भी ऐसा गहरा समाया होना चाहिये कि चेतन या अचेतन में, पीड़ा की कराह और चीख में भी वही प्रकट हो।

पातंजलि ने अपने योग सूत्र में कहा है "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" चित्त की वृत्तियों का निरोध (सर्वथा रुक जाना) योग है। चित्त की वृत्तियों पर विजय पाने के लिये केवल मनुष्य समस्त आवश्यक साधनों से सम्पन्न है। पशु, पक्षी तथा अन्य योनियों के प्राणियों में इस प्रकार की क्षमता या शक्तियाँ नहीं होतीं। जो विवेक और वैराग्य मनुष्य में है, वैसा अन्य किसी प्राणी में नहीं है। अन्य प्राणी केवल अपनी स्वाभाविक, अंतर्जात प्रवृत्ति के वशीभूत होकर अपना कार्य करते हैं। वे चिन्तन और विवेक के आधार पर तर्क, निर्णय, स्वीकृति या अस्वीकृति नहीं कर सकते। एक दिन एक साधु गंगा में स्नान कर रहा था। उसने देखा कि नदी में बहती हुई एक लकड़ी पर एक बिच्छू भी है जो किसी भी क्षण डूब सकता है। साधू ने सोचा कि भगवान् बिच्छू के रूप में इस लकड़ी पर विराजे हैं। उसने बिच्छू की रक्षा करने की सोची और उसे अपनी हथेली में लिया, तो बिच्छू ने डंक मार

दिया और साधु ने उसे पानी में डाल दिया। किन्तु साधु को अपने इस व्यवहार पर पछतावा हुआ कि उसे क्यों पानी में डाला और बिच्छू को फिर अपने हाथ में उठा लिया। किन्तु उसने फिर डंक मारा और साधु ने उसे फिर पानी में डाल दिया; यह क्रम पाँच छः बार चला और अन्त में साधु अपने उद्देश्य में सफल रहा और उस बिच्छू को नदी के किनारे सूखी रेत में डाल दिया, जहाँ से वह अपनी जान बचाकर अपने रास्ते जा सकता था। बहुत से लोग साधु के इन प्रयत्नों को देख रहे थे और उसकी मूर्खतापूर्ण सहानुभूति पर हँस रहे थे। साधु ने कहा कि बिच्छू ने तो एक बहुत ही मूल्यवान पाठ पढ़ाया है और वह उसके प्रति कृतज्ञ है। लोग विस्मित होकर पूछने लगे कि वह मूल्यवान पाठ क्या है, तो साधु ने कहा, "अपनी सहज मूल-प्रकृति को मत त्यागो; चाहे कुछ भी क्यों न हो—यह शिक्षा इस बिच्छू ने मुझे दी है।" बिच्छू की सहज प्रकृति होती है डक मारना—वह यह विचार नहीं करता कि कब किसके और कहाँ डक मारा जाए। मनुष्य का मूल है आनन्द। वह स्वभावगत रूप से ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। प्रेम के रक्त संचार से वह जीवित है। शान्ति का लक्ष्य उसका मार्ग-दर्शन और निर्देशन करता है। इसलिये उपनिषद मनुष्य को 'अमृतस्यपुत्रः' कहकर संबोधित करता है, वह अनादि है, जन्म मृत्यु से परे है। गीता में कृष्ण अपने आपको 'स्थावराणां हिमालय' कहते हैं जिसका अभिप्राय है, "मैं समस्त स्थिर रहने वालों (गिरि-पर्वतों) में हिमालय हूँ।" इसका अभिप्राय आपको यह नहीं लगाना चाहिये कि कृष्ण ने देश-भक्ति की भावना से अपने देश के पर्वत हिमालय को गौरव देने के लिये ऐसा कहा होगा। हिमालय, सात्विक गुणों का प्रतीक, पवित्र, धवल और शीतल हिम का घर है। उस तक पहुंचने के लिये आपको हरिद्वार अर्थात ईश्वरीय चेतना के द्वार को पार कर, ऋषिकेश (वृत्तियों के निग्रह) होकर जाना पड़ता है। कृष्ण के कथन का यही आन्तरिक अर्थ है। जब तक आप अंतर्निहित सही अर्थ को समझेंगे नहीं, विश्वास दृढ़ नहीं होगा, साधना संकोच-पूर्ण होगी।

जीवन में सत्य-ज्ञान की प्राप्ति की और वेदान्त साधना की उपेक्षा के कारण ही पाप, ताप और अज्ञान की दुःख रूप में वृद्धि हुई है। इन तीनों से छुटकारा दिलाने वाले तो राम ही हैं अर्थात परम सत्य जो आप स्वयं ही हैं। तत्वतः—आत्मा को आत्माराम कहते हैं क्योंकि राम सच्चिदानन्द हैं, आनन्दघन हैं, ब्रह्म, चिन्मय और अविनाशी हैं और वही है आत्मा। इसलिये राम का अर्थ आत्मा ही है। 'रामः' में तीन अक्षर हैं 'र' 'अ' मः'। 'र' का अलौकिक अर्थ होता है अग्नि जो पाप को जलाकर भस्म कर देती है, 'अ' सूर्य का बोधक है जो अज्ञान के अंधकार को मिटाता है और 'मः' का अर्थ चन्द्रमा होता है जो ताप को शमन कर शीतलता प्रदान करता है। इस प्रकार 'राम' तीनों तापों का, दुःख-संकटों को दूर करने वाले हैं और 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' को प्रकट करने वाले हैं।

"जपहिं नाम जन आरत भारी ।
मिटहिं कुसंकट होंहि सुखारी ।।"

इस भाव और विश्वास से जो राम-नाम का जप करता है उसे उसका प्रभाव शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ।

मनुष्य आत्म-स्वरूप है, उसका मूल स्वरूप वही है जो आत्मा का अर्थात् सत्य, शिव, सुन्दर, शान्ति और प्रेम । किन्तु मनुष्य अपनी इस मूल प्रकृति की विपरीत दिशा में असत्य, अशिव और असुन्दर, अशान्ति, घृणा और जड़ता की ओर भागा जा रहा है । मनुष्य का इस प्रकार दौड़ना उसकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है, असम्मान-जनक है । मनुष्य को इस अधोगामी दौड़ से रुक कर सही दिशा की ओर अभिमुख[1] होना चाहिये और अपने अंतर में ही शक्ति और आनन्द के स्रोत का पता लगाना चाहिये । उसे चाहिये कि वह जब भी कोई कार्य करे तो सदा ईश्वर का ध्यान रखे क्योंकि वह स्वयं उन्हीं की अभिव्यक्ति है । वेदों के कर्मकाण्ड में जिन याग और यज्ञों का विधान है, वे ईश्वर की अनुग्रह प्राप्ति के लिये हैं न कि स्वर्ग का सुख प्राप्त करने के लिये । इसलिये कोई भी यज्ञ स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से प्रेरित नहीं होना चाहिये बल्कि वह प्रभु के प्रति समर्पण की भावना से प्रेरित होना चाहिये, उनका अनुग्रह प्राप्त करने के लिये । उसके फल की कोई कामना न हो । कर्म का फल तो बस उसके दाता पर छोड़ दो । नचिकेता ने अपने पिता को याग और यज्ञ के विषय में यह महान दृष्टिकोण सिखाया था । याग और यज्ञों के करने में न केवल निर्दिष्ट विधि-विधान का सम्यक् परिपालन किया जाना चाहिये, बल्कि जिस देव का आह्वान, स्तुति की जाये, उन्हें प्रसन्न किया जाये, उनके प्रति पूर्ण समर्पण होना चाहिये ।

उदाहरण के लिए शास्त्रों में भूत बलि के विषय में कहा गया है । सामान्य अर्थ में बलि का अभिप्राय देवता के नाम पर किसी पशु के मारने से लिया जाता है, किन्तु बलि का सही अर्थ होता है माल-गुजारी, राजकर, उपहार या भेंट । जनता द्वारा सरकार को कर दिये जाते हैं और उन्हीं के आधार पर ही सरकार जनता के हित में विभिन्न सुख-सुविधायें प्रदान करती है । इसी प्रकार यज्ञ में दी गयी संचित बलियों के आधार पर ही देव मानवता को सुख-सुविधायें प्रदान करते हैं जिनसे ज्ञान-प्राप्ति में सुविधा होती है । याग और यज्ञों में भूत बलि का एक महत्वपूर्ण विधान है । इस बलि में दीजिए आप अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को, लिप्सा और वासनाओं को, घृणा, द्वेष, अहंकार आदि को ।

आप जब कोई वांछित वस्तु लेने किसी दुकान पर जाते हैं. तो आप जानते

---

१ झुकाव होना

हैं कि उसका मूल्य चुकाये बिना आपको वह वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती है। आप भी यहाँ ग्रहण करने आए हैं—प्रेरणा या जिज्ञासा की मूर्ति, अपनी स्वयं की अंतरनिधि की प्रतिमूर्ति जिससे लाभान्वित होवें। उसे चाहे आत्म-साक्षात्कार, मोक्ष, आत्म-तत्व, मुक्ति या निर्वाण किसी नाम से पुकारें। आप इस दुकान में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए आए हैं और वह इस दुकान पर उपलब्ध है। किन्तु आप वस्तु तो लेना चाहते हैं, पर उसका मूल्य चुकाने में झिझकते हैं, मुफ्त में ही माल लेना चाहते हैं। घोड़े के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब लगाम लगाई जाती है, तो मुंह बंद कर लेता है, किन्तु जब घास या दाना दिया जाता है तो मुंह खोल देता है। किन्तु मनुष्य के प्रति ऐसा नहीं कहना चाहिए। इसलिए जब आप सत्संग में एकत्रित हों, तो आपको ज्ञात होना चाहिए कि यहां क्या बहुमूल्य पदार्थ उपलब्ध है और उसको अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए उपयुक्त क्षमता और योग्यता के साथ आना चाहिए। इस समय जो कुछ सुन रहे हैं, उसे उत्सुकता और चित्त की एकाग्रता के साथ सुनें और फिर घर में उस पर चिन्तन-मनन करते रहना चाहिए। वास्तव में यही मूल्य है जो आपको चुकाना है।

जो कुछ सुनें, उस पर चिन्तन-मनन करें और फिर जो कुछ उपयोगी समझें, उसे अपने जीवन में अपनाने का अभ्यास करें। अभ्यास से, साधना से आपको आनन्दपूर्ण अनुभव की स्वर्णिम फसल प्राप्त होती है। यदि सारा समय खेत के चारों ओर सुरक्षा के लिए मेंड़ और तार बाँधने में ही लगाते रहें, तो फिर कब बोयेंगे और आप कब फसल प्राप्त कर सकेंगे? यदि आप कृषि के सम्बन्ध में पढ़ने में ही सारा समय लगाते रहें और यह ज्ञात करते रहें कि अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए कैसा उन्नत बीज लेना चाहिए, उन्हें कैसे बोना चाहिए, कौन-कौन-सी खादें, कब-कब और कितनी-कितनी मात्रा में देनी चाहिए? रोग आदि से फसल की कैसे रक्षा की जाए आदि-आदि, और हल चलायें नहीं, खेत को तैयार करें नहीं, उसमें बीज बोयें नहीं, तो फिर आपके अनाज का भंडार भरेगा कैसे? केवल अध्ययन, श्रवण, मनन, और सम्भाषण आदि से काम चलेगा नहीं। जब तक आप स्वयं अभ्यास करेंगे नहीं, जीवन में उसे उतारेंगे नहीं। साधना अनिवार्य है।

यदि आपसे कहा जाता है कि नचिकेता ने यह किया था, श्वेतकेतु ने यह कहा था, उसका क्या उपयोग होगा? यदि आप स्वयं उपनिषदों और शास्त्रों के उपदेशों को जीवन में आदर्श और व्यावहारिक रूप से नहीं अपनाते हैं, उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त कर उस पथ पर नहीं चलते हैं, तो फिर ये ग्रंथ भी कथा-कहानी की पुस्तकों के समान रह जायेंगे। इन सद्ग्रंथों के स्थायित्व, दृढ़-विश्वास, उनके उच्चस्तर और मान, श्रेष्ठ गुण सम्पन्नता, महानता और सत्यता को समझने का प्रयास करो, उनमें दी गई अपार निधि को पहचानो। उसको प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा मन में पैदा करो। तभी कोई दूसरा नचिकेता या श्वेतकेतु हमें मिल सकता है। अन्यथा तो फिर मानव-इतिहास में केवल एक ही नचिकेता और एक ही श्वेतकेतु रह जायेंगे।

आपने सैकड़ों शव-यात्रायें और दाह संस्कार देखे होंगे किन्तु कोई शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाये होंगे। बुद्ध ने तो केवल एक शव-यात्रा ही देखी थी और उससे उनके जीवन का मार्ग ही बदल गया और विश्व के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया। आपने अनेकों संन्यासियों को देखा होगा, किन्तु बुद्ध ने तो एक ही संन्यासी देखा था। आपने तो रोगी हजारों ही देखे होंगे, किन्तु बुद्ध ने एक ही रोगी देखा था। संन्यासी के त्याग, रोगी की पीड़ा, वृद्ध की दयनीय दशा का बुद्ध के मानस पटल पर कैसा प्रभाव पड़ा कि वह मानव-जीवन में आने वाली दुःख और पीड़ा का समाधान पाने के लिए राजमहल की सुख-सुविधायें, अपनी सुन्दर पत्नी और अपने सुकुमार प्रिय पुत्र को शैशवावस्था में ही त्याग कर चल दिये। यदि आप अपने मन को ऐसा बना सकें, इस प्रकार के परिवर्तन कारी प्रभावों का स्वागत कर सकें, तो इन सम्भाषणों से आप लाभान्वित हो सकते हैं। इस महान प्राचीन देश में जो लाखों लोग आध्यात्मिक उपदेश सुनने के लिए एकत्रित होते हैं, यदि वे जो कुछ सुनते हैं उसका दसवां भाग भी अपने जीवन में व्यवहारिक रूप में अपना लें, तो भारत पुनः अपने आध्यात्मिक गौरव के उच्च शिखर पर पहुँच जायेगा। आध्यात्मिक मार्ग पर चलते समय यदि बाधायें आती हैं, वातावरण प्रतिकूल हो, अवरोध-विरोध और संदेह उठ खड़े हों, तो घबराना या भयभीत नहीं होना चाहिये। ये तो सब शुभ संकेत हैं, कोई अपशकुन नहीं। अपने सद्मार्ग पर चलते रहो। आप सनातन धर्म को अपने प्राचीन मूल गौरव पर, पुनः स्थापित पाकर आनन्दित होंगे। यह होना चाहिये, यह होगा और यह होकर रहेगा।

उस समय तक किसी प्रकार की निराशा को अपने पास न फटकने देते हुए आपको अपना मार्ग निर्धारित कर लेना चाहिये और दृढ़ता और विश्वास के साथ आगे बढ़ते रहना चाहिये। एक बार एक संत ने एक साधक से कहा कि यदि तुम सतत रूप से तीस दिनों तक अहर्निशि[1] चौबीस घंटे भगवान का ध्यान करते रहो, तो तुम्हें ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त हो सकता है। वह साधक अपने घर गया और छत्तीस दिनों तक ईश्वर का ध्यान करता रहा और इस प्रकार उसने छः दिन अधिक ध्यान किया, किन्तु फिर भी साक्षात्कार नहीं हुआ, तो बड़ा निराश हुआ और भागा हुआ संत के पास पहुंचा। संत ने उससे पूरे छत्तीस दिनों के कार्य-कलापों का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने के लिए कहा, तो उसने बताया, "मैं प्रातः चार बजे उठता, और नहा-धोकर पांच बजे तक तैयार होकर ध्यान करने के लिए बैठ जाता और छः बजे तक ध्यान करता। छः बजे से आठ बजे तक थोड़ा इधर-उधर घूमता, इसके पश्चात् भोजन करता, कुछ देर आराम करता, कुछ पढ़ता, मित्रों से बात-चीत करता संसार की घटनाओं पर। इसके पश्चात् फिर स्नान, थोड़ा खाना-पीना आदि आदि

१ लगातार

और बीच-बीच में राम नाम। लगभग इस प्रकार प्रत्येक दिन का कार्य-क्रम रहता था।" संत ने उत्तर दिया, "क्या कहने हैं आपके! मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि तुम अपने व्यवहार में इतने रूखे और कच्चे निकलोगे। मैंने तो तुमसे बिना कोई क्षण व्यर्थ इधर-उधर किसी अन्य कार्य या विचार में नष्ट करते हुए लगातार चौबीस घंटे ईश्वर का ध्यान करते हुये बिताने के लिए कहा था। इसके अतिरिक्त कोई अन्य समय-सारिणी तुम्हें मैंने नहीं बताई थी। यदि तुम ईश्वर-साक्षात्कार चाहते हो, मुक्ति चाहते हो, तो जाओ, जैसा मैंने तुम्हें बताया है चौबीस घंटे तीस दिनों तक लगातार ईश्वर का ध्यान करते रहो। एक क्षण भी ईश्वर के ध्यान से विमुख न हो। फिर निश्चित रूप से तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी।"

संत के निर्देशों का पालन करने की सर्वश्रेष्ठ विधि यह है कि इस विश्वास के साथ चलो कि यह शरीर भगवान का निवास-स्थल है, जो भोजन आप करते हैं, वह भगवान को चढ़ाया गया भोग है, आप जब स्नान करें, तो यह सोचें कि आप भगवान का जल से अभिषेक कर रहे हैं, जिस भूमि पर आप चल रहे हैं वह उन्हीं के राज्य में है, जो आनन्द आप प्राप्त कर रहे हैं, वह उन्हीं का दिया हुआ है, जो दुःख अनुभव करते हैं, जो शोक होता है, वह उन्हीं के द्वारा आपको दी गई शिक्षा है, पढ़ाया गया पाठ है। उन्हें सदा याद रखो दिन में और रात में, धूप और छांह में, सूखे में और बहार में, सोते मे और जागते में, भीड़ में और एकान्त में, काम में और आराम में। यह था वह शुद्ध-सात्विक रूप से अहर्निशि सतत भगवान के ध्यान करने का निर्देश जो उस संत ने अपने उस शिष्य को दिया था।

यह जीवन एक जंगल के समान है। जंगल में बहुत-सी सूखील कड़ी पड़ी रहती हैं जिसमें अनेकों कीटाणु और कीड़े मकोड़े अपना घर बना लेते हैं। जंगल की भूमि की कोई सफाई नहीं करता है और न ही कोई उसमें कटीले झाड़-झंखाड़ की ही कटाई करता है। जंगल की जोंकों से भरे तथा कटीली झाड़ियों से अवरुद्ध कंटक-पूर्ण मार्ग को पार करने के लिए जूते पहनने होते हैं। उसी प्रकार यदि जीवन के जंगल को, जोंकों और काँटों के प्रभाव से सुरक्षित रहते हुये पार करना है, तो वृत्तियों के निग्रह के द्वारा आपको अपनी सुरक्षा के उपाय अपनाने होंगे। यह एक पाठ मैं आपको देता हूं, इसको आप अपनी गांठ बांधकर घर ले जायें, इस पर चिन्तन-मनन करें और इसे जीवन में व्यावहारिक रूप में अपनायें।

प्रशान्ति विद्वान् महासभा, मद्रास
२२-४-१९६७

६. दौड़ और पुरस्कार

मनुष्य के जीवन का आरम्भ होता है और अन्त होता है; आरम्भ और अन्त कार्य-कारण नियम से शासित है इसलिये प्रत्येक आरम्भ और अन्त का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। किसी वृक्ष की शाखा पर किसी पक्षी द्वारा बड़ी मेहनत और सावधानी से बनाया गया घोंसला आँधी से उड़ जाता है या तूफान में गिर जाता है। मन्द-मन्द बहती बयार में झूमते और चारों ओर सुगन्ध फैलाते हुए खिले हुए आकर्षक गुलाब के पुष्प की पंखुड़ियाँ अचानक हवा के तेज झोंके से टूट कर जमीन पर बिखर जाती हैं। मनुष्य किसी भी ऊंचाई पर हो, अदृश्य के हाथों धरा-शायी हो जाता है। मनुष्य जब परिणामों को भुगतता है तो वह बड़ा आश्चर्य-चकित और भयभीत हो जाता है; वह नहीं जान पाता कि ऐसा क्यों है, वह जानने की इच्छा भी नहीं करता, अनभिज्ञ बना रहता है। जन्म का जो कारण है वही मृत्यु का है; ऐन्द्रिक विषय वस्तुओं के प्रति आकर्षण और आसक्ति और कर्मों का चक्र।

बच्चे प्रसन्न रहते हैं क्योंकि वे इस प्रकार के कर्मों में नहीं फंसे होते। वे तो अपनी निश्छलता और निष्कपटता से चारों ओर आनन्द, उत्साह और विश्वास फैला देते हैं। क्या कारण है कि बच्चे सदा निर्मल और प्रसन्न दिखायी देते हैं ? कारण स्पष्ट है कि उनके मन किसी प्रकार के विषय-विकारों से मलिन नहीं होते हैं और वे अपनी मूल स्वाभाविक प्रकृति के विशुद्ध आनन्द में मग्न रहते हैं। यही तो कारण था कि ईसा मसीह बच्चों को प्यार करते थे और बड़ों को भी बच्चों के समान निर्मल-हृदयी, कोमल-चित्त बन जाने का उपदेश देते थे। इसी में मानव जीवन की सुरक्षा है। कितनी मधुर लुभावनी होती है पालने में झूलते हुए शिशुओं की मुस्कान और उद्यान में खेलते हुये बच्चों की हंसी, किलकारी। यह है मनुष्य की मूल स्वाभाविक प्रकृति किन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, मूर्खता के कारण उसे बिगाड़ता जाता है।

मनुष्य के निर्मल हृदय सरोवर में दैविक अभिलाषा का कमल खिल रहा है; उस कमल को भगवान के चरणों में समर्पित करने के स्थान पर आप अर्पित करते हैं ऐसे पुष्प जो मुरझा जाते हैं, फल जो सड़ जाते हैं, और पत्र जो सूख जाते हैं। भगवान ने आपको हृदय दिया है, प्रेम, आदर और भक्ति से युक्त, उसे भगवान को अर्पित करो। आपका आनन्द ही मेरा आनन्द है अतएव आनन्द प्राप्त करो। और आनन्द की उपलब्धि होती है जब आप आनन्द के स्रोत से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं, आनन्द स्वरूप का, अर्थात् भगवान का, ध्यान करते हैं क्योंकि भगवान ही तो आनन्द-रूप हैं, आनन्द के मूल हैं, आनन्द के धाम हैं। लंकापति रावण ने सीता जी को

अपनी स्वर्णमयी लंका की सर्वश्रेष्ठ वाटिका 'अशोक वन' में रखा था। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, नाना रंग बिरंगे और सुगन्धित पुष्पों की क्यारियों, पौधों, वृक्षों, लताओं, कुंजों आदि से पूर्ण इतना नयनाभिराम, रमणीक और मनोरम स्थान था वह कि वहां पहुँचते ही सारे शोक-संताप दूर हो जाते थे। किन्तु सीता जी का सन्ताप[1] उस स्थान पर तनिक भी कम नहीं हुआ। सीता को तो वहाँ सिवाय थोथे अभिमान, लिप्सा, शक्ति और सत्ता की मदान्धता के कुछ नहीं दिखायी दिया। किन्तु सीता को उस समय थोड़ी सान्त्वना प्राप्त हुई जब कि उस पेड़ पर, जिसके नीचे वह बैठी हुई थीं एक कुरूप बन्दर आ बैठा और राम नाम जपने लगा। सीता के लिये वह नाम स्थायी आनन्द का स्रोत था।

यह जीवन का रंगमंच, सामाजिक स्थिति, व्यवसाय, मित्र, साथी, आपकी रुचियाँ, मनोरंजन और आमोद-प्रमोद आपके अन्तर के दर्पण को स्वच्छ करने वाले होने चाहिएं जिससे कि आप उसमें ईश्वर के दर्शन कर सकें। गृहस्थाश्रम भगवत साक्षात्कार के मार्ग का एक सोपान है। लक्ष्य तक पहुंचने के लिये तो आगे बढ़ते रहना होगा, किसी एक ही विश्राम स्थल पर सदा के लिये नहीं ठहरा जा सकता। ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ी के एक डंडे को पकड़ कर बैठे नहीं रह सकते, ऊपर चढ़ते जाना होगा। इसलिये भगवान् के साक्षात्कार के मार्ग पर आगे बढ़ते चलो, पार करते चलो सारी सीढ़ियाँ और सोपान, जब तक कि लक्ष्य तक नहीं पहुँच जाओ। आपको इहम् से परम तक पहुंचना है। मानव समाज के अंग होने के नाते इस संसार में इह जीवन से सम्बन्धित अपने धर्म का पालन करते हुये आप भावातीत[2] होकर परा धर्म के लिये योग्यता और अधिकार अर्पित कर लेते हैं। इह धर्म से तो आनन्द प्राप्त होता है किन्तु पराधर्म से तो आनन्द का स्रोत ही प्रकट हो जाता है और वह आप को अपने में समाविष्ट कर लेता है।

भगवान् जो स्वयं धर्म संस्थापन के लिये अवतार लेते हैं, गीता में अर्जुन से सब धर्मों का परित्याग कर शरणागत होने के लिये कहते हैं तथा मोक्ष प्रदान करने का आश्वासन देते हैं (सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहम् त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।) किन्तु गीता के उसी अंतिम अध्याय में भगवान समस्त इच्छाओं को, मुक्ति या मोक्ष की इच्छा तक को त्याग देने की बात कहते हैं क्योंकि तत्वतः 'न बन्धन न मोक्षा' सब बन्धन आसक्ति और अज्ञान के कारण है किन्तु जब बुद्धि सात्विक होती है, ज्ञान होता है सारे संदेह और संशय मिट जाते हैं, ज्ञान का प्रकाश होते ही अज्ञान अन्धकार स्वतः ही नष्ट हो जाता है।

---

१ दुख, पीड़ा २ भावना के वश में होना

जब आप यह जानते हों कि आप बीमार हैं तो ऐसी औषधि लेनी चाहिए कि आप स्वस्थ हो जायें और आपको उसके पश्चात और दवा न लेनी पड़े, आप फिर से रोग-ग्रस्त न हों। आप जब कोई कर्म करें तो ऐसा कर्म चुने तथा उसे ऐसे कौशल के साथ करें कि उसके परिणाम के फलस्वरूप आप एक के बाद एक अनेकों कर्मों और बन्धनों में न फंसते चले जायें। भगवान् को समर्पित कर्म, समर्पण और समत्व भावना के साथ किये गये कर्म जिन्हें बिना किसी फल की इच्छा से किया गया हो, बन्धन का कारण नहीं बनते।

संसार में हाल में हुये विचार आन्दोलनों से मनुष्य का हृदय प्रेम और सहानुभूति से निर्मल और कोमल होने के स्थान पर स्पर्धा, घृणा और लोभ से कठोर ही हो गया है। मनुष्य की मेधा, बुद्धि (अर्थात् धी जिसके लिये गायत्री मन्त्र में प्रार्थना की गयी है कि परमात्मा का तेज सब प्राणियों की बुद्धि को प्रेरित करे, अपनी परम ज्योति से प्रकाशित करे) विकृत हो गयी है और वह प्रकृति के सौंदर्य में, अन्तरिक्ष की विशालता में, काल और कारण के क्रम में ईश्वरीय सत्ता, शक्ति, महानता और गौरव को नहीं देख पाता मानो अंधा हो गया हो और प्रश्न करने लगता है, "भगवान् है कहाँ ? वह कहां मिल सकता है ?" "वह तत्काल प्रकट क्यों नहीं हो जाता ?" आप भगवान् को पा सकते हैं यदि आप अपने अन्तर में देखें और अपने आप को ही समझने का प्रयास करें। भगवान को पाने के लिये आपको एक प्रक्रिया द्वारा अपनी पूर्ण शुद्धि-सफाई करनी होगी, सारे मल आवरण हटाने होंगे। इसके लिये विधिवत्, नियमपूर्वक, अनुशासन पूर्ण तैयारी करनी होगी, संयम नियमों का कठोरता के साथ परिपालन करना होगा। यदि किसी भाषा की वर्णमाला तक आती न हो तो भला उसके श्रेष्ठ साहित्य को कोई क्या समझ सकता है और उसमें दोष निकाल सकता है ? हमारे प्राचीन ग्रंथों और शास्त्रों में सुरक्षित संस्कृति में जिस मानसिक और बौद्धिक शान्ति और समत्व तक पहुंचने की बात है, वह प्रत्येक के अन्तरतम में पूर्णरूप से समा जानी चाहिए। उसका सम्बन्ध प्रत्येक को आत्म तत्व का बोध करवा देने से है, परम सत्य का साक्षात्कार करवा देने से है जिसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, जो कुछ है सो उससे ही निर्मित है।

लोग धर्म को रीति-रिवाजों, किसी के साथ भोजन करने या न करने, विवाह आदि सम्बन्धों से जोड़ देते हैं और उनके विषय में व्यर्थ की बकवाद करते हुए धर्म की उपेक्षा या उसका अपमान करते हैं। किन्तु धर्म तो माता के समान है, माता तो सदा माता ही रहेगी, उसकी कोई कैसे उपेक्षा या अपमान कर सकता है ? कोई अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है, फिर से विवाह कर सकता है किन्तु भला कोई अपनी जन्म देने वाली मां को यह कह सकता है कि वह जन्म देने वाली माँ नहीं है। धर्म मनुष्य की रुचि, कल्पना या तरंग पर आधारित नहीं है, वह तो उस आत्मा की आवाज है जहां से हम आये हैं। जब कोई किसी को दुखी या प्रसन्न देखता है तो

स्वयं भी वैसा ही अनुभव करता है जो इस बात का द्योतक है कि तत्वरूप से सब एक ही हैं। जब कोई सत्य, शिव और सुन्दर को देखता है तो वह आनन्द का अनुभव करता है क्योंकि वही उसका मूलरूप है। जो धर्म का निषेध करता है उसमें विवेक नहीं, हृदय नहीं, विचार नहीं, भावना नहीं। 'मत' तो मति (चेतना) की उत्पत्ति है। जिनमें यह नहीं वे ही धर्म को हानिप्रद या व्यर्थ कहते-समझते हैं।

धर्म के वृक्ष की जड़ें बहुत गहरी जमी हुई हैं, उस वृक्ष की कुछ पत्तियों को नोच देने, कुछ टहनियां तोड़ देने या कुछ शाखाओं को काँट-छाँट डालने से उसका नाश नहीं होगा। वह तो मानवता के हृदय में गहरा जमा हुआ है। यह ठीक है कि यह शरीर नाशवान है, और किस क्षण उसका अन्त हो जायेगा कुछ कहा नहीं जा सकता, इन्द्रियां ज्ञान प्राप्ति के लिये पूर्ण और पर्याप्त नहीं हैं, पदार्थ स्वयं में सुख और शान्ति के स्रोत नहीं हैं, मैं या अहं गहन सुषुप्ति अवस्था में भी विद्यमान रहता है; किन्तु इतना कह देने मात्र से, घोषणा कर देने से ही तो इनसे छुटकारा मिलेगा नहीं। किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिये जिस प्रकार विधिपूर्वक प्रयत्न करने होते हैं इसी प्रकार आत्म साक्षात्कार के लिये कठोर संयम और अनुशासन के साथ साधना करनी होगी, प्रयत्न करने होंगे। मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा।

मान लीजिये स्वप्न में आपको कोई अपशब्द कहता है, अपमानित करता है और आप गंभीररूप से घायल हो जाते हैं तथा मानसिक और शारीरिक कष्ट अनुभव करते हैं। उस समय आपको बड़ी पीड़ा होती है और आप कराह उठते हैं किन्तु जैसे ही आपकी आंखें खुलती हैं, आप जागते हैं तो अपने आपको भला चंगा पाते हैं और जो कुछ क्षणों पूर्व आपके साथ घटा था उसे बिलकुल भूल जाते हैं। इसी प्रकार जब आपके वर्तमान स्थिति से ऊपर उठने पर, ज्ञान की उच्चतर चेतना अवस्था में पहुंचकर आपके प्रज्ञा-चक्षु खुलते हैं तो जो सुख-दुःख आप अपनी वर्तमान स्थिति में अनुभव कर रहे होते हैं, वे सब ऐसे ही विलीन हो जाते हैं जैसे स्वप्न में अनुभव किये जा रहे सुख-दुःख जागने पर विलीन हो जाते हैं। आप यदि पुलिस में जाकर यह शिकायत करें कि आपने किसी की हत्या कर दी है तो पुलिस आपको तत्काल अपनी हिरासत में ले लेगी, किन्तु आप यह कहें कि हत्या आपने स्वप्न में की थी तो आपकी बातों पर हंसने के सिवाय कुछ नहीं होगा और आपको भगा दिया जायगा।

इस संसार के रंगमंच पर आप मानव का रूप धर कर आये हैं तो उसी रूप में आपको अपना पार्ट पूर्ण कौशल के साथ अदा करना होगा। वृक्ष उसके फल से जाना जाता है। मनुष्य का शरीर भगवान का मंदिर है, भगवान उसकी हृदय-गुहा में विराजमान हैं। इस सत्य का साक्षात्कार करने की अपने में उत्कट अभिलाषा, लगन और तड़प पैदा करो, उसे प्राप्त करने के लिये सतत् प्रयत्न करो, उससे आनन्द और रस प्राप्त करो—यही मुक्ति है। जो परम प्रिय है प्रेम के योग्य है, प्रेम स्वरूप है उससे प्रेम करो। सांसारिक मोह में मत फसो।

एक पंडित जी अपने शिष्यों को व्याकरण और काव्य पढ़ाते थे। जब पाठ्यक्रम पूर्ण हो गया तो उन्होंने शिष्यों को चार पंक्तियों की एक सुन्दर कविता रचने के लिये कहा। एक नवयुवक ने बड़े उत्साह के साथ चार पंक्तियाँ लिख डालीं—

आसमान में चन्दा चमके
वृक्षों में फल मेरे मन के।
भोजन आया नहीं जब वनके
गंगा राम का माथा ठनके।

उच्च व्याकरण और काव्य का अध्ययन करने के पश्चात्, जिनसे श्रेष्ठ काव्य रचना की आशा की जाती हो, वे जब ऐसी कविता की रचना करें तो कितनी निराशा होती है।

मनुष्य का जीवन भी इसी प्रकार निराशाप्रद परिणाम देने वाले प्रयासों में व्यतीत हो जाता है। मनुष्य जीवन के पाठ्यक्रम की निर्धारित अवधि तो जैसे-तैसे पूरी कर लेता है; किन्तु उसकी उपलब्धियाँ; उसके किये हुए कार्य कितने अर्थहीन और बेकार होते हैं। उस विद्यार्थी के समान चार पंक्तियों की कविता तो सभी रच लेते हैं; किन्तु उस तुक-बन्दी का कोई अर्थ निकलता है क्या? क्या काव्य की दृष्टि से उसमें कोई सार्थकता है? उसका कोई मूल्य है? कोई प्रेरणा मिलती है? अथवा कोई आकर्षण है? नहीं। जीवन में इच्छाओं के दास रहे, जो इच्छा उठी उसकी पूर्ति के लिए दौड़-धूप करते रहे, जो विचार उठा उसी के पीछे दौड़े, इस प्रकार अपनी इच्छाओं को पूरा कर संतुष्ट हो जाते हैं कि हमने अपना जीवन सफलता के साथ पूरा किया। किन्तु इस प्रकार की तुष्टि भ्रामक है। देखना तो,यह है कि जब खाता बन्द करने पर हिसाब किया जाता है कि कितना जमा और कितना खर्च है तो अन्त में पता चलता है कि क्या लाभ रहता है। आप इधर-उधर चारों ओर खूब घूमते-फिरते और भटकते हैं किन्तु आप स्वयं अपने ही घर की उपेक्षा करते हैं। आप आकाश में तारों को देखते रहते हैं किन्तु अपने अन्तर के आकाश की खोज नहीं करते। आप दूसरों के जीवन की ओर देखते हैं और उनमें दोष ढूंढते हैं और बुराइयां करते हैं। किन्तु अपने स्वयं के विचारों, भावनाओं और कृत्यों की विवेचना स्वयं नहीं करते कि वे भले हैं या बुरे। यह नहीं विचारते कि जो दोष आप दूसरों में ढूंढ़ निकालते हैं वे आपके स्वयं के ही दोष हैं और उनमें प्रक्षेपित होते हैं तथा इसी प्रकार जो अच्छाई आप दूसरों में देखते हैं वह आपकी ही अच्छाई उनमें प्रतिबिम्बित होती है। ध्यान के द्वारा आप शुभ सुनने, शुभ देखने, शुभ विचारने और शुभ करने के लिए अपने में उत्तम दृष्टि, विचार और विवेक विकसित कर सकते हैं।

ध्यान के द्वारा आप ईश्वर की सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता के विचार

में लीन हो जाते हैं। यह तो आपके दैनिक जीवन का अनुभव होगा ही कि किसी बड़ी चिन्ता या बड़े दुःख में छोटी चिन्ता या छोटा दुःख भूल जाते हैं। इसी प्रकार जब आपका मन ईश्वर के विचार में लीन हो जायेगा, आपकी आशा-आकाँक्षा, तड़प और लगन सब ईश्वर प्राप्ति के लिए होगी तो फिर क्षुद्र स्वार्थ, इच्छायें, लाभ-हानि, सुख-दुःख सब महत्वहीन हो जायेंगे। आप स्वयं ही उन्हें भूल जायेंगे, वे तो ईश्वर के दर्शन की आशा की बाढ़ में बहते चले जायेंगे और शीघ्र ही दैविक आनन्द के अथाह सागर में जाकर लीन हो जायेंगे।

मैं आपको रामायण से एक उदाहरण देता हूँ, उससे यह स्पष्ट हो जायेगा। जब चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ का निधन हुआ था तो उनका अन्तिम संस्कार सम्पन्न करने के लिए उनका कोई भी पुत्र वहां उपस्थित नहीं था। अतएव भरत और शत्रुघ्न को उनकी ननिहाल से बुलवाया गया। उन्हें महाराज दशरथ के निधन का समाचार नहीं बताया गया था। जब उन्होंने आकर अपने पिता के शव को देखा तो उन्हें बड़ा धक्का लगा और वे महारानी कौशल्या के पास गये। उन्हें देखते ही कौशल्या जी के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। उन्हें रोते देख दोनों को और भी गहरा धक्का लगा। जब उन्होंने पूछा तो कौशल्या जी ने उन्हें महाराज दशरथ के निधन का दुःखद समाचार दिया। भरत को यह दुःखद समाचार सुनकर अपार शोक हुआ; वह छाती पीट-पीट कर, बिलख-बिलख कर रोने लगे। उन्हें इतना दुःख, इतनी पीड़ा थी उस समय उन्हें किसी प्रकार की सान्त्वना दिलाया जा सकना, समझा सकना भी सम्भव नहीं हो रहा था। उस संकट के समय भरत ने पश्चाताप के साथ कहा, "हे मां! मैं कितना दुर्भाग्यशाली हूं। मुझे पिताजी की उनके अन्तिम क्षणों में सेवा तक का अवसर प्राप्त नहीं हो सका।" शत्रुघ्न के सिर पर हाथ रख कर कहने लगे, "हे भाई! तुम भी अमूल्य सेवा के अवसर से वंचित रह गये।" फिर कुछ रुककर उन्होंने कहा, "मां कितने सौभाग्यशाली हैं राम और लक्ष्मण, उन्हें पिता जी की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे अंतिम क्षण पिता जी के पास रहे होंगे। हम यहां नहीं थे—पिता जी हमारे लिये कोई आदेश छोड़ गये हैं क्या? हमारे सम्बन्ध में उनकी अंतिम इच्छा क्या थी? क्या अन्तिम समय में उन्होंने हमारी याद भी की थी? क्या उन्होंने हमें बुलवाने के लिए कहा था?" कौशल्या जी ने कहा, "पुत्र उनके सामने तो बस केवल एक रूप और एक नाम था—राम।" भरत विस्मित[1] देखते रह गये और प्रश्न किया, "यह कैसे! जब राम उनके सामने थे तो फिर भला उनमें राम के नाम की रट और राम के लिए तड़प क्यों थी? मैं दूर था, मेरी याद क्यों नहीं की? ओह! कैसा अभागा हूं मैं। मैंने अपने पूज्य पिताजी का प्यार खो दिया?" कौशल्या जी ने कहा, "यदि राम उनके सामने होते या उनके निकट

---

१ आश्चर्य

होते तो महाराज अपने प्राण नहीं त्यागते।" भरत और भी अधिक विस्मित हुये और एकाएक प्रश्न किया, "तो फिर राम उस समय कहां चले गये थे? क्यों जाना पड़ा उन्हें? अब कहां हैं? क्या शिकार करने चले गये थे या सरयू तट पर बिहार करने चले गये थे?" माता कौशल्या ने उत्तर दिया, "नहीं, नहीं? राम तो चौदह वर्ष के लिए वन में चले गये हैं।" यह सुन सकना भरत के लिए असह्य था और वह विलाप करने लगे, "कितने असहनीय दुःख की बात है यह! क्या दोष हो गया राम से, क्या पाप कर डाला ऐसा राम ने कि उन्हें बनवास में जाना पड़ा? वे क्यों गये?" कौशल्या जी ने उन्हें बताया, "तुम्हारी मां की इच्छा थी कि राम चौदह वर्ष के लिए वन में जायें सो वह चले गये।"

जब भरत ने यह सुना तो जो तीव्र दुःख उन्हें अपने पिता की मृत्यु और उस समय अपनी अनुपस्थिति के कारण हो रहा था वह फीका पड़ गया, और उससे कहीं अधिक और तीव्रतर व्यथा ने उन्हें दबा लिया और वह व्यथा थी राम के चौदह वर्ष के लिए वन गमन की और सो भी उनकी माता के आदेश से। बड़ा दुःख छोटे दुःख को काट देता है।

इसी प्रकार जब बहुत बड़ी और तीव्र तड़प और लगन किसी के लिए पैदा होगी तो छोटी-छोटी इच्छायें उसके सामने तुच्छ पड़ जायेंगी और स्वतः ही वह जायेंगी, उसके प्रवाह में टिक नहीं पायेंगी। तो फिर भगवान के लिए अपने हृदय में तड़प और लगन पैदा करो, अन्य सारी क्षुद्र इच्छायें स्वतः ही मिट जायेंगी। लाभ या हानि, मान या अपमान, स्वास्थ्य या रोग, सुख या दुःख आदि सब उस समय स्वतः ही मिट जायेंगे जब अपनी चित्त की वृत्तियों को समेट कर भगवान के ध्यान में एकाग्र कर देंगे, उनके ध्यान में मग्न हो जायेंगे। यही है लक्ष्य जहां पहुँचना है, यही है जीवन की दौड़ का पुरस्कार जिसे प्राप्त करना है, लक्ष्य को सदा सामने रखो, पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ, बाधाओं की चिन्ता किये बिना आगे बढ़ते जाओ। दृढ़ विश्वास और इच्छा शक्ति से आगे बढ़ते रहने पर सारे अवरोध दूर होते चले जायेंगे। मनुष्य का कर्त्तव्य है—परमात्मा के दर्शन करे, परमात्मा को प्राप्त करे और परमात्मा में ही लीन हो जाये।

प्रशान्ति विद्वान महासभा, मद्रास
२३-४-१९६७

---

१ कठिनाई

१०. सपेरे बनो

"व्यासो नारायणो हरि:" कहा जाता है जिसका अर्थ है कि व्यास जिन्होंने महाभारत, भागवत, भगवान के अनेकों अवतारों की गाथाओं, पुराणों आदि ग्रंथों का संकलन किया और इस प्रकार नारायण की महिमा, उनके यश-गौरव और तेज-प्रताप का ज्ञान सम्पूर्ण मानवता के लिये सुलभ बनाया, स्वयं नारायण के ही रूप थे। नारायण ने स्वयं व्यासरूप प्रकट होकर वह सब कार्य किया था। अथवा फिर दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि व्यास को नारायण ने उस दैविक कार्य के लिये प्रेरित, प्रोत्साहित और प्रवृत्त किया; व्यास नारायण की इच्छानुसार केवल निमित्त मात्र बन गये। ईश्वर सर्वव्यापक है, जैसे रेडियो-तरंगें विभिन्न रेडियो प्रसारण केन्द्रों से प्रसारित कार्यक्रमों के साथ विश्व-व्यापी हो जाती हैं और अभिग्राही[1]-रेडियो-सेट उन्हें ग्रहण कर लेते हैं और आप उसे सुन सकते हैं; व्यास इसी प्रकार अभिग्राही सेट बन गये और उन्होंने ईश्वरीय प्रसारण ग्रहण कर मानवता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जिसको वह सुन सके, सुनकर जान सके, जान कर प्रेमपूर्ण आराधना कर सके और आराधना करके प्रभु को प्राप्त कर सके। आज के दिन आध्यात्म मार्ग के राही, ईश्वर प्राप्ति के लिये साधनारत साधक जो सम्पूर्ण सृष्टि में भय और आश्चर्य उत्पन्न करने वाली प्रत्येक वस्तु में उस प्रभु को देखते हैं, व्यास की सेवाओं का सम्मान और कृतज्ञता के साथ स्मरण करते हैं।

बच्चों का मन अपने मूल स्वाभाविक स्वरूप में निर्मल होता है, क्योंकि बच्चों में 'मैं'-'मेरा' का बोध नहीं होता है। तभी तो ईसा मसीह बच्चों को प्यार करते थे, उनको अपने हाथों से सहलाते, पुचकारते और प्यार करते हुये अपने कंधे पर बैठा लेते थे। बच्चे देव दूत होते हैं। किन्तु बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं, उनमें इच्छाओं का विकास होता जाता है, इच्छाओं के बढ़ने पर लोभ बढ़ता है और फिर अभिमान, घृणा, क्रोध, द्वेष आदि बढ़ते जाते हैं और इस प्रकार शान्ति भंग हो जाती है और उसका स्थान ले लेते हैं भय और चिन्तायें। उस बाल सुलभ निश्चिन्तता और शान्ति को प्राप्त करने के लिये मनुष्य संघर्ष करता तो है; किन्तु ऐसा भ्रमित हो जाता है कि वह और भी अधिक गहरे दलदल में फंस जाता है। क्या अंधे बनकर भटकने से आप अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। क्या दवा की शीशी पकड़ने मात्र से ही रोग का निवारण हो सकता है? क्या मिट्टी के ढेर को

---

१ स्वयं में ग्रहण (रेडियो सैट)

पीटने से सर्प मारा जा सकता है ? सुख और शान्ति तो मनुष्य को तभी प्राप्त हो सकते हैं जब वह यह भली प्रकार समझ जाये कि ये बाहर से प्राप्त होने वाली बाह्य वस्तुयें नहीं हैं, बल्कि ये तो मनुष्य के स्वयं की स्वाभाविक मूल प्रकृति हैं, आन्तरिक निधि है। जब आप संसार में आते हैं तो इन्द्रिय सुख-भोग की कोई तृष्णा नहीं होती है और जब संसार से जाते हैं तो भी यह तृष्णा नहीं होती है। तो फिर भला इसके शिकार आप जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में ही क्यों होते हैं ? इसे अपने पर मत छाने दो, इसकी दासता में मत फँसो, इसके कुचक्र में पड़कर ऐसे अंधे मत बनो कि लक्ष्य ही दिखाई न दे। व्यास ने बताया है कि जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में मनुष्य को बहुत कार्य करने की आवश्यकता है—उसे अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिये दैविक मार्ग पर चलना सीखना है, अभ्यास करना है और गतिशील होना है। किन्तु इस मार्ग में मनुष्य की इन्द्रियाँ काले नागों की तरह मार्ग रोके रहती हैं, इन नागों को मनुष्य के अन्दर की विषय वासनाओं, भोग, लिप्साओं और तृष्णाओं का नाद सदा उत्तेजित और व्याकुल किये रखता है और वे अपना फन फैलाये फुफकार मारते और प्रहार करते रहते हैं। यदि इन काले नागों को भक्ति भाव से पूर्ण, तनमन की सुधि बिसरा देने वाले संगीत की मधुर तान और लय में सम्मोहित कर लेंगे तो वे फिर उस भक्ति संगीत की मस्ती में झूमते रहेंगे, प्रभु के नाम के रस में ऐसे लीन होंगे कि प्रहार नहीं करेंगे। यही उनको निरापद[1] बनाने का रहस्य है।

भक्त को पूर्ण दक्ष होना चाहिये, उसके पास यह ज्ञान और कौशल होना चाहिए कि इन्द्रियों को कैसे नियंत्रण में रखा जा सकता है चित्त की वृत्तियों का निग्रह[2] कैसे हो सकता है, मन को किस प्रकार निर्मल और शुद्ध बनाया जा सकता है। पुराणों में एक कथा है दक्ष प्रजापति की। उसके एक कन्या थी जिसका नाम था 'सती'। यदि आप अध्यात्म विज्ञान में पूर्ण पारंगत हों तो 'सती' (आत्म ज्ञान) को प्राप्त कर सकते हैं। पौराणिक कथा के अनुसार 'सती' का शिव के साथ विवाह हुआ था। हाँ यह बात सही है कि आत्म-ज्ञान ईश्वर से परिणीत[3] है और इसलिये जो अनुशासन के साथ संयम-नियम का परिपालन करता है और सतत साधना के द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसका परमात्मा से अवश्य मिलन हो जाता है। यदि कोई मनुष्य यह ज्ञान, यह कौशल, यह विद्या नहीं अर्जित करता है तो उसे दो पैरों वाले पशु के अतिरिक्त और क्या नाम दिया जा सकता है। वह तो उसी प्रकार शोभाहीन, प्रभावहीन, अनुपयोगी, महत्वहीन और अपमानजनक है जैसे कि मक्खन निकला हुआ दूध, बिना धुरे का रथ, बिना चन्द्रमा के रात्रि, बिना कमल के सरोवर।

---

१ हानि रहित २ दमन ३ विवाहित

व्यास ने जो कुछ कहा है उससे उन लोगों को आशा बँधती है जो यह अनुभव करते हैं कि यह विद्या, यह ज्ञान उनकी पहुंच और सामर्थ्य के परे है। व्यास ने कहा है कि जो कुछ अठारह पुराणों में कहा गया है यदि उसे सार-रूप में कुछ शब्दों में कहा जाये तो इतना ही कहना होगा कि सेवा के समान कोई उत्तम कार्य नहीं है और दूसरों का अहित करने के समान कोई पाप नहीं है। इस कथन में विश्वास रखते हुये यदि आप निष्ठापूर्वक बिना किसी भय, संशय या संदेह के, नियमित रूप से पूर्ण प्रसन्नता और प्रेम के साथ अपनी सारी शक्ति, अपना समस्त कौशल और ज्ञान परोपकार में, दूसरों की सेवा में समर्पित कर देंगे तो भगवान स्वयं द्रवीभूत हो जायेंगे, दौड़े चले आयेंगे आप के पास और आप में ही, आप के ही समक्ष अपने पूर्ण अनुग्रह के साथ प्रकट हो जायेंगे।

पेट भरने को भोजन, तन ढकने को वस्त्र और रहने को कुछ जमीन और मकान प्राप्त कर लेना न तो कोई बहुत भारी समस्या ही है और न ही कोई प्रसंशनीय उपलब्धि। जब तक मृत्यु के बुलावे पर शरीर छूट नहीं जाता, तब तक रहने की व्यवस्था तो सभी कर ही लेते हैं; किन्तु जो समस्या है वह है कि एक पराक्रमी पुरुष, एक विजयी नायक के समान कैसे रहा जाये; काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, घृणा, द्वेष आदि आन्तरिक शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, पूर्ण-स्वामित्व के साथ। मन को कैसे नियंत्रित और शिक्षित किया जाये, भोग-विलास और विषयों की ओर भागती इन्द्रियों को कैसे रोक कर चला जाये; ज्ञान, विवेक और वैराग्य के निर्देशन में धर्म और ब्रह्म के पथ पर।

शिव का शस्त्र है त्रिशूल जिसमें तीन लम्बे-लम्बे काँटे होते हैं। उनकी बिल्व-पत्र से पूजा होती है जिसमें तीन-तीन पत्ते होते हैं। इस तीन का महत्व है, अभिप्राय विशेष है कि शिव को तीन प्रकार की पूजा प्रिय है—अर्थात् भक्ति, ज्ञान और वैराग्य। आपको भगवान से सांसारिक लाभों और स्वार्थों के लिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिये बल्कि उनसे याचना करनी चाहिये उनके परम अनुग्रह की। एकनिष्ठ भक्ति प्राप्त हो सकती है नामस्मरण की सतत् साधना से। भगवान को धन्यवाद दो कि उन्होंने आपको यह मानव जीवन दिया है और साथ ही दिया है विवेक और वैराग्य; मन में इस कृतज्ञता के भाव को लिये सदा नामस्मरण करो।

आप इस लोक की प्राप्ति के लिये दिन-रात परिश्रम करते है; किन्तु कितना समय आप उस संसार के स्वामी—लोकेश—के लिये देते हैं। लोकेश सम्पूर्ण सृष्टियों के साक्षी हैं। उनका पूर्ण सम्मान और कृतज्ञता के साथ स्मरण करना चाहिये। व्यास ने लोकेश की महिमा और यश-गौरव को चारों ओर फैलाया और मनुष्य को इस बात से अवगत करवाया कि भगवान का मनुष्य पर कितना उपकार है, मनुष्य

भगवान का कितना ऋणी है। इसलिये व्यास के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये पूर्णिमा का यह दिन रखा गया है जब आकाश में पूर्ण चन्द्र दीप्तिमान है, प्रभु के परम प्रकाश का प्रतीक, हृदय में अज्ञान अंधकार को दूर करता, सुख, शान्ति और ज्ञान का प्रकाश फैलाता है।

प्रशान्ति निलयम्,
२३-५-१९६७

११. सीसा या स्वर्ण

जैसा कि अमेरिका से आई हुई डाक्टर टायबर्ग के अनुभव से अभी आपने सुना कि जब अदृश्य, अगोचर[1] और अव्यक्त शक्ति किसी रूप विशेष में व्यक्त या प्रकट होती है तो जो उसे उस रूप में पहचान पाते हैं उनके लिए वह अपार आनन्द का स्रोत होती है। डा० टायबर्ग ने प्राचीन भारतीय शास्त्रों का अध्ययन किया है और अनेकों वर्ष भारतवर्ष में बिताये हैं; वह यह भली प्रकार समझती हैं कि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य अपने में ब्रह्म की अनुभूति करना तथा ब्रह्मानन्द में लीन हो जाना है। इसके लिए मनुष्य को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना होगा जिससे कि वह यह अनुभूति अर्थात्, आत्मसाक्षात्कार कर सके और मुक्ति पा सके। गायें अनेकों रंग, रूप, आकार, प्रकार और नस्लों की होती हैं; किन्तु सारे ही संसार में गायें जो दूध देती हैं वह एक सा ही होता है। इसी प्रकार सभी धर्म, उनका उदय चाहे कहीं से हुआ हो और प्रभाव क्षेत्र कहीं भी और कितना भी हो, सभी मनुष्यों को इसी लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग बताते हैं।

अब मानवीय व्यवहार का नियम बदल कर प्रत्येक अपने लिए ही रह गया है और इसका कारण यह है कि इस सत्य का कि 'ईश्वरीय रूप में सब एक हैं', साक्षात्कार करने का न तो बोध है और न ही प्रयास। इसका बोध, इसकी प्राप्ति होती है सतत् साधना से; यद्यपि की गई प्रगति कुछ मन्द गति से होती है किन्तु इसको प्राप्त किया ही जाना चाहिए। दुर्वासा मुनि जितने अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे उतने ही अपने क्रोध के लिए; किसी के द्वारा उनका तनिक भी तिरस्कार, उपेक्षा या विरोध हो जाने पर उनके क्रोध का पारावार नहीं रहता था। दुर्वासा इतने अधिक अहंकारी, उत्तेजनापूर्ण और दम्भपूर्ण स्वभाव के थे कि 'सब में एकात्मकता'[2] के सत्य को भूल जाते थे। जब भी कभी उनके अहंकार को कोई तनिक सी भी ठेस पहुंचती थी तो वे सदा शाप देने के लिए तैयार रहते थे। ऐसी अनेकों वर्षों की घोर तपस्या का क्या उपयोग? जो कुछ आपके पास है उसे भगवान को समर्पित कर दो और उनका विश्वास प्राप्त करो। कभी जब आपके पास कुछ धन बच जाता है तो आप अपने किसी विश्वास पात्र मित्र के पास यह कहते हुए धन रख देते है कि "यह मेरे लिए आप अपने पास रख लो क्योंकि यह धन मेरे पास रहा तो शीघ्र व्यय हो जायेगा क्योंकि मुझे अपने आप पर कोई भरोसा नहीं है"। ईश्वर भी इसी प्रकार के भरोसे वाला विश्वसनीय मित्र है,

---

१ जो नज़रों से दिखाई न दे २ एक ही होना

इसलिए अपना सब कुछ उसके सुपुर्द कर दो और स्वयं चिन्ताओं से मुक्त, स्वच्छंद और प्रसन्न रहो। आप यदि कभी यह नहीं करते हैं तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि भगवान में विश्वास की आप में कमी है।

मनुष्य अभी भी यह विश्वास करता है कि आनन्द संसार के बाह्य पदार्थों से प्राप्त हो सकता है। यह धन का संग्रह करता है, अधिकार, सत्ता, नाम, यश, विद्या आदि प्राप्त करता है जिससे उसको सुख मिल सके। किन्तु उनको उपलब्ध कर वह पाता है कि तो सब भय, चिन्ता और दुःखों से भरे पड़े हैं। लखपतियों और करोड़पतियों को सदा टैक्स इकट्ठा करने वालों, चोरों, डाकुओं, ठगों, भाई-भतीजों और स्वयं की सन्तानों से, जो उसके धन पर गिद्ध-दृष्टि रखते हैं, सदा भयभीत रहना पड़ता है। सांसारिक पदार्थों से प्राप्त होने वाला सुख अस्थायी होता है और अन्त में दुखदायी होता है।

आत्मानुभूति[1] के लिए, ईश्वर के साक्षात्कार के लिए संघर्षरत रहो। इस संघर्ष में सफलता भी अन्य किसी सांसारिक सफलता से कहीं श्रेयस्कर है। भैंस के सींग होते हैं और हाथी के दांत होते हैं; किन्तु कितना अन्तर होता है। इस मानव शरीर को धारण कर, शरीर के लिए शरीर में रहना कीड़े-मकोड़ों के समान जीवन है जब कि शरीर में, भगवान के साथ और भगवान के लिए रहने में इस मानव जीवन की सफलता है। अकर्मण्य और आलसी तामसिक वृत्ति के लोग दंभ-पाखंड, अपना-पराया, मेरा-तेरा में लगे रहते हैं और उनके प्रेम का दायरा मोह की सीमाओं तक सीमित रहता है। राजसिक वृत्ति के लोग कर्मशील और महत्त्वाकांक्षी होते हैं और नाम, यश, गौरव, शक्ति और सत्ता प्राप्त करने में लगे रहते हैं और उनका प्रेम उन्हीं तक सीमित रहता है जो उनके इन कार्यों में सहयोग करते हैं। किन्तु जो सात्विक वृत्ति के लोग होते हैं वे सदा शुद्ध, निर्मल और पवित्र होते हैं तथा सब द्वन्द्वों से परे समत्व में स्थित रहते हैं, वे सबको ईश्वर का स्वरूप मान कर प्रेम और सम्मान करते हैं और इसी भाव से सब की सेवा करते हैं। पुंडरीक एक ऐसे ही सात्विक व्यक्ति थे। एक बार पुंडरीक अपनी वृद्ध माता के चरण दबा रहे थे कि भगवान उनके सामने आ उपस्थित हुये किन्तु वह अपनी माता की सेवा से नहीं हटे क्योंकि मां की सेवा करते हुए वह उसी भगवान की सेवा तो कर रहे थे। तुकाराम ने पुंडरीक को कहा कि भगवान विठोबा स्वयं प्रकट हुये हैं तो भी पुंडरीक अपने स्थान से तब तक नहीं हिला जब तक कि उसने अपनी मां के रूप में उन्हीं भगवान की वह सेवा जो वह प्रारम्भ कर चुका था, पूर्ण नहीं कर ली।

---

१ मन से अनुभव, आत्मा को अनुभव करना

मनुष्य में अपनी माता के प्रति प्रेम का स्फुरण दैविक स्वभाव की अभिव्यक्ति है। यदि मनुष्य में ईश्वर का अंश नहीं होता, तो उसमें प्रेम भी नहीं होता। जिस व्यक्ति में प्रेम होता है वह आस्तिक होता है,—ईश्वर में विश्वास करने वाला होता है, वह चाहे अपने आपको ऐसा माने चाहे न माने, मंदिर, मस्जिद या चर्च में चाहे जाये या न जाये। पुंडरीक का व्यवहार देव के प्रति किसी अभद्र व्यवहार का दोषी नहीं था, वह तो वास्तव में पूर्ण भक्ति और प्रेम के साथ देव-सेवा में लीन था क्योंकि मां के रूप में ईश्वर के पास सहज सरलता से पहुंचा जा सकता है। आपको अज्ञान से ज्ञान तक पहुंचना है। प्रेम का दायरा धीरे-धीरे इतना बढ़ता जाता है कि फिर उसमें सम्पूर्ण प्रकृति समा जाती है। कुछ भी शेष नहीं है जिसमें ईश्वर का रूप भासित न होता हो। यहां तक कि पौधे से एक पत्ती तोड़ने पर भी पीड़ा का अनुभव होने लगता है और उसे तोड़ने का साहस नहीं होता। वृक्ष की हरियाली उस दैविक इच्छा का ही तो प्रतीक है जो वृक्ष की जड़ों को धरती में गहरी जमाये हुए है। धरती में गहरी जमी जड़ों के आधार पर ही वृक्ष अपना पोषण प्राप्त करता है और आंधी, तूफान से सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार यदि मनुष्य के प्रेम की जड़ें उसके अंतर के दैविक स्रोत में गहरी समायी हुयी हों तो फिर कैसे भी संकट, झंझावात और तूफान उसको विचलित नहीं कर सकते, वह दृढ़ बना रहेगा, उसका विश्वास अडिग रहेगा।

यदि किसी पानी से भरे कप में चीनी डालें तो पानी की प्रत्येक बूंद मीठी हो जाती है, इसी प्रकार प्रेम दृष्टि संसार में प्रत्येक को आकर्षणमय और मित्रवत् बना देती है। गोकुल की गोपियों का कृष्ण के प्रति ऐसा दैविक प्रेम था कि वे आपस में एक दूसरे को कृष्ण रूप में ही देखतीं और प्रेम करती थीं। भागवत दैविक प्रेम का ग्रन्थ है जिसमें गोपियों तथा भगवान के अन्य भक्तों के शुद्ध, सात्विक, दैविक प्रेम का बड़ा रोचक और अनूठा वर्णन दिया गया है। महाभारत धर्म का ग्रन्थ है जिसमें कृष्ण के महान अद्भुत कार्यों, पराक्रमों और महिमाओं का वर्णन है तथा सत्य की श्रेष्ठता से शुद्ध और सरल बनायी गयी सामाजिक और राजनैतिक जीवन की आचार नीति दी गयी है। आज से, इसी क्षण से ही प्रेमपूर्ण सेवा का शुभारम्भ कर दो। इस प्रेमपूर्ण सेवा की पुलक[1] ऐसी है कि एक कार्य के बाद दूसरा कार्य करने की प्रेरणा मिलती रहती है।

एक बार एक राजा ने अपने दरबार में विद्वानों और पण्डितों को बुलवा कर प्रश्न किया, "कौन सी सेवा सबसे श्रेष्ठ है और उस सेवा को करने का कौन सा समय सबसे श्रेष्ठ है?" उनसे राजा को कोई संतोषप्रद उत्तर नहीं प्राप्त हुआ।

---

१ आनन्द

एक वार युद्ध में अपने शत्रु की सेना को पीछे धकेलता हुआ राजा अपनी सेना से अलग और अकेला पड़ गया और एक सघन बन में पहुंच गया। वह मार्ग खोजता बहुत आगे बढ़ गया। अन्त में बहुत ही थका, भूखा और प्यासा वह उस जंगल में एक साधु की कुटिया पर पहुंचा। वृद्ध साधु ने बड़ी दया और प्रेम भाव से राजा को आश्रय दिया और जल पिलाया तथा विश्राम करने के लिए कहा। थोड़ी देर विश्राम करने के पश्चात राजा ने वही प्रश्न साधु से किया, "कौन सी सेवा सबसे श्रेष्ठ है?" साधु ने उत्तर दिया, "प्यासे को एक गिलास पानी पिलाना।" राजा ने अपने दूसरे प्रश्न का अंश रखा, "उस सेवा को करने का कौन सा समय सबसे श्रेष्ठ है?" "जब कोई प्यासा अकेला भटकता हुआ पानी की तलाश में आवे।" सेवा के कार्य का मूल्यांकन उसमें लगे व्यय या उसके प्रचार से नहीं किया जाना चाहिए। जंगल में प्यासे को एक गिलास पानी ही क्यों न पिलाया गया हो, देखना यह चाहिये कि जिसकी सेवा की जा रही है उसकी आवश्यकता और स्थिति क्या है, और जो सेवा करता है, किस भाव और विचार से सेवा कर रहा है, इसी आधार पर निर्णय हो सकता है कि वह सीसा है या स्वर्ण।

अपना प्रत्येक कार्य, प्रत्येक व्यवहार प्रेम से पूर्ण रखो। आपके विचार, शब्द या कार्य से किसी को तनिक भी कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखो। यह आपकी साधना बन जानी चाहिये। इससे आपको अपने लक्ष्य तक पहुंचने में निश्चित रूप से सहायता प्राप्त होगी।

प्रशान्ति निलयम्,
२४-५-१९६७

१२. अवतार का रहस्य

आज का दिन बड़ा पावन है जब भक्तजन भगवान की लीलाओं, महिमाओं, दिव्य कार्यों, उनके यश-गौरव और ऐश्वर्य का स्मरण करते उनके मधुर नाम की मधुरता का रसपान करते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं। आज का दिन है ही ऐसा महान जो सम्पूर्ण भागवत् को अपने में समाये हुए है। श्रीकृष्ण का अवतार पूर्णावतार था, सभी सोलह कलाओं से पूर्ण। रामावतार में सोलह कलाओं में से एक-एक कला तो तीनों भाइयों; भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न में थी और एक कला राम के ही समकालीन परशुराम में उस समय तक रही जब तक उनकी राम से भेंट नहीं हुयी और भेंट होने पर राम से अपनी पराजय स्वीकार कर परशुराम ने राम को अपनी सम्पूर्ण शक्ति समर्पित नहीं कर दी। अन्य अवतार तदर्थ उद्देश्य को लेकर हुए थे और उनका कार्यक्षेत्र एक व्यक्ति या कुछ लोगों द्वारा किए गये उपद्रवों, दमन और अत्याचार का प्रतिकार करने और किसी व्यक्ति या समूह की रक्षा और उद्धार करने तक सीमित था। किन्तु राम और कृष्ण के अवतार अधिक व्यापक और सार्वलौकिक[1] उद्देश्य के लिए थे। उनके अवतार धर्म के, संस्थापन, सत्यानुगामियों[2] के जीवन को सुख, शान्ति और सन्तोष पूर्ण बनाने, दुष्टों का संहार करने, संसार को यह बताने के लिए हुए थे कि सत्य की सदा विजय होती है, असत्य अन्त में असफल रहता है। मनुष्य में मानवत्व, पशुत्व और दैवत्व का संगम है। यह खेद की बात है कि मनुष्य पशुता से अपना पिंड नहीं छुड़ा पाता, किन्तु इससे भी घोर दुःख की बात यह है कि वह अपने दैवत्व को विकसित नहीं कर पाता। राम और कृष्ण के अवतारों की लीलाओं और महिमाओं का सदा अध्ययन, श्रवण, मनन और चिन्तन करते रहना मनुष्य के लिए अपने अन्तर के दैवत्व को विकसित कर लेने का सबसे सरल और निश्चित मार्ग है।

प्रत्येक अवतार के प्रकट होने से पूर्व उस कार्य के लिए जिस के हेतु अवतार होता है; भगवान की दो शक्तियाँ—माया शक्ति और योग शक्ति—भी प्रकट होती हैं। माया तो बड़ी बहिन के रूप में दुष्टों को सचेत करने के लिए; योग बड़े भाई के रूप में सदा साथ रहने और प्रोत्साहन देने के लिए। माया कंस को घोर अधः पतन में धकेलती चली गयी जिससे कि उसका समूल विनाश हो सके और सबको उससे शिक्षा प्राप्त हो सके। किन्तु इस कलियुग में दुष्टों को प्रेम, दया और करुणा से सुधारना होगा, उनका पुनर्निर्माण करना होगा। इसीलिए यह अवतार बिना किसी

---

१ सभी लोकों के २ सत्य की राह पर चलने वाले

शस्त्र धारण किये हुए आया है; केवल प्रेम का संदेश लेकर। प्रेम के साथ लिया गया भगवान का नाम ही एक ऐसा शक्तिशाली हथियार है जिससे दुष्ट, दुराचारी और पापियों को भी परास्त और परिवर्तित किया जा सकता है।

नाम की बड़ी दिव्य महिमा है। मन में भगवान का नाम बार-बार दोहराते रहने से मन एक ऐसे उपकरण[1] के रूप में रुपान्तरित[2] हो जाता है जो माया, मोह और संदेहों से मुक्ति दिला सकता है। श्रीकृष्ण के नवनीत[3] चोर नाम को ही ले लीजिए। इसका अर्थ उस सामान्य नवनीत अर्थात् मक्खन को, जो दही को बिलो कर निकाला जाता है, चुरा कर भागने वाले से नहीं है क्योंकि कृष्ण उस नवनीत को नहीं चुराते थे; वह तो हृदय में उत्पन्न श्रद्धा-भक्ति और निष्ठा-विश्वास के उस नवनीत को चुराते हैं जो संसार के अनुभव रूपी जमे हुए दही का, प्रभु की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठा और तड़प द्वारा मन्थन करने से प्राप्त होता है और जिसको पाने के लिए श्रीकृष्ण में भी उतना ही उतावलापन रहता है जितना कि भक्त में। जब माता यशोदा ने श्रीकृष्ण को माखन-चोरी करने पर प्रताड़ित[4] किया तो उनका उत्तर था, "माँ मैं क्या करूं यही तो लोग चाहते हैं कि मैं उनके घर जाऊं और माखन चुराऊं; यदि मैं ऐसा नहीं करता हूं तो ये लोग दुखी होते हैं क्योंकि ये इसी आशा के साथ तो मक्खन निकालते हैं कि मैं उसे चुराऊँगा और जब मैं ऐसा करता हूं तो उनके हृदय अति आनन्दित और प्रकाशित हो जाते हैं और वे नव जागृति पाते हैं।

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात।

> दधि माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल सखा संग खात ॥
> ब्रज-बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारे आवैं।
> माखन खात अचानक पावैं, भुज भरि उरहिं छुपावैं ॥
> मन ही मन अभिलाष करति सब हृदय धरत यह ध्यान।
> सूरदास प्रभु कों घर में लै, दै हौं माखन खान ॥

श्रीकृष्ण ने अपने बाल्य काल में जो अद्भुत और साहसिक कार्य किए तथा अपनी लीलायें दिखायी थीं जिनसे उनके दैवत्व के प्रति लोगों में विश्वास उत्पन्न हुआ था कि भगवान स्वयं उनके बीच में उनकी रक्षा के लिए अवतार लेकर आये हैं; उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी 'कालिय मर्दन' की घटना। यमुना में कालिय नाम का एक बहुत ही विषैला नाग रहता था; उसके विष का ऐसा प्रभाव था कि यमुना का जल इतना विषैला हो गया था कि उस क्षेत्र में यमुना के ऊपर से कोई पक्षी भी उड़कर जाता था तो विष की उठती हुयी भाप के प्रभाव से वहीं गिरकर

---

१ यंत्र २ रूप बदल जाना ३ मक्खन ४ डांटना-फटकारना

मर जाता था। पशु और मनुष्य भी उस क्षेत्र के विषाक्त वातावरण में जीवित नहीं रह पाते थे। किन्तु श्रीकृष्ण यमुना में कालिय नाग के उस विषैले कुंड में कूद पड़े और उस दुष्ट को बाहर आने पर विवश कर दिया तथा घोर संघर्ष के पश्चात् उसकी समस्त शक्ति को क्षीण कर उसके एक-सौ-एक सिरों को अपने सुकोमल पद-प्रहारों से कुचल डाला और वह श्रीकृष्ण से अपने प्राणों की भीख और क्षमा माँगता सदा के लिए उस क्षेत्र को छोड़कर चला गया और वह स्थल सदा के लिए निरापद[1] हो गया। श्रीकृष्ण की यह लीला मनुष्य के लिए बहुत ही शिक्षाप्रद है तथा उन लीलाओं से भिन्न है जिसके द्वारा शिशु अवस्था और बाल्यावस्था में कृष्ण ने अपनी अति मानवीय शक्ति और बुद्धि का परिचय दिया था। भयंकर राक्षसी पूतना ने श्रीकृष्ण को विषाक्त स्तनपान कराया था। वह उनको मारना चाहती थी; किन्तु श्रीकृष्ण ने उसका ऐसा स्तनपान किया कि उसका प्राणान्त ही हो गया। इसी प्रकार उनको आंधी के साथ उड़ा ले जाने वाले बवंडर रूपी राक्षस तृणावर्त, छकड़े के रूप में छिपे असुर, बछड़े के रूप में वत्सासुर, बगुले के रूप में बकासुर तथा इसी प्रकार के छद्म वेषी अन्य राक्षसों और असुरों का जो श्रीकृष्ण को शैशवावस्था और बाल्यावस्था में ही मार डालने के लिए उनके निकट पहुंचे, श्रीकृष्ण ने उनका अन्त कर दिया था। अविश्वासी और नास्तिक कह सकते हैं ये चमत्कार अचानक किसी अज्ञात कारण से घटे होंगे या कोई संयोग ही ऐसा हो गया होगा या सब बढ़ा-चढ़ा कर कही गयी अतिशयोक्तियां मात्र होंगे। 'कालिय मर्दन' की घटना तो आध्यात्मिक साधना के लिए एक शिक्षाप्रद दृष्टान्त है।

प्रत्येक व्यक्ति के मानस सरोवर में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर रूपी छः फनों वाला एक भयंकर विषधर घात लगाये, भीतर छिपा रहता है। उसने उस गहन और गम्भीर सरोवर का वातावरण इतना दूषित कर रखा है कि जो भी उसके पास पहुंचता है, उसी का नाश हो जाता है। जब भगवान का नाम पूर्ण शक्ति और बल के साथ मन की गहराइयों में पहुंचता है तो वह विषधर घबरा कर ऊपर सतह पर आ जाता है और फिर उसका नाश किया जा सकता है। इसलिए आप अन्तर के भगवान को अपने मानस के सरोवर का पूर्ण अधिकार सौंप दो, उन्हें उस विषधर के फुफकारते फनों पर अपनी कोमल पद-चापों से आघात करते हुए ऐसा हतप्रभ कर लेने दो कि वह अपने सम्पूर्ण विष का वमन कर दे, उसकी सारी दुष्टता समाप्त हो जाये, वह निरापद और सात्विक बन जाये। श्रीकृष्ण के कालिय-मर्दन की वह लीला सब को इसी साधना की शिक्षा देती है, इसी कर्त्तव्य की ओर अभिमुख करती है।

---

१ विपत्ति रहित, कष्ट न होना

श्री कृष्ण ने, अन्य अवतारों के समान ही, संसार में अपने अवतीर्ण होने की घोषणा, थोड़े-थोड़े रूप में, सीढ़ी दर सीढ़ी, इस बात का परीक्षण करते हुये की, कि जनता उनके अवतार के सत्य को किस सीमा तक स्वीकार करती है। विभिन्न चमत्कारों और संकेतों का उद्देश्य, जैसा कि इस समय भी है, अवतार के आगमन की घोषणा के स्वरूप में जनता में उस सत्य के प्रति विश्वास उत्पन्न करना था। पालने में झूलते हुये भी श्री कृष्ण ने माता यशोदा को चमत्कार दिखा दिया था। माता यशोदा पालने में झुलाती और लोरी गाती हुईं उन्हें सुलाने का प्रयत्न कर रही थी। यशोदा उन्हें राम-कथा सुनाने लगी कि एक राजा दशरथ थे, उनके चार पुत्र थे, उनमें सबसे बड़े राम थे। जब राम बड़े हुए और राजा दशरथ ने उनका राजतिलक कर अपने राज्य का भार सौंपना चाहा तो किस प्रकार राम की सौतेली माता कैकेयी ने राम को चौदह वर्ष के लिए वन भिजवा दिया, उनकी पत्नी सीता उनके साथ गयीं। वन में एक दिन एक स्वर्ण मृग दिखायी दिया, राम उसको पकड़ने के लिए गए जिससे कि उसे सीता के लिए पाला जा सके। किन्तु वह तो रावण का रचा हुआ षड्यन्त्र था; जिससे कि राम कुटिया से दूर चले जायें और वह सीता को उठा कर ले जा सके। उसका षड्यन्त्र सफल हुआ और रावण सीता को चुरा ले गया। इतना सुनना था कि पालने में झूलता हुआ शिशु क्रोध भरे स्वर में हाथ तानते हुए बोला "लक्ष्मण, मेरा धनुष बाण लाओ।" माता यशोदा को याद आया कि राम ने ये ही शब्द कहे थे क्योंकि इनका छोटा भाई लक्ष्मण भी राम के साथ बन में गया था। यशोदा को यह विश्वास हो गया कि जो राम थे वही कृष्ण के रूप में धरा का भार हल्का करने के लिए फिर से अवतीर्ण हुए हैं।

चैतन्य ने भी शैशवावस्था में अपनी माँ को अपने अवतार का संकेत किया था। उस समय चैतन्य घुटनों के बल फर्श पर चलते थे। उनके यहाँ एक अतिथि आये हुए थे। वह एक कट्टर पंथी ब्राह्मण थे, उन्हें भोजन बनाने के लिए सामग्री दे दी गयी और वह अपना भोजन अपने आप बना रहे थे। वे भगवान को भोग लगाने के लिए बड़ी शुद्धता और शुचिता के साथ बिना किसी को हाथ लगाने देते हुए भोजन तैयार करते थे। उनको भोजन तैयार करने में कुछ विलम्ब हो गया था। जब वह भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति के समक्ष भोग लगाने के लिए जैसे ही बैठे तो बालक चैतन्य घुटनों के बल घिसटते प्रसाद की थाली के पास जा पहुंचे और उसके भीतर अपना हाथ डाल दिया। वह थाली उच्छिष्ट हो गयी समझी गयी और उससे भगवान को भोग नहीं लग सका। उन्हें भोजन तैयार करने के लिए फिर से सामग्री दी गयी और जब तक भोजन तैयार हुआ, काफी समय हो गया। इस बार भी जैसे ही भोग लगाने के लिए थाल तैयार करके रखा गया कि बालक न जाने कहां से वहां जा पहुंचा और फिर से उसमें हाथ डाल दिया। फिर से भोजन तैयार किया गया तो तीसरी बार भी वही दशा हुयी। उनकी मां जब बालक को मारने के लिए उद्यत हुयी तो चैतन्य बड़े भोले-भाले ढंग से कहने लगे, "मैं क्या करूं ये ही तो मुझे खाने

के लिए बुलाते हैं और जब मैं खाने के लिए पहुंचता हूं तो नाराज होते हैं ;" इस प्रकार उन्होंने यह प्रकट कर दिया था कि 'वह' कृष्ण ही हैं और और उस रूप में प्रकट हुए हैं।

सभी अवतार इस बात का उपदेश करते हैं कि साधना के पथ पर आगे बढ़ने के लिए पहला डग है मोह का त्याग। त्रेतायुग में योग—वशिष्ट ने इसी की शिक्षा दी थी। द्वापर युग में श्री कृष्ण ने अर्जुन को विषय-वासना, सांसारिक पदार्थों से लगाव—मोह को त्यागने का उपदेश दिया था।

एक संन्यासी सभी मोह-माया त्याग कर हिमालय की ओर जा रहा था। बड़े जोर की आंधी आयी और उसके नेत्र बन्द हो गये, वह अपने स्थान पर खड़ा हो गया और दूसरी ओर मुड़ कर चल दिया। वह न किसी दिशा से आबद्ध था न ही किसी स्थान से। उसने सब कुछ त्याग दिया था।

लोग 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाते हैं और प्रकट करते हैं कि उनकी कृष्ण में बड़ी भक्ति और विश्वास है किन्तु सांसारिक पदार्थों और विषय-वासनाओं की 'तृष्णा' को नहीं त्यागते हैं। हर युग में भगवान का अवतार होता है; पुनरुद्धार, पुनर्जागरण और पुनर्निर्माण करने के लिए। सम्प्रति महाशक्ति, मायाशक्ति और योगशक्ति तीनों एक साथ, एक ही मानवीय रूप में प्रकट हुई हैं; आप लोगों का प्रयास होना चाहिए कि निकट पहुंचें और अनुग्रह अर्जित करें।

प्रशान्ति निलयम्,
श्री कृष्ण जन्माष्टमी
२८-७-१९६७

१३. पहिया और उसका धुरा

विश्व में जहां तक आध्यात्मिक साम्राज्य का प्रश्न है भारत समस्त राष्ट्रों से सम्पूर्ण प्रभुतासम्पन्न है; और फिर भला आध्यात्मिक साम्राज्य से बड़ा कौन सा साम्राज्य हो सकता है ? भारत में ही वह योग्यता है कि वह मानव समाज के मन को अंधकार पूर्ण आवरण से ढक देने वाले और भौतिक लाभ और फायदावादी मनोवृत्ति और झूठे नाम-बड़ाई पाने के लिये स्पर्धा में ढकेलने वाले शंका, संदेह, चिन्ता, भय आदि के काले बादलों को विछिन्न कर सके। ये बादल भारत के आकाश पर भी छाने लगे हैं; यहाँ भी लोग अंधकार की सराहना करने लगे हैं; उसे पसन्द करने और दिन के प्रकाश की उपेक्षा करने लगे हैं। वे पाश्चात्य रहन-सहन के ढंग, जीवन मूल्यों और नैतिक मान्यताओं का अन्धानुकरण करते हैं और उन्होंने लोभ, मोह, काम-वासना तथा असंतोष की बढ़ती हुयी बाढ़ के लिए अपने घर के द्वार खोल दिए हैं। यद्यपि कि यह बात सही है कि विज्ञान जिस भौतिक जगत का अध्ययन और विश्लेषण करता है तथा नियंत्रण और नियमन के लिए साधन जुटाता है, संसार में रहने के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसका भी उपयोग है, किन्तु यह विचार या कल्पना करना उचित नहीं कि भौतिक संसार हमें चिर स्थायी सुख या शान्ति प्रदान कर सकता है।

भारत में वेदों और शास्त्रों की रचनायें और उनका संकलन किन्हीं मूर्खों या धूर्तों ने नहीं किया था; बल्कि वे तो ऐसे लोग थे जिन्होंने साँसारिक सुख-सुविधाओं और आकर्षणों को त्याग कर, कठोर तपस्यापूर्ण जीवन बिताते हुए सत्य की खोज की थी जिस प्रकार आधुनिक अनेकों वैज्ञानिक भी जैसे एडीसन आदि कुछ इसी प्रकार का जीवन बिताते हुए वैज्ञनिक अन्वेषण और आविष्कारों में लगे रहते थे या लगे रहते हैं। ऋषिगण जब समस्याओं के समाधान के लिए संसार के कोलाहल से दूर बन में शान्त और एकान्त स्थलों में चले जाते थे और वहाँ चित्त को पूर्णरूप से एकाग्र कर चिन्तन और मनन करते थे और समाधान प्राप्त करते थे। इसलिए वेदों और शास्त्रों में उन्होंने जो कुछ कहा है वह उनका वास्तविक रूप से अनुभूत[1] ज्ञान है, उसमें उनके व्यक्तिगत अनुभव और आनन्द का ऐसा स्फुरण है कि यदि आप भी उनका पूर्ण जिज्ञासा के साथ स्वाध्याय करें तो पुलकित हो उठेंगे।

---

१ अनुभव किया हुआ

केवल नदी के किनारे बैठ कर ही जल की गहराई, उसके स्वाद या उसकी पेयता पर अपने निर्णय मत घोषित करते रहो; तनिक नीचे उतर कर स्वयं परीक्षण करो सत्य के सच्चे अन्वेषक[1] का यही लक्षण होता है कि वह स्वयं ही गहराई में ग़ोता लगाता है, किनारे पर ही नहीं बैठा रहता। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो आपको पूर्वाग्रहों से ग्रस्त पक्षपातपूर्ण या विद्रोही साक्षी के रूप में अमान्य ठहरा दिया जाएगा। मेरे द्वारा विभूति-सृजन[2] को जो 'जादूगरी' कह कर पुकारते हैं वे भी इसी श्रेणी में आते हैं क्योंकि उन्हें सत्य का ज्ञान नहीं और इसलिये उन्हें न तो कुछ कहने का अधिकार है और न ही उनमें इसकी योग्यता। उन्हें अंधकार प्रिय है इसलिये वे दैविक प्रकाश के द्वारा अंधकार के विनाश को सहन नहीं कर सकते हैं। पदार्थवादी संस्कृति का ऐसा संघात[3] पड़ा है उन पर कि उनके हृदय कठोर बन गये हैं और दिमाग पिलपिले तथा उनके जीवन खोखले और व्यर्थ हो गये हैं।

शासक वर्ग में जो देश की शिक्षा-प्रणाली के निर्धारण, पोषण और प्रगति के लिये उत्तरदायी हैं वे ही वास्तव में विद्यार्थियों में व्याप्त असंतोष, अंधकार, भ्रम, संदेह तथा उनके परिणामस्वरूप होने वाले अपराध और उपद्रवों के लिये भी उत्तरदायी हैं। उनका ध्यान विद्यार्थियों को शारीरिक और बौद्धिक प्रशिक्षण देने तक ही सीमित रहता है, वे यह भूल जाते हैं कि विद्यार्थियों के मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास पर कितना अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, जिससे कि देश की युवा-पीढ़ी का एक पूर्ण विकसित व्यक्तित्व उभर सके। आजकल बच्चों को स्कूल इस उद्देश्य के साथ भेजा जाता है कि उन्हें बड़े होने पर अच्छी नौकरी मिल सके। विद्यार्जन जीविकोपार्जन की दृष्टि से किया जाता है, न कि जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये तैयार करने के दृष्टिकोण से। संसार के सभी देशों में यही दशा है। किसी भी देश में युवक को शान्ति प्राप्त करने के लिये शिक्षित नहीं किया जाता है; शिक्षा दी जाती है जीवन को आरामदायक बनाने के लिये, सुविधा पूर्ण बनाने के लिये जिसमें अधिक से अधिक इच्छाओं की सरलता से पूर्ति हो सके। उस शिक्षा का लक्ष्य यह नहीं होता कि व्यक्ति और समाज के जीवन में स्थायी शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो। सुख-सुविधाओं, नाम, यश, सत्ता और शक्ति की खोज तथा वह भी दूसरों के साथ स्पर्धा करते हुए, ये राग और द्वेष की भावनायें मनुष्य को इतना अभिमानी और दंभी बना देंगी कि मनुष्य स्वयं अपने और दूसरों के अस्तित्व के लिए खतरा बन जायेगा। इसके लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग है अपने ही अन्तर में और स्वयं ही आनन्द की खोज करना और उसे प्राप्त करना, न कि दूसरों में और न ही दूसरों के द्वारा। जो व्यक्ति करुणा, दया, प्रेम, सत्य, सहन-

---

१ नये नये खोज करने वाला २ विभूति (प्रसाद) उत्पन्न करने वाला
३ पर्दा, अन्धेरा

शीलता, विनम्रता, सम्मान और शुद्धता का पालन करते हैं उनके लिए तो दिव्य आनन्द स्वयं प्रतीक्षा करता है।

इन आधारों पर विद्यार्थियों को शिक्षा-प्रणाली में सुधार की माँग करनी चाहिए; उन्हें माँग करनी चाहिए कि जीवन की ललकार का सामना करने के लिए उन्हें पूर्ण रूप से सज्जित किया जाये, सुयोग्य बनाया जाये। आखिर वे आप के ही लोग हैं और आपके कल्याण में उनकी रुचि है। उन्हें आपकी बातें सुननी चाहिए और आप के सुझावों पर विचार कर उन्हें मानना और क्रियान्वित करना चाहिए। एक बार ज़रस्तु ने ईरान के राजकुमार से प्रश्न किया, "जाओ इस दीपक को उस दीपक की ज्योति से प्रकाशित कर लाओ।" किन्तु दीपक नहीं जला, उसकी बत्ती पानी में भीगी हुयी थी। जरस्तु ने उससे कहा, "तुम्हारे मन की बाती भी इच्छाओं और कामनाओं के जल में भीगी है इसलिए जो ज्ञान का प्रकाश तुम चाहते हो उसे यह ग्रहण नहीं कर सकेगा। जाओ इसे वैराग्य के ताप में सुखा कर लाओ।" जब अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही वर्ग साँसारिक इच्छाओं और वासनाओं में लिप्त रहेंगे तो फिर भला सत्य ज्ञान की ज्योति कैसे जल सकेगी या प्रज्वलित रखी जा सकेगी।

एक बार एक सास बड़े संतोष के साथ कहने लगी, "मेरी बहू तो मर गयी लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि यह एक चमत्कार ही था कि उसका तीव्र ज्वर, जिससे वह पीड़ित थी, पल भर में ही उतर गया।" किन्तु मुख्य बात तो जीवन रक्षा की थी न कि ज्वर उतर जाने की; आवश्यकता मुख्य लक्ष्य को जानने और समझने की है, उसे प्राप्त करने की है। इसी प्रकार विद्यार्थियों को समझना चाहिए कि सुख, शान्ति और संतोष के साथ जीवन का कैसे निर्वाह किया जाता है; यह किसी परीक्षा में उच्च स्थिति प्राप्त करने या डिग्री उपलब्ध करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अन्तर में उठने वाले तूफानों को शान्त करने के लिए अपने निज के अन्तः चेतना प्रदेश की यात्रा करना कहीं अधिक आवश्यक है; वाह्य ब्रह्माँड में चन्द्र या मंगल की यात्रा करने के। यह वाह्य ब्रह्मांड की यात्रा आकर्षक और रोमाँचकारी भले ही लगे किन्तु वह अन्तर की यात्रा मानव के लिए कहीं अधिक उपयोगी है। बिना भलाई या अच्छाई के, बिना अच्छे विचारों के, बिना अच्छे कार्यों के और बिना अच्छे शब्दों के जीवन ऐसे ही घोर अंधकार पूर्ण है जैसी बिना चन्द्रमा और बिना तारों की रात्रि। जैसे कोई बिना तानों और धुरे के पहिया। यदि कोई किसी पत्थर पर खड़ा होगा तो वह उसे कैसे फेंक सकता है; आप चिन्ता से मुक्त कैसे हो सकते हैं जबकि उसके भीतर प्रवेश के लिये आपने सारे मार्ग खोल रखे हैं। जो विषय-वासनायें और भोग लिप्सायें आपको सताती हैं उनका पोषण बन्द कर दो उनको प्रश्रय मत दो। उनके प्रति उपेक्षा बरतो।

अनन्तपुर इंजीनियरिंग कालेज का नाम देश भर में प्रतिध्वनित[1] और गुंजित

१ स्वयं के द्वारा प्रकट गूंज

होने दो, यह प्रतीक बन जाये सेवा का, मधुर विचार, मधुर वाणी और हृदय की मधुरता का। मैं विद्यार्थियों के बीच आकर बड़ा प्रसन्न होता हूं विशेष रूप से जब वे उच्च आदर्शों की ओर अभिमुख[1] प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण दृढ़ संकल्प और विश्वास के साथ आगे बढ़ते हैं। इस कालेज के प्रिन्सीपल जब काकीनाडा इंजीनियरिंग कालेज में थे तो मैं वहाँ के विद्यार्थियों से भी मिला था। उन्होंने वहाँ जो सभा आयोजित की थी उसकी व्यवस्था में स्वयंसेवकों के रूप में विद्यार्थियों ने अच्छा कार्य किया था क्योंकि उस सभा में आस-पास और दूर-दूर से लाखों की संख्या में लोग एकत्रित हुए थे। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि यह कालेज गहन अध्ययन के साथ-साथ उत्कृष्ट सामाजिक सेवा कार्य करते हुए श्रेष्ठ परम्परा का भी परिपालन कर रहा है।

अनन्तपुर इंजीनियरिंग कालेज
३०-७-१९६७

---

१ झुकाव

१४. अदृश्य माधुर्य

केवल मानव को ही अपनी मनुष्य योनि में यह अवसर प्राप्त होता है कि वह ईश्वर की भक्ति और सेवा के श्रेष्ठ और सुन्दर माध्यम के द्वारा जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो सकता है। किन्तु मनुष्य अज्ञान के कारण और उससे भी अधिक उसके द्वारा अपनाये गए प्रतिकूल दृष्टिकोण और हठ के कारण वह इस अवसर को अपने हाथ से खो देता है और फलस्वरूप अपरिमित दुःख, क्लेश, भय और चिन्ताओं में ग्रस्त रहता है। यदि मनुष्य भौतिक आकर्षणों, विषय-वासनाओं और भोग-लिप्साओं के जंजाल से छुटकारा पा ले तो वह जीवन मरण के चक्र से मुक्त होने के अपने प्रयत्नों में सफलता प्राप्त कर सकता है। वह गलत मार्ग पर काफी आगे बढ़ गया है, फिर भी समय रहते यदि वह अपना मुंह सही दिशा की ओर मोड़ ले और अपने सच्चे लक्ष्य की ओर व्यग्रता और तीव्रता के साथ आगे बढ़े तो मंजिल तक पहुंच सकता है। सांसारिक पदार्थों और व्यक्तियों के प्रति उसमें जो मोह उत्पन्न हो गया है उसका शोधन कर उसे ईश्वर के प्रति प्रेम में बदलना होगा, दैविक रूप में परिवर्तन करना होगा; उसे भगवान की पूजा और भजन की ओर मोड़ना होगा, तब कहीं जाकर वह भक्ति में रूपान्तरित होगा। अपने अन्तर में यह धारणा दृढ़ कर लो, इस विश्वास को पक्का जमा लो कि भगवान् तुम्हारे भीतर हैं और तुम्हारा मार्ग-दर्शन कर रहे हैं, तुम्हारे जीवन-रथ को चलाने वाले सारथी हैं, उस रथ को खींचने वाले पांचों अश्वों (इन्द्रियों) की लगाम उनके ही हाथ में और तुम्हारा सतत् मार्ग-दर्शन कर रहे हैं, जिस प्रकार कि भगवान् अर्जुन की प्रार्थना स्वीकार कर उसके सारथी बन गये थे और महाभारत में अर्जुन का रथ चला कर उसका पथ-प्रदर्शन किया था और युद्ध में विजय दिलवायी थी। यदि आप गहराई से सोचेंगे तो पायेंगे और आप यह सरलता से स्वीकार करेंगे कि वही आत्म-सारथी सभी मनुष्यों ही का क्या सभी प्राणियों का मार्ग-दर्शन कर रहा है, उन्हें आगे बढ़ा रहा है। जब आपका यह विश्वास दृढ़ हो जायेगा, आप इसमें पूर्णरूप से स्थापित हो जायेंगे तो आप घृणा, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, पाखंड से भी मुक्त हो जायेंगे।

भगवान् से इस विश्वास को दृढ़ करने के लिए प्रार्थना करो; वे अवश्य कृपा करेंगे और आप इस सत्य का साक्षात्कार कर सकेंगे कि वह ही सब के अन्तर-वासी सनातन सारथी हैं। इस सत्य के साक्षात्कार से आप को अतुलनीय आनन्द प्राप्त होगा और आप सृष्टि की समस्त रचनाओं से आत्मतादात्म्य स्थापित कर सकेंगे। इसीलिए श्री कृष्ण ने दुर्योधन से जब वह पांडवों के विरुद्ध उनसे सहायता मांगने पहुंचा था तो कहा था, "यदि तुम पांडवों से घृणा करते हो तो मुझसे भी घृणा करते हो; क्योंकि पांडवों ने तो मुझे अपने जीवन का प्राण समझ रखा है।" भगवान

को अपनी शक्ति, अपना सम्बल, अपना प्राण, अपनी बुद्धि, अपना सुख-दुःख—सब कुछ समझो, वह उसी रूप में नहीं बल्कि उससे भी अधिक आपके लिए बन जायेंगे। आपका कोई भी गुण, दोष या विशेषता आपके मार्ग में व्यवधान नहीं बन सकती, वह उन सबको समन्वित और सुगठित कर देंगे, इन्द्रियां, मन, बुद्धि और अहंकार सभी को; आप उच्चतम लक्ष्य तक पहुंच जायेंगे। अनुग्रह से आपको वह सब कुछ सुलभ हो जायेगा जिसकी आपको आवश्यकता है।

एक सास अपनी नव-विवाहिता आयी बहू के सम्बन्ध में शिकायत करने लगी कि बहू चुपचाप दूध, दही, मलाई, मक्खन और घी चुरा कर चट कर जाती है। उस लड़की के भाई ने सुना तो उसने अपनी बहिन को उसकी सास के सामने बुला कर फटकारा कि क्या सब चीजों की चोरी करती है और अन्त में सलाह दी कि किसी भी चीज की चोरी नहीं करनी चाहिए और कहा, "हां जहां तक दूध का प्रश्न है वह तुम पी सकती हो, जितना दूध चाहो; किन्तु दूध से बनने वाली चीजों की कभी चोरी नहीं करनी चाहिए।" यह तो स्वाभाविक था कि सास उसकी इस सलाह से कब प्रसन्न होने वाली थी; किन्तु लड़की को भाई की कृपा से सब सुलभ हो गया। इसलिए अनुग्रह प्राप्त करो, उससे सब कुछ सुलभ हो जाता है।

आपको सबके प्रति प्रेम पैदा करना चाहिए, फिर किसी में चारित्रिक या योग्यता सम्बन्धी कोई भी विशेषता क्यों न हो। यदि चीनी पानी में घुल जाये तो दिखायी नहीं देती किन्तु जब वह पानी जीभ पर रखा जाता है तो उसकी हर बूंद में चीनी की मिठास मौजूद रहती है। इस प्रकार ईश्वर अदृश्य है; लेकिन वह सब में समाया हुआ है, एक रस हुआ और किसी भी व्यक्ति में, चाहे वह कितना भी नीच हो या कितना ही ऊपर उसकी अनुभूति की जा सकती है जिस प्रकार पानी में घुली चीनी की मिठास की। नाम स्मरण करो प्रत्येक के हृदय में जो 'अदृश्य माधुर्य' है उसका रसास्वादन करो; भगवान की जिस महिमा और यश, दया और करुणा के वे नाम प्रतीक हैं उसका भी स्मरण करो, आश्रय ग्रहण करो। फिर आपको समष्टि में उनके दर्शन होंगे, समष्टि को प्रेम करने में उनका प्रेम प्राप्त होगा, सबकी सेवा में उनकी सेवा होगी।

प्रशान्ति विद्वान महासभा, अनन्तपुर
३१-७-१९६७

१५. घेरे में सिंह

जैसा कि देव माहात्म्य और देवी भागवत् में वर्णन है, नवरात्रि, पराशक्ति की असुरों पर विजय की स्मृति और सम्मान में मनायी जाती है। वह पराशक्ति कुंडलनी शक्ति के रूप में प्रत्येक में सदा विद्यमान है और उसके जागृत हो जाने पर मनुष्य के भीतर की सभी आसुरी शक्तियाँ पराजित और नष्ट हो जाती हैं। इसलिए नवरात्रि सभी को आन्तरिक और वाह्य दैविक शक्ति के प्रति सन्तुष्ट करने के लिए पूर्ण समर्पण भावना के साथ मनानी चाहिए जिससे कि आन्तरिक और वाह्य जगत में सुख, शान्ति और सन्तोष रहे। जो शक्तियां भगवान ने मनुष्य को दी हैं और जो सुषुप्त पड़ी हैं उन्हें विधिपूर्वक और नियमित साधना के द्वारा जागृत किया जा सकता है तथा मनुष्य सत्य के अधिक निर्मल, पवित्र और सुखद साम्राज्य तक पहुंच सकता है।

जंगली पशुओं को शिक्षित करने वालों की ओर देखो! जंगल के सबसे भयानक और खतरनाक जानवर शेर को वे सर्कस के घेरे में कैसा अपने वस में करके रखते हैं और वह उनके संकेत मात्र पर बिल्ली की तरह व्यवहार करता है, आग के गोल घेरे के बीच से कूदता है, एक ही तश्तरी में बकरी के साथ दूध पीता हैं। सर्कसों में कार्य करने वाले दक्ष और कुशल रिंगमास्टर ऐसे भयंकर और खूंखार पशुओं को भी पालतू वना लेते हैं, और उनके साथ निर्भय होकर विविध खेल करते हैं; किन्तु यह सब कैसे होता है? इसके लिए साधना करनी पड़ती है, उन शेरों को भी प्रशिक्षण की एक कठोर प्रक्रिया में होकर गुजरना पड़ता है जो उनके लिए भी एक साधना होती है और उसके आधार पर वे सफलता प्राप्त करते हैं। यदि वे शेर को वश में करके पालतू वना लेने में सफल होते हैं तो क्या आप अपने मन के जंगल में निवास करने वाले क्रूर और भयंकर पशुओं (वृत्तियों) पर नियन्त्रण पाने और वश में कर लेने में सफल नहीं हो सकते हैं?

आप सफल हो सकते हैं,—अवश्य सफल हो सकते हैं। यही नवरात्रि का, आद्या-शक्ति के नवदिवसीय विजयोत्सव का संदेश है। आद्या-शक्ति भगवती की सात्विकी, राजसी एवं तामसी शक्तियां ही क्रमशः विद्या और वाणी की अधिष्ठात्री देवी महा-सरस्वती, धन की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी तथा महा काल स्वरूप महाकाली रूप में प्रकट होती हैं। भगवती दुर्गा शक्ति सर्व व्यापिका हैं निर्विकार हैं, कल्याणी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, वह सब को धारण करने वाली हैं और साधना द्वारा गम्य[1] हैं।

---

१ जाने योग्य

आप सदा सर्वत्र बाह्य प्रकृति में और अन्तर चेतना में उनसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। प्रह्लाद ने अपने संशयग्रस्त पिता से कहा था, "क्यों शंका और संदेह में पड़ते हैं, तर्क और विलम्ब करते हैं ? भगवान को तो जहां खोजेंगे वहीं पायेंगे।" वह तो सर्वव्यापी है; निकट है, दूर है, आगे है, पीछे है, भीतर है, बाहर है, कण-कण में है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है तथा महान से महान है।

लोग उसका शक्ति के रूप में अथवा परम पुरुष के रूप में वर्णन करते हुए घोषणा करते हैं कि वह तो ऐसी ही है या ऐसा ही है जो केवल उनकी कल्पना शक्ति का ही परिचायक है। उस पूर्ण का तो कोई भी वर्णन करे और कितना भी वर्णन करे और कैसा भी वर्णन करे सदा ही अधूरा रहेगा, क्योंकि वह वर्णनातीत है। उनका वर्णन किया जा सकना मानवीय पहुंच, शक्ति और सामर्थ्य के परे है। किन्तु मनुष्य उसकी अनन्त और असीमित दिव्यता, तेज और महानता को सीमित दायरों में देखना चाहता है और उन्हें अयोध्या या द्वारिका, मदुरै या कन्याकुमारी या अन्य ऐसे ही किसी स्थान में खोजता है, वह उन्हें नाम और रूप देता है जिससे कि वह उन तक पहुंच सके, उनकी पूजा-उपासना कर सके, उनकी आराधना कर सके, प्रेम कर सके। जब आप किसी सागर में किसी स्थान विशेष पर गोता लगाते हैं तो वह सम्पूर्ण सागर में गोता होता है क्योंकि सब स्थानों पर एक ही सागर है। आप उस स्थान पर रेखायें खींच कर उसका विभाजन नहीं कर सकते हैं। कहीं भी गोता लगाओ आप उस एक ही आनन्द के सागर में गोता लगाते हैं।

प्रशान्ति निलयम्
४-१०-१९६७

१६. चलते फिरते मंदिर

प्रत्येक उत्सव के पूर्व जिन पुरुषों और स्त्रियों को मैं स्वयंसेवकों और स्वयं-सेविकाओं के रूप में कार्य करने के लिए चुनता हूं मैं उनसे बातें करता हूं तथा उन्हें उनके कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों से अवगत कराता हूं और समझाता हूं कि उन्हें अपने कर्त्तव्यों को किस भावना, प्रेरणा और उत्साह के साथ पूरा करना चाहिए । किन्तु मेरे उपदेश का पूर्ण रूप से पालन करने वाले बहुत ही थोड़े से लोग होते हैं। अधिकतर लोग अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि की योजनाओं में लगे रहते हैं, स्वयं की ही सेवा करने वाले स्वयंसेवक अधिक हैं, स्वयं की प्रेरणा से, जिनको सेवा की आवश्यकता है उनकी सेवा करने वाले बिरले ही निकलते हैं। स्वयं सेवक का जो बैज (बिल्ला) दिया जाता है वह इस बात का प्रतीक है कि आप स्वयं की अन्तः प्रेरणा से दूसरों की सेवा करने के लिए तैयार हैं। यह कोई पुरस्कार के रूप में अथवा सजावट के लिये नहीं दिया गया है। यह बैज लगा कर इधर उधर घूमते फिरना, व्यर्थ की बातें करते रहना, और अवांछित कार्य करना उन लोगों के प्रति विश्वासघात है जो आपसे सेवाओं की अपेक्षा रखते हैं, जिन्हें आशा है कि आप उनकी सहायता करेंगे । आप झुकते हैं, नमन करते हैं, प्रणाम और प्रदक्षिणा करते हैं, प्रार्थना-भवन की ओर अन्य दूसरे कार्य करते हैं जिनको देखकर लोग आप को भक्त पुकारते हैं; आप यहाँ आये लोगों को कहते भी हैं कि आप भक्त हैं; किन्तु जब आप व्यवहार में खरे नहीं उतरते तो यह प्रकट हो जाता है कि आप इस नाम के उपयुक्त नहीं हैं।

रोगियों की ओर तत्काल ध्यान दिया जाना चाहिए और उन्हें चिकित्सा-सहायता दी जानी चाहिए। वृद्ध लोगों को शैड में स्थान दिया जाना चाहिए; बच्चों को प्यार से दुलार कर शान्त रखा जाना चाहिए । लगभग बारह दिनों तक कई हजार लोग यहाँ रहेंगे, तो यह भी हो सकता है ऐसे लोग भी घुस आवें जो दूसरों का रुपया-पैसा, माल-असबाब उड़ा लेने के धंधों में कुशल हों । इस प्रकार का कार्य कहीं भी किया जाय पाप होता है; किन्तु सत्य के इस क्षेत्र में और वातारण में ऐसा कुकृत्य दोहरा पाप होता है। इसलिए बाहर से आने वाले लोगों की ऐसे व्यक्तियों से आपको रक्षा करनी होगी, सचेत और सावधान रहना होगा, उन्हें खोज निकालना होगा, उन पर निगरानी रखनी होगी जिससे कि वे अपने उद्देश्यों में सफल न हो सकें। यह बैज तो उन हजारों लोगों को सहायता प्रदान करने के लिए आह्वान है जो बाहर से इस आशा और विश्वास के साथ आ रहे हैं कि यहां तो भगवान स्वयं उनकी संभाल के लिए उपस्थित हैं।

यहां उपस्थित होना ही स्वयं में अनुग्रह का फल है जो सुकर्मों के संचित परिणामों के आधार पर प्राप्त हुआ है और इस बैज से सुशोभित होना तो एक दुर्लभ अवसर है। इस महान अवसर का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करो। यह बैज, भूतकाल में आप के द्वारा बोये गये शुभ कार्यों के बीजों से उपजा पौधा है। अब आप को यह देखना है कि इस पौधे को आप पूर्ण प्रामाणिकता और ईमानदारी के साथ सेवा के जल से सिंचित करते रहेंगे और इसे आलस्य, संकोच और छलकपट की धूल और धूप में सूखने और मुरझाने नहीं देंगे। यह तो आप को वह मूल्यवान अवसर प्राप्त हुआ है जब आप अपनी सभी बुरी आदतें छोड़ सकते हैं और उसके स्थान में अच्छी और भली आदतें अपना सकते हैं, भला कार्य करने का संकल्प ले सकते हैं। आपको बाहरी दिखावा, आत्मश्लाघा[1] और महत्वाकांक्षायें बिलकुल त्याग देनी होंगी, जिससे कि आप अनुग्रह प्राप्त करने के लिए योग्यता अर्जित कर सकें। बड़े-छोटे का कोई विचार किए बिना सेवा करते जाओ। भगवान की दृष्टि में कोई सेवा महान और कोई सेवा तुच्छ नहीं है, बल्कि सभी सेवा समान है। इसमें जो सबसे अधिक महत्व-पूर्ण बात है वह यह है कि आप कितनी तत्परता, लगन, कुशलता और प्रामाणिकता के साथ सेवा करते हैं।

यदि आप मानव की, जो आपका ही भाई-बन्धु है, प्रत्यक्ष आपके सम्मुख है, सजीव है और प्रसन्नता और कृतज्ञता भरी मुस्कान के साथ आपकी सेवा स्वीकार करता है, उसी भावना, प्रेरणा और स्फूर्ति के साथ सेवा नहीं करते हैं जैसी कि आप अपनी स्वयं की तो फिर भला आप माधव की क्या सेवा करेंगे जो आप से कहीं ऊपर और परे है, शक्तिशाली और रहस्यमय है? मानव की सेवा करो जिसके हृदय मंदिर में माधव विराजमान है। इसे भली प्रकार से समझ लो हृदयंगम कर लो कि मनुष्य की सेवा भगवान की सेवा है। यदि कोई वर्षा से भीगता हुआ दौड़कर आपके घर में अपनी रक्षा के लिए आवे और आप उसको अपने यहां से लौटा कर फिर से खुले में, बरसते पानी में जाने के लिए विवश कर दें तो फिर आपको सिवाय 'अमानवीय' के और क्या कहा जा सकता है? क्योंकि यदि आप अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार किसी संकटग्रस्त का कष्ट दूर करने में सहायता नहीं करते हैं तो आप मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है। यदि आप माधव नहीं बनना चाहते तो कम से कम मानव तो बने रहो, मनुष्य बने रहना तो पशु से कही अच्छा है क्योंकि पशुओं को न तो अपना भूत याद रहता है और न ही भविष्य की चिन्ता। बैलों को यह पता नहीं रहता कि वे हल बीज बोने के लिए चला रहे हैं या कटाई, मड़ाई के पश्चात् तैयार अन्न घर ले जा रहे हैं। किन्तु मनुष्य तो अपने सिर पर भूत, वर्तमान और भविष्य का बोझ लादे रहता है। अपने भविष्य के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त नहीं

---

१ स्वयं की बड़ाई करना

हो पाता, चिन्तित रहता है इसलिए 'बीमा' करवाता है। मनुष्य इच्छाओं और आकांक्षाओं के बोझ से सदा दवा रहता है वह सदा अपने भविष्य को चमकाने और बीते को भुला देने के चक्कर में लगा रहता है। इच्छा के बीज के अंकुर फटने और फिर उसके महत्वाकांक्षा के विशाल वृक्ष के रूप में बढ़ने और फैलने में देर नहीं लगती; इसकिए इच्छा के बीज को तपस्या की अग्नि में भून डालो जिससे कि वह उग ही न सकें।

इच्छा के बीज को वैराग्य की अग्नि ही भून डालेगी और उसकी उगने की सारी जीवनी-शक्ति नष्ट हो जायेगी। त्याग और वैराग्य की थोड़ी देर के लिए भावना उठने मात्र से इच्छा रूपी बीज के प्रस्फुटित[1] होने की शक्ति का नाश नहीं होता है, त्याग और वैराग्य को विवेक का सहयोग अवश्य प्राप्त होना चाहिए, इस भौतिक जगत की असत्यता का ज्ञान होना अनिवार्य है। विना ज्ञान के नम्रता और सम्मान तो केवल उन वस्त्रों के समान ही होंगे जो आप इस बैज को लगाते समय पहनते हैं। प्रशान्ति निलयम् से जाने पर बैंज उतारा और कपड़े बदले कि वही अपने पुराने वेश में आ गये अहं से पूर्ण व्यक्तित्व में। यदि आपके विरुद्ध कोई कठोर शब्द कहे तो आप अपने अहं को इतना मत उठने दो कि आप भी प्रतिकार में कठोर भाषा का प्रयोग करने लगे। यदि आपकी ही उंगली आपकी आँख में लग जाती है क्या आप बदले की भावना के साथ उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही करते हैं ? जो व्यक्ति आपके सामने खड़ा व्यवहार कर रहा है वह आप से भिन्न नहीं है, वह उसी प्रकार आपका ही अंग है जिस प्रकार उंगली।

आप लोगों से कहते हैं कि जोर से न बोलें, बीड़ी सिगरेट न पियें। यदि आप स्वयं ही ऐसा करने के दोषी हों तो फिर भला आप दूसरों को ऐसा न करने के लिए कैसे आग्रह कर सकते हैं? आपमें जो बुरी आदतें पड़ गयी हैं उन्हें निकाल बाहर फेंको। यदि इन छोटी-छोटी सी बातों पर आप नियन्त्रण नहीं पा सकते हैं तो आप और भी प्रबल शत्रुओं जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर पर कैसे विजय पा सकेंगे! यह बैज मेरे प्रेम, मेरी करुणा का प्रतीक है। यह आपके लिए प्रेरणा का स्रोत है, शिक्षा-प्रदायक है, आशीर्वाद है। यह बैज आप से अपेक्षा रखता है कि आप अपने आचरण में पूर्ण सदाचारी होंगे, भक्ति और उत्साह में सबके समक्ष आदर्श उपस्थित करेंगे।

यह केवल इन दस-बारह दिनों के लिए ही प्रेरणा का स्रोत नहीं है, न ही इसका क्षेत्र इस प्रशान्ति निलयम् तक सीमित है। जिस कर्त्तव्य को पूरा करने की यह बैज

---

१ जाग्रत उत्पन्न होना

आप से अपेक्षा करता है, उस कर्त्तव्य का पालन आपको सदा करना चाहिए फिर आप किसी भी समय और कहीं भी क्यों न हों। आप को अपनी शक्ति के अनुसार दूसरों की सहायता करनी चाहिए, यदि आप पूर्ण सहायता नहीं कर सकते हैं तो कम से कम उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार तो कर सकते हैं, अपने अन्तर में उस सुख-दुःख को अनुभव करते हुए जैसे कोई आप स्वयं उस पीड़ा से ग्रस्त है भगवान से प्रार्थना तो कर सकते हैं, "हे भगवन् ! कितना कष्ट भुगत रहे हैं ये, इनके कष्टों को दूर करने की कृपा करिए।"

शंकराचार्य भिक्षा पर रहते थे। प्राचीन काल में राज्य परिवारों के लोग और राजकुमार तक जो ऋषियों-मुनियों और आचार्यों के पास आश्रमों में शिक्षा-ग्रहण करते थे उन्हें भी भिक्षा में प्राप्त अन्न पर रहना पड़ता था। यह मिथ्या अभिमान को मिटाने के लिए है। सत्कर्म के मन्दिर के तीर्थ यात्री होने के नाते आपको मंदिर में भीतर प्रवेश करने से पूर्व सारा सामान (अहंकार) बाहर ही छोड़ना होगा, तभी हृदय पवित्र हो सकेगा। सारा सामान शरणागति के 'सुरक्षागृह' में जमा करवा दो। जिन व्यक्तियों की सेवा करते हो उन्हें देव मंदिर समझो, उनकी विनम्रता से, विनय के साथ सामयिक सहायता करो, जागरूकता और सजगता के साथ सेवा करो।

प्रशान्ति निलयम्
४-१०-१९६७

१७. प्रेम का चमत्कार

जो डाक्टर साहब आज अस्पताल-दिवस की अध्यक्षता कर रहे हैं इन्हें मैं अनेकों वर्षों से जानता हूं। ये शिरड़ी में आते थे और जब ये प्रथम बार शिरड़ी गये थे तभी से इनकी मुझ में गहरी भक्ति है। यद्यपि कि शिरड़ी का पूर्व देह (शरीर) और यह देह भिन्न हैं किन्तु देही (आत्मा) वही है; इसलिए दोनों स्थानों में से जो कहीं भी आता है उसको मैं पहचानता हूँ और पुरस्कृत करता हूं।

गत ग्यारह वर्षों से यहां एक अस्पताल चल रहा है जिसमें बारह पलंग हैं अंतरंग रोगियों के लिए और अनेकों बहिरंग (आउटडोर) रोगी होते हैं। इन सब की चिकित्सा और देख-भाल के लिए डाक्टरों, नर्सों, औषधियों और उपकरणों आदि की व्यवस्था है। आप लोग इसका यह अर्थ न लें कि मुझे उन लोगों के उपचार के लिए, जो मेरे पास अपने दुःख-दर्द ले कर आते हैं, इस अस्पताल और डाक्टरों, नर्सों और औषधियों की आवश्यकता होती है। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो अस्पताल में डाक्टरी इलाज चाहते हैं क्योंकि उन लोगों के विचार में उनका उपचार उसी प्रकार हो सकता है। बहुत से रोगियों की यह इच्छा होती है कि डाक्टर उन्हें इंजेक्शन लगावें और यदि डाक्टर ऐसा नहीं करता है तो वे सोचने लगते हैं कि उनकी उपेक्षा की जा रही है। इसलिए मैं डाक्टर से कह देता हूं कि उन्हें एक इंजेक्शन दे दिया जाए या इंजेक्शनों का एक 'कोर्स' दे दिया जाये। इस प्रकार बहुत से लोग हैं जिन्हें दवा की गोलियों और इंजेक्शनों के अतिरिक्त अन्य किसी उपचार से ठीक हो जाने में विश्वास ही नहीं है। वे अस्पताल में आते हैं और प्रशान्ति निलयम् के वातावरण में व्याप्त सुवासित शान्ति और आनन्द का अपने भीतर प्रभाव अनुभव करते हैं। वे भजनों में सम्मिलित होते हैं और यह देख कर स्वयं भी प्रसन्नता अनुभव करते हैं कि लोग कितनी तन्मयता और आनन्दमग्न हो कर भजन कीर्तन करते हैं। इस प्रकार जब वे आरोग्य-निलयम् (अस्पताल) में आते हैं तो आनन्द निलयम् (प्रार्थना भवन) की ओर आकर्षित हो जाते हैं और धीरे-धीरे उनमें आस्था और विश्वास बढ़ते जाते हैं जिनसे सभी रोगों से संरक्षा प्राप्त होती है।

एक और भी कारण है, बहुत से ऐसे रोगी यहां लाये जाते हैं जिनकी स्थिति काफी बिगड़ी हुई होती है। उन्हें अन्य लोगों के साथ कमरों में या शैड में नहीं रखा जा सकता है। उनकी अधिक देख-भाल और सेवा-शुश्रूषा की आवश्यकता होती है। उन्हें विशेष सुविधायें और भोजन चाहिए। ये सब व्यवस्थायें केवल अस्पताल में ही सम्भव हो सकती हैं। इसलिए उन्हें अस्पताल में भर्ती कर दिया जाता है जहां उनकी,

भक्तों की विशाल भीड़ से अलग, अधिक अच्छी प्रकार से देख-भाल की जा सकती हैं। वे वहां सुविधा के साथ मेरे दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

जब दो व्यक्ति आपस में मिलते हैं तो एक दूसरे के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछना शिष्टता का परिचायक समझा जाता है। यह प्रथा पूर्वी तथा पश्चिमी दुनिया के दोनों भागों में प्रचलित है। जब दो लोग मिलते हैं तो कुशल क्षेम पूछते हैं, "कहिए कैसे हैं?" चाहे वे दोनों ही मृत्यु के निकट पहुंचने वाले हों। वास्तव में देखा जाये तो प्रत्येक ही, क्षण प्रति क्षण क्षेम के स्थान पर क्षय को प्राप्त हो रहा है; हर श्वास उच्छ्वास के साथ हमारे हाथों से जीवन का कुछ अंश निकल जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को आपस में मिलने पर यह स्मरण करवाना चाहिए, इस बात के लिए सचेत करना चाहिए कि वह अपने जीवन का कोई भी क्षण व्यर्थ न जाने दे, उसका क्षेम इसी में है कि वह अपना समय ईश्वर प्राप्ति में लगाये, व्यक्तिगत रूप से और समष्टिगत रूप से भी।

इस शरीर को ठीक दशा में रखने की आवश्यकता है, क्योंकि यह मानव तन पाकर ही, जो उसे बड़ी दुर्लभता से मिलता है, जीव ईश्वर को प्राप्त कर सकता है, इस शरीर का स्वस्थ या दुर्बल होना, एक दक्ष और उपयोगी उपकरण या अनुपयोगी उपकरण होना, भोजन, विचार, रहन-सहन, आचरण, आदतें तथा माता-पिता और समाज पर निर्भर करता है। माता-पिता जब बच्चों के लिए इन बातों का ध्यान नहीं रखते हैं तो उनका स्वास्थ्य खराब होता है। आजकल औषधालयों, दवाखानों, और अस्पतालों की संख्या बढ़ती जा रही है और हर गली-मोहल्ले में दवाखाना मिल जायेगा, क्योंकि हर घर में, हर परिवार में कोई न कोई बीमारी किसी न किसी को अपनी पकड़ में रखती ही है। छोटे-छोटे बच्चे चश्में लगाते हैं, नवयुवकों के केश सफेद हो जाते हैं और वे खिजाब लगाते हैं, कई नवयुवकों के सारे दाँत गिर जाते हैं और वे पूर्ण बनावटी दांतों की बत्तीसी लगाते हैं। इसका कारण यह है कि आज कल प्रत्येक घर का वातावरण बनावट और आडम्बर से पूर्ण है, सब अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाओं और स्वार्थों में अंधे हो जाते हैं, ईर्ष्या, द्वेष, असंतोष, मिथ्या, अभिमान, प्रदर्शन, फिजूलखर्ची, झूठ, छल, कपट आदि में लीन रहते हैं। ऐसे क्षयकारी वातावरण में पलने वाला भला कैसे रोगों से मुक्त रह सकता है। यदि घर संतोष और शान्ति की सुमधुर सुगन्ध से सुवासित और परिपूर्ण होगा तो उसमें रहने वाले सुखी और स्वस्थ होंगे। अतएव घर के बडे लोगों पर आगे की संतति—भावी पीढ़ी के प्रति बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है।

क्रोध भी अस्वस्थता का एक बहुत बड़ा कारण है, क्रोध स्वास्थ्य के लिए भी उतना ही भयंकर सिद्ध होता है जिस प्रकार कि वह अन्य बातों के लिए। क्रोध के साथ-साथ उसके इतने अनुगामी चले आते हैं कि वे फिर पूरी बरबादी ही करके

छोड़ते हैं । इसलिए आपको क्रोध पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, जब कभी क्रोध आवे तो भगवान को याद करो जो सर्व शक्तिमान है, सर्व व्यापक है और सब जगह उपस्थित है, सबके भीतर समाया है, सबका प्रेरक है, इस जीवन के नाटक का निर्देशक है, सूत्रधार है । उन परिस्थितियों को भुलाने का प्रयास करो जिनके कारण क्रोध आया है, उनसे दूर हट जाओ, भगवान का नाम स्मरण करो, दूर घूमने के लिए निकल जाओ, या आराम से लेट जाओ, ठंडा पानी पिओ, अपने आप से तब तक संघर्ष करते रहो जब तक कि आप अपने आप पर नियन्त्रण नहीं पा लेते हैं, अपने आप पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते हैं । दूसरों से मत झगड़ो; जो शत्रु तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है उस पर विजय पाओ । जब चीनियों ने देश पर आक्रमण किया था तो देश की सेना ने देश की सीमा पर, हिमालय पर उनका सामना किया था और उन्हें भीतर घुसने से रोका था; पेनूकोंडा में नहीं जो यहां से थोड़ी सी दूर है और जहां आप आसानी से पहुंच सकते हैं । शत्रु को इतना भीतर नहीं आने दिया जा सकता, उसे तो सीमा के पार ही रोकना पड़ता है । शत्रु को देहली के बाहर ही रोक दो, इसी में देश की सुरक्षा है, क्रोध को भी मन की देहली के बाहर ही रोक दो, इसी में शरीर की सुरक्षा है ।

अस्वस्थता का सबसे श्रेष्ठ निरोधक है आनन्द जो स्वतः प्रस्फुटित होता है । मेरी ओर देखो । मैंने भी देह धारण की है और मेरे शरीर और किसी अन्य मनुष्य के शरीर में कोई अन्तर नहीं है । किन्तु किसी रोग ने इस शरीर को प्रभावित नहीं किया है । कोई रोग इस शरीर को प्रभावित कर भी नहीं सकता है । मैं किसी रोग का स्वागत भी करूं तो भी वह मेरे पास नहीं आ सकता । मैं अनेकों स्थानों पर जाता हूं, सभी प्रकार के घरों में अनेकों प्रकार का भोजन करता हूं । धोबी के घर में तो सभी प्रकार के ढेरों कपड़े होते हैं । इसी प्रकार मेरी भी भोजन की मेज पर, देश और विदेश से प्रशान्ति निलयम् में आये भक्तों द्वारा प्रस्तुत विविध प्रकार के पदार्थों से भरी थालियों के ढेर लगे रहते हैं । मेरी कोई निर्धारित भोजन-सूची नहीं है और न ही मैं उसकी चिन्ता करता हूं । मैं सभी प्रकार के स्थानों पर मैदानों, घाटियों और पहाड़ों पर सभी प्रकार के मौसमों में चाहे गर्मी हो, वर्षा हो, या सर्दी हो, धूप हो या छांह हो, जाता हूं और यात्रा करता हूं । आज इस कूएं का पानी पिया तो कल उसका । किन्तु मैं आनन्द स्वरूप हूं इसलिए कभी बीमार नहीं पड़ता । कोई कितनी ही प्रशंसा करे या कोई निन्दा या बुराई करे, उसका मुझ पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता है—मैं सदा ऐसी बातों से अप्रभावित रहता हूं । आनन्द की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है । मार्ग पर फल से लदे वृक्ष को देख कर कोई उसकी ओर प्रशंसा भरी दृष्टि से निहारता है तो कोई उस पर पत्थर मार कर फल तोड़ता है । पेड़ तो सदा अपनी स्थिति में खड़ा रहेगा, फलों से लदे होने के कारण पत्थरों की मार खा-कर भी वह प्रसन्न रहेगा और बदले में फल देगा, भूखे और प्यासों की क्षुधा और तृषा को शान्त कर उन्हें प्रसन्नता और संतोष प्रदान करेगा ।

प्रेम ही मेरा पहिचान-चिन्ह है न कि इच्छा शक्ति से तत्काल सृजित करके दिये जाने वाले पदार्थ या स्वास्थ्य और प्रसन्नता। आप 'चमत्कार' कही जाने वाली बातों को मेरे दैवत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण मानते होंगे; किन्तु वह प्रेम जो आप सब का स्वागत करता है, जो आप सबको आशीर्वाद देता है, जो सब में समाया हुआ है, जिस प्रेम के कारण मैं देश और काल की सीमाओं को पार कर मुझे प्रेम से पुकारने वाले साधको! दुःख और संकट-ग्रस्त दुखियों और पीड़ितों के पास भागता हुआ पहुंच जाता हूं; फिर वे कहीं भी हों, कितनी भी दूर क्यों न हों। यह है मेरा वास्तविक प्रतीक जो यह घोषित करता हैं कि मैं साई बाबा हूं।

मेरे लिए प्रत्येक दिवस उत्सव-दिवस है क्योंकि मेरे प्रेम की तो प्रतिदिन वर्षा होती है। किन्तु आप लोग कलैन्डर देखते हैं और इन पावन दिवसों को उत्सव मनाते हैं, तो मैं इन उत्सवों की यहां व्यवस्था करवा देता हूं। जब डाक्टर आते हैं और मुझ से अस्पताल दिवस मनाने की अनुमति माँगते हैं तो मैं स्वीकृति दे देता हूं। इससे आपको मुझ से उन अनुशासनों, संयम और नियमों को जानने का अवसर प्राप्त होता है जिनसे इस भौतिक शरीर को, इस उपकरण को, आप स्वस्थ और क्रियाशील रख सकें।

प्रशान्ति निलयम्
५-१०-१९६७

१८. आशीर्वाद स्वरूप पुस्तकें

पाँच भाषाओं में छः पुस्तकें लेखकों और प्रकाशकों द्वारा अभी मुझे समर्पित की गयीं। इसलिये यह एक उपयुक्त अवसर है जब यह प्रश्न किया जा सकता है, "पुस्तकें क्यों लिखी जायें, क्यों प्रकाशित की जायें और क्यों पढ़ी जायें ?" पुस्तकें ऐसी होनी चाहियें जो कुछ प्रकट करें वह प्रेरणादायक, शिक्षाप्रद, ज्ञानवर्द्धक, उत्साह-वर्द्धक, नेतृत्व-प्रदायक और मार्ग-दर्शक हो। हाँ यह सही है किन्तु वे क्या प्रकट करें; किसको प्रेरणा प्रदान करें ? वे कैसे शिक्षा प्रदान करें ? वे क्या ज्ञानवर्द्धन करें ? किसको उत्साह प्रदान करें ? पाठकों का किस स्थान अथवा स्थिति तक मार्ग दर्शन करें ? किसी पुस्तक को अच्छा कहने से पूर्व इन प्रश्नों के उत्तर दिये जाने चाहियें, इन पर ही पुस्तकों के लिखने और प्रकाशन में उठाये गये कष्ट और व्यय की सार्थकता और उनके समर्पण की सफलता निर्भर करती है।

जो इस बात में विश्वास करते हैं कि सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान परमेश्वर इस सृष्टि का नियामक और नियंता है, वे यह स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक की उत्पत्ति उस ईश्वर की इच्छा मात्र से होती है। विज्ञान ने सृष्टि की पूर्ण व्याख्या करने में अपनी क्षमता के सम्बन्ध में अभी तक निश्चितता से संदिग्धता की ओर ही प्रगति की है। प्रत्येक की उत्पत्ति ईश्वर की इच्छा मात्र से होने के कारण जीवन में ईश्वरीय उद्देश्य निहित होना स्वाभाविक है। इसलिए मनुष्य को ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग जानना चाहिए, उसको वहाँ तक पहुंचने के लिए प्रोत्साहित करते हुए उसका मार्ग दर्शन किया जाना चाहिए। उसे मार्ग में आने वाले अवरोधों को पार करने के लिए शिक्षित किया जाना चाहिए, उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि 'उसको' जान लेने पर और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता है। वही परम ज्ञान है और सब कुछ गौण है, फुटकर और अनावश्यक है। वेदान्त में ईश्वरीय ज्ञान का अक्षय भण्डार है और उस यात्रा और मार्ग का जिसके द्वारा प्रभु तक पहुंचा जा सकता है पूर्ण विवरण दिया गया है। ईश्वर के सम्बन्ध में विभिन्न अनुमान और विशेषतायें तथा उनकी सत्यता की परख के विभिन्न उपाय, ईश्वरीय महिमा को समझने के लिये मनुष्य की बुद्धि को प्रखर बनाने के अनेकों अनुशासन उपनिषदों में दिये गये हैं। उपनिषदों से ही यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर की महिमा को समझने पर जब यह तथ्य प्रकट होता है कि वह महिमा तो मनुष्य के स्वयं के अंतर की ही है, तो अपार आनन्द का स्फुरण होता है। उपनिषदों पर ही वेदान्त आधारित है। मनुष्य के द्वारा लिखी गयी प्रत्येक अच्छी पुस्तक की इसलिए प्रशंसा की जाती है कि उसके पृष्ठों में उस स्वर्णिम महिमा की धारा प्रवाहित होती है, उसी का ऐश्वर्य, उसका ही सौंदर्य, उसके ही दिव्य प्रेम और रहस्य का वर्णन होता है।

वेदान्त का अर्थ है ज्ञान-निधि की अन्तिम चरम स्थिति, अन्तिम ध्येय—मुक्ति। दूध की अन्तिम निर्मिति घी है क्योंकि दूध को गरम करने, फिर उसका दही जमाने, दही को बिलोकर मक्खन निकालने और फिर मक्खन को तपाकर घी बना लेने के बाद उसका और कुछ नहीं बनाया जा सकता है। इस प्रकार घृत, दूध का अन्तिम रूपान्तरण है। वेदान्त ज्ञान है, वह ज्ञान जो परम सत्य को प्रकट करता है, हृदय की ग्रंथियों को खोल देता है, बाह्य पदार्थों के बन्धनों से मुक्त कर देता है और एक ही चमक में इस नाना-रूपिणी सृष्टि की एकता के परम सत्य को उजागर कर देता है। इसी सत्य के साक्षात्कार से मनुष्य को सुख और शान्ति प्राप्त हो सकते हैं। मनुष्य केवल विशालता में ही सुखी हो सकता है, जब अधिक से अधिक शक्ति और ऐश्वर्य, प्रताप और महिमा प्रवाहित हों। गर्मियों के दिनों में लोग मैदानों की गर्मी से बचने के लिए नैनीताल या कोडईकैनाल या मसूरी आदि पहाड़ी स्थलों पर जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य विशालता खोजता है जिससे कि वह एकाकी और व्यक्ति-परक जीवन की कठोरता से मुक्त हो सके। उन्हें चाहिए आनन्द, विशुद्ध, पूर्ण; न कि अस्थायी और अपूर्ण। इसलिए पुस्तकों में अनन्त को विविधताओं, पूर्ण विशुद्ध निश्चितताओं और विशाल, अपरिमित आनन्द का वर्णन विवेचन और प्रतिपादन होना चाहिए।

मन के ऊपर माया का पर्दा पड़ जाता है और वह धोखे में पड़ा भ्रमित हुआ मिथ्या आकर्षणों में भटकता रहता है। उदाहरण के लिए इस धोखे में पड़कर कि सिर के केश सफेद होना लज्जास्पद बात है, स्त्री और पुरुष सदा यह चाहते हैं कि उनके केश श्वेत न हों और वे इनसे बचना चाहते हैं। यदि उनके केश सफेद हो जाते हैं तो वे उन्हें काला करने के लिये रँगते हैं, उनमें खिज़ाव लगाते हैं, जबकि दूसरी बातों में श्वेत शुभ माना जाता है और काला अशुभ। यह मन किसी एक ध्येय पर टिक कर कभी स्थिर नहीं रहता है। मन सदा चंचल रहता है, एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ की ओर; एक तृप्ति से दूसरी की ओर लपकता-फुदकता रहता है। जब कोई मन के कहे अनुसार चल दे और बुद्धि तथा विवेक के निर्णय का उल्लंघन कर जावे तो वह मूर्खता ही कहलाती है। यह संसार तो भूल-भुलैयां है जिसमें मनुष्य फँस गया है; उसे उसके बाहर निकलना ही चाहिए। किन्तु मन मार्ग-दर्शक नहीं है क्योंकि वह तो लक्ष्यहीन इधर-उधर भटकता रहता है।

ऊँट कांटे खाता है और प्रसन्न रहता है। मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओं की खोज में भटकता रहता है और परिणामस्वरूप अपार कष्ट उठाता है, किन्तु फिर भी वह इस प्रपंच से बाहर आने का मार्ग नहीं खोजता। ऊँट की तरह उसके मुंह में कांटे चुभते हैं, उसे कष्ट होता है और वह कभी-कभी उससे छुटकारा पाने की सोचता है; किन्तु केवल सोच कर ही रह जाता है, कार्य नहीं करता। उस विचार के पीछे शक्ति नहीं होती। किन्तु जब अरुचि और अकुलाहट बढ़ जाती है तो दृढ़ संकल्प

उत्पन्न होता है और आदत छूट जाती है, पश्चाताप के आंसुओं में सारे असर वह जाते हैं और मन दृढ़ हो जाता है। भगवान सदा आपके पीछे है, संसार से मुख मोड़ कर उस ओर देखो और आप अपने आपको उनके सम्मुख पाओगे। मन में ऐसी शक्ति उत्पन्न करो कि वह अपने दोषों और दुर्बलताओं को जान सके और आप पूर्ण रूप से भगवान के प्रति अपना समर्पण कर सकें जिन्हें आप सभी प्राणियों में और क्रिया-कलापों में आमने-सामने देखते हैं।

आप जो कुछ भगवान के चरणों में समर्पित करते हैं, वे उनके मूल्य का हिसाब नहीं लगाते। भगवान तो यह देखते हैं कि आपने किस भावना के साथ समर्पण किया है। एक दिन शंकराचार्य अपना भिक्षा-पात्र लिये एक घर के दरवाजे पर भिक्षा के लिए खड़े हुए। उस घर में रहने वाली वृद्धा शंकराचार्य के मुख-मण्डल की आभा देखकर समझ गयी कि वह तो कोई महान, पहुंचा हुआ संन्यासी है। वह अपने हाथ मलने लगी कि उन्हें क्या दे क्योंकि उसके पास उन्हें देने को कुछ भी नहीं था। वह अपने आपको कोसने लगी। वह सोचने लगी कि ऐसा महान संन्यासी उस अभागी के द्वार पर क्यों आकर रुक गया, क्यों नहीं किसी सम्पन्न के द्वार पर पहुंचा। फिर उसे याद आया कि कुछ दिन पहले वह जंगल में से कुछ आँवले तोड़ कर लायी थी उनमें से एक ही आँवला पड़ा था, वही संन्यासी को भिक्षा में क्यों न दे दिया जाय। जव उस बुढ़िया को प्यास लगती थी तो वह एक आंवला खाकर अपनी प्यास बुझाया करती थी। अब उसके पास एक ही आंवला शेष रह गया था फिर भी वह घर के भीतर गयी और उस एक आंवले को लाकर संन्यासी के भिक्षा-पात्र में डाल दिया। उसकी आँखों से आँसू वह रहे थे। बस उस वृद्धा की भावनाओं ने शंकराचार्य का भी हृदय स्पर्श कर लिया। भगवान की कुछ ऐसी दया हुई कि उस वृद्धा के घर के आँगन में स्वर्ण के आँवलों की वर्षा हो गयी। उसकी समस्त आवश्यकताओं और अभावों की पूर्ति हो गयी। उसे किसी से कुछ माँगना भी नहीं पड़ा। इस प्रकार प्रभु की कृपा कार्य करती है।

आप तो जानते होंगे कि श्रीकृष्ण ने पाण्डवों पर कितनी कृपा की थी। यदि आप यह भी जानते हों कि श्रीकृष्ण का पाण्डवों से प्रथम मिलन किस प्रकार हुआ और वह उनके मित्र मार्ग-दर्शक और संरक्षक के रूप में ही रहे तो आप यह अनुभव करेंगे कि भगवान के अनुग्रह की वर्षा तो बिना माँगे ही होती है। महाराज परीक्षित ने शुकदेव जी से भागवत की कथा सुनते हुए प्रश्न किया था कि, "श्रीकृष्ण और उनके बड़े भाई बलराम सबसे पहले पाण्डवों से कब और कैसे मिले थे?" शुकदेव ने उन्हें बताया, "द्रौपदी के स्वयंवर में श्रीकृष्ण और उनके बड़े भाई बलराम दोनों हो आये हुये थे। आपको यह ज्ञात होगा कि द्रौपदी के स्वयंवर में यह शर्त थी कि जो भी धनुर्धर एक खंभे के ऊपर टंगी एक चक्र पर घूमती मछली का नीचे उसकी छाया को देखकर एक घूमते हुये चक्कर में होकर तीर पार करते

हुए भेदन कर देगा उसी के साथ द्रौपदी का विवाह होगा। जब वहाँ उपस्थित सभी क्षत्रिय राजा-महाराजा और योद्धा असफल हो गये, ब्राह्मण वर्ग के वीर भी सफल न हो सके तो अर्जुन लक्ष्य-भेद करने में सफल हुआ और द्रौपदी का उसके साथ विवाह हो गया। पाँचों पाण्डव गुप्त रूप से छद्म वेष में अपनी माता कुंती के साथ एक कुम्हार के घर में रह रहे थे। श्रीकृष्ण जो यह जान गये थे कि द्रौपदी को स्वयंवर में जीतने वाले उनके ही भाई-बन्धु हैं। इसलिये वह उस कुम्हार के घर पहुंच गये और अपने बन्धुओं से मिले। श्रीकृष्ण ने उन्हें अपना पूर्ण परिचय दिया और उनका आगे के लिये मार्ग दर्शन किया।"

भगवान प्रेम है—स्वच्छ निर्मल प्रेम, अक्षय और सार्वलौकिक प्रेम। उनका न किसी के प्रति मोह है और न किसी के प्रति द्वेष। भगवान से डरने का कोई कारण नहीं। डरो तो अपनी स्वयं की कमजोरियों से और वृत्तियों से जो आपको दुष्कर्मों की ओर धकेलती हैं या खींचती हैं। जो पुस्तकें लोगों में भगवान के प्रति प्रेम उत्पन्न करती हैं और दुष्कर्म तथा पाप से डरना सिखाती हैं वे उपयोगी और कल्याण-कारक होती हैं। भगवान का साक्षात्कार किया जाना चाहिये मनुष्य के प्रति प्रेम से। क्योंकि मनुष्य ही ईश्वर का प्रकट रूप है; यह प्रकट रूप जिसके दुःख और दर्द को आप अपना समझ सकते हैं।

ऐसी पुस्तकें ऐसे ही हृदयों से निकल सकती हैं जिनमें तड़प, पीड़ा और प्रार्थना होती है। ऐसा जीवन अपनाओ, पक्तियाँ स्वतः ही उभरेंगी।

प्रशान्ति निलयम्
६-१०-१९६७

१६. पुरातन वृक्ष का पोषण

भारत वह देश है जहाँ 'यह' और 'वह', स्रष्टा और सृष्टि, ऊर्जा और पदार्थ के द्विधात्व का व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों ही रूपों में दार्शनिक पाठशालाओं और आश्रमों में एक ही महान एकत्व में समाधान प्राप्त कर लिया गया था। इस देश में विचारकों-मुनिजनों को यह भली-भाँति ज्ञात रहा है कि जीवन का वृक्ष जिसकी अगणित शाखायें विचारों, भावों, शब्दों, कर्मों, वृत्तियों और संवेगों आदि विषयभोग रूपी कोंपलों के रूप में एक के बाद एक निकलती और फैलती, प्रचुरोद्भवित[1] होती रहती हैं, ऊर्ध्वाधर[2] मूल वाला है, उसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं। इसीलिए प्रत्येक शास्त्रीय विधि और प्रक्रिया, शुद्धता, विनम्रता और प्रेम से परिपूर्ण, पावन, पवित्र और सुप्रतिष्ठित बनायी गयी थी, जिससे कि व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व को सुख और शान्ति प्राप्त हो सके।

किन्तु अब भारतवासी ऐसी विचित्र विचार पद्धति के अनुसार सोचने लगे हैं जो भारतीय आदर्शों के बिलकुल विपरीत है तथा उससे ऐसे प्रभावित हुए हैं कि वे अपने आप को हिन्दू कहलाने तक में लज्जा का अनुभव करते हैं मानो कि देश के मनीषियों ने जो चित्र बनाया था वह कोई हास्यास्पद खाका मात्र रहा हो; उनके पूर्वजों ने मानो उनका गलत मार्ग दर्शन किया हो। इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाना, रुख ग्रहण करना गलत और खतरनाक है जिसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं, इसके कारण वे उन ऋषियों और मुनिजनों के बहूमूल्य अनुभवों से लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जायेंगे। यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि अनुशासनहीन, स्वच्छन्द विचरण और विलासितापूर्ण जीवन बनावटी और खोखला होता है। दुष्ट कौरवों ने भरी सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्रा करने का दुस्साहस किया; पाण्डव अपनी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के वशीभूत मूक बैठे देखते रहे; किन्तु भगवान का उनके प्रति प्रेम था उनकी भक्ति के कारण इसलिए द्रौपदी की करुण-पुकार सुन कर उन्होंने उसकी रक्षा की। अब भी हिन्दू धर्म और संस्कृति का सम्मान दाव पर लगा हुआ है, जिन लोगों पर इसके संरक्षण, पोषण और परिवर्द्धन का भार है वे ही उसका उपहास और उपेक्षा करने लगे हैं। आध्यात्मिक विकास की विभिन्न स्थितियों के सूचक अनेकों रीति-रिवाजों और संस्कारों को हिन्दू बड़ी तेजी के साथ त्यागते और भूलते चले जा रहे हैं। वे भी उन सिरफिरे और निन्दाशील लोगों की उपहासप्रद बातों में हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं कि अंतरिक्ष में चक्कर लगाने पर भी कहीं भगवान

---

१ बड़ी मात्रा में पैदा होने वाला २ ऊपर-नीचे

नहीं मिला मानो उनके पैरों के तले की पृथ्वी और चारों ओर फैली प्रकृति की छटा ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण नहीं हों।

भारतीय विचार के अनुसार 'मैं' और 'वह' एक हैं; सब एक ही सत्य, शिव और सुन्दर, सच्चिदानन्द परम पूर्ण (ब्रह्म) में समाहित है। भारतीय विचारक कल्पना की प्रमत्तकारी विशालतम ऊंचाइयों और अन्तर्ज्ञान की गहनतम गहराइयों तक पहुँचे हैं और उन्होंने पाया है कि मूलभूत एकता को कठोर से कठोरतम तर्क के आधार पर भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए अन्य सब विश्वास और मान्यतायें केवल इसी एक परम सत्य, उत्कृष्ट अनुभव के ही विविध रूप हैं। हिन्दू नैतिक आचरण संहिता में जो मनुष्य का छोटे से छोटा कर्तव्य निर्धारित है वह इसी एकता के प्रति सजग और सचेत रहने का परिचायक है। उदाहरण के लिए आप देख सकते हैं कि यदि कोई व्यक्ति द्वार पर आये अतिथि अथवा किसी भी भूखे व्यक्ति को खिलाये बिना स्वयं भोजन करता है तो यह कहा गया है कि वह चोरी करता है, पाप का अन्न खाता है, अपवित्रता का भोजन करता है।

दमयन्ती को नल बन के अंधकार में अकेली छोड़ कर चला गया था, फिर भी उसे चिन्ता में नींद नहीं आयी थी कि उसका पति कैसे होगा ? उसी समय उसने हाथियों के एक झुंड की उस ओर आने की आवाज सुनी, वह बहुत चीखी चिल्लाई किन्तु उसके आस-पास सो रहे जंगल में रहने वाले आदिवासी लोग इतनी गहरी नींद में सो रहे थे कि उसकी चेतावनी का उन पर कोई असर नहीं हुआ और वे हाथियों के पैरों तले कुचल कर मारे गये। इसी प्रकार संसार के देश इन्द्रियों के संवेगों की तुष्टि में मदमस्त हुए सो रहे हैं और उन्हें भारत को अर्थात् वेदमाता को (क्योंकि भारत वेदवाणी के माध्यम से ही बोलता है) जगाना है, क्योंकि जंगलीपन बढ़ता चला जा रहा उनका विनाश करने के लिये। भारत को संसार को जागृत करने का कार्य करना है। भारत को विश्व को यह बताना है कि ईश्वर मनुष्य के जीवन के अणु में, सम्पूर्ण विश्व में एक विद्यमान सुनिश्चित, और सुदृढ़ सत्य है। वह सत्, अणुचित् और आनन्द है— सच्चिदानन्द है। भारत को धर्म के वृक्ष का पोषण करना चाहिए और सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए आह्लाद, आनन्द और शान्ति के फल प्राप्त करने चाहिए।

निरन्तर प्रयत्नशील रहना और हिन्दू धर्म का विकास करना आज के समय की आवश्यकता है। जो धर्म के सिद्धान्तों को मानते हैं उन्हें चाहिए कि वे उन सिद्धान्तों को अपने जीवन में पालन करके अपने स्वयं के उदाहरण तथा नीति और मर्यादा के द्वारा सब में फैलायें और आगे बढ़ायें। प्रत्येक में ईश्वर के लिए प्यास है; किन्तु कुछ लोग मिथ्या अभिमान के कारण, कुछ अज्ञानवश, कुछ विभिन्न अन्य कारणों जैसे

चिन्ता, असन्तोष, कुंठा, घृणा आदि के वशीभूत नहीं मानते हैं। कुछ को केवल 'प्रेम' में ही विश्वास है, कुछ केवल 'सत्य' को ही मानते हैं, कुछ केवल 'भलाई' को ही स्वीकार करते हैं; किन्तु वे सब यह नहीं जानते हैं कि इन नामों के द्वारा वे केवल ईश्वर की ही ओर संकेत करते हैं। वे भी उसी पावन मंदिर के तीर्थयात्री हैं।

प्रशान्ति निलयम्
७-१०-१९६२

२०. तीन पहिया शिशु-गाड़ी

काम का परिणाम है जन्म और काल का परिणाम है मृत्यु। काम को शिव ने भस्म किया था। समय का देवता काल या यम है। उसे भी शिव ने पराजित किया था। इसलिये जो कोई भी इन दोनों भयंकर दुर्जय शत्रुओं के प्रभावों से बचना चाहता हो उसे शिव की शरण ग्रहण करनी चाहिये। यदि आप काम और काल के बीच में फंस गये हैं तो राम की शरण में पहुंचो, रक्षा पा सकोगे क्योंकि राम आत्मा है और आत्मा में काम नहीं होता तथा वह काल से अप्रभावित है।

प्रकृति—बाह्य और आन्तरिक दोनों ही—सर्वसत्ता-सम्पन्न आत्मा द्वारा शासित है जो विश्व आत्मा है, परमात्मा है। यदि आप परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त कर लेते हैं तो प्रकृति आप की चेरी बन जाती है। यह शरीर प्रकृति है और प्राण परमात्मा। जीवित प्राणी पर्दे पर चलते-फिरते चित्र हैं; पर्दा अप्रभावित रहता है उस पर चाहे कैसा भी दृश्य चित्रित हो, भयंकर अग्निकाण्ड, प्रचण्ड तूफान या बाढ़ अथवा कोई भी भावावेग, वह अप्रभावित रहने वाला पर्दा ही परमात्मा है। सांसारिक इच्छायें उन चित्रों को देख कर आकर्षित होती हैं जो वास्तव में माया का ब्रह्म-जाल है, किन्तु लगती ऐसी हैं मानो वे जीवित सच्ची घटनायें हों। ज्ञानी केवल पर्दे पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेगा जो पवित्र है, श्वेत है और स्वच्छ है। जब दूध में पानी मिलाया जाता है, वह भी दूध का रूप ग्रहण कर लेता है पानी भी दूध ही लगता है। प्रकृति भी हमें स्थिरता, सुख और शान्ति देती हुई दिखायी देती है; किन्तु ये तो सब परमात्मा की विशेषतायें हैं। दूध में पानी के समान ये विशेषतायें प्रकृति की नहीं हैं। हंस में एक गुण होता है कि वह दूध को पी जाता है और पानी छोड़ देता है। इस प्रकार उसमें पानी को दूध से अलग कर देने की क्षमता होती है। इसी प्रकार परमहंस (उच्चतम कोटि का संन्यासी, जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया हो) माया को सत्य से अलग कर सकते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं (संत के हंस गुण गहि लहैं, परिहरि वारि विकार)। रामकृष्ण देव परमहंस थे, उनमें यह विवेक ज्ञान था कि नीर (असत्य) को क्षीर (सत्य) से पृथक् कैसे किया जाता है। रामकृष्ण देव गले के कैंसर से पीड़ित थे और भोजन नहीं कर पाते थे। उनके शिष्यों ने उनसे अनुरोध किया कि वे मां काली से अपने गले के रोग को ठीक करने के लिए प्रार्थना करें क्योंकि उनका विश्वास था कि यदि वे मां से प्रार्थना करेंगे तो मां उन्हें निश्चित रूप से पूर्ण स्वस्थ कर देंगी। किन्तु परमहंस ने कोई भी ऐसी प्रार्थना करना अस्वीकार कर दिया, उनका ध्यान किसी ऐसी शारीरिक आवश्यकता की ओर नहीं खींचा जा सका। उनका उत्तर था, "क्यों? इसके लिए मां से क्यों

प्रार्थना करूं ? यदि यह मां की इच्छा है तो यह होगा, और यदि नहीं तो यह भी उसकी इच्छा।"

ईश्वर प्राप्ति के विभिन्न मार्गों के विषय में बहुत ही निरर्थक वाद-विवाद और विरोध होते हैं। कुछ लोग भक्ति, कर्म और ज्ञान तीन मार्ग बतलाते हैं। किन्तु इन तीन के शक्ति सामर्थ्य के सम्बन्ध में वाद-विवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये तो प्रयाग में गंगा, यमुना और अदृश्य और गुप्त सरस्वती तीनों पवित्र नदियों के संगम के समान है। गंगा भक्ति मार्ग है—शरणागति का, आत्म-नियन्त्रण का, वासनाओं के परित्याग का। यमुना कर्म मार्ग है—सदा कर्मरत रहने का, फल की इच्छाओं को त्याग कर, सब कर्म भगवान की पूजा समझते हुए, उन्हीं को समर्पित करते हुए, समस्त मोह त्याग कर समत्व भावना से कर्तापन के अभिमान को त्यागते हुए कि, "मैं करता हूँ या मैंने किया है।" सरस्वती ज्ञान मार्ग है—सत्य का साक्षात्कार करना, यह जान लेना कि सत्य एक है, शाश्वत है, परिवर्तन से परे है, आनन्द से पूर्ण है। अतः बन्धन का विचार ही मिथ्या है। ये तीनों मार्ग उस तिनपहिया शिशु गाड़ी (जो लकड़ी की बनी होती है) के पहियों के समान है जो छोटे बच्चों को चलना सीखने और खेलने के लिए दी जाती है। भक्ति और ज्ञान तो उसके एक ही रेखा में लगे पीछे के दो पहिये हैं और सामने का छोटा पहिया है कर्म। जैसे बच्चा इसकी सहायता से कदम रखता और धीरे-धीरे चलना सीखता है इसी प्रकार मनुष्य इन के सहारे फिर भय और माया से मुक्त हो कर स्वतन्त्रता के नगर की ओर चलना सीख लेता है।

केवल उत्साह में आगे बढ़ने के स्थान पर उचित होगा कि अध्यात्म मार्ग के जिज्ञासु को प्राथमिक अवस्थाओं में गुरु का मार्ग-दर्शन प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि जिन अनुशासनों का पालन किया जाता है उनका पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। अर्थ समझे बिना उनका ठीक से पालन नहीं होता है। ध्यान, उपासना, प्रणव-जाप[1] किसी के मार्ग दर्शन में करना ही श्रेष्ठ है; केवल पुस्तकों के आधार पर आगे बढ़ने से साधक को निराशा ही हाथ लगती है। साधना के पथ पर प्रत्येक पग समझते हुए रखने की आवश्यकता है कि आप ठीक चल रहे हैं या नहीं, जिससे कि सफलता प्राप्त करने में मनुष्य की सभी शक्तियों के पूर्ण पारस्परिक सहयोग के साथ प्रयास किए जा सकें। केवल अनुकरण करने या यंत्रवत कार्य करने का कोई अर्थ नहीं है।

आप किसी से पूछिये कि घर के दरवाजे पर हरे पत्तों की वन्दनवार क्यों

---

१ गायत्री मंत्र का जाप

लगाते हैं तो केवल इतना सा उत्तर मिलेगा, "सभी अच्छे घरों में होता है, पूर्वजों की परम्परागत प्रथा चली आयी है न जाने कब से।" किन्तु क्यों? शायद इसका कारण जानने का कोई प्रयत्न भी नहीं करता है।

पहले समय में गांव के प्रत्येक घर में धान की बोरियां भरी रखी रहती थीं इसलिए प्रत्येक घर में चूहे भी बहुत होते थे। ऐसे ही एक घर में पूर्णमासी के शुभ दिन सत्यनारायण भगवान की पूजा हुआ करती थी। इसके लिए एक दिन पहले ही रात को घी, दूध, दही आदि एकत्रित करके घर में रखने होते थे। चूहों के कारण घर में बिल्ली थी, इसलिए रात में घी और दूध आदि पदार्थ बहुत ही सुरक्षित और बिल्ली की पहुँच से परे रख दिए जाते; क्योंकि घी और दूध बिल्ली को बहुत ही प्रिय होते हैं। किन्तु दिन में तो पूजा के समय घी दूध को घर में खुले बरतनों में रखने की आवश्यकता होती थी और उस समय बिल्ली को उन पर अपना हाथ साफ करने का मौका मिल सकता था। इसलिए गृहस्वामी बिल्ली को गर्दन पकड़ कर एक टोकरी के नीचे दबा दिया करते और उसके ऊपर एक भारी पत्थर रख दिया करते थे जिससे कि बिल्ली निकल कर बाहर न जा सके और दूध दही सुरक्षित और शुद्ध बना रह सके। यह क्रम उस घर में प्रत्येक पूर्णमासी के दिन होता था जब सत्यनारायण पूजा होती थी फिर प्रत्येक पूर्णमासी के दिन, चाहे उस दिन पूजा हो या न हो, बिल्ली को पकड़ कर टोकरी के नीचे बन्द करने का क्रम उस घर में ऐसा चल पड़ा कि घर के पुत्र-पौत्रों के लिए वह घर की एक प्रथा बन गयी। उस घर में कोई शुभ कार्य 'बिल्ली को टोकरी के नीचे बन्द करने' की प्रथा को पूरा किए बिना आरम्भ ही नहीं होता था और बिल्ली कहीं बाहर से ढूंढ़कर लाकर बन्द करनी पड़ती थी।

बिना सोचे समझे नकल करके चलने का यह एक उदाहरण है। ऐसे अन्धानुकरण से बचना चाहिए। किसी समय और परिस्थिति विशेष में बिल्ली को टोकरी के नीचे बन्द करने की आवश्यकता, समय के प्रवाह में अन्धानुकरण में एक प्रथा बन गयी और अपने उत्पात के कारण कैद की जाने वाली बिल्ली सम्मान का स्थान पा गयी और यह माना जाने लगा कि उस घर में बिल्ली को टोकरी के नीचे दबाने की रस्म पूरा करना बड़ा शुभ और मंगलप्रद होता है। किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसका उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिये, अन्धानुकरण नहीं।

आध्यात्मिक जीवन में मूलभूत बात है इच्छाओं का दमन, व्यक्तिगत इच्छाओं को ईश्वरीय इच्छा के प्रति समर्पित कर देना बस फिर उससे ही सारे विचार, शब्द और कार्य श्रेयस्कर होते चले जाते हैं और पूजा के कृत्य हो जाते हैं। जब रावण मारा गया तो उसकी रानी मन्दोदरी विलाप करने लगी, "तुमने अपने सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली थी किन्तु तुम अपनी वासनाओं पर विजय नहीं

पा सके। तुम पवित्र थे, पण्डित थे, महान शक्तिशाली शत्रुओं को भी तुम ने पराजित किया था—किन्तु तुम अपनी इच्छाओं के दास बने रहे, कामनाओं पर विजय न पा सके। बस इसी कारण तुम्हारा पतन हुआ।" आतशी-शीशे पर पड़ने वाली सूर्य की किरणें एक विन्दु पर केन्द्रित हो जाती हैं और उससे कागज या घास जल जाते हैं। इसी प्रकार चित्त की एकाग्रता से वासनाओं के बीजों को नष्ट किया जा सकता है। इसलिए मैं सदा इस बात पर बल देता हूं कि प्रतिदिन प्रातः और सायं दोनों समय कुछ मिनिट ध्यान अवश्य करना चाहिए।

प्रशान्ति निलयम्
८-१०-१९६७

२१. मन के वातायन[1]

ईश्वर प्रेरित मन की शक्ति वह सक्रिय बल है जिस के द्वारा आप ऊपर उठ सकते हैं, अपना विकास कर सकते हैं। यह संकल्प बल कहलाता है और आप उसको चित्त की एकाग्रता, ध्यान और जप के द्वारा विकसित कर सकते हैं। मन आपकी इच्छाशक्ति के अनुसार चलने को विवश होना चाहिए। अभी तो आप मन के मौजीपन के अनुसार इधर-उधर भटकते रहते हैं। इसलिए मैं कहता हूं चौकसी रखो—Watch ! W अर्थात् Word—अपने शब्दों पर चौकसी रखो, A अर्थात् Action—अपने कार्यों पर चौकसी रखो, T अर्थात् Thought—अपने विचारों पर चौकसी रखो, C अर्थात् Character—अपने चरित्र पर चौकसी रखो, H अर्थात् Heart—अपने हृदय पर चौकसी रखो। यदि आपकी Watch (घड़ी) आपको प्रतिक्षण इन पाँचों चौकसियों (Watch) के लिए सजग रखे तो आप वास्तव में सदा प्रसन्न और सुखी रह सकते हैं।

यह मन घड़ी के पैण्डुलम की तरह अपनी रुचि के एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ की ओर हिलता-डुलता रहता है। पैण्डुलम को रोकने का एक सरल उपाय है कि चाबी मत दो, उसकी सारी हरकत बन्द हो जायेगी। इसी प्रकार मन की प्रत्येक सनक, तरंग और रुचि को न मानकर उसको प्रोत्साहन देना बन्द कर दो। जब हम किसी को मारते हैं या किसी को क्षति पहुँचाते हैं तो इसे उचित और सही बताते हैं किन्तु वही यदि हमको मारे तो हम विद्रोह कर देते हैं, उसे अनुचित और दण्डनीय कहते हैं।

हम प्रत्येक वस्तु की परीक्षा अहं की कसौटी पर करते हैं। मन दोधारी तलवार है—यह रक्षा कर सकता है तो बन्धन में भी डाल सकता है। योग मन की स्वाभाविक लहरों को रोक सकता है, सीमित कर सकता है। यौगिक अनुशासनों—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—अष्टाँग योग का अनुष्ठान करने से साधक के चित्त के मल का नाश हो जाता है, वह सर्वथा निर्मल हो जाता है, योगी को ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, उसे आत्मा का स्वरूप बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियों से परे प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ता है। (योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञान दिप्तरा विवेकख्याते:) मन के क्षय से आत्मा का जो साक्षात्कार होता है वह उसी प्रकार है जैसे खोये हुए 'दसवें' आदमी का पता लग जाना। कहानी सुनी होगी आप

---

१ मन की खिड़कियां

ने कि दस आदमियों ने जो साथ-साथ जा रहे थे, एक नदी पार की। नदी में पानी अधिक था और बहाव तेज़, इसलिये जब किसी प्रकार पार पहुंच गये तो सबने यह देखने के लिए निगाह दौड़ाई कि सब आ तो पहुंचे हैं कोई डूबा तो नहीं है। किन्तु जो गिनता नौ ही गिनता क्योंकि वह अपने आप को गिनना भूल जाता था। सब इसी निर्णय पर पहुंचे कि 'दसवाँ' आदमी डूब गया और सब इस पर बड़े दुःखी हुये और खेद प्रकट करने लगे। उन लोगों को इस प्रकार दुःखी देखकर उनके पास से होकर निकलने वाले एक समझदार व्यक्ति ने जब उनकी बातें सुनीं तो उसने उन्हें गिना और पाया कि वे तो दस थे—'दसवाँ' व्यक्ति भी उनमें मौजूद था। केवल अज्ञान और मतिभ्रम के कारण गिनने वाला अपने आप को ही भूल जाता था। आप भी अपने सत्य-स्वरूप को, आत्मा को, नहीं पहचानते हैं इसलिये आप अपने को सबके साथ नहीं गिनते, स्थिति अपूर्ण रहती है। जब अपने आप को जान जायेंगे, स्वयं को सबके साथ ही गिनेंगे—पूर्ण स्थिति प्राप्त हो जायेगी। जब गुरु या शास्त्र के द्वारा यह ज्ञान उपलब्ध हो जाता है तो अज्ञान का नाश हो जाता है, ज्ञान के प्रकाश में आत्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

इन्द्रियाँ ही मन को प्रेरित करने वाली शक्ति हैं। इन्द्रियां ही मन का वातायन हैं जिनसे होकर बाहर की हवा वहां तक पहुंचती हैं। पंच तत्वों के पाँच विशेष गुण होते हैं जो प्रत्येक इन्द्रिय को अलग-अलग प्रभावित और आकर्षित करते हैं और प्रत्येक इन्द्रिय का वही गुण धर्म बन जाता हैं। शब्द (आकाश) मन के कानों के द्वारा आकर्षित और प्रभावित करता है। स्पर्श (वायु) त्वचा के माध्यम से, रूप (अग्नि) नेत्रों के द्वारा, रस (जल) जिह्वा के द्वारा, गन्ध (पृथ्वी) नाक के द्वारा मन को आकर्षित और प्रभावित करते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के माध्यम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध द्वारा बाह्य जगत से सम्पर्क होता है और उसके अनुसार ही सुख-दुःख का अनुभव होता है। सुख और दुःख की लहरों पर इधर से बचने के लिए इनके प्रति अपने में उपेक्षा का भाव पैदा कर लेना चाहिये; जो कुछ आता है उसे प्रभु का अनुग्रह समझ कर स्वीकार करो निर्लिप्त भाव से। रामकृष्ण देव कहा करते थे, "जब आप कटहल काटते हैं और उसका छिलका निकालते हैं तो अपने हाथ में कुछ तेल की बूंदें लगाकर उन्हें चिकना कर लेते हैं जिससे कि कटहल का दूध आपके हाथों में चिपक न जाये और उसकी प्रतिक्रिया न हो; इसी प्रकार यदि आप यह चाहते हैं कि संसार आपके चिपके नहीं और आप उससे अप्रभावित रहें तो अपने मन को भी 'उपेक्षा की तेल की बूंदों से चिकना बना लो।

संसार के प्रति उपेक्षा से ही ईश्वर के प्रति गहरी उत्कंठा उत्पन्न होती हैं। चैतन्य वृन्दावन गये तो उनके लिए वहां की रज का कण-कण पावन था क्योंकि कृष्ण ने अपने चरणों से उस धरती को पावन बनाया था। चैतन्य ने वृन्दावन में

कृष्ण के अतिरिक्त न कुछ देखा, न सुना, न स्पर्श किया, न सूंघा, न किसी का स्वाद लिया। चैतन्य इतने तन्मय हो गये कृष्ण भाव में कि उन्होंने भूख, प्यास, सामाजिक व्यवहार, शिष्टाचार आदि तक को विस्मृत[1] कर दिया। मंदिर में जो भोग लगता था बस उसी का प्रसाद पाने की उनकी इच्छा होती थी। एक रात्री को श्री कृष्ण उनके सामने प्रकट हुए और उस एक इच्छा को भी त्याग देने को कहा। चैतन्य ने वह भी त्याग दी और सिवाय कृष्ण के उनमें कोई इच्छा नहीं रह गई। केवल कृष्ण ही उनकी भूख, प्यास सब कुछ बन गये। अन्त में कृष्ण उनके अन्तर में प्रकट हुए। मनुष्य शरीर धारी चैतन्य को दैविक चैतन्य ने चैतन्य[2] और आलोकित[3] कर दिया, वह भी दिव्य हो गये।

इसलिए उस अनुशासन और संयम को सीखो और उसका दृढ़ता से पालन करो जिससे मन ईश्वर में लगा रहे वहां से इधर-उधर विचलित न हो।

प्रशान्ति निलयम्
९-१०-१९६७

---

१ भुला देना २ सजीव ३ प्रकाशमान

२२. विवेक शून्य निर्णय

आत्म विश्वास के बिना कोई भी उपलब्धि संभव नहीं है। यदि आप को अपनी शक्ति और कौशल पर विश्वास है तो आप साहस के आन्तरिक स्रोतों से बल प्राप्त कर सकते हैं और अपने आपको आनन्द और शान्ति के उच्चतर स्तरों तक ऊपर उठा सकते हैं, क्योंकि आत्म-विश्वास आत्मा से प्राप्त होता है जो आपकी आन्तरिक 'वास्तविकता' है, 'सत्य' है। आत्मा ही शान्ति है, आत्मा ही सुख है, आत्मा ही बल है, आत्मा ही ज्ञान है। आध्यात्मिक प्रगति के लिये यह सारी साज-सज्जा आप आत्मा से ही प्राप्त कर सकते हैं। गीता में दो ऐसे मूलभूत सिद्धान्त दिये गये हैं जिनका मनुष्य को अवश्य पालन करना चाहिये—वे हैं "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" (श्रद्धा रखने वाले ज्ञान प्राप्त करते हैं) और 'संशय आत्मा विनश्यति' (जो संशय करते हैं उनका नाश होता है) ये दोनों ऐसे तटबन्ध हैं जिनके बीच में होकर जीवन की नदी सरलता, सुगमता, और सुरक्षा के साथ एक गति से प्रवाहित होती हुई ईश्वरीय अनुग्रह सागर की ओर बढ़ सकती है। यौवन-काल में इस नदी में बाढ़ आ सकने की सम्भावनायें होती हैं जिनके कारण तटबन्ध टूट सकते हैं, इस क्षेत्र में कुछ हानि हो सकती है। इसलिये इन तटबन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिये विशेष सावधानी बरती जानी चाहिये।

देश के भविष्य की योजना बनाने वाले अन्न के उत्पादन, पीने के लिये पानी और रहने के लिये मकान आदि के सम्बन्ध में अपना ध्यान केन्द्रित किये रहते हैं; किन्तु सच्चा सुख केवल इन बातों पर नहीं निर्भर रहता है न ही इनके द्वारा प्राप्त होता है। जब नैतिकता की हंसी उड़ाई जाती हो, भक्ति को एक रोग समझ कर उससे लोग डरते हों, चालाकी और चतुराई को सदा लाभप्रद समझ कर प्रोत्साहन दिया जाता हो, और व्यक्ति का एक उपकरण के समान सरकार द्वारा या किसी भी सामूहिक सत्ता द्वारा कुशलता और चालाकी के साथ उपयोग किया जाता हो तो भला फिर सच्चे अर्थों में सुख कैसे प्राप्त हो सकता है!

जब हमारे यहाँ के लोग चींटियों के बिलों, वृक्षों, सर्पों, पक्षियों, सिंहों और गायों की पूजा करते हैं, कुटिल कुविचारी हंसी उड़ाते हैं किन्तु उनको इनके गहन अर्थों का बोध नहीं होता है कि ईश्वर सब में वास करता है, हम सब तत्वस्वरूप से एक हैं। इसी प्रकार जितने कर्मकाण्ड हैं, रीति-रिवाज हैं और जो उत्सव तथा त्यौहार युगों-युगों से इस देश में मनाये जा रहे हैं उनका अपना महत्व है उनमें गहन अर्थ नीहित है। किन्तु उनके वास्तविक अर्थों को न समझ कर लीक पीटने वाली बात रह जाती है, गिरी की उपेक्षा कर जटा और भूसे को ही सब कुछ समझने

लगे हैं। ऐसे समय में ही आवश्यकता होती है नैतिकता और धर्म के प्राचीन नीव और आधार पर पुनर्निर्माण की। नैतिक पवित्रता के बिना कोई धर्म नहीं; दोनों एक दूसरे पर आश्रित और अवलम्बित हैं।

आप कार रखते हैं। वह इसलिये नहीं कि उसका किसी काँच के प्रदर्शन-कक्ष में दिखावा करें बल्कि इसलिये कि आप उसे सड़क पर चला सकें और अपने इच्छित स्थान पर शीघ्रता और सुविधा के साथ पहुंच सकें। इसी प्रकार आपका शरीर आपकी यात्रा के उद्देश्य को पूर्ण करने वाला होना चाहिये। किन्तु कहाँ की यात्रा? केवल श्मशान यात्रा तक ही नहीं आपको केवल मरने से कहीं अधिक श्रेष्ठ कार्य करने हैं। मरने से पूर्व आपको अपने स्वयं के सत्य को, वास्तविकता को, समझना और साक्षात्कार करना है और उस परमानन्द में समा जाना है। अपनी यात्रा के इस अस्थायी पड़ाव के प्रत्येक क्षण को सद्विचारों और सद्कार्यों द्वारा पावन और पवित्र बनाओ। एक बार कर्ण अपने बायें हाथ में एक स्वर्ण के कटोरे में तेल लिये हुये सीधे हाथ से सिर में तेल लगा रहा था। उसी समय वहाँ होकर एक ब्राह्मण निकला और उसने कर्ण से वह स्वर्ण पात्र दान में मांग लिया और उसने तत्काल उसे "यह लीजिये" कहते हुये बायें हाथ से ही वह कटोरा थमा दिया। ब्राह्मण को बड़ा बुरा लगा। वह नाराज हुआ क्योंकि कोई भी दान न तो बायें हाथ से दिया ही जाता है और न ही ग्रहण किया जाता है। कर्ण ने अपना स्पष्टीकरण देते हुये कहा, "आपने जैसे ही माँगा मैंने इसे तत्काल आपको दे दिया। मैं नहीं जानता कि कटोरे को बायें से सीधे हाथ में बदलने में जो समय लगता उसमें क्या परिवर्तन घटित होता। मैं आपको दे पाता या नहीं इसलिये देने में तनिक भी विलम्ब न करने की दृष्टि से मैंने आपको बायें हाथ से दिया है, कृपया इसके लिये मुझे क्षमा करें।" जब आप में कोई भी शुभ कार्य करने का विचार आये उसे तत्काल कर डालो, कोई विलम्ब मत करो यही इस कहानी का संदेश है।

हिन्दू धर्म की आलोचना करने वाले एक आरोप लगाते हैं कि इसमें मूर्ति पूजा होती है। किन्तु पूजा मूर्ति को पत्थर समझ कर नहीं की जाती है वह तो ईश्वर का प्रतीक है, क्योंकि ईश्वर निर्गुण, निराकार रूप में नहीं देखा जा सकता है। मूर्ति चित्त की एकाग्रता के लिये बहुत सहायक होती है जैसा कि रामकृष्ण परमहंस, मीरा, त्यागराज आदि अनेकानेक भक्तों के उदाहरण से सिद्ध होता है। मीरा को भगवान का गिरिधर गोपाल के रूप में दर्शन पाकर अपार आनन्द और सन्तोष प्राप्त हुआ था। गोकुल के ग्वाल-बालों और उनके गोधन की गोवर्धन पर्वत को अपनी उंगली के ऊपर धारण कर इन्द्र के प्रकोप से रक्षा की थी, उनका वह गोवर्धनधारी गिरिधर गोपाल रूप मीरा को अति प्रिय था और वह उनकी इसी रूप में पूजा और भक्ति करती थी। प्रत्येक तान्त्रिक एक रूप विशेष की पूजा करता है और उसका ध्यान करते ही उसकी हृदय तंत्री के तार झंकृत हो उठते हैं और वह

अपार आनन्द का अनुभव करता है। त्यागराज यह जानते थे कि राम ब्रह्म हैं, सृष्टि के निर्माता हैं, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वान्तरयामी हैं, सभी रूपों में हैं; किन्तु फिर भी उन्होंने उनकी दशरथ-नन्दन और सीता-पति राम के रूप में ही पूजा की और उसी रूप में अपार आनन्द प्राप्त किया। सगुण की उपासना से निर्गुण-निराकार की भी अनुभूति कर ली।

दूसरा एक और हिन्दुओं में विश्वास है कि भोजन तैयार करके भगवान के भोग के रूप में समर्पित किया जाता है तो भगवान के द्वारा उसे स्वीकार कर लिये जाने पर वह पवित्र हो जाता है, दैविक शक्ति से परिपूर्ण हो जाता है, उसमें सभी दुष्प्रभावों को मिटाने की शक्ति आ जाती है। इससे समर्पण की भावना को बल मिलता है और यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि भगवान सदा सर्वदा उपस्थित हैं; सदा आपके साथ हैं, आप कहीं भी हों आपका मार्ग-दर्शन करते हैं। मेरे पास यह पान की डिबिया है जो सीसे की बनी है। यदि कोई मुझ से आकर कहे, "यह डिबिया तो रख लीजिये किन्तु सीसा दे दीजिये" यह तो बिल्कुल निरर्थक बात होगी क्योंकि सीसा और डिबिया उस रूप में अलग-अलग नहीं किये जा सकते, वे अविभाज्य हैं। इसी प्रकार यह कहना व्यर्थ है कि "हिन्दू तो रहो, किन्तु धर्म छोड़ दो।" ये तो हिन्दू धर्म की विशेषतायें हैं। यदि धर्म को नहीं जाना जाता है और उसका जीवन में पालन नहीं किया जाता है तो उस हिन्दू को ऐसा ही समझो जैसे कोई मृतक शरीर।

अभी कहा गया था कि निःसन्तान व्यक्ति सदा एक भय से सन्तप्त रहते हैं कि मृत्यु हो जाने पर पिंडदान और श्राद्ध आदि कर्म करवाने के लिए पुत्र नहीं होने पर मृतक की आत्मा भटकती रहती है और उन्हें बहुत काल तक नरक भुगतना पड़ता है। यह पुत्र प्राप्ति की बात केवल राज्य वंशों के लिए विशेष रूप से कही गई थी; क्योंकि जन्मगत राज्याधिकारी के अभाव में राज्य पाने के लिए बहुत झगड़े और रक्त-पात होने की सम्भावना रहती थी। धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र थे; किन्तु उनमें से एक भी जीवित नहीं बचा जो उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पिंडदान व श्राद्ध कर्म करता और उसे नरक में पड़ने से बचा सकता। शुकदेव मुनि के कोई पुत्र नहीं था, क्या आप यह कह सकते हैं कि शुकदेव को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई होगी और उन्हें नरक में वास करना पड़ा होगा ? मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि पुत्र नहीं होने के कारण कोई भी आध्यात्मिक क्षति नहीं होती है।

एक और मूर्खता की ओर देखिए ! कुछ लोग ईश्वर की शिव के रूप में पूजा करते हैं और उन्हें पशुपति नाम से पुकारते हैं जिसका अर्थ होता है पशुओं की रक्षा करने वाला, बंधन में पड़े जीवों का स्वामी। कुछ लोग भगवान की श्री कृष्ण के रूप में पूजा करते हैं और उन्हें गोपाल नाम से पुकारते हैं जिसका अर्थ होता है गो-पालन

करने वाला—बंधन में पड़े जीवों का स्वामी। किन्तु भगवान को इन दोनों रूपों में मानने वाले सम्प्रदाय एक दूसरे को स्वोकार करनें, सम्मान देने के लिए तैयार नहीं। शिव के भक्त शिव को सृष्टि का स्रष्टा, पालन कर्ता और संहारक मानते हैं और विष्णु अथवा कृष्ण को भी उनके भक्त सृष्टि का स्रष्टा, पालन कर्ता और संहारक तीनों ही मानते हैं किन्तु दोनों के अनुयायी आगे पग नहीं बढ़ाते हैं और न ही सोचते हैं कि उनमें पारस्परिक मतभेद का कोई आधार टिकता ही नहीं है। आपका व्यक्तिगत रूप में किसी एक नाम और एक रूप से लगाव हो सकता है, आप उसका पालन करें किन्तु आपको सभी नामों और सभी रूपों का सम्मान और स्वागत करना चाहिये। आपको यह स्वीकार करना चाहिये कि जिस भगवान की आप पूजा करते हैं वह ऐसा सार्वलौकिक, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है सब नामों और रूपों को धारण करने वाला वही है, सब नाम और रूप उसी के हैं।

जब रात को हल्की धुंधली चाँदनी में कोई कुत्ता किसी परछाईं को अशुभ समझकर भयभीत होता है तो रोने की आवाज में चिल्लाता है जिसे सुनकर आस-पास के कुत्ते भी उसी स्वर में भौंकते हैं। कोई इसका कारण नहीं जानता; किन्तु फिर भी श्वान-स्वभाव के वशीभूत वे सब मिलकर चीखते चिल्लाते हैं। उसी प्रकार जब भगवान के अनुग्रह की चाँदनी छिटकती है तो कुछ मनुष्य भी भयभीत हो जाते हैं और कुत्तों के समान चीखते-चिल्लाते और भौंकने लगते हैं और बहुत से उनके साथ हो जाते हैं। बेचारे क्या करें, सत्य को समझ नहीं पाते और अपनी प्रकृतिवश ऐसा करते हैं, वे भगवान के अपार यश-गौरव को सहन नहीं कर सकते, क्योंकि प्रभु अपने भक्तों पर कृपा और अनुग्रह, श्रद्धा और विश्वास, साहस और संतोष, अभय और आनन्द की वर्षा करते हैं और यह उन्हें असह्य होता है। आपका कर्त्तव्य है अपने अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते जाना, चलते रहना, सीधे लगन के साथ, गति के साथ, तत्परता के साथ, अज्ञानवश वाह्य प्रदर्शनों को देखकर भटकें या पलटें नहीं। प्रत्येक अवतार के समय में उनका विरोध करने वाले हुए हैं। आप लोगों ने द्वापर युग में हुये शिशुपाल, पौंड्रक, दन्तवक्र तथा अन्यों के बारे में अवश्य पढ़ा होगा।

अपना आत्म-सम्मान बनाये रखो जैसा कि द्रौपदी ने किया था। जिस समय द्रौपदी का भरे-राजदरबार में अपमान होने जा रहा था और वहां उसके पाँचों पति उपस्थित थे। उन्होंने कौरवों के साथ जूआ खेलते हुए दाव पर लगाकर उसे अपने राज-पाट सहित कौरवों के हाथ खो दिया था। द्रौपदी को उस समय इतना अधिक क्रोध आया हुआ था कि यदि उसने अपने उन कुपित नेत्रों से उन दुष्टों की ओर देख लिया होता जो उसे घसीट कर भरी सभा में लेकर आये थे तो वे सभी उसी समय भस्म होकर राख के ढेर बन गये होते किन्तु द्रौपदी ने उनकी ओर न देखकर धर्मराज की ओर निहारा जिन्होंने ही उसे दाव पर लगाया था और जो अब नीची गर्दन किए जमीन में ही आँखें गड़ाये बैठे थे। उनकी ओर दृष्टि डालने से वह कुछ शान्त हुई

किन्तु फिर भी वह क्रोधाग्नि में धधक रही थी और उसने कुपित होकर जो श्राप दिया वह पृथ्वी और आकाश में गूंज उठा, जिन दुष्टों ने मेरे केश पकड़े हैं और मुझे खींचकर यहाँ लाये हैं उनकी पत्नियां वैधव्य को प्राप्त हों, अपने केशों को बिखेरे घोर दुःख और शोक में विलाप करें। मैं उस समय तक अपने इन खुले-बिखरे केशों को नहीं सवारूंगी जब तक कि इन दुष्टों का, जिन्होंने मेरी यह दशा की है नाश नहीं हो जाता है।" उसने यह घोषणा अपनी वंश परम्परानुसार अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिये की थी जिसको किसी भी प्रकार कलंकित और अपमानित नहीं होने देना उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी और जो सब को ज्ञात थी। अपनी देश, जाति और धर्म की प्राचीन परम्परा को, सम्मान और यश को सदा बनाये रखो; राम कृष्ण, हरिश्चन्द्र, मीरा, त्यागराज, तुकाराम, राम कृष्ण, और नन्दवार आदि के गौरव को सदा समुन्नत बनाये रखो। आपको बहुत सचेत और सावधान रहने की आवश्यकता है क्योंकि आप से यदि कोई चूक होती है तो उसके परिणाम बड़े भयंकर हो सकते हैं। मनुष्य की दासता में मत पड़ो, भगवान की सेवा में समर्पित हो जाओ। अपनी साधना में दृढ़ता के साथ तल्लीन रहो।

गायत्री का जाप करो। यह एक सार्वलौकिक प्रार्थना है। इसे त्रिपदा गायत्री कहते हैं। इसमें ध्यान है, स्मरण है और प्रार्थना है। ॐ भूर्भुवः स्वः में ध्यान है उस अनन्त परब्रह्म परमेश्वर का जो सर्वलोकों में व्याप्त है, विश्व प्रजापति की वाक् का अनन्त विस्तार है किन्तु उसके सारे विश्व रूप का ध्यान करना हो तो वह ॐ से होता है। इसी प्रकार भू पृथ्वी लोक, भुवः अन्तरिक्ष लोक और स्वः द्युलोक के सूचक हैं। गायत्री में एक मात्र सत्य एवं ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर का मुक्ति के लिए ध्यान है। ईश्वर के अनुग्रह का स्मरण है। सविता के मार्ग अर्थात् तेज की प्राप्ति के लिए धी अर्थात् बुद्धि के लिए प्रार्थना है परमात्मा का वह तेज हम सब प्राणियों की बुद्धि को प्रेरित करे। इसलिये सब इसका लाभ उठा सकते हैं, संरक्षण पा सकते हैं। यदि गायत्री का पालन किया जाये तो कोई धर्मोन्माद, कोई घृणा, कोई स्पर्धा और द्वेष रह ही न जाये। इसके जप से सारी वासनाओं का शमन हो जाता है, विशुद्ध प्रेम विकसित होता है। तृष्णा के वृक्ष को पोषित और पल्लवित[1] मत करो। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या और द्वेष से ही असहिष्णुता[2] उत्पन्न होती है। जैसे ही क्रोध प्रकट हो तो उसे तत्काल दबा दो। क्रोध पूर्व संकेत के बिना नहीं आता है। जब क्रोध आने को होता है तो शरीर में गरमी आती है, चेहरा तमतमाता है, आंखें लाल होने लगती हैं, होठ फड़कते हैं। तो जैसे ही ये संकेत हों, एक गिलास ठंडा पानी पी लो, धीरे-धीरे। दरवाजा बन्द करके एकान्त में लेटे रहो जब तक कि उस क्रोध के आवेग की जकड़ से मुक्त न हो जाओ और स्वयं अपनी मूर्खता पर न हंसने लगो। यह कुछ

---

१ नये अंकुर निकलना २ सहनशील न होना

कठिन अवश्य लगे किन्तु अभ्यास करना चाहिये क्योंकि क्रोध के वशीभूत हो जाने पर उसके परिणाम इतने भयंकर और विनाशकारी होते हैं कि आपको इनके कारण वहुत अधिक समय तक पछताना पड़ता है।

एक व्यक्ति का दामाद सैनिक था और वह विदेश चला गया था। वहुत दिनों से उसके पत्र नहीं आ रहे थे, न उसके पास, न उसकी पुत्री के पास। यद्यपि इस ओर से उसे काफी पत्र दिये जा चुके थे। उस व्यक्ति को इतना क्रोध आया कि जव पत्र लिखने बैठा तो गुस्से में लिख डाला, "हमारे लिए तो तुम मृतक समान हो क्योंकि तुम्हें अपनी पत्नी की कोई चिन्ता नहीं है। इसलिये उसने अपने आपको विधवा मान लिया है, अपने सिर के बाल कटवा दिये हैं और विधवा के वस्त्र धारण कर लिये हैं। और उसी रूप में रहने लगी है।" जब उस सैनिक के पास पत्र पहुँचा तो उसे बड़ा दुःख हुआ और वह पश्चाताप करते हुए रोने लगा कि उसकी पत्नी विधवा हो गई है। उसे भी इस पश्चाताप में यह बोध नहीं रहा कि जब तक वह स्वयं जीवित है उसकी पत्नी विधवा कैसे हो सकती है।

अपने विवेक को त्याग कर छलाँग मार कर विवेक शून्य निर्णय पर मत पहुंचो। अपने स्वयं को अनुभव की सार्थकता के ही मत अस्वीकार करो। अपने वल पर खड़े रहो किसी अन्य के सहारे नहीं। मान या अपमान सब से अविचलित रहो। मेरा अनुसरण करो। मैं किसी से भी प्रभावित और विचलित नहीं होता, मैं तो चलता रहता हूं अपनी ही इच्छानुसार अविचलित और बिना रुके। मैं ही मेरा रक्षक हूँ और साक्षी भी। इसमें पूर्ण विश्वास रखो।

प्रशान्ति निलयम्
१३-१०-१९६७

२३. ऊपर नहीं पास है

कोई भी मानव समाज जन्म और मृत्यु, मृत्यु के पश्चात तथा विचार शब्द और कर्मों के परिणामों की सततता सम्बन्धी समस्याओं के विषय में इतनी गहराई तक नहीं पहुंचा है जितने कि हिन्दू। जो समाधान उन्होंने खोज निकाले हैं और सत्यपित किए हैं वे इतने सार्वलौकिक, इतने निर्णयात्मक, व्यक्ति और समाज के उत्थान के लिए इतने हितकर हैं कि वे अनेक शताब्दियों से विभिन्न देशों के विद्वानों, विचारकों और मनीषियों के विवेचनात्मक सूक्ष्म परीक्षणों, अध्ययनों और निर्धारणों में सफल सिद्ध हुए हैं। इस भारतीय अन्वेषण की जो सबसे बड़ी प्रशंसनीय बात है वह यह है कि इसमें तर्क कभी गौण नहीं रहा है और वह पूर्ण तर्कसंगत है। प्रत्येक पग पर साधना तर्क के आधार प्रवलित होनी चाहिये। साधना औषधि है तो परिणामों और कठिनाइयों का निपुण और सुवोध मूल्यांकन उसके पथ्य के नियम हैं। अज्ञान का रोग प्रज्ञान से कट सकता है।

किन्तु आध्यात्मिक प्रगति केवल बौद्धिक व्यायाम मात्र नहीं है यह तो है सम्यक[1] आचार, सम्यक विचार, सम्यक व्यवहार। जीवन में ये दृष्टिकोण तो स्वतः ही आ जाते हैं यदि भगवान में अटूट श्रद्धा और विश्वास हो, वह सच्चिदानन्द है, न्याय-सागर और करुणा सिन्धु है और संसार की समस्त गतिविधियों का साक्षी है। इसलिए सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ परमात्मा में विश्वास होना अच्छे जीवन की सर्वप्रथम प्राथमिक आवश्यकता है।

सद् आचरण और व्यवहार का प्रारम्भ माता और पिता से करो। उनकी सेवा करो, उन्हें प्रसन्न रखो, ऐसे रहो कि आपका स्मरण कर वे गौरव और आनन्द का अनुभव करें, उनके प्रति सदा कृतज्ञ रहो और उनका आशीर्वाद प्राप्त करो। अपने प्रेम और सेवा के दायरे को बढ़ाते चले जाओ और इतना विस्तृत और विशाल बना दो कि इसके क्षैतिज में सर्व प्राणी मात्र आ जाये क्योंकि सब ही उसी ईश्वर के रूप हैं। वेदों में भगवान् को सहस्रों सिरों वाले कहा गया है। धर्म में संकुचितता, एकदेशीयता और एकरूपता के पक्षपातियों का, जो यह कहते हैं कि 'केवल यहीं भगवान हैं अन्यत्र नहीं हैं, केवल यहीं भगवान हैं अन्यत्र नहीं हैं, अनुसरण मत करो। जो सार्वदेशीयता, सर्वव्यापकता में विश्वास करते हैं और जानते तथा कहते हैं कि 'वह भी भगवान है, भगवान कहाँ नहीं है—सर्वत्र है' उनकी बात मानने योग्य है।

---

१ पर्याप्त, काफी

मेरे सामने आप पन्द्रह हजार लोग बैठे हैं, जैसा कि वेदों में कहा गया है उसके अनुसार आप में से प्रत्येक का सिर मेरा सिर है। बिजली का प्रत्येक वल्ब उसी एक ही अन्तर विद्यु त-धारा से प्रज्ज्वलित है। किसी वल्ब को यह नहीं सोचना चाहिए कि वह अपनी इच्छा अथवा शक्ति से जलता है। उसे यह समझ लेना चाहिए वह तो एक उदाहरण मात्र है उस विद्यु त धारा का—बिजली की करेंट का जो उसे प्रकाश देने के लिए चमका रही है; इसलिए उसे किसी प्रकार का अभिमान नहीं होना चाहिए वल्कि पूर्ण विनम्रता के साथ उस विद्यु त-शक्ति के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए जिसने उसे प्रकाश फैलाने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग किया है।

यदि प्रत्येक अपनी नाक लगाने लगे हर कार्य में तो कितनी अव्यवस्था फैल जाये। यदि सब अपनी अपनी इच्छानुसार निर्णय करके उनका पालन करने लगें तो समस्त मनुष्य समाज की स्थिति बन्दरों के समान ही क्या उससे भी बुरी हो जायेगी। इसलिए मनुष्य को प्राचीन संचित ज्ञान से मार्ग-दर्शन प्राप्त करना चाहिए। अपनी अन्तर चेतना और सजग करने के लिए ऋषियों-मुनियों ने, वेद और शास्त्रों ने जो मर्यादायें निर्धारित की हैं, जो मार्ग दर्शाये हैं, जो नैतिक आचरण और अनुशासन बताये हैं उनका पालन करना चाहिये। शास्त्र तो हमारे में जो अन्तः प्रेरणायें उठती हैं, जो इच्छायें और लालसायें पैदा होती हैं उनका केवल दिशा निर्देशन करने के लिए हैं। जैसे एक बीज धरती में पड़ने के पश्चात ही अंकुरित होकर एक पौधा बनता है और एक विशाल वृक्ष। इसी प्रकार विभिन्न भाव, आवेग, संवेग मन के भीतर से ही प्रस्फुटित होते हैं। यदि मन स्थिर हो तो कोई भी आपको संकल्प से नहीं डिगा सकता, विमुख नहीं कर सकता है।

एक दिन संत तुकाराम प्रातःकाल सूर्य नमस्कार करने के लिए अपनी कुटिया से बाहर आये तो देखा कि महाराज शिवाजी ने उन्हें लिवा लाने के लिए पालकी तथा शाही साज-सामान भेजा है। तुकाराम ने शाही संदेशवाहक से कहा, "आप यह मुर्दा गाड़ी क्यों ले आये हो ? यहाँ कौन मर गया है ? मैं तो अभी चल सकता हूं। महाराज से जाकर कह दो अभी इसकी आवश्यकता नहीं हुयी है।"

आप का ईश्वर में विश्वास और भक्ति ऐसे हों कि आप खिचे चले जायें प्रभु के चरणों की ओर, भाग कर उनके चरणों में गिर जायें, फिर चाहे अन्य लोग कुछ भी कहें और कुछ भी क्यों न हो। पतंगे की ओर देखो, जैसे ही दीप की जलती लौ को देखता है अपनी अन्तः प्रेरणा से प्रेरित, बिना रुके अपने आप उस पर पहुंच जाता है, अंधकार से बचने के लिए, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' वह लौ से टकराता है और मर जाता है। मधुमक्खी की ओर निहारो; वह कमल पुष्प में मधु का पता लगा लेती है; वह उस पर जाकर बैठ जाती है और निर्मल आनन्द का पान करती है, उसे अन्य किसी बात की सुध नहीं रहती। सूर्यास्त होता है, कमल की पंखुड़ियां बन्द होती हैं

किन्तु उस ग्रानन्द रस-पान में निमग्न मधु मक्खी बेसुध हो जाती है ग्रौर उसी में बन्द हो जाती है। पूरी रात बीत जाने के बाद जब सूर्योदय होता है तो कमल की पंखुड़ियां खिलती हैं किन्तु तब तक वह मर जाती है। किन्तु पतंगे ग्रौर मधुमक्खी दोनों के ही जीवन पूर्ण सार्थक हैं। क्योंकि यही जीवन का ब्रह्म में लीन होना है।

जीव ब्रह्म में लीन होने के लिए संघर्ष करता हुग्रा विलाप करता है जैसे तिरुपति जाने वाला यात्री विलाप करता है, "हे भगवान ! आप तो सात पहाड़ियों के ऊपर हैं ग्रौर मैं नीचे मैदान में हूं।" इसलिए कहते हैं कि या तो जीव को अपने ग्रापको उस ऊंचाई तक पहुंचाना चाहिए या फिर जीव के विलाप ग्रौर प्रार्थना को सुनकर ईश्वर को जीव के पास नीचे उतर कर ग्राना चाहिए ग्रौर जीव को ग्राशीर्वाद देना चाहिए। किन्तु इस प्रकार सोचना दोषपूर्ण है, क्योंकि भगवान न तो ऊपर हैं ग्रौर न ही नीचे बल्कि ग्रापके ही पास हैं। दिखायी इसलिए नहीं देते क्योंकि हृदय निर्मल नहीं है। कर्म करो, पूर्ण कौशल ग्रौर समत्व भाव के साथ सतत रूप से ऐसे कर्मरत रहो कि सारे मल ग्रौर ग्रावरण दूर हो जायें, तन ग्रौर हृदय शुद्ध, निर्मल ग्रौर स्थिर हो जाये तो भगवान का साक्षात्कार हो जायेगा, ग्राप उन्हें पा लेंगे तथा फिर ग्रापके सारे कार्य जगत के लिए कल्याणकारी होंगे।

कुछ लोग कहते हैं कि वे ईश्वर में विश्वास तभी कर सकते हैं जब उन्हें कोई भगवान की इच्छा का ग्रनुभव करवादे। जिनका ऐसा दृष्टिकोण हो उनमें भगवान की इच्छा के प्रति भला कैसे विश्वास पैदा हो सकता है? उसमें स्वयं में ग्रनुभव करने की ग्रातुरता है ही नहीं, फिर भला उदाहरणों से कैसे विश्वास पैदा हो सकता है ? यदि किसी में विश्वास नहीं है तो हानि उसकी ही है। भगवान तो निर्लिप्त है। दो ग्रौर दो चार होते हैं फिर चाहे कोई विश्वास करे या न करे।

प्रशान्ति निलयम्
१४-१०-१९६७

२४. भीगी बाती, कैसे दीप जले

एक कार्य-कारण नियम है; प्रत्येक कर्म का एक फल होता है, चाहे आप उसे पसन्द करें अथवा न करें, आपको उसकी अपेक्षा हो अथवा न हो। शुभ कर्म का शुभ फल होता है और अशुभ कर्म का अशुभ फल। मृत्यु से पूर्व जीवन में जो कर्म करते हैं उनके ही परिणामस्वरूप जन्म होता है। यदि आप से कोई प्रश्न करे कि मृत्यु के पश्चात मनुष्य का क्या होता है तो आप अपने स्वयं की ओर इशारा करते हुए कह सकते हैं, "जो होता है सो यह है", वह फिर से जन्म लेता है। धर्म निराशा पैदा करने के लिए नहीं है वह है आशा, विश्वास, सान्त्वना, प्रोत्साहन दिलाने के लिए, जिससे कि एक क्रियाशील, उपयोगी और उपकारी जीवन जिया जा सके। भविष्य आप के हाथ में है, आने वाले कल को आज ही रूप दे सकते हैं यद्यपि कि आजके रूप का निर्धारण बीते हुए कल ने ही कर डाला था। यही कारण है कि वेदों का सबसे बड़ा भाग 'कर्मकाण्ड' ही है जिसमें दिया गया है कि विभिन्न कर्मों के द्वारा मनुष्य किस प्रकार अपने में विवेक और वैराग्य जागृत कर सकता है, मोह त्याग सकता है, अपनी इच्छाओं को श्रेय मार्ग की ओर अभिमुख कर सकता है, अन्तर की ओर मोड़ सकता है, अपने सारे कर्मों को पूजा में रूपान्तरित कर सकता है, प्रकृति की प्रत्येक शक्ति, मनुष्य के बल, उसके शरीर के प्रत्येक अंग के अधिष्ठाता देवों की कैसे पूजा कर सकता है, उन्हें प्रसन्न रख कर अपने अनुकूल कैसे रख सकता है, लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से।

शास्त्रों में विस्तृत क्रिया-पद्धतियाँ दी गयी हैं जिनसे कि आन्तरिक उत्कण्ठा और बाह्य शुद्धता सुदृढ़तापूर्वक स्थापित हो सके। आकाश के नक्षत्र मंडल में एक सप्त ऋषि मंडल होता है। जिसमें एक तारा वशिष्ठ कहलाता है; उस के पास ही एक मन्द छोटा तारा होता है जिसे अरुन्धति कहते हैं। वशिष्ठ और अरुंधती आदर्श पति-पत्नी हैं। वे आकाश में भी साथ-साथ रहते हैं; सामीप्य के एक ही कोण पर उन्हें वहां कोई अलग नहीं कर सकता है। इसीलिए नवविवाहित दम्पत्ति सदा ही उनसे आशीर्वाद मांगते हैं कि उनका भी साथ चिरस्थायी सुख, और शान्ति से पूर्ण हो दूल्हा अपनी दुल्हिन को सहिष्णुता, निश्चलता और निष्ठा के साथ पति-अनुगामिनी के आदर्श के रूप में अरुन्धती की ओर संकेत करता है।

नवविवाहित दम्पति उसे पहचानने के लिए सबसे पहले आकाश में सप्त ऋषि को पहचानते हैं, फिर उनमें वशिष्ठ तारे को और फिर उसके पश्चात उनकी दृष्टियां अरुन्धति पर पहुंचती हैं। यह स्थूल सूक्ष्म की ओर संकेत करता है, दृश्य अदृश्य की

ओर ले जाता है, शास्त्रीय क्रिया-विधि सत्य की ओर मार्ग दर्शन करती है; त्याग, वलिदान या यज्ञ से अन्तरवासी प्रकट होता है। तैत्तिरीय उपनिषद मुमुक्ष[1] विद्यार्थी को दैविक सिद्धान्त को समझाने के अपने प्रयास में, एक-एक चरण आगे बढ़ते हुए स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है।

जब वरुण के पुत्र भृगु ने अपने पिता के पास आकर प्रार्थना की, "हे, पूज्य पिता जी! आप मुझे ब्रह्म का उपदेश करें।" वरुण ने उन्हें बहुत ही सामान्य रूप से बताया, "ब्रह्म वह है जिससे सबकी उत्पत्ति होती है, जिसमें सबकी स्थिति है, जिसमें सब का लय है।" इतना कह कर उन्होंने भृगु से स्वयं ही चिन्तन और ध्यान करके अनुभव करने के लिए कहा। वरुण ने भृगु से कहा कि अन्न ब्रह्म है। इसको जान लेने के बाद जब वह पिता के पास पहुंचे तो उन्हें वरुण ने उपदेश दिया कि प्राण ब्रह्म है। उनके पिता एक-एक करके जो उपदेश देते गये उसका चिन्तन मनन, और ध्यान के द्वारा कर लेने के पश्चात भृगु पुनः-पुनः अपने पिता के पास ब्रह्मोपदेश के लिए पहुंचते और इस प्रकार उन्हें जो उपदेश दिए गए कि चक्षु, श्रोत्र, मन तथा वाक् ब्रह्म है उन सब का भृगु ने अपने अनुभव से पता लगा लिया कि विज्ञान ब्रह्म है और फिर आनन्द में ब्रह्म की अनुभूति की। इस प्रकार उपनिषद हमें सूक्ष्म, परम अद्वैत आनन्द का उपदेश देता है जो हमारी हृदय-गुहा में छिपा है। क्रमशः अन्न (पदार्थ) से आत्मा तक पहुंचने का उपदेश करते हैं उपनिषद।

जन्म लेते ही शिशु जो रुदन करता है (उसे तेलगू में 'केव्वू' कहते हैं), जब मनुष्य मरने को होता है तो उसे अपने जीवन के अनुभव के अनुसार 'हंसना' चाहिए (जिसे तेलगु में 'नव्वू' कहते हैं)। शिशु रुदन करता है क्योंकि उसे अपने नाम अपने सत्य का पता नहीं होता, मरते समय आदमी को हंसना चाहिए क्योंकि उसे उस सत्य का पता लग जाता है। उसे मरते समय प्रसन्न होना चाहिए कि उसके जीवन का कार्य पूर्ण हुआ। कोहम् ? (मैं कौन हूं ?) यह प्रश्न लेकर संसार में आया था उसका उसे उत्तर मिल गया, वह जान जाता है सोहम् (मैं वही हूं)। वह जन्म के समय अज्ञानी होता है किन्तु मरते समय ज्ञानी के रूप में मरता है।

यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक शिष्य एक गुरु के पास पहुंचा। गुरु ने उससे पूछा कि कौन-कौन से ग्रन्थों का अध्ययन किया है। उसने कहा कि मुझे सम्पूर्ण गीता कंठस्थ है और सीधे-उल्टे किसी भी प्रकार और कहीं से भी सुना सकता हूं। गरु ने उत्तर दिया, "मुझे भरोसा नहीं कि मैं तुम्हें कुछ ज्ञान दे सकूंगा, क्योंकि तुम्हारा गीता में विश्वास नहीं दिखता है जो स्वयं भगवान की वाणी है। फिर भला तुम्हें

---

१ मोक्ष की इच्छा रखने वाला

मेरे कहने में, मेरे शब्दों में क्या विश्वास होगा ?" गीता का अध्ययन करो पूर्ण विश्वास के साथ, इस संकल्प के साथ कि उसके उपदेशों को हृदयंगम करोगे और उनका जीवन में अनुपालन कर लाभ उठाओगे। अन्यथा भगवान के पवित्र पावन संदेश को उपेक्षा भाव से लेना उसका अपमान करना है। विश्वास दृढ़ हो सकता है यदि कोई कुसंगत में नहीं पड़े और पूर्ण सावधानी बरते और सत्संग करे। शंकराचार्य का कथन है, "सत् संगत् वी निस्संगत्वम्" सत्संग के द्वारा अपने में वह क्षमता—वह शक्ति प्राप्त करो कि स्वयं अकेले एकान्त में रह सको।

एक बार एक शिकारी ने एक रीछ का बच्चा पकड़ा और अपने घर लाकर बड़े लाड़-प्यार और सावधानी के साथ उसका पालन शुरू कर दिया और पालतू बना लिया। रीछ ने भी उसके प्रेम का समान भाव से उत्तर दिया और उसके साथ बड़े प्रेम के साथ कई वर्षों तक मित्र के समान रहता रहा। एक दिन वह शिकारी उस रीछ के साथ जंगल में हो कर जा रहा था। रीछ उस समय तक काफी बड़ा और तगड़ा हो गया था। रास्ते में चलते-चलते शिकारी थक गया तो एक पेड़ के नीचे दूब के मैदान में वह विश्राम करने लगा। उसे नींद आने लगी तो रीछ को यह कह कर कि मैं सोता हूँ—मुझे मत जगाना, वह सो गया। रीछ सावधानी के साथ उसकी निगरानी करता रहा। उसने देखा कि एक मक्खी बड़ी देर से भिनभिना रही थी और बार-बार उसके मालिक की नाक पर बैठ रही थी। अब रीछ अपना मोटा पंजा उसकी नाक पर हिलाता तो वह उड़ जाती किन्तु फिर वहीं आ बैठती। उसे बड़ा क्रोध आया उस मक्खी पर क्योंकि वह हाथ हिलाता-हिलाता परेशान हो गया था। उसने उस मक्खी को समाप्त करने के लिए मक्खी के नाक पर बैठते ही क्रोध के साथ भरपूर पंजा पूरी शक्ति के साथ उसकी नाक पर दे मारा। मक्खी तो क्या मरती; किन्तु उस आदमी का अवश्य काम तमाम हो गया। यह फल होता है दुष्टों, मूर्खों और असभ्य जंगलियों के साथ रहने का। वे कितने भी प्रिय हों किन्तु उनका अज्ञान तुम्हें किसी भी क्षण विनाश में डाल सकता है।

पारसियों में एक कहानी है गुरु और शिष्य की। एक शिष्य ने अपने गुरु से ऐसा उपदेश देने के लिए प्रार्थना की जिससे कि वह सरलता और शीघ्रता के साथ भगवान् तक पहुंच सके। गुरु कुछ समय तक शान्त बैठा रहा। फिर उसने उस शिष्य को एक दीपक दिया और कहा, "इस दीपक को जला लाओ।" उसने बहुत प्रयास किया किन्तु दीपक नहीं जला। उसमें तेल के स्थान पर पानी भरा था। गुरु ने उसे समझाया दीपक को खाली करो, साफ करो, उसकी बाती को निचोड़ कर बिलकुल सुखा लो, दीपक में तेल डाल कर उसमें सूखी बाती रखो और फिर जलाओ। ज्ञान के दीप को जलाने के लिए कामनाओं, इच्छाओं का जल निकाल बाहर करना होगा, गीली बाती को वैराग्य और तप से सुखाना होगा, तब ज्ञान का दीप जलेगा, अज्ञान का अंधकार दूर होकर जीवन पथ आलोकित होगा, उस ज्योतिर्मय मार्ग पर

आगे बढ़ते हुए अपने लक्ष्य पर पहुंच सकते हो। गुरु ने उस शिष्य से कहा, "इतना उपदेश तुम्हारे लिए बहुत है। तुम जा सकते हो। भगवान तुम्हारी सहायता करे।"

अपने अन्तर में उत्कंठा पैदा करो भगवान के दर्शन की, उनका सामीप्य और सान्निध्य पाने की, उनका यश-गौरव सुनने और सुनाने की, सदा ही उनके रस में लीन रहने की। इससे बढ़ कर और कोई भी आनन्द नहीं है।

प्रशान्ति निलयम्
१५-१०-१९६७

२५. आनन्द सागर की यात्रा

वेदान्त कहता है कि मनुष्य का मन जहां उसे विषय-वासनाओं और क्षुद्र कामनाओं के कारागार में डाल सकता है वहां उसे वह आध्यात्मिक ऐश्वर्य और आनन्द के असीमित विस्तार में भी पहुंचा सकता है। यदि मन इन्द्रिय सुख भोग के पीछे भागने लगता है तो वह मनुष्य को अमानवीय-स्तरों तक धकेल देता है, उसे पशुवत् बना देता है; किन्तु यदि वह उच्चतर सत्य, पूर्ण-ज्ञान, अभेदकारी अनुभव, गहन वास्तविकता, स्थायी सुख की खोज में निकलता है तो दैवत्व की ऊंचाइयों तक पहुंचता है। विज्ञान का सम्बन्ध तो केवल दृश्य, प्रेक्षणीय[1], मापनीय और गणनीय विषय-वस्तुओं तक ही सीमित रहता है; किन्तु धर्म का, साधना का, योग का क्षेत्र तो अदृश्य और अपरिमेय[2] है। इस युग को विज्ञान का युग स्वीकार कर लिया गया है। किन्तु स्थिति दयनीय है क्योंकि प्रगति और धार्मिक प्रयासों से ध्यान हट कर विमुख होता जा रहा है। मनुष्य है क्या, वह तो ईश्वर की प्रति-छाया मात्र है, जीव ब्रह्म की ही छाया है। मानवता दैवत्व की बहुत ही निकट परिधि में है किन्तु मनुष्य इस निकटता और सादृश्य को पहचान नहीं पाता, उसका मन तो उन निम्न धरातलों की ओर ही लुढ़कता जाता है जहाँ से वह बहुत परिश्रम करके और कष्ट भोग कर अनेकों योनियां पार करके अपनी वर्तमान मनुष्य की स्थिति में पहुंचा है। मनुष्य अमूल्य हीरा है, कोई काँच का टुकड़ा नहीं है, वह अपने तेज को चारों ओर विकीर्ण कर सकता है, उसकी चमक सबको चकाचौंध और आकर्षित कर सकती है यदि वह संस्कारों, साधना और तपस्या आदि की प्रक्रिया से अपने आपको काट, तराश और चमका सके। संस्कार के प्रभाव से मनुष्यत्व ईश्वरत्व में रूपान्तरित हो जाता है। यह संस्कार का ही तो प्रभाव है कि एक आधे रुपये मूल्य का लोहा घड़ी में रूपान्तरित हो कर कुछ सौ रुपयों के मूल्य का हो जाता है। मन की रहस्यमय, चमत्कारिक और रूपान्तरकारी शक्ति के उपयोग से मनुष्य वह ज्ञान प्राप्त कर सकता है, उस सत्य का साक्षात्कार कर सकता है जो संतोष प्रदायक है, ज्योतिर्मय है, अमृतमय है।

आप लोगों का अभी मुझे बम्बई नगर के विभिन्न सामाजिक सेवा संगठनों के प्रतिनिधियों के रूप में परिचय करवाया गया है और आप मुझ से कुछ संदेश प्राप्त करने के लिए आये हैं। यह भी बताया गया है कि निराशा, अवसाद और असमर्थन के फलस्वरूप आप श्रद्धा और विश्वास खोते जा रहे हैं। लोग उस समय निराश हो जाते हैं जबकि दूसरों के जीवन स्तर को सुधारने की योजनायें असफल हो जाती हैं।

---

१ भेजने योग्य २ बहुत अधिक अथवा जिसकी मात्रा न नापी जा सके

उनकी असफलता चाहे रोग का निदान ही दोषपूर्ण होने के कारण हो अथवा फिर प्रस्तावित उपचार सही न हो। इसके अतिरिक्त जिसकी सहायता करनी हो उसमें वह प्रेम पैदा कर दिया जाना चाहिए कि वह दी जाने वाली सहायता को बिना किसी संकोच के, पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से स्वीकार कर सके। सेवा, सहायता श्रेष्ठता के भाव या अभिमान से रहित हो कर दी जानी चाहिए। दूसरे के दुःख को देख कर जिस वेदना की अनुभूति करो उससे प्रेरित हो कर सेवा करो और सेवा मूल रूप से ऐसी सच्ची सेवा हो कि वह पीड़ा मिट जाये, सेवा करने वाले और उसे प्राप्त करने वाले दोनों को सान्त्वना प्राप्त हो। एक बात और है जिसे सदा स्मरण रखना चाहिए और वह है कि परिणामों की चिन्ता मत करो। अपना लक्ष्य तो एक ही ओर रखो, जितनी अधिक सेवा कर सकते हो उतनी करो, जितनी अधिक दक्षता और कुशलता के साथ कर सकते हो उसे करो, जितनी अधिक शान्ति के साथ कर सकते हो उसे करो, जितने अधिक प्रेम के साथ कर सकते हो उसे करो और फिर सब कुछ उस भगवान पर छोड़ दो जिसने आप को सेवा करने का सौभाग्य प्रदान किया।

आप सोचते हैं कि यदि लोगों को भोजन, वस्त्र और मकान दिए जा सकें तो वे बड़े प्रसन्न होंगे। यह निरा भ्रम है क्योंकि प्रसन्न होना, सुख अनुभव करना तो मन की एक विशेषता है अथवा स्थिति विशेष है। जो समृद्ध हैं, जिनके पास भोजन, वस्त्र और मकान, धन आदि सब कुछ प्रचुर मात्रा में है वे भी दुखी रहते हैं। सुख, शान्ति और सन्तोष के साथ रह सकें इसके लिए उनके मन को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता होती है। इस प्रशिक्षण के बिना, मन को जीते बिना मनुष्य असहाय रहता है फिर वह चाहे कितनी भी समृद्ध और सम्पन्न परिस्थितियों में क्यों न हो।

बहुत से ऐसे राष्ट्र हैं जो भौतिक समृद्धि के चरम शिखर पर पहुँच चुके हैं; उन्हें अपने जीवन स्तरों का अति गर्व है और बड़े अभिमान के साथ वे दूसरे गरीब राष्ट्रों को अपना जीवन-स्तर उठाने और उनके समान उन्नति करने के लिए संघर्ष करने के लिए उपदेश देते हैं। किन्तु क्या इन राष्ट्रों ने मानसिक शान्ति प्राप्त कर ली है? क्या ये राष्ट्र भय, तनाव, चिन्ता या असन्तोष से मुक्त हो गये हैं? नहीं। किन्तु मनुष्य सच्चे अर्थों में तो तभी समृद्ध कहलाता है जब इन सबसे मुक्त हो। मनुष्य मालदार दिल से होता है माल से नहीं।

गौ धन, गज धन, बाजि धन सबै रतन धन खान।
जब आवै सन्तोष धन सब धन, धूलि समान॥

आराम, सुविधा और विलासिता प्रदान करने वाले साधन और नशीले पदार्थ प्राप्त करना, जिनसे मिथ्या सुख का अनुभव होता है जीवन का लक्ष्य नहीं है। इस मार्ग का तो कोई अन्त ही नहीं है, क्योंकि इच्छाओं का कोई अन्त नहीं होता,

ये सदा बढ़ती ही जाती हैं। जब इच्छायें बढ़ती हैं तो सन्तोष फूस का गट्ठर बन जाता है, अहंकार की जड़ें गहरी पैठ जाती हैं, सत्य-असत्य का भेद कर सकने वाला विवेक क्षीण होता जाता है। हर घूंट के साथ प्यास बढ़ती जाती है, हर ग्रास के साथ भूख अधिक सताती है—तृष्णाओं का अन्त नहीं।

अपने आप से प्रश्न करो। क्या कोई ऐसी स्थिति है जिसे सुख कहा जा सके ? क्या यह किसी प्रकार के संग्रह से प्राप्त हो सकती है ? नहीं। सुख तो दो दुःखों के बीच की स्थिति है और दुःख दो सुखों के बीच की स्थिति। आपको चाहिए कि आप सुख और दुःख को एक समान समझें और अपने मन को इन दोनों ही स्थितियों से ऊपर उठकर सच्चे आनन्द के सागर में गहरा गोता लगाने के लिये प्रशिक्षित करें।

आनन्द आत्मा का स्वभाव है जो आपका अन्तरतम सत्य है। यह सत्य आपको प्रत्येक श्वास के साथ अपने अस्तित्व की स्मृति करवाता है। सोहम् ! सोहम्—'वह (अर्थात् ब्रह्म) मैं ही हूं।' हर श्वास उच्छ्वास बार-बार दोहरा रहा है कि मैं 'सीमित शरीर के पिंजड़े में बन्द कैदी नहीं हूं बल्कि उस महा सागर (परब्रह्म परमेश्वर) की एक लहर हूं। श्वास लेना 'वह' और श्वास छोड़ना 'मैं' है। जो विशाल है, महान है उसे श्वास के साथ ग्रहण करो और जो सीमित है उसे उच्छ्वास के साथ बाहर निकाल दो। इस बात की जागृत अवस्था में निगरानी रखनी चाहिए। गहरी नींद में शरीर का बोध नहीं रहता है, बाह्य संसार का भी ज्ञान नहीं रहता, जबकि जागृत अवस्था में आप अपने आप को संसार का एक अंश अनुभव करते हैं। 'सो' या 'हम' नहीं है 'वह' या 'मैं' नहीं है, सब एक है, सम्पूर्ण एक है। उस समय फिर श्वास उच्छ्वास 'सोहम्' न कह कर 'ओ३म' कहता है।

उस 'ओ३म्' में समा जाओ। वही वेदान्त है, वेद (ज्ञान) का, अन्त (चरम पराकाष्ठा) है। मनुष्य को अपना जीवन ब्रह्मचारी के रूप में प्रारम्भ करना चाहिए, उस ब्रह्म-विज्ञान के विद्यार्थी के रूप में जो ब्रह्म तत्व में सृजित समस्त सृष्टि में मूल एकात्मकता की खोज और पहचान करता है। इसके पश्चात मनुष्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है, विवाह करता है, घर और परिवार स्थापित करता है, कमाता और खर्च करता है, प्रेम करता है और प्रेम पाता है, आतिथ्य और दान के सद्गुणों का आश्रय लेता है—यह वह स्थिति है जिसमें मोह त्याग की, निर्लिप्तता की, वैराग्य की कला का प्रशिक्षण पाता है, द्वैत-द्वन्द का अनुभव करता है, इधर उधर टक्करें खाता है, संघर्ष करता है, उसकी बाहर निकली तीखी नोंक और टक्करें घिस कर गोल हो जाती हैं। मनुष्य आगे के वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता है जिसका अर्थ है जीवन के प्रतियोगिता पूर्ण संघर्षों से निवृत्त होना, जप और ध्यान के लिये एकान्त निवास करना, सांसारिक मिथ्या अभिमान के मेले से विरक्त होना और पूर्ण शान्ति के साथ

भगवद्भजन और चिन्तन-मनन में लीन रहना। इसके पश्चात मनुष्य चतुर्थ स्थिति—संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है जहां वह अपने सारे बन्धनों से मुक्त होकर आनन्द के सागर में लीन हो जाता है। जीवन की सारी नदियां उसी सागर में मिलती हैं और अन्त में सागर में समा कर स्वयं सागर ही वन जाती हैं और अपने पूर्व नाम, रूप आदि सब को खो देती हैं। मनुष्य की मुक्ति के लिए शास्त्रों ने आश्रम धर्म के पालन का यही औचित्य ठहराया है। मनुष्य माया, मोह के भ्रमजाल में घुसा है; उससे मनुष्य को वाहर निकाल लेने, उद्धार करने का ही दूसरा नाम मुक्ति है।

आश्रम-धर्म आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में रखा गया है जो मनुष्य का उसके सम्पूर्ण जीवन काल में, जन्म से मृत्यु पर्यन्त मार्ग दर्शन करता है और प्रेम के मार्ग से सत्य और परम शान्ति के साम्राज्य में पहुंचता है। जैसे जल और अग्नि के पारस्परिक सहयोग से भाप का निर्माण होता है और उसकी शक्ति से इंजन चलते हैं जो गति के साथ भारी लदी माल गाड़ियां खींचते हैं, इसी प्रकार कर्म और उपासना के सहयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है जो आपको आपके अनेकों जन्मों से संचित कर्म फलों के साथ पूर्ण सुरक्षित रूप में अन्तिम गन्तव्य-स्थल परम सत्य के साक्षात्कार तक पहुंचा सकता है।

वम्बई
६-११-१९६७

२६. अशोक वाटिका

भक्ति मन की वह स्थिति है जिसमें भक्त का भगवान से पृथक कोई अस्तित्व रह ही नहीं जाता। उसका तो श्वास उच्छ्वास[1] भगवान होता है, उसका प्रत्येक कार्य भगवान के द्वारा और भगवान के लिये ही होता है; उसके विचार भगवान के होते हैं, उसके शब्द भगवान के होते हैं, भगवान के विषय में होते हैं, भगवान के लिये होते हैं। जैसे जल के बिना मीन[2] जीवित नहीं रह सकती वह केवल जल में ही जीवित रह सकती है। इसी प्रकार मनुष्य भी केवल भगवान में ही जीवित रह सकता है —सुख और शान्ति में। ईश्वर के बिना उसका अस्तित्व नहीं है। अन्य माध्यमों में से तो उसे केवल भय, घोर द्वन्द और संघर्ष तथा असफलता ही हाथ लगती है। नन्दी (बैल) मनुष्य से निचले स्तर का प्राणी है; जब वह भगवान शंकर के वाहन के रूप में होता है तो मन्दिर में स्थापित शिव लिंग के बिलकुल सामने नन्दी भी स्थापित होता है और भगवान शिव की पूजा का कुछ भाग वह भी पाता है, शिव के साथ नन्दी भी पूजित होता है। यह तो ईश्वर के साथ स्थापित सम्बन्ध है जिसके आधार पर क्षुद्र से क्षुद्र के भी मूल्य और महत्व महान हो जाते हैं, प्रभु की कृपा ऐसी ही है। मलिन मन निर्मल, उज्ज्वल और प्रकाश से परिपूर्ण हो जाता है, सुख, शान्ति और आनन्द का अनुभव करता है क्योंकि शान्ति और आनन्द तो आत्मा की मूलभूत विशेषतायें हैं और वे हा निर्मल मन पर परिलक्षित होती हैं।

कुछ काल से मनुष्य इस सत्य को प्राप्त करने और उससे सतत चेतना पाने के लिये प्रयत्नशील नहीं दिखाई देता है। एक पशु भी जब वह दलदल में फंस जाता है तो उससे बाहर निकलने का प्रयत्न करता है और अपने आप को बचा लेता है, किन्तु मनुष्य जो गहन रसातल की ओर खींचने वाली विषय-वासनाओं और कामनाओं के दलदल में फंसा है उससे बाहर निकलने, ऊपर उठने और उससे अपने आप की रक्षा करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता दिखाई देता है। शास्त्रों और पुराणों में शिव का वर्णन हाथ में खप्पर, भिक्षा-पात्र, लिये हुये किया गया है और वह खप्पर भी खोपड़ी का है। किन्तु मनुष्य से क्या मांगते हैं ? वह तो स्वयं दाता है, वही मांगने वाले भी हैं। वह तो वही मांगते हैं जो उन्होंने दिया है—अर्थात् शुद्ध-निर्मल हृदय। उन्होंने पवित्र हृदय दिया था और उसे उसी पवित्र स्वरूप में वापस माँगते हैं। उन्होंने मनुष्य को प्रेम दिया था वही प्रेम भगवान मांगते हैं।

---

१ श्वास का बाहर निकलना २ मछली

रामायण और महाभारत में प्रेम की विशाल सम्भावनाओं का उपदेश दिया गया है तथा बताया गया है कि प्रेम को किन मर्यादा के बन्धों के बीच से प्रवाहित होना चाहिये जिससे कि मनुष्य का मन, विचार, शब्द और कर्म सभी प्रेम से सिंचित हों। धर्म ये मर्यादायें निर्धारित करता है और लक्ष्य भी। सीता ने धर्म का पालन किया उसी दृढ़ता और तीव्रता के साथ जिस प्रकार राम ने किया था; द्रौपदी ने भी उसी दृढ़ता के साथ धर्म का पालन किया था जिस प्रकार धर्मराज ने। ऐसी माताओं ने भारत देश के वीर सुपूतों को अपना स्तन-पान कराया है, इसीलिये यहाँ की भूमि सदा से ऋषियों, मुनियों की जन्म-स्थली रही है। सीता में भगवान राम के प्रति पूर्ण भक्ति रही चाहे वे कितते भी दूर रहे। द्रौपदी की सदा भगवान कृष्ण में जो पाण्डवों के रक्षक थे भक्ति वनी रही फिर वे कहीं भी रहे हों, वह सदा उनके ध्यान में मग्न रहती थी। उनकी अपने साथ सतत उपस्थिति का अनुभव करती रहती थी। पृथ्वी पर सरोवर में उगने वाला कमल सूर्य से करोड़ों मील दूर होता है; किन्तु प्रेम के प्रभात में देश का अन्तर कोई बाधा नहीं बन सकता, जैसे ही क्षितिज पर सूर्योदय होता है कि बन्द कमल खिल उठता है। रात्रि में आकाश में चंदा उगता है, धरती से लाखों मील दूर किन्तु उसे देखते ही मोद भरे मन से तालियां बजाते किलकारियों के साथ बच्चे हँसने लगते हैं और उसे देखने लगते हैं और भागते हुये कहते हैं देखो 'चंदा मामा' हँस रहा है।

जंगल में रहने वाले आदिवासी लोग चिड़ियों को मारते हैं, यह उनके लिए उचित है, जहाँ तक उनके जीवन स्तर और जीवन के निर्वाह के साधनों का सम्बन्ध है। किन्तु वन में वास करने वाला कोई संन्यासी जो अपने भीतर ईश्वरीय प्रेम के स्रोत की खोज करने के लिये तपस्या कर रहा हो यदि वह किसी चिड़िया को प्रेम नहीं करता है तो वह बहुत बड़ा दोष करता है और अपनी आध्यात्मिक प्रगति को क्षति पहुँचाता है।

इसी प्रकार प्रत्येक वृत्ति में, कर्म में, जीवन की प्रत्येक स्थिति में, चाहे स्त्री हो या पुरुष, सबके लिये जीवन की विभिन्न अवस्थाओं जैसे; शैशव, बालपन, वयस्क, युवा, प्रौढ़ और वृद्धावस्था में कुछ कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व निर्धारित होते हैं जिनके पालन करने से व्यक्ति को मार्गदर्शन प्राप्त होता है और वह उसके और समाज दोनों के लिये हितकर होता है। अब सीता पत्नी के धर्म में स्थित थी तो उसे सब में राम ही दिखाई देते थे। यद्यपि वह भयंकर डरावनी राक्षसियों से घिरी रहती थी किन्तु सीता को वे दिखाई नहीं देती थीं, इतनी लीन रहती थी राम के ध्यान में। जिस वाटिका में सीता को रावण ने लंका में ले जाकर रखा था वह परम सुन्दर और सुरम्य, इन्द्रलोक की वाटिकाओं से भी बढ़कर ही थी जिसमें कोई कितना भी शोक-संतप्त और दुखी पहुंचता उसका शोक मिट जाता था इसीलिये

उसका नाम अशोक वाटिका था किन्तु सीता ने उस वाटिका का एक भी पुष्प नहीं देखा था। सीता का मन, उसकी दृष्टि, उसके विचार सदा राम में ही लीन रहते थे। यह दशा होती है शरणागत की जो अपना सब कुछ भगवान को समर्पित कर देता है।

प्रशान्ति निलयम्
२३-११-१९६७

२७. रुक मत राही

उद्विग्न[1] और शोक संतप्त, कायरतारूपी दोष से अपहृत और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ अर्जुन, श्रीकृष्ण से अपने लिए कल्याणकारक साधन, साहस और सान्त्वना का मार्ग पूछने लगा तो श्रीकृष्ण ने उसे सब कुछ समझाते हुए अन्त में कहा 'मन्मना भव' 'तू मुझ में ही अनन्य प्रेम से नित्य निरन्तर अचल मनवाला हो। तेरी सारी अन्तः प्रेरणायें मेरे लिए हों; तेरे सारे कर्म मुझे समर्पित हों।' मन की अपनी कोई शक्ति नहीं होती है, उसे हर समय किसी वस्तु की या किसी वस्तु के सहारे की, आश्रय की, अवलम्बन की आवश्यकता होती है। इसे खुला छोड़ देने पर तो यह उस खुली डोलती हुयी गाय के समान स्वच्छन्द विचरण करता रहता है जो किसी के भी खेत में घुसकर उगते हुए पौधों को चर जाती है और विनाश करती है। यदि गाय को घर पर बांध कर रखा और खूब अच्छी तरह खिलाया-पिलाया जाये तो उसकी वह स्वच्छन्द विचरण और दूसरों का नुकसान करने की आदत स्वतः ही छूट जायेगी— वह सीधी भागती अपने घर और खूंटे पर आयेगी। यदि आपने कोई कुत्ता पाला है और उसे आप घर पर ही भर-पेट भोजन नहीं देते हैं तो वह बाजार में घूमता और कूड़ेदानों में मुंह मारता फिरेगा। अपने कुत्ते को घर पर ही पूरा भोजन दो, उसकी रुचि के अनुसार अच्छी तरह उसका पेट भरो, वह फिर बाहर नहीं जायेगा, सदा आपके घर के दरवाजे पर ही बैठा रहेगा, आपके घर की चौकसी करता रहेगा। मन को भी इसी प्रकार उसके स्वच्छन्द विचरण और विषय-वासनाओं के कुचक्र और भटकाव से विरक्त किया जा सकता है यदि आप उसे अच्छे विचारों, शिव संकल्पों, विनम्रता और प्रेम से पोषित करते रहें। फिर वह आपके श्रेष्ठ हितों की पूर्ति करेगा।

रामकृष्ण परमहंस ने एक अफीमची को उपदेश देते हुए कहा कि एक सीमित मात्रा से अधिक अफीम नहीं खानी चाहिए और उसे एक खड़िया का टुकड़ा दे दिया कि बस इस खड़िया के टुकड़े के बराबर तोल कर ही खाना अधिक या कम नहीं। इसके साथ एक शर्त और लगा दी कि खड़िया को अफीम तोलने के लिए तराजू पर रखने से पहले उससे रोज प्रणव (ॐ) लिखा जाये। अफीमची ने यह स्वीकार तो कर लिया किन्तु वह उस बात में अफीम छुड़ाने के रहस्य को उस समय समझ नहीं पाया। उसने उपदेश का पालन किया और रोज उस खड़िया के टुकड़े से स्लेट पर

---

1 अशान्त

ॐ लिखने के बाद उसके बराबर अफीम खाने लगा। खड़िया धीरे-धीरे घिसती-घिसती समाप्त हो गयी और प्रणव के लिखने और जाप करने से उसका नशे के प्रति लगाव और आदत भी समाप्त हो गयी, उसे प्रणव का आनन्द और नशा लग गया था।

मनुष्य ईश्वर तक पहुंचने की लम्बी तीर्थ यात्रा पर है। वह एक जीवन से दूसरे जीवन के द्वारा इस यात्रा के परम लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। यात्री को मार्ग में अनेकों धर्मशालाओं और विश्राम-स्थलों पर रुकना और आराम करना पड़ता है, किन्तु उसे किसी एक ही स्थान पर नहीं रुकना चाहिए वह चाहे जितना रमणीक और सुन्दर तथा सुख-सुविधा पूर्ण हो, उसे अपनी यात्रा के अन्तिम स्थल का ध्यान रखना पड़ता है और आगे बढ़ते रहना होता है। एक बार समर्थ रामदास अपनी शिष्य मंडली के साथ ग्रामीण क्षेत्र से होकर जा रहे थे। उन्हें मार्ग में गन्ने का एक खेत मिला। उनके शिष्य खेत में घुस गये और गन्ने उखाड़-उखाड़ कर चूसने और उसकी मिठास का आनन्द लेने लगे। खेत के मालिक से अपने खेत का इस प्रकार रौंदा जाना नहीं देखा गया और वह एक मोटा मजबूत गन्ना लेकर उन पर पिल पड़ा और उन्हें मारा और भगा दिया। रामदास ने उनसे कहा कि देखो अपने जीभ के स्वाद के कारण ही फंस गये और सब पिट गये। दूसरे दिन वे महाराज शिवाजी के महल में पहुंचे जहाँ अपने गुरु की सम्मान के साथ अगवानी करने के लिए शिवाजी ने शाही तैयारियाँ की हुयी थीं। शिवाजी अपने गुरु को स्नान करवाने के लिए स्वयं उपस्थित हुए, जब रामदास ने अपने वस्त्र उतारे तो उनकी पीठ पर मार के लम्बे लम्बे लाल-लाल निशान देखकर शिवाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। जब शिवाजी को सारा किस्सा बताया गया तो उन्होंने उस गन्ने के खेत के मालिक को तत्काल बुलवा लिया और जब वह कांपता हुआ उनके समक्ष उपस्थित हुआ तो शिवाजी महाराज ने अपने गुरुदेव से उसे अपनी इच्छानुसार दंड देने के लिये निवेदन किया। किन्तु समर्थ रामदास ने कहा कि उसका कोई दोष नहीं है, दोष तो उनके स्वयं के शिष्यों का था जिन्होंने उसके खेत में घुस कर उसका नुकसान किया। उसने तो अपने खेत की रक्षा के लिए अपने कर्त्तव्य का पालन किया, अतएव वह दण्ड का नहीं बल्कि पुरस्कार पाने का पात्र है। अपना आशीर्वाद देकर रामदास ने उसके खेत का लगान सदा के लिये माफ करवा दिया।

चंदन के वृक्ष को कुल्हाड़ी से काटने पर भी वह कुल्हाड़ी को अपनी सुगन्ध से सुवासित कर देता है। महान और सज्जन व्यक्तियों में भी ऐसी विशेषतायें होती हैं। उनके आदर्श का पालन करो, केवल देश की महानता, देश की सन्तानों के यश-गौरव का बखान करते हुए अपनी बात पर बल देने के लिए मेजों पर मुक्के मारकर ही मत रह जाओ। यदि मेज कूटने का केवल पाखण्ड करते हैं तो मेज ही तुम पर हंसेगी और वह तुम्हें ही उल्टा टोकेगी क्योंकि हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है।

चींटियां अपने नगर का निर्माण करती हैं, एक एक कण एकत्रित करके। इसके लिए वे श्रेष्ठ मिट्टी चुनती हैं जिसके परिणाम-स्वरूप उनका नगर उनके लिए चट्टान के किले के समान बन जाता है जहाँ वह सुरक्षित रह सकती हैं। आपको भी अपने प्रत्येक कर्म के द्वारा एक एक कण के द्वारा भविष्य में अपनी सुरक्षा के लिए धर्म का एक घर बना लेना चाहिए। ऐसी औषधि ग्रहण करो कि फिर अन्य कोई औषधि लेने की आवश्यकता ही न रहे, पूर्ण स्वस्थ हो जाओ। ऐसा कर्म करो कि फिर और आगे कर्म करने की आवश्यकता ही न रहे। लेकिन उस समय आप जो औषधि लेते हैं वह तो ऐसी है जिससे दवा खाते रहने की आदत पड़ जाती है और सदा दवा की जरूरत बनी रहती है। एक कर्म ही ऐसा होता है जिसके फल का निराकरण करने के लिए हजार कर्म करने पड़ते हैं। यह अवतार आपको इन कर्मों के कुचक्रों से सचेत करने के लिए ही हुआ है। अपने सारे ही सैंकड़ों हजारों क्षुद्र कर्म और चिन्तायें मुझे सौंप दो, प्रत्येक, एक-एक पैसा। यदि तुम्हारा समर्पण सच्चा और पूर्ण है तो उसके बदले में तुम्हें मैं अपने अनुग्रह का एक हजार का नोट दे दूंगा जो हल्का होगा, उसके रखने में कोई बोझ नहीं होगा। किन्तु एक भी दुख दर्द या चिन्ता मिथ्या, झूठी या खोटी होगी तो फिर नोट नहीं पा सकोगे।

उपनिषदों की रचना ऐसे लोगों ने नहीं की थी जो कोई नाम, यश और समृद्धि पाने के भूखे हों। न ही ये ग्रंथ आलस्य में बेकार पड़े रहने वाले मिथ्याभिमानियों की घसीट-मार रचनायें हैं। इन में तो जीवन का सत्य अनुभव सुरक्षित है। निर्जन में भटकतों को देखकर उत्पन्न हुयी करुणा तथा सुख-दुःख, हार-जीत आदि के द्वन्दों से मुक्ति के लिए मार्ग की खोज के अथक प्रयासों और चिन्तन के फलस्वरूप प्राप्त हो सकते हैं ये ग्रंथ। परम्परानुक्रम से जिन पर लोग मार्ग-दर्शन के लिए आश्रित हैं, वे अपने कर्त्तव्य को भूल गये हैं, वे कठोर पड़ गये हैं और स्वयं भ्रमित हैं। इसलिए प्रेम के संदेश को सब तक पहुंचाने की आवश्यकता है, यही ईश्वर का संदेश है। सादगी, सरलता और विनम्रता दैविक गुण हैं। मिथ्या प्रदर्शन, छल, कपट और प्रपंच, जन्त्र, मन्त्र और तन्त्र आदि जटिल रहस्यपूर्ण और जबड़ा-तोड़ साधन धर्म के सच्चे शुद्ध अर्थ और भावना के विपरीत हैं। ये तो सब ऐसी चालाकियां हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपना एकाधिकार स्थापित करना या ईश्वर को ही हीन कर देना चाहते हैं।

हरी तूम्बी पानी में डूब जाती है लेकिन सूखी होने पर वह पानी पर तैरती है। मन भी तूम्बी की तरह है। उसे ज्ञान के ताप से सुखाओ, उसके मोह का भार कम हो जाने दो उसमें भरा लोभ का जल— अंश सूख जाने दो, फिर आप नहीं डूबेंगे, सुख पूर्वक तैर सकेंगे। जीवन यात्रा में इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने के ज्ञान के बिना चलना ऐसे ही है जैसे बिना ब्रेक की मोटर गाड़ी में चलना। ऐसी दशा में विनाश अवश्यम्भावी होता है। नियन्त्रण से दक्षता बढ़ती है, किन्तु मर्यादायें, सीमाएं, रोक,

बांध आदि को हटा देने से खतरा ही खतरा है, जीवन का सारा माधुर्य जाता रहता है, सारी साहसिकता समाप्त हो जाती है। नियमों के बिना क्या कोई खेल चल सकता है—क्या आप 'हैन्ड', 'आफ साइड', 'फाउल' आदि नियमों का पालन किए बिना फुटबाल खेल सकते हैं।

पंच-तत्व—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर भगवान के ही क्या मनुष्य के भी परिधान हैं। पूर्ण विवेक विनम्रता, सरलता और आदरपूर्ण भय के साथ उनका उपयोग करो। इन पंच भूतों की अपनी-अपनी विशेषतायें, गुण धर्म हैं—आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस और पृथ्वी का गंध। यदि आप इनसे सच्चे अर्थों में सुख-सुविधा चाहते हैं, जिसके लिए इनकी चाह रहती है, तो इन शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध को भी परिमित, सरल और समन्वित रखने की आवश्यकता है। चिन्ता चिता के समान है जो मनुष्य को बिना आग के ही जला डालती है, बिना रोग के ही मार डालती है। मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक का दुरुपयोग करता है। वह अपने बीते दिनों पर पश्चाताप करता है और भविष्य की कल्पना करता है किन्तु अपने वर्तमान के कर्त्तव्य को भूल जाता है इस प्रकार मनुष्य अपनी शान्ति और आनन्द के मूल से दूर हो जाता है।

प्रशान्ति निलयम्
२२-११-१९६७

२८. सत्य और प्रेम

केरल प्रदेश के सत्य साई सेवा संगठनों के पदाधिकारियों का यह सम्मेलन इस अभिप्राय से किया गया है कि अखिल भारतीय स्तर पर जो सम्मेलन मद्रास में आयोजित किया गया था उसमें किये गये संकल्पों का किस सीमा तक पालन किया गया है इसका निर्धारण किया जा सके और मई, १९६८ में होने वाले विश्व सम्मेलन की तैयारी की जा सके। मैं आप लोगों के बीच चला आया हूं क्योंकि यह एक उपयुक्त अवसर है जब मैं आप लोगों को दर्शन का आनन्द प्रदान कर सकता हूँ। आप यह जानते हैं कि ये संगठन, सेवा समितियाँ, भजन मण्डलियाँ, सेवा संघ आदि मनुष्य में सुषुप्त पड़े दैवत्व को जाग्रत करने के लिए हैं, उसे उत्साहित करने के लिये हैं जिससे कि वह अपना एक सच्चे साधक के रूप में विकास कर सके और साधु बन सके (आसक्तियों को त्याग कर, बुद्धि, विवेक और वैराग्य अपना कर) और अंत में जीवन से मुक्त हो सके, परम ब्रह्म परमेश्वर में लीन हो सके। आप इस समय डेढ़ सौ लोग हैं। आपके अध्यक्ष ने अभी बताया कि प्रदेश में संगठनों की संख्या तो इससे भी कम है, किन्तु मैं केवल संख्या से अनुरक्त[1] नहीं होता। यह संगठन अन्य संगठनों के समान नहीं है। यह कोई नया मत, नया सम्प्रदाय स्थापित करने के लिये नहीं है, न कोई विशेष प्रकार का जप है या ध्यान की कोई विशेष प्रक्रिया है। यहां न कोई अनोखी पद्धति या रीति-रिवाज है, न कोई दीक्षा है जिससे कि 'दीक्षा प्राप्त' अनुयायी ही उसके दायरे में आते हों और 'बिना दीक्षा प्राप्त' दायरे से बाहर रहते हों। इन संगठनों का लक्ष्य है मनुष्यों का तमोगुण (आलस्य, तन्द्रा, अज्ञान, अविद्या तथा तद्जनित विकारों) और रजोगुण (काम, इच्छा, महत्वाकांक्षा, अहंकार, संवेग तथा तद्जनित विकारों) में फंसने से रोकना और मनुष्य को सतोगुण की ओर लगाना, सत्य की ओर अभिमुख करना और यह बताना कि हम सब आत्मा के रूप में एक ही हैं, जिसे हम अन्य कहते हैं वह भी हम ही हैं, दूसरे वेष या रूप में। दूसरे की सेवा तो स्वयं की ही सर्वश्रेष्ठ सेवा है।

सब एक ही शरीर के अंग हैं, उसी एक जीवन-रक्त से पोषित, उसी एक इच्छा से चालित हैं जो ईश्वरीय इच्छा है और एक ही ईश्वरीय नियम से आबद्ध हैं। इस विश्व रूप का, विराट रूप का दर्शन करो, अनुभव करो, जो सब संसार को व्याप्त किये हुये है, सर्वस्वरूप है, जिससे स्थायी आनन्द की प्राप्ति होती है।

---

१ लिप्सा रहित

इस शरीर को ही सब कुछ समझ लेने के कारण भेद बुद्धि उत्पन्न होती है, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और दंभ मनुष्य-मनुष्य में अन्तर उत्पन्न कर देते हैं जबकि वास्तव में मूल रूप में वे एक हैं। जब आप यह समझते और विश्वास करते हैं कि आप शरीर हैं तो यह अनुभव करते हैं कि आपका शरीर दूसरे शरीर से अलग हैं; आप अपने दायरे बनाने लगते हैं, अपनी प्यास, अपनी भूख, अपना आराम, अपना सुख, अपना परिवार, अपनी जाति, अपना देश इस प्रकार आप अपने प्रेम की सीमायें निर्धारित कर लेते हैं और अपने आप को सीमित क्षेत्र में आबद्ध कर लेते हैं और जो आपके घेरे से बाहर रह जाते हैं उन्हें आप अनजान प्रतिद्वन्दी शत्रु समझने लगते हैं। किन्तु सबका उद्गम[1] तो एक है, स्रोत एक ही है, एक ही आलम्बन है; ईश्वर पिता है, मानव मात्र उसकी सन्तान है। भ्रातृधर्म की अपेक्षा पितृधर्म की ओर अधिक ध्यान दो, इससे भ्रातृ-भाव, भ्रातृधर्म स्वयं ही आपके हृदय में अधिकाधिक रेखांकित होता चला जायेगा और अज्ञान के कारण जो भेद और पृथकतावाद का विष उत्पन्न हुआ है वह दूर हो जायेगा।

मनुष्य तो एक यात्री है जो एक जन्म के बाद दूसरा जन्म लेते हुए अनेकों मंजिलें पार करता हुआ काफी दूर आ गया है। अब तक जो यात्रा पूरी की है उससे यह ज्ञात हो जाता है कि अब उसे आगे और कितना चलना है। यदि वह अपना मार्ग भूल गया है और जंगल या रेगिस्तान में इधर-उधर भटक रहा है तो उसे अभी और भी अधिक लम्बी यात्रा करनी होगी। यदि वह अपने मार्ग पर ठीक-ठीक चल रहा है तो उसकी यात्रा सफलतापूर्वक शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी। अपने सह-यात्रियों के साथ सहानुभूति रखो, सही मार्ग खोजो और उस पर आगे बढ़ो, मार्ग-दर्शन करना भी सीखो और लक्ष्य तक शीघ्र और सुरक्षित पहुंचने के लिये उत्साह के साथ प्रयत्नशील रहो। यह संगठन आपके प्रेम के दायरे को विस्तृत और व्यापक बनाने के लिये हैं, आप के कार्यकलापों को सक्रिय सेवा के मार्ग पर लगाने के लिये हैं, पूजा तुल्य पावन बनाने के लिये हैं न कि व्यक्तियों को दूसरों के ऊपर अधिक अधिकार देने के लिये और न ही दूसरे सदस्यों की गतिविधियों पर नियंत्रण या अंकुश रखने के लिए हैं। सबको ही इन बातों का सर्वदा ध्यान रहना चाहिये। दुर्बल, असहाय और अचेत लोगों की सदा सहायता करो।

आपके दो ज्ञान चक्षु हैं—सत्य और अहिंसा जो आपका मार्ग-दर्शन करेंगे आपके लक्ष्य तक पहुंचायेंगे। ये दोनों आन्तरिक नभ-मंडल के सूर्य और चन्द्र हैं। यदि आप यह जानना चाहते हैं कि वाणी में सत्य का कैसे प्रयोग करें, तो गीता देखें। गीता कहती है 'अनुदवेगकरम वाक्यम्'। ऐसी वाणी बोलो जिससे दूसरों को

---

[1] मूल स्थान

कष्ट, पीड़ा, शोक या क्रोध न हो। (ऐसी वाणी बोलिये मन का आपा खोय, औरन को शीतल करे आपहुं शीतल होये।) शास्त्र भी कहता है—"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यंप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयान्देषधर्मः सनातन।" सत्य बोलो किन्तु प्रिय सत्य बोलो। यदि सत्य बोलने से किसी को कटु लगे, पीड़ा हो, क्रोध आये तो भला है शान्त रहो। इसी प्रकार प्रिय लगने वाला असत्य भी न बोलो यही सनातन धर्म है। दैनिक सामान्य जीवन में सत्य के पालन का यह नियम है। अपनी वाणी में छल, कपट, पाखण्ड, मत लाओ। कड़ुआ सत्य और मीठा झूठ दोनों ही वाणी में नहीं आयें. इसका पूरा ध्यान रखो। जैसा कि श्रुति में कहा गया है कि सत्य ही ईश्वर है। वेद कहता है "सत्ये सर्वम् प्रतिष्ठितम्" सब कुछ सत्य की सुदृढ़ नींव पर ही टिका हुआ है। इसीलिये आपके इन संगठनों में असत्य के कारण कोई दोष या विचार न आने पाये। सत्य मेरा स्वभाव है, सत्य मेरा कार्य है, सत्य मेरा संदेश है। मेरे नाम से चलने वाले संगठनों को नाम से, रूप से, कर्म से, मन से, और वचन से दृढ़ता के साथ सत्य का पालन करना चाहिये।

अहिंसा सत्य का दूसरा पक्ष है। जब एक बार सच्चे निकटतम सम्बन्ध का पता लग जाता है, मूलभूत आत्मिक एकता का ज्ञान हो जाता है तो कोई भी जानबूझ कर दूसरे को हानि या कष्ट नहीं पहुँचायगा। आपके संगठनों को चाहिये प्रेम पैदा करें, प्रेम को बढ़ायें, प्रेम को फैलायें, प्रेम की सुगन्ध और उसके माधुर्य से परिपूर्ण रहें और प्रेम का शुभ संदेश अपने स्वयं के आदर्श के द्वारा सबको प्रदान करें।

एरनाकुलम् (केरल)
२०-१२-१९६७

२६. स्वेच्छापूर्वक सेवा

आज प्रातः मैंने आप लोगों को उस मूलभूत दृष्टिकोण के सम्बन्ध में बताया था जो आपको सत्य साई संगठनों की विभिन्न गतिविधियों में आधार रूप से अपनाना चाहिए। अब मैं आप लोगों को कुछ अधिक विस्तार के साथ बताऊंगा जिससे कि आप अपने-अपने स्थानों पर समितियों, संघों और मंडलियों की ओर से विभिन्न कार्यक्रम आयोजित कर सकें।

अभी कुछ सदस्यों ने विद्यार्थियों की श्रद्धा और भक्तिहीन अपमानकारक तथा मर्यादा विहीन, अशिष्ट और असभ्यतापूर्ण गतिविधियों के सम्बन्ध में चर्चा की और कहा कि उनके क्रियाकलापों, साहसिकता और कुछ कर दिखाने के अरमानों, उत्साह और जोश को नयी दिशा और मार्ग-दर्शन देने की आवश्यकता है जिससे कि वे देश के उपयोगी नागरिक बन सकें। लेकिन विद्यार्थियों का क्या दोष है, वे तो अपने बड़ों का ही अनुकरण करते हैं। वे देखते है कि उनके अध्यापकगण, माता-पिता तथा बड़े लोग निजी स्वार्थों में फंसे सत्ता, शक्ति और धन प्राप्त करने के लिये आपस में झगड़ते हैं। इसलिये वे भी दूसरों के साथ और आपस में झगड़ा करते हैं। आवश्यकता है कि अध्यापकगण माता-पिता और अन्य बड़े लोग अपने स्वयं के आचरण ठीक करें और अपने कार्य और व्यवहार से मान्य आदर्श उपस्थित करें। अन्यथा फिर स्कूलों और कालेजों में जाना और वहां की गतिविधियाँ व्यर्थ ही नहीं बल्कि निश्चित रूप से हानिप्रद हैं।

मनुष्य में अन्तःकरण होता है जो सदा उसे सद्विचार, सद्विवेक[1] देता है और उसके हाथों को अन्याय और अत्याचार करने से रोकता है; किन्तु मनुष्य अपने उस अन्तःकरण को दबा देने में लगभग सफल हो चुका है। किन्तु यह तो भगवान की वाणी है, इसे कभी नहीं दबाया जा सकता। बच्चों को इसका ज्ञान करवाओ। केरल में एक बहुत ही अच्छी प्रथा अब भी देहाती क्षेत्रों में प्रचलित है जिसके अनुसार प्रतिदिन सायंकाल गाँव के बड़े बच्चों को एकत्रित करके एक स्थान पर, लगभग एक घंटे तक, भगवान की स्तुति में स्तोत्रो का पाठ करवाते हैं। इस प्रकार की प्रथाओं को फिर से अपनाया जाना चाहिए और उनका नियमित रूप से पालन किया जाना चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार समय का सदुपयोग होता है। इससे सुख और शान्ति प्राप्त होगी। जैसा बोओगे वैसा पाओगे—'बोये पेड़ बबूल का,

---

१ हमेशा अच्छा सोचने की शक्ति

आम कहाँ से होय'। नीम से नारंगी नहीं मिल सकती । यदि स्वार्थ, घृणा, फूट के बीज बोओगे तो वैसे ही फल प्राप्त होंगे । समितियां बच्चों के लिये कक्षाओं का आयोजन कर सकती हैं । उन्हें उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों की कहानियाँ सुनायी जायें, भजन सिखाये जायें उनसे पौराणिक शिक्षाप्रद कथाओं के आधार पर नाटक करवाये जायें । उनमें माता-पिता, अध्यापकगण तथा अपने से बड़ों के प्रति प्रेम और सम्मान जागृत किया जाये । घर का वातावरण सबसे अधिक पावन और पवित्र रखा जाना चाहिए । बच्चे घरों में यह देखें कि माता-पिता सदा प्रसन्न हैं, चिन्ताओं से मुक्त हैं जो कुछ होता है उसे सहर्ष और धैर्य के साथ सहन करते हैं और भगवान पर पूरा भरोसा और विश्वास करके अविचलित रहते हैं । रविवार के दिनों में आप बच्चों को धार्मिक ग्रंथों से कुछ अंशों का रोचक और आकर्षक ढंग से उपदेश दे सकते हैं और धार्मिक ग्रंथों के प्रति उनमें रुचि और सम्मान पैदा कर सकते हैं । उन्हें उस दिन आप दूध भी दे सकते हैं जिससे कि उन्हें क्षीरम् और सारम् (दूध और रस) दोनों ही प्राप्त हो जायें, जो उनके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिये हितकर सिद्ध होंगे ।

आप लोगों में से जो डाक्टर हैं वे गरीब लोगों की निःशुल्क सेवा कर सकते हैं, गरीब और असहाय लोगों की ओर भी उतना ही ध्यान दो जितना आप अमीर लोगों या पैसा देने वाले रोगियों की ओर देते हैं । भगवान के निमित्त यह कार्य करो, इस भावना के साथ कि आप भगवान की पूजा कर रहे हैं । आप लोगों में से जो वकील हैं वे ऐसे लोगों की सहायता कर सकते हैं जिन्हें कुशल और योग्य वकील की सहायता के अभाव में कष्ट उठाना पड़ता है । अपने इन सहानुभूति के कार्यों का प्रचार मत करो, सहज भाव से स्वेच्छापूर्वक सेवा करो, अपनी अन्तःकरण की प्रेरणा से प्रेरित होकर । उसके दिखावे की कोई आवश्यकता नहीं है । समाचार पत्रों में मोटे अक्षरों में छापे समाचारों और फोटो से कहीं अधिक श्रेयस्कर है इस प्रकार की स्वेच्छापूर्वक की गयी मूक और सहज सेवा । क्योंकि प्रचार से तो सद्कार्यों का मूल्य घट जाता है । यदि आपके आस-पास के लोग दुखी हों तो वह दुख आपको भी अनुभव होना चाहिए और उनके दुख को दूर करने के लिये आपको प्रयत्न करने चाहिएं । उनको आराम मिलने पर आप स्वयं भी प्रसन्नता अनुभव करेंगे । इसी प्रकार आपके आस-पास के लोग सुखी और प्रसन्न हों तो आपको भी प्रसन्नता होनी चाहिये; किन्तु यह कुछ अधिक कठिन कार्य है फिर भी यही सज्जनता का सच्चा प्रतीक है । आपका यह कर्त्तव्य है कि आप दूसरे लोगों को भी अपना निकट का सम्बन्धी, भाई-बन्धु समझें और अपनी योग्यताओं का उनकी सेवा में उपयोग करें जिससे उनका अधिक से अधिक लाभ हो । योग्यता या कौशल जो वह विश्वास और भरोसा है जिसे सबकी रक्षा करनी चाहिए । अपाहिज, अंग-भंग, दुर्बल, असहाय, मानसिक रूप से विक्षिप्त, अनाथ, विस्थापित शरणार्थी आदि की निःस्वार्थ सेवा वास्तव में बहुत उपयोगी और अच्छी साधना है । इसी प्रकार जेलों और अस्पतालों

में जाकर सेवा करनी चाहिए। इन स्थानों पर अक्सर जाते रहना चाहिए, उन्हें सान्त्वना और बल प्रदान करो, उनके अन्धकार भरे मनों में भक्ति का दीपक जलाओ। उनके बीच बैठकर भजन करो, उन्हें अपने घरों पर पत्र लिखने में सहायता दो, उन्हें पढ़ने के लिये पुस्तकें दो या पुस्तकें पढ़ कर सुनाओ, जिनके अपना कहने को कोई नहीं है उनके इस अभाव की पूर्ति उनके साथ अपने भ्रातृ-भावपूर्ण सम्पर्कों से पूरी कर दो। उनके अंधकारपूर्ण जीवन में आपकी मुस्कान दीप जला देगी।

महिला भक्त जिनमें उत्साह है और जिन्हें सहयोग प्राप्त है वे केवल भजन, अध्ययन, स्वाध्याय के लिये ही नहीं बल्कि अन्य महिलाओं की सेवा के लिये भी महिला संगठनों का गठन कर सकती हैं। गरीबों की झोंपड़ियों में और गंदी बस्तियों में जाकर उनमें प्रकाश और प्रसन्नता फैलाओ। असहाय लड़कियों को एकत्रित करो और उनके लिये सम्मानपूर्ण जीवन-यापन के साधन जुटाने के प्रयत्न करो। भजन, जप और ध्यान की साधना के द्वारा उनके जीवन में माधुर्य लाओ। स्त्रियों को भी यह ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार है कि वे आत्मा हैं, वे भी आत्मा के सुख और आनन्द के भंडार से शक्ति, शान्ति और आनन्द प्राप्त कर सकती हैं जिससे कि वे अपने जीवन में आये दोषों से मुक्त हो सकें, अपने मन को शुद्ध कर सकें और उन्हें प्रभु के पूर्ण गौरव का ज्ञान हो सके और वे भी अपने आपको कृतार्थ कर सकें, अपने जीवन को सार्थक बना सकें।

एरनाकुलम्
२०-१२-१९६७

३०. भगवान का नित्य सान्निध्य

आज जिन दो समारोहों के लिये आप लोगों ने मुझे यहाँ बुलाया है वे दोनों ही वड़े हितकर हैं एक शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तो दूसरा आध्यात्मिक दृष्टि से । अभी मैंने अस्पताल में बच्चों के वार्ड का शिलान्यास किया है । वह स्वास्थ्य मंत्री की देख-रेख में रहेगा । स्वास्थ्य मंत्री भी यहां उपस्थित हैं । इस स्थान पर शीघ्र ही रोग पीड़ितों के कष्टों का निवारण होगा और उन्हें यहाँ से धीरज प्राप्त हो सकेगा । जिस प्रार्थना भवन का मैं अब उद्घाटन करने जा रहा हूँ वह मानसिक सान्त्वना प्रदान करने वाला होगा, सब कार्यों की सफलता के लिये आवश्यक शक्ति और दृढ़ता तथा सर्वोपरि अनिवार्य, सृष्टि का नियंत्रण और शासन करने वाली परम शक्ति में श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने वाला होगा यह स्थान । आध्यात्मिक स्वास्थ्य तीनों गुणों—सत, रज और तम की ओर पूरा-पूरा ध्यान रखने पर ही सुरक्षित और समुन्नत रह सकता है । शारीरिक स्वास्थ्य भी शरीर के त्रि-दोषों—वात, पित्त और कफ की ओर पूरा-पूरा ध्यान रखने पर ही सुरक्षित और समुन्नत रह सकता है । त्रिदोषों को समन्वित रखे जाने की आवश्यकता रहती है, उनमें कोई असन्तुलन और विकार नहीं होने देना चाहिए । स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है अस्वस्थता के कारण मन भी चिड़चिड़ा, चिन्ताग्रस्त और व्याकुल रहता है । जीवन तुला के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही पलड़ों का, आध्यात्मिक प्रगति की कम से कम एक विशेष स्थिति की उपलब्धि होने तक, सन्तुलन बनाये रखा जाना चाहिए और इस ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए ।

मनुष्य की सेवा इन दोनों में से किसी भी तरह की जा सकती है; किन्तु स्वयं का उदाहरण और आदर्श उपस्थित करते हुये सेवा करना सर्वश्रेष्ठ है । अपने परिवार के सदस्यों या अपने पड़ोसियों के लिये किसी भी बुराई के उदाहरण मत बनो । आप स्वयं अच्छे बनो और चारों ओर अच्छाई और सज्जनता फैलाओ । इसी लिये प्राचीन काल में जब विद्यार्थी की शिक्षा पूर्ण हो जाती थी गुरु उसे अंतिम उपदेश देता था—'सत्यं वद्, धर्मं चर'—सदा सत्य बोलना और धर्म का आचरण करना । विद्याध्ययन की समाप्ति पर विद्यार्थी को समाज में प्रवेश कर कर्मरत होना पड़ता है । इसलिये उसे उस उपयुक्त अवसर पर परम हितकारी उपदेश देने की आवश्यकता होती है । बिना किसी छल, कपट और पाखंड के सत्य बोला जाना चाहिए; उसके पीछे किसी के अहित करने की कोई भावना या उद्देश्य निहित नहीं होना चाहिए ।

धर्म की सर्वोपरि श्रेष्ठता से ही कर्म नियंत्रित होने चाहिए । इसीलिये आचार्य विद्यार्थी को उपदेश करता है, 'सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् कुशलान्न

प्रमदितव्यम्' । सत्य से कभी नहीं डिगना चाहिये, धर्म से कभी नहीं चूकना चाहिए, उन्नति के साधनों से कभी नहीं चूकना चाहिए, देव-कार्य से और पितृ-कार्य से कभी नहीं चूकना चाहिए । आचार्य शिष्य को आगे उपदेश करता है कि तुम माता में देव बुद्धि करने वाले बनो, पिता को देव रूप समझने वाले बनो, आचार्य को देव रूप समझने वाले बनो, अतिथि को देवतुल्य समझने वाले होओ (मातृ देवो भव । पितृ देवो भव । आचार्य देवो भव) । ये बहुत ही महत्वपूर्ण उपदेश हैं और इनका पालन किया जाना चाहिए । आचार्य शिष्य को उपदेश करता है कि उसे क्या देना चाहिए और कैसे देना चाहिए—'जो कोई भी श्रेष्ठजन (गुरु जन), ब्राह्मण आयें, उनको तुम्हें आसन-दान आदि के द्वारा सेवा करके विश्राम देना चाहिए । आर्थिक स्थिति के अनुसार देना चाहिए, लज्जा से देना चाहिए । भय से भी देना चाहिए और (जो कुछ भी दिया जाय वह सब) विवेक पूर्वक देना चाहिए । (ये के चास्मच्छ्रेयाँ, सो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसित्व्यम् । श्रद्धयोदयम् अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देवम् । ह्रिया देवम् । मिया देवम् । संविदा देवम् ।) सेवा आप कहीं भी करें अस्पताल में या भजन मंडली में, विनम्रता और सम्मान के साथ करें; तभी उससे चित्त-शुद्धि हो सकती है, जो सेवा से प्राप्त होने वाला सबसे बड़ा फल है ।

भगवान के नाम का सतत् जाप मनुष्य की चित्त-शुद्धि के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन है, फिर वह चाहे कोई भी नाम हो जिसके द्वारा मनुष्य अपनी कल्पना के अनुसार भगवान को पहचानता और पुकारता हो । इसीलिये भक्त कवि सदा कहते आये हैं, "हे रसना, तू नाना प्रकार के व्यंजनों का रसास्वादन करने में बड़ी कुशल है । अपनी रुचि के अनुसार बड़ा रस और आनन्द लेती है । किन्तु अब मैं तुझे जो बताऊँगा, उसे सच जान । एक बार जो तूने उसका अमृतमय रसास्वादन कर लिया तो फिर तू सब स्वाद भूल जायेगी । तू भगवान के गोविन्द दामोदर, माधव नाम रट, और उसका आनन्द ले ।" (रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत । सुमरिन सुख सुकृत बढ़त अघमंडल घटत ।। बिनु श्रम कलि-कलुष जाल कटु कराल कटत । दिनकर के उदय जैसे तिमिर-तोम फटत । वि.प. तुलसीदास) । नाम स्मरण से आप भगवान का नित्य सान्निध्य[1] प्राप्त कर सकते हैं, प्रार्थना और पूजा तो नाम स्मरण के बाद आते हैं क्योंकि भगवान का यश-गौरव और उनकी कृपा तथा अनुग्रह ही तो आप को उनकी पूजा के लिये आकर्षित करते हैं । प्रारम्भ में देव और पुजारी, भगवान और भक्त, साध्य और साधक दोनों अलग-अलग और दूर-दूर रहते हैं किन्तु जैसे-जैसे साधना गहन और दृढ़ होती जाती है उनका अन्तर और भेद कम होता जाता है, आपस में एक दूसरे से मिलने लगते हैं और एक हो जाते हैं । व्यक्ति और समष्टि में कोई अन्तर नहीं है; वे तो ऐसे हैं जैसे सागर में लहर । अन्त में दोनों का

---

१ समीपता

लय पूर्ण हो जाता है। उस स्थिति में अहं भी विलीन हो जाता है। फिर व्यक्ति के सब ही चिह्न और प्रतीक जैसे नाम, रंग, रूप, जाति, सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता, अधिकार और कर्त्तव्य आदि सब लोप हो जायेंगे ।

ऐसे व्यक्तियों को जिन्होंने व्यक्तित्व (ममता) की संकुचितताओं से अपने आपको मुक्त कर लिया है, जो जीवन मुक्त हैं उनका केवल एक कार्य होता है—अहेतु की दया, प्रेम और करुणा की वर्षा करना, मानवता का कल्याण करना, मार्ग-दर्शन और उद्धार करना। यदि वे शान्त रहते हैं, अपनी आनन्द की स्वाभाविक स्थिति में रहते हैं तो भी वे संसार में आनन्द और शान्ति की वर्षा करते रहेंगे। प्रेम सब में व्याप्त है, प्रेम सबका है, प्रेम सब के लिये है, प्रेम ही सर्वस्व है।

तिरुपुनितुरा
२१-१२-१९६७

३१. सही प्रश्न करो

आज का दिन दो दृष्टियों से शुभ है क्योंकि प्रथम तो आज गुरुवार है और द्वितीय आज के ही दिन अनेकों शताब्दियों पूर्व श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश देकर भगवान ने मानव-मात्र को असत्य, भय और संशय को पार कर उसके स्वयं के आन्तरिक सत्य के प्रकाश में आगे बढ़ने की कुंजी प्रदान की थी। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने का उपदेश दिया, उसे अपना राज्य प्राप्त करने का निर्देश दिया, अत्याचार, असत्य और अन्याय के वातावरण को दूर कर सत्य, धर्म और न्याय का वातावरण स्थापित करने के लिए कहा जिससे कि लोग सत् मार्ग पर चलते हुए, धर्म का पालन करते हुये मोक्ष प्राप्त कर सकें। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह भी समझाया कि उसे अपने कर्तव्य धर्म का पालन पूर्णसमर्पण की भावना के साथ करना चाहिये, ईश्वर की इच्छानुसार, अपनी इच्छा और अनिच्छा को त्याग कर, फल की इच्छा त्याग कर। गीता का उपदेश है कि संघ की, जाति या समाज की, सेवा सर्वोच्च सेवा है और परम हितकारी साधना भी। आप अपने इस उत्तरदायित्व से बचकर नहीं भाग सकते। जिस मानव समाज में आपने जन्म लिया है, जिसके सहयोग से आप बड़े हुये हैं उसी में रहते, उसकी निःस्वार्थ सेवा करते हुये, अपने अहं को मिटाते हुये आपको अपनी रक्षा करनी चाहिये।

जब सेवा को साधना के रूप में ग्रहण करते हैं तो उससे सहन शक्ति की शिक्षा प्राप्त होती है। सेवा के परम महत्व को तो भगवान अपने ही अवतार में अपने स्वयं के उदाहरण के द्वारा प्रतिपादित करते हैं : जब धर्मराज ने अपने पिता की शान्ति के लिए नारद के उपदेशानुसार राजसूययज्ञ किया था तो उसमें भगवान श्रीकृष्ण भी पधारे थे और उन्होंने धर्मराज से कोई सेवा-कार्य सुपुर्द करने के लिए कहा। उन्होंने स्वयं ही, उस यज्ञ में सम्मिलित हजारों लोगों को जब प्रतिदिन भोजन करवाया जाता था तो उनकी झूठी पत्तलें उठाने का कार्य अपने ऊपर लिया था। उन्हें सेवा इतनी प्रिय थी इसीलिये वे उस युग के सम्राट—निर्माता के रूप में सम्मानित थे, सब के लिए विधि-विधान प्रदान करने वाले थे।

आज वैकुंठ एकादशी है। आप लोगों में से बहुत मुझ से अमृत प्राप्त करने के लिए उत्सुक होंगे। किन्तु मेरे द्वारा सृजित अमृत की कुछ बूंदें खा लेने मात्र से क्या लाभ? प्रत्येक हृदय में तीनों गुणों का संघर्ष, मंथन चलता रहता है, उस संघर्ष में जब सात्विक गुण, तामसिक और राजसिक गुणों को पराजित कर विजयी होता है तो उससे अमृत प्राप्त होता है। वह अमृत जो जीवन को मरण के भय से छुड़ाकर अमरत्व प्रदान करता है, वास्तविक अमृत है; उसकी प्राप्ति साधन से प्राप्त होती है।

ध्यान में एक शब्द का उपयोग होता है 'ऊर्ध्व दृष्टि' जिसमें दोनों नेत्रों को एक साथ ऊपर उठाकर दृष्टि को भृकुटि के बीच में सकेन्द्रित करना होता है। ऊर्ध्व का अर्थ होता है ऊपर की ओर, तथा दृष्टि का अर्थ होता है निगाह या देखना। इसके शाब्दिक अर्थों के अनुसार यह एक यौगिक क्रिया तक ही सीमित नहीं है। बल्कि इसका भावार्थ है कि मन को ऊपर उठाओ, क्षुद्र इच्छाओं में ही मत फंसा रहने दो, यह क्रम तब तक चलता रहे जब तक कि आप उच्चतम स्थिति तक न पहुंच जायें। इस प्रकार के प्रयासों से अमृत प्राप्त होता है।

अमृत का अर्थ होता है अ-मर किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि जो अमृत पान करता है वह सदा जीवित रहता है—देह नहीं त्यागता। अवतार भी अपने कार्य को पूरा करने के पश्चात् देह त्याग देते हैं। इसका अभिप्राय होता है मन को परम सत्य में स्थापित करना, उस अजर-अमर आत्मा के प्रति सचेत करना जो वह स्वयं है और अपनी चेतना को उसमें ही लीन कर देना। राक्षसों की ओर देखो। रावण और कुम्भकरण ने हजारों वर्ष तक घोर तप किये थे। भगवान स्वयं उनके समक्ष प्रकट हुये और उन्हें इच्छित वरदान दिये। किन्तु वे शुद्धता, पवित्रता, सद्‌गुण और विनम्रता नहीं प्राप्त कर सके और पूर्ववत् दुष्टता और हिंसा के पोषक राक्षस ही बने रहे। उनमें सात्विक गुण का अंश मात्र भी नहीं था। यद्यपि उन्हें भगवान का अपार अनुग्रह प्राप्त हुआ था, भगवान स्वयं उनके समक्ष प्रकट हुये, उनसे पूछा कि उन्हें क्या चाहिये और उनकी मांग के अनुसार उन्हें वर भी दिये; किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी वे अपने व्यवहार में पहले से भी अधिक दुष्ट और हिंसक राक्षस हो गये थे। उन्होंने अपने जीवन में आचरण के द्वारा भगवान का जो कुछ अनुग्रह प्राप्त किया था उसे मिथ्या कर दिया था।

इसलिये यदि अमृत दिया जाये तो उस स्तर के अनुसार रहना चाहिये, भगवान के अनुग्रह प्राप्ति के स्तर तक। मुनि वशिष्ठ ने महाराज रघु को अपनी कामधेनु गौ की देख-भाल और रक्षा का भार सौंपा। महाराज रघु सम्राट थे तो क्या हुआ, जो उनके गुरु का आदेश था उसके अनुसार वह व्यक्तिगत रूप से उसकी सुरक्षा के लिए उत्तरदायी थे अतएव वह स्वयं ही उस गौ को वन में चराने ले जाते थे। एक दिन एक सिंह आ उपस्थित हुआ और उसने अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए गौ का भक्षण करना चाहा। रघु उसकी रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को उद्यत हो गये। उन्होंने सिंह से कहा कि वह उनके गुरु की गौ छोड़ दे, और उसके स्थान पर उनका ही भक्षण कर अपनी भूख मिटा ले। यह है तरीका जिस प्रकार किसी प्रदत्त उपाधि की रक्षा की जाती है। जब आप अमृत-प्राप्तकर्ता की स्थिति में आ जाते हैं तो आपको अपनी सारी ही बुराइयों को त्याग देना चाहिये और अपनी आस्था और विश्वास को दृढ़ बनाना चाहिए और उसमें दृढ़ता के साथ स्थित रहना चाहिये। इस वैकुंठ एकादशी को अमृत सृजन

की मेरी कोई इच्छा नहीं है क्योंकि जो मार्ग मैंने बताया है उस पर कोई नहीं चलता, जो उपदेश मैं देता हूं उससे अपने आपको कोई न तो आबद्ध समझता है, न करता है और न ही उसका पालन करता है। आप लोगों का उत्साह क्षणिक होता है, मेरे उपदेशों को पालन करने के आप लोगों के संकल्प बहुत ही जल्दी भाप बनकर उड़ जाते हैं, आप लोगों में भी गर्म दूध के समान भक्ति का उफान उठता है, उफन कर एक बार बहने लगता है और शीघ्र ही ठंडा पड़ जाता है। वह अडिग और स्थिर नहीं बना रहता।

आज के दिन भगवान विष्णु के कुछ मंदिरों का एक विशेष द्वार, जिसे वैकुंठ द्वार कहते हैं सबके लिए खोल दिया जाता है जिसमें होकर लोग मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन कर सकते हैं। वैकुंठ द्वार वैकुंठ का द्वार है। इसे हम आत्म-साक्षात्कार का द्वार कह सकते हैं। वैकुंठ का द्वार केवल वही नहीं है; वह तो आपके स्वयं के ठीक सामने खुलेगा, फिर आप कहीं भी हों। तनिक खटखटाओ तो, वह अवश्य खुलेगा। विष्णु का अर्थ होता है सर्वव्यापी। इसलिये विष्णु का निवास वैकुंठ भी सब जगह होनी चाहिए। आप प्रवेश पा सकते हैं यदि आप प्रवेश के लिए सही संकेत शब्द के उच्चारण के साथ प्रवेश के लिए सच्ची लगन और उत्कंठा के साथ द्वार खट-खटावें तो। आप का हृदय ही वैकुंठ बन जायेगा यदि आप उसे स्वेच्छा, शुद्ध, पवित्र और निर्मल रखेंगे और भगवान को उसमें प्रकट होने देंगे तो। वैकुंठ का अर्थ होता है वह स्थान जहाँ 'शोक की छाया भी न हो'। जब आप के हृदय में भगवान प्रकट होते हैं तो सब पूर्ण स्वतंत्र और मुक्त हो जाता है।

गाय जो भी घास और दाना आदि खाती है उसको पौष्टिक मीठे दूध के रूप में अपने स्वामी को लौटा देती है। अपने अन्दर इस गुण का विकास करो। आप जो भी भोजन करते हैं उसे आप सुन्दर और मधुर विचारों, शब्दों और कार्यों में परिणत करो; सबके प्रति सहानुभूति और प्रेम से पूर्ण। श्रीकृष्ण बहुत छोटे थे किन्तु माता यशोदा से हठ करते थे गायें चराने, ग्वाल-बालों के साथ जाने के लिए तो माता उनसे कहती, "मेरे प्रिय लाल! तुम्हारे नन्हें-नन्हें रेशम से मुलायम तलवे हैं, इनसे तुम तीखे कांटों और पत्थरों से भरे ऊबड़-खाबड़ कठोर मार्ग पर नंगे कैसे चल सकते हो? मैं तुम्हारे लिये छोटी-छोटी अच्छी जूतियां बनवा दूंगी। जब वे तैयार होकर आ जायें तो उन्हें पहनकर तुम चले जाया करना।" किन्तु श्रीकृष्ण रुष्ट होकर बड़बड़ाते हुये उत्तर देते, "जिन गौओं की हम सेवा करते हैं क्या वे जूते पहनती हैं या उनके खुरों के नाल मढ़ते हैं? तो फिर हमें, जो उनकी सेवा करने वाले हैं, जूते क्यों पहिनने चाहियें? जब वे मार्ग के कांटे और पत्थरों की परवाह नहीं करती हैं तो हमें क्यों चिन्तित होना चाहिये?" ऐसा था श्रीकृष्ण का सबके प्रति प्रेम और सहानुभूति। तभी तो उनके गोकुल से मथुरा जाने पर गोप-गोपिकायें, गाय-बछड़े आदि सभी विलाप करते स्तब्ध रह गये थे, विरह में व्याकुल जड़ बन गये थे।

जब आप अपने हृदय को दीन-दुखियों और संकट-ग्रस्तों के प्रति सहानुभूति और प्रेम से परिपूर्ण रखेंगे तो भगवान के अनुग्रह की आप पर अवश्य वर्षा होगी। द्रौपदी ने अपनी भक्ति और सद्‌गुणों के आधार पर ही प्रभु की कृपा अर्जित की थी। सीता को भयंकर कष्ट और संकट में रहना पड़ा था किन्तु फिर भी जीवन के उच्चतम आदर्शों और मूल्यों पर अडिग रहीं। हनुमान ने सीता का लंका में जाकर पता लगाया जहाँ रावण ने उन्हें छल-कपट से ले जाकर अशोक वाटिका में एकान्त में कैद कर रखा था। हनुमान ने सीता के समक्ष प्रस्ताव रखा कि वह उन्हें अपने कंधे पर बैठाकर समुद्र पार राम के पास ले जा सकता है किन्तु सीता ने यह स्वीकार नहीं किया कि उनका रावण की कैद से हरण किया जाय क्योंकि इससे भगवान राम को रावण को उसकी दुष्टता का दंड देने और अपने स्वयं के बल-प्रताप से उन्हें मुक्त करवाने का अवसर कैसे मिलता। कितने महान विचार और शब्द थे उनके। इसमें कोई विस्मय नहीं। भगवान की कृपा से उनकी समय पर रक्षा हुई। यदि आप में आस्था और विश्वास की गहराई नहीं है, दृढ़ता और अडिगता नहीं है तो आप अनुग्रह प्राप्त नहीं कर सकते।

आज यह चेतावनी स्वयं में ही अमृत है आप लोगों के लिए, क्योंकि कठोर वचन मनुष्य को जाग्रत और खड़ा कर देते हैं। जिन अनुशासनों का पालन करने के लिए मैं कहता हूँ उनका पालन कर अनुग्रह अर्जित करने का प्रयास करो। लोभ, मोह, दंभ, घृणा और पाखण्ड से कमाना, व्यय करना, बचाना, जोड़ना और संचित करना सब त्याग दो, अपने पुराने साँसारिक तौर-तरीके छोड़ दो। अपने जीवन के क्रम को परिवर्तित और व्यवस्थित कर दो, जिससे मुझे प्रसन्नता हो। व्यर्थ की बातों और वाद-विवादों में समय नष्ट मत करो। जितना कम हो सके उतना कम बोलो, धीरे बोलो, विनम्रता से बोलो, मधुर बोलो, सबकी अपने भाई और बहिनों के समान सेवा करो, साई के प्रति भक्ति के साथ जो उनमें समाया है। सदा साधना रत रहो, अपनी मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील; सच्चे जिज्ञासुओं और साधकों के समान दृढ़ता और धैर्य के साथ एक के बाद एक कदम बढ़ाते जाओ। आध्यात्मिक प्रगति के लिए मुझ से सही प्रश्न करो न कि छोटी-छोटी, क्षुद्र और महत्वहीन बन्धन में डालने वाली इच्छाओं की पूर्ति के लिये। वह समय दूर नहीं है जब सारा संसार यहाँ एकत्रित होगा और अनेकों मील की दूरी से आप लोगों को मेरे दर्शन पाने के लिए संघर्ष करना होगा।

प्रशान्ति निलयम्
११-१-१९६८

३२. परम सम्राट्

मुनि शुकदेव सदा संसार से निर्लिप्त रहते थे; उन्हें जन्म से ही अन्तरस्थ[1] ब्रह्म का ज्ञान था और वे अपने सम्पूर्ण जीवन में इस ज्ञान की स्थिति में पूर्ण दृढ़ता के साथ सचेत रहे। उन्हें इतिहास का सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी कहा जा सकता है। फिर भी उनका कहना था कि उन्हें ईश्वर के सगुण रूप अवतार भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं से अपार आनन्द प्राप्त होता है। शुक कहते थे कि कृष्ण तत्व का विश्लेषण कर सकना उनके लिये सम्भव नहीं, उसका तो केवल अनुभव किया जा सकता है, रसपान किया जा सकता है। कोई अपने इस अनुभव को शब्दों द्वारा दूसरे से व्यक्त नहीं कर सकता। जो दैविक रस का एक बार पान कर लेता है उसे भगवान की प्रत्येक वस्तु, उनसे सम्बन्धित प्रत्येक चीज, प्रत्येक बात इतनी मधुर लगती है कि वह सम्पूर्ण जीवन भर उस आनन्द में लीन रहता है, उसका वर्णन कर सकना उसके लिये सम्भव नहीं होता। इसीलिये तो श्रीरामकृष्ण कहते थे कि मैं ईश्वर में लीन नहीं होना चाहता, मैं तो उस देव के माधुर्य के रसास्वादन से ही तृप्त और सन्तुष्ट हूँ।

यह है भक्ति का मार्ग। भगवान का यशोगान, उनकी गौरव गाथा सुनते ही आप स्वयं भगवान का यशोगान करने के लिये; उनकी सेवा करने के लिये, उनके भक्तों की सेवा करने के लिये, उनकी पूजा करने के लिये, इतने उत्सुक और उतावले हो जाते हैं कि मानो भगवान स्वयं आपके समक्ष साक्षात खड़े हैं; आप अपने सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त उनके सामीप्य और सान्निध्य में बने रहने के आनन्द के अतिरिक्त और कुछ विचारते ही नहीं। इस प्रकार पूर्ण समर्पण के साथ भक्ति करने वालों को अन्य सब कुछ सार-हीन, आकर्षणहीन, कटु और त्याज्य लगता है।

एक सुल्तान यमुना किनारे मथुरा, वृन्दावन तथा आसपास के क्षेत्र पर शासन करता था। उस समय विजयनगर का सम्राट् तीर्थ-यात्रा के लिये आया और कुछ दिनों तक वृन्दावन में ठहरा। सम्राट् भगवान श्री कृष्ण के मंदिर में जाता और पूजा-वंदना करता। सुल्तान ने सोचा कि इतना बड़ा सम्राट्, इतनी दूर से चल कर जिसके अभिनन्दन, पूजा और वन्दना के लिये आया है, वह उससे अवश्य महान होना चाहिए। इसलिये उसने देखना चाहा कि वह कौन है। एक दिन वह काफी रात बीते मंदिर के द्वार पर पहुंचा और बन्द दरवाजों के सामने आवाज लगायी, "कौन है भीतर ?" उसके उत्तर में भीतर से आवाज आई, "गोविन्द महाराज और राधा रानी" सुल्तान

---

१ हृदय में स्थित

को भरोसा हुआ कि भीतर कोई सजीव व्यक्ति है—एक परम-सम्राट और एक परम-साम्राज्ञी। उसे उस मंदिर में निवास करने वाले महान व्यक्तियों से मिलने की बड़ी उत्सुकता हुई। वह तीन दिनों तक लगातार मंदिर के द्वार पर खड़ा रहा, अपनी भूख-प्यास की उसे कोई चिन्ता नहीं रही; वह वहां से तनिक भी इधर-उधर नहीं हुआ, क्योंकि उसे भय था कि न जाने किस समय शाही दम्पति मंदिर से बाहर चले जायें और वह उनके दर्शनों से वंचित रह जाये।

उस रात को जब सारा नगर सो रहा था, गोविन्द महाराज और राधा-रानी आधी रात को मंदिर से बाहर निकले। उन्होंने सुल्तान को अपने पीछे आने का संकेत किया। उस दिन राधा और कृष्ण दोनों ने पूर्ण श्रृंगार किया हुआ था, वे सिर से पैर तक दिव्य आभूषणों से सज्जित थे। वे यमुना किनारे पहुंचे जहां हजारों गोप-गोपियाँ उनका स्वागत करने के लिये उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। चाँदनी रात में मधुर रस पगा संगीत और नृत्य होता रहा, सबके मुख स्वर्गिक आभा से दीप्त थे। प्रातः चार बजे वे मंदिर को लौटे। मंदिर के बन्द द्वारों के भीतर प्रवेश करने से पूर्व गोविन्द महाराज ने अपने हाथ के कंगन सुल्तान को सुरक्षापूर्वक रखने के लिये दे दिये। इसके पूर्व कि वह कुछ कहता, दोनों अदृश्य हो गये।

उस समय पुजारियों की मंडली सुप्रभातम् और नगर संकीर्तन के लिये वहाँ आ पहुंची; उसे वहां देख कर उन्होंने प्रश्न किया "तुम कौन हो? यहाँ क्यों खड़े हो? तुम्हारे हाथ में यह क्या है?" उसने केवल इतना ही उत्तर दिया, "गोविन्द महाराज और राधा रानी अभी-अभी मंदिर में गये हैं। मैं आधी रात से लेकर कुछ क्षण पूर्व तक उनके ही साथ था; उनके साथ यमुना तट पर गया था। उन्होंने मंदिर में प्रवेश करने से पूर्व मुझे यह कंगन सुरक्षा पूर्वक रखने के लिये दिये हैं।" उन्होंने समझा यह तो कोई चोर है इसलिये उन्होंने धागों से एक डोरी बढ़ाकर उसके हाथ बाँध दिये और उसे पीटा भी। किन्तु जब मंदिर के ताले खोलने लगे तो उन्होंने देखा कि मंदिर के ताले तो ज्यों के त्यों लगे हुये थे और भीतर की सारी वस्तुयें ज्यों की त्यों थीं सिवाय इसके कि भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के हाथों में स्वर्ण कंगन नहीं थे। पुजारियों को विश्वास हुआ कि वह कोई महान भक्त है जिसे भगवान ने अद्वितीय रूप से अपने विशेष दर्शन देने की कृपा की है। वे दौड़े हुये बाहर आये, उसके हाथ खोले और उससे उसके साथ भूल से किये गये, दुर्व्यवहार के लिये क्षमा माँगी और उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। ऐसा होता है निष्ठा-पूर्ण उत्कंठा और तड़प का पुरस्कार, भगवान में बिना किसी शंका और संदेह के पूर्ण आस्था और विश्वास से अपार आनन्द अर्जित किया जा सकता है।

प्रशान्ति निलयम्
१२-१-१९६८

३३. पंगु की लड़खड़ाहट

आज संक्रांति का दिन है जिसकी कवियों ने अपने काव्यों में बड़ी महिमा गायी है। कैसी सुहावनी है प्रकृति की शोभा; मानव मात्र को मोहित करने वाली मीठी धूप, चुटकी निपोरित[1] शीतल पवन, दिवस के आगमन पर स्वागत गान गाती— प्रमुदित[2] हो कलरव[3] करतीं चिड़ियां, रक्त और पीत वर्षा के पुष्पों से शोभित हरित घास की साड़ी धारण किये पृथ्वी देवी। मनुष्य और पशु सभी प्रसन्न हैं; उनके परिश्रम सफल हुये हैं, फसलें तैयार हैं। अब वे कुछ सप्ताह अपनी थकान दूर करने तथा नयी चेतना और स्फूर्ति प्राप्त करने के लिये आमोद-प्रमोद और खुशियाँ मनाने में बिता सकते हैं। आज उनके लिये अति आनन्द का दिवस है। बाहरी और भीतरी दोनों जगतों में हरियाली है। भीतरी जगत में इसलिये कि आज का दिन सूर्य देव की यात्रा के विशेष और महत्वपूर्ण चरण का प्रतीक है क्योंकि सूर्य हीं सविता[4] के रूप में सब की धी[5] का, बुद्धि का प्रेरक और प्रणोदक है। भीष्म ने अपनी देह त्याग के लिये आज के दिन की प्रतीक्षा की थी जिससे कि वह प्रकाशित प्रज्ञा[6] के साथ परब्रह्म परमेश्वर के साथ अपनी एकता के पूर्व उजागर बोध के साथ, मृत्यु से परे की अपनी जीवन यात्रा में सफल हो। यह उत्तरायण कहलाता है क्योंकि आज के दिन से सूर्य उत्तर की ओर बढ़ता जाता है इसीलिये इसे सूर्य का उत्तरायण, उत्तर + अयन[7] होना कहते हैं—अर्थात् सूर्य का उत्तर की ओर अयन (यात्रा) करना।

भारतवर्ष में उत्तर दिशा देवों से सम्बन्धित है इसीलिये उत्तरायण के ये छः माह आध्यात्मिक साधन, अध्ययन, स्वाध्याय और उत्सव समारोहों आदि के लिये बहुत ही शुभ समझे जाते हैं। किन्तु मैं आपको यह बता दूं कि आप लोगों को अपने आन्तरिक नभमंडल के सूर्य के सम्बन्ध में अधिक चिन्तित होना चाहिए, बाह्य आकाश मंडल के सूर्य के स्थान में। आपको बाहरी प्रकाश और शक्ति के स्थान पर आन्तरिक ज्योति, प्रकाश और शक्ति के लिये अधिक प्रयत्नशील होना चाहिए। साधना क्या है ? आन्तरिक सूर्य के प्रकाश में ईश्वर की ओर बढ़ना। ईश्वर अहंकार के बादलों से आच्छादित[8] है। इस अहंकार के तिमिर[9] को विच्छिन्न करने की साधना का अभ्यास करना चाहिए।

वृक्ष से शिक्षा ग्रहण करो। जब वृक्ष फलों से लदा होता है तो वह अभिमान से

---

१ दांत दिखाना, निर्लज्जता की मुद्रा २ प्रसन्न ३ शोर ४ सूर्य ५ बुद्धि ६ बुद्धि ७ गति, चाल आश्रम ८ घिरा हुआ ९ अन्धकार

भरकर अपना सिर ऊपर नहीं उठा लेता बल्कि वह झुक जाता है, मानों वह अपनी उपलब्धियों का तनिक भी श्रेय नहीं लेना चाहता और आपको अपने फल देने के लिये स्वयं ही झुक जाता है। पक्षियों से भी शिक्षा ग्रहण करो। जो चिड़िया के बच्चे उड़ नहीं सकते उन्हें वे स्वयं अपनी चोंच से चुगाती हैं। चिड़ियां अपनी चोंच से गाय-भैंसों की खुजली करती हैं। पक्षी आपस में एक दूसरे की सेवा और सहायता करते हैं और साथ ही उससे बदले में कोई पुरस्कार नहीं चाहते। मनुष्य को जिसमें कहीं अधिक श्रेष्ठ गुण, कौशल और विशेषताएं हैं, कितना अधिक सजग और सतर्क रहना चाहिए। सेवा अहंकार का श्रेष्ठ उपचार है, अतः अपनी सामर्थ्य के अनुसार दूसरों के दुःख-दर्द, पीड़ा और संकट दूर करने में सेवा और सहायता करो। रामायण की वह कथा सभी जानते हैं कि जब लंका पर चढ़ाई करने हेतु राम और उनकी सेना के समुद्र पार करने के लिये वानर पुल-निर्माण कर रहे थे और इस निमित्त बड़े-बड़े पत्थर और शिलायें ला रहे थे तो एक छोटी सी गिलहरी भी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार सहयोग दे रही थी। वह भाग कर जाती, रेत में लोटती, इसके कारण उसके शरीर के रोयों में जो बालू इकट्ठी हो जाती उसे वह समुद्र के किनारे ले जाकर झाड़ देती, यद्यपि कि जो कुछ बानर लाते थे उसकी तुलना में बालू के वे कुछ कण नगण्य होते थे। राम ने उस गिलहरी को देखा और उसकी पीठ पर हाथ फिराया और अपना आशीर्वाद दिया। उसके लिये वह एक महान पुरस्कार था। कहते हैं कि उसी दिन से उस गिलहरी की पीठ पर भगवान द्वारा फेरी गयी अंगुलियों के निशान के रूप में तीन धारियां प्रकट हुईं जो आज तक समस्त गिलहरी जाति की पीठ पर देखी जा सकती हैं जो उन पर भगवान के अनुग्रह का प्रतीक हैं। जहां तक संभव हो सके दूसरों की पीड़ा, दूसरों का दुःख दूर करने का प्रयत्न करो साधक के लिये वह सर्वश्रेष्ठ साधन है।

मनुष्य दो टांगों पर चलता है, 'इह' और 'पर'। यह और वह, इहलोक और परलोक, धर्म और ब्रह्म। यदि मनुष्य इसी लोक में पूर्णरूप से फँस जाता है तो वह अपने सम्पूर्ण जीवन में एक असुविधा, एक विघ्न को स्वयं ही अपना लेता है और वह पंगु बन जाता है, केवल एक पैर से ही लड़खड़ाता, फुदकता है, जो सदा कष्ट-दायक स्थिति है, वह किसी भी क्षण गिर सकता है और उसके पैर की हड्डी टूट सकती है। और ऐसा होता ही है। इस लोक के लिये सज्जनता और भलाई तथा परलोक के लिये ईश्वर भक्ति दोनों की ओर समानता के साथ ध्यान दिया जाना चाहिये, प्रत्येक चरण सोच-समझ के साथ सतर्कता और सावधानी पूर्वक रखने की आवश्यकता है। जीवन-यात्रा के लिये यह अनिवार्य है। आत्म-साक्षात्कार के क्षेत्र में पहुंचने पर आप को अपना सीधा चरण रखना होता है। उस समय तक इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी होती है। 'गो' का अर्थ होता है इन्द्रियां और गोपी का अर्थ होता है वह जिसने गो-पाल (इन्द्रियों के स्वामी) को अपना समर्पण करके अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो। कृष्ण ने एक बार अर्जुन को इसीलिये

समझाया था कि वह व्रजमंडल में अपनी वृत्तियों, आवेगों और संवेगों पर पूर्ण नियंत्रण करके ही प्रवेश कर सकता है क्योंकि वहाँ गोप और गोपियां रहते हैं।

एक दिन नारद यमुना के तट पर व्रजमंडल में पहुंचे। वहां व्याप्त परम शान्ति को देख नारद विस्मित रह गये। नदी का जल तक निःशब्द बह रहा था, एक भी लहर नहीं उठ रही थी, वृक्ष की एक भी टहनी क्या एक पत्ता तक नहीं हिल रहा था कि कहीं शान्ति भंग न हो जाये। कीट तक इस बात के लिये सचेत थे कि उन्हें पूर्ण शान्ति बनाये रखनी है अतएव वे भी शान्त पड़े थे। पक्षी भी इस प्रकार अपने पंख समेटे शान्त बैठे थे। वहाँ जंगल में प्रायः होने वाली किसी प्रकार की चिल्ल-पों, कांव-कू, गुटर-गूं या फड़-फड़, सड़-सड़, तड़-तड़ या कोई हिस-हिस, भन-भन, गुन-गुन की कोई भी ध्वनि या शब्द नहीं सुनाई पड़ रहा था। आम्र कुंज और सम्पूर्ण वनस्पति चित्र-लिखे-से थे। सब ओर पूर्ण निश्चलता और निःशब्दता के साथ परम शान्ति थी। नारद ने एक स्त्री देखी जो ध्यान में निमग्न थी और उसका तेज नभ-मंडल में तारे के समान देदीप्यमान[1] था। उसके आभा मंडल को देखकर नारद चकित रह गया। वह सोचने लगा कि क्या वह अपने जीवन में उस दिव्य अनुभव की गहराई तक कभी पहुंच सकेगा। नारद की उपस्थिति से उस स्त्री का ध्यान भंग हुआ और उसने अपनी आँखें खोलीं, दोनों में पारस्परिक अभिवादन और परिचय हुआ। स्त्री ने अपना परिचय दिया कि वह ब्रह्म-विद्या देवी है। यह जानकर नारद का विस्मय द्विगुणित हो गया। नारद ने प्रश्न किया, "आपको ध्यान करने की क्या आवश्यकता है? इतना गहन ध्यान क्यों जिससे सारी प्रकृति भी परम शान्त और ध्यान मग्न हो गई।" "मैं भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों के ध्यान का परम आनन्द प्राप्त करने की उत्कंठा रखती हूं; मैं अपने आपको उनके प्रति समर्पित गोपी समझते हुए उन्हीं के चरण कमलों का ध्यान करती हूं"। उस भक्ति, उस ध्यान से उपलब्ध होने वाला ऐसा होता है वह रस-माधुर्य जिसको प्राप्त करने के लिये स्वयं सत्य और ज्ञान की देवी भी तड़पती है।

भक्त तो एक अंग के दर्शन पाकर ही सन्तुष्ट हो जाता है। वह तो उस माधुर्य का कण-कण करके रसास्वादन करना चाहता है; वह स्वयं ही चीनी नहीं बन जाना चाहता, वह अपने आपको उस मिठास के पर्वत में लीन नहीं कर देना चाहता। आकाश के सम्पूर्ण विस्तार को कोई नहीं देख सकता। जब आप उसकी परीक्षा करते हैं तो आकाश होता ही नहीं है। प्रत्येक का आकाश उसके क्षितिज[2] तक सीमित रहता है। प्रेक्षण के हर बिन्दु से क्षितिज भिन्न होता है, किन्तु कोई उसके पार नहीं देख सकता। आकाश को सीमित करके ही उसके सौन्दर्य और अनन्तता[3]

---

१ देवताओं के समान चमकने वाला २ छोर, दृष्टि का अन्तिम किनारा
३ जिसका अन्त न हो

का आनन्द लो। यही भक्त करता है। जब तक आप किसी शरीर में आबद्ध हैं तो आप भगवान को भी किसी शरीर में आबद्ध स्वरूप में देख सकते हैं। पार्वती के पिता हिमालय ने शिव से प्रार्थना की थी, "आप अपने विश्वरूप के एक अंश मात्र का ही मुझे दर्शन करा दीजिए; मैं अनन्त को अपनी सीमित बुद्धि और इन्द्रियों से कैसे देख सकता हूं ?" मनुष्य भगवान को केवल मनुष्य रूप में ही देख सकता है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं, "पक्षियों में गरुड़ (पक्षिणाम् वैनतेयः) सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष (अश्वत्थः सर्व वृक्षाणाम्) पशुओं में मृगराज सिंह (मृगाणाम् मृगराज) मैं ही हूं।" इसका अभिप्राय है कि पक्षी भगवान को गरुड़ के रूप में देख सकते हैं जो उनमें सबसे ऊंचाई पर उड़ने वाला और सबसे अधिक तीव्र दृष्टि वाला होता है और सबसे अधिक समय तक आकाश में अपने पंख फैलाये रह सकता है। इसी प्रकार 'देवम् मनुषा रूपेण'—मनुष्य के रूप में भगवान के ही मनुष्य दर्शन कर सकता है। अभी और यहीं केवल उसके ही रूप में, भगवान की अनुभूति की जा सकती है। भगवान के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जाना चाहिये कि वह ऊपर से आते हैं या ऊपर चले जाते हैं क्योंकि वह तो सदा सर्वदा सर्वव्यापी हैं। आप सुन्दरता, सत्य, सेवा, सामर्थ्य, प्रेम या अन्य किसी भी दैविक गुण में उनकी अनुभूति कर सकते हैं।

आज के पावन दिवस से प्रत्येक घड़ी भगवान के यश-गौरव का ध्यान करने में बिताने का सत् संकल्प करो; अपना कर्तव्य समझ कर ऐसा करो क्योंकि इस प्रकार के ध्यान करने से जो उत्थान होगा उससे आप अनजाने ही इतने प्रोत्साहित होंगे कि उत्साह और लगन के साथ उसे जारी रखेंगे और उस पर आगे बढ़ते रहेंगे। जैसा कि पौराणिक कथा हैं। सूर्य ईश्वर की ओर बढ़ रहा है। वह तो डाकिये की तरह है यदि आप सही पता लिखा पत्र उचित टिकिट और मोहर लगाकर उसे दे देंगे तो वह उसको भगवान तक पहुंचा देगा और उनका अनुग्रह आप तक पहुंचा देगा। संकल्प के लिफाफे में अपने हृदय की तड़प का संदेश रख दो और उसे प्रतिदिन सूर्य के हस्तगत कर दो उसे सौंप दो। अपने संदेश में घर, पुत्र, द्रव्य, स्वर्ण की मांग मत करो। मांगो वह धी-बुद्धि जिससे आप भगवान के यश-गौरव की अनुभूति कर सकें। उनकी भक्ति, उनकी सेवा, दृढ़ता प्राप्त करने का आशीर्वाद मांगो।

प्रशान्ति निलयम्
१३-१-१९६८

३४. आंखों की पट्टी खुली

गत दस दिनों से डाक्टर मोदी प्रशान्ति निलयम् में नेत्र पीड़ा से ग्रस्त लोगों की सेवा में लगे हुये थे; ऐसी सेवा वास्तव में पवित्र होती है और वह प्रशंसनीय है। जहाँ तक बाह्य संसार से सम्पर्क का सम्बन्ध है, नेत्र उसका मूल स्रोत हैं इस शरीर में। कहा गया है कि नेत्र सूत्र है। अनेक वर्षों से डा० मोदी पूर्ण दक्षता, कुशलता, प्रसन्नता और निःस्वार्थ भाव से सेवा करते चले आ रहे हैं, उसने उन्हें एक सच्चा योगी बना दिया है और उनकी उस रूप में स्थिति अपने आपको योगी कहलाने वाले लोगों से कहीं ऊंची है। इस प्रकार के तप, त्याग और वैराग्य से ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होता है। इतना सतत परिश्रम करके भी डा० मोदी प्रसन्न रहते हैं और जो उनके पास अपने दुःख-दर्द लेकर आते हैं उन्हें भी वह प्रसन्न करते हैं। वह स्वयं इस कथन का सजीव प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि सच्चे अर्थों में सेवा करने वाला और सेवा प्राप्त करने वाला दोनों ही आनन्द के भागी होते हैं। सेवा से अहंकार मिटता है, अपार आनन्द प्राप्त होता है। इनका जीवन अन्य डाक्टरों तथा दूसरे लोगों के लिये प्रेरणादायक है कि वे भी अपनी योग्यताओं, प्रतिभाओं और कौशल का उपयुक्त लोगों की सेवा में उपयोग करें। अपने कौशल का इस प्रकार सेवा में उपयोग करने से वह पवित्र हो जाता है, अपने हाथों का, बीमारों की सेवा में उपयोग करके आप अपने हाथों को पवित्र बना लेते हैं, उनके अस्तित्व को सार्थक बनाते हैं। आप अपनी इन्द्रियों को इस प्रकार के सेवा कार्यों में लगावें, वे आपके लिये बहुत ही उपयोगी और हितकर उपकरण बन जायेंगी।

ये नेत्र रोगी! अब इनकी आँखों की पट्टियाँ खुल गयी हैं। इन्हें नयी नेत्र ज्योति प्राप्त हुई है, ये नये वस्त्र धारण किये हुये प्रसन्न और उत्साहित यहाँ बैठे हैं। कितना चित्ताकर्षक है यह दृश्य! यह वह आनन्द है जो व्यक्तित्व के आकर्षण को बढ़ाता है। आपरेशन के बाद आप लोगों को नयी नेत्र ज्योति प्राप्त हुई है, इसका आपको अच्छे उद्देश्यों के लिये उपयोग करना चाहिए। अब आप बिना किसी अन्य की सहायता के इधर-उधर घूम सकते हैं और इस प्रकार उपयोगी कार्य करने के लिये मुक्त हैं चाहे वह घर में हो या खेत में। अब आप हंसते-खेलते बालकों को, सुन्दर पुष्पों को, आकाश में तारों और चांद को देख सकते हैं और आप उनसे प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं; वे आपको याद दिलाते हैं ईश्वर के सौन्दर्य की, जिसको देखकर आप उसके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर सकते हैं। आप अब लोगों को प्रसन्न, समृद्ध, संतुष्ट देख सकते हैं। दूसरों को सुखी देख कभी ईर्ष्या मत करो। यदि किसी की प्रसन्नता किसी के सुख-संतोष को देखकर ईर्ष्या होती हो तो फिर ऐसी नेत्र ज्योति प्राप्त करने का कोई अर्थ नहीं। सबको मित्रता और प्रसन्नता के भाव से देखो।

दूसरों में दोष देखने का प्रयत्न मत करो, न किसी की प्रसन्नता, सुख-संतोष में बाधा डालो और न अपना सुख-संतोष खोओ।

यह फूलों की माला कितनी सुन्दर है क्योंकि भांति-भांति के रंग-बिरंगे पुष्प इसमें सजाये गये हैं। इसी प्रकार यह 'नेत्र चिकित्सा शिविर' इतना सफल रहा है क्योंकि विभिन्न लोगों ने—सहायक डाक्टरों, नर्सों, कम्पाउंडरों आदि ने एक ओर और स्वयंसेवकों तथा स्वयंसेविकाओं, रोगियों के रिश्तेदारों और साथियों तथा भोजन बनाने वाले आदि लोगों ने दूसरी ओर तथा बीच में मेरा आशीर्वाद प्राप्त डाक्टर मोदी सेवा के एक सूत्र में अपने आप को पिरोकर सेवा-रत थे। प्रत्येक ने अपने कर्त्तव्य को पूर्ण तत्परता, कुशलता और प्रमाणिकता से पूर्ण किया। स्वयंसेवकों ने यह अनुभव किया कि ऐसे रोगियों की, जिन्हें उनके जीवन की क्रांतिक घड़ी में सहायता की वास्तव में नितान्त आवश्यकता है, सेवा करने का अवसर प्राप्त होना एक अद्वितीय सौभाग्य का अवसर था। यह नारायण की सेवा है, ऐसी सेवा मानव की सेवा न होकर माधव की सेवा होती है। आप लोगों को भी दूसरों की सहायता करनी चाहिए जिससे कि जो सेवा आपने प्राप्त की है उसका ऋण आप चुका सकें। जब किसी को दुःख या पीड़ा में देखो तो केवल देखते मत रहो, जहाँ तक सम्भव हो सके उनकी पीड़ा को दूर करने, कम करने का प्रयत्न करो, संकटग्रस्त को सांत्वना दिलाओ।

एक आदमी जो पैसा कमाने के लिये कार्य करता है, प्रतिदिन या प्रतिघंटे के हिसाब से अपने पारिश्रमिक का हिसाब लगाकर अपनी मजदूरी वसूल कर लेता है और उसका हिसाब चुकता हो जाता है। किन्तु जो भगवान की पूजा का अंग समझ कर सेवा करता है उसे इस बात से ही बड़ी प्रसन्नता होती है कि उसे सेवा का अवसर प्राप्त हुआ और जितनी उसके लिये सम्भव हो सकती है उतनी सेवा करके उसे प्रसन्नता होती है, वह उससे अधिकतम आनन्द प्राप्त करता है। जैसा कि अभी डाक्टर मोदी ने बताया कि वह यहाँ आकर बहुत प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि उन्होंने प्रशान्ति निलयम् में वह वातावरण पाया जिसमें किया गया कार्य भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के लिये पूजा के स्वरूप में ही होता है। जिन ४५० रोगियों ने इस शिविर में भाग लिया वे भी बड़े प्रसन्न थे, क्योंकि उनमें से प्रत्येक की आवश्यकता पूरे उत्साह और तत्परता के साथ पूर्ण की गयी; मेरे प्रेम से प्रेरित यहाँ के निवासियों और स्वयंसेवकगणों ने पूर्ण विचार और योजना-बद्ध रूप में अपना कार्य किया। नवजात शिशु जब जन्म लेने के बाद प्रथम बार नेत्र खोलता है और वह सर्वप्रथम अपनी मां की ओर देखता है तो यह बहुत ही शुभ माना जाता है। आप लोग कितने सौभाग्यशाली हैं कि जब डा० मोदी तथा उनके सहयोगियों ने आपकी आंखों की पट्टी खोली तो सर्वप्रथम आप लोगों ने मेरे दर्शन किये। भक्त सूरदास गाया करते थे, "मैं अपने भाग्य पर क्यों विलाप करूं? क्या जिनके आँखें हैं उन सबने आपके दर्शन

किये हैं ? उनकी दृष्टियां तो क्षुद्र और घृणित दृश्यों पर पड़ती हैं और इस प्रकार वे उसे नष्ट करते हैं। किन्तु मैं अंधा हूँ तो क्या मैं भगवान के दर्शन करता हूं और उन्हें अपने हृदय में संजोकर रखता हूं।"

आप जब घर पहुंचें तो जो चित्र अभी आप को दिया गया है, उसे अपने घर के भीतर दीवार पर लगा दें और कम से कम दिन में दो बार, प्रातः और सायं उसके समक्ष नमन करें; इससे आपको इन दस दिनों की याद आयेगी जब आप यहां रहे हैं, आपरेशन के पश्चात जब आप बिस्तरों में पड़े भजन सुनते थे, जिस सेवा और प्रेम भाव से आपके हाथ, मुंह धुलाये जाते थे, बालों में कंघी की जाती थी, आप लोगों को भोजन करवाया जाता था। मैं समझता हूं कि यहाँ से जाते हुये आप यह अनुभव करेंगे कि आप अपने माता-पिता के घर से जा रहे हैं और जहां जा रहे है वहाँ तो आप को अपने काम-धन्धे के कारण जाना पड़ रहा है। आप सब प्रशान्ति निलयम् के ही बच्चे हैं, इसी स्थान के हैं, यहाँ आने से पूर्व भी आप यहाँ के थे और यहां से चले जाने के पश्चात भी आप यहां के ही रहेंगे।

आप लोगों ने देखा होगा कि डाक्टर मोदी ने इतने अधिक आपरेशन कितनी जल्दी और कितनी सफलता के साथ पूर्ण किये; यह सब हाथ में लिये कार्य को एकाग्र चित्त, एक बिन्दु पर ध्यान मग्न होकर कार्य करने से ही सम्भव होता है। यह एकाग्रता सीखो। चित्त की एकाग्रता से अन्तर के चक्षु भी खुल सकते हैं; पूर्ण और स्पष्ट दिव्य दृष्टि प्राप्त हो सकती है जिससे आप भगवान के दर्शन कर सकते हैं। भगवान के नाम का सतत् स्मरण और जाप करते रहने से और उस नाम के अनुसार प्रभु के रूप, उनके यश-गौरव का सदा ध्यान तथा चिन्तन-मनन करते रहने से अन्तर चक्षु पर पड़े आवरण, जाले या मोतिया बिन्दु कट जाते हैं और मनुष्य अपने हृदय की अन्तरतम गुहा में स्थित भगवान के दर्शन कर सकता है। अतएव इसी क्षण से इस साधना को अपनाने का संकल्प करो और उसका सदा पालन करते रहो।

प्रशान्ति निलयम्
१४-२-१९६८

३५. आंख की पुतली और पलकें

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि सामाजिक सेवा कार्यों में उत्साह दिखाने वाले, विनय और सम्मानपूर्ण आचरण रखने वाले, आदर्श, अनुशासन और नियमों का पालन करने वाले तथा अध्ययन में विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को आज पुरस्कृत किया गया है। इस प्रकार के पुरस्कार प्राप्त करने की योग्यता अर्जित करने से उपयोगी, दक्ष और कुशल जीवन के निर्माण के लिये अच्छी आधारशिला बनती है। शिक्षा का अभिप्राय मनुष्यों और पदार्थों के विषय में बोझिल और कष्ट-कर सूचनायें उपलब्ध कर लेना मात्र ही नहीं है, बल्कि उसका लक्ष्य है, अपने ही भीतर उस अमर आत्मा की अनुभूति करना जो सुख, शान्ति और साहस का स्रोत है। आप यहां वेदों, शास्त्रों और पुराणों का अध्ययन करते हैं, उनकी दी गयी शिक्षा के अनुसार आप लोगों को योग और ध्यान भी सिखाये जाते हैं। प्रशान्ति निलयम् के इस वातावरण में अपना विकास करना, सादा और उच्च जीवन की शिक्षा और प्रशिक्षण देने वाले मूलभूत विषयों का अध्ययन करना स्वयं में आप लोगों के लिये परम सौभाग्य की बात है। इस देश में प्रत्येक परिवार में लगभग पांच या छः बच्चे हैं। उन करोड़ों बच्चों में से केवल कुछ बालकों को यह अनुग्रह प्राप्त करने का सौभाग्य हुआ है। यह एक ऐसे सौभाग्य की बात है जिसके लिये आप सचमुच बधाई के पात्र हैं।

जीवन वास्तव में सद्गुणों के संचय और उनकी सुरक्षा के लिये है न कि धन का संचय करने के लिये। महान नैतिक चरित्र वाले आदर्श पुरुषों की जीवन-गाथायें सुनो, पढ़ो और उन पर चिन्तन-मनन और विचार करो जिससे कि तुम्हारे हृदय-पटलों पर उनके आदर्शों की ऐसी छाप पड़े कि आप भी महान बन सकें। आजकल व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के जीवन के आर्थिक, राजनैतिक, और यहाँ तक कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी सदाचार दुर्लभ होता जा रहा है। इसी प्रकार अनुशासन भी, जो सदाचार के विकास की आधार भूमि है, क्षीण होता चला जा रहा है। जब तक कि प्रत्येक का, उसकी आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्थिति का बिना कोई विचार किए, सम्मान नहीं होता, जीवन में सुख और शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। यह सब के प्रति प्रेम और सम्मान की भावना सब के हृदयों में तब उजागर हो सकती है जब वे इस सत्य को भली प्रकार समझ जायें कि जो आत्मा आप में है वह ही दूसरे में है, वह एक ही नाना नाम-रूपों में भासित है। अपनी आत्मा को ही दूसरों में देखो। यह अनुभव करो कि उन्हें भी आप की तरह भूख-प्यास लगती है, आपके समान ही उनमें भी इच्छायें-आकांक्षायें उठती हैं।

अपने में सब के प्रति प्रेम और सहानुभूति का विकास करो, अपने आपको दूसरों के लिए उपयोगी और सेवा के योग्य बनाने की तड़प रखो।

प्रशान्ति निलयम् में संसार के विभिन्न भागों से, अनेकों स्तरों के लोग आते हैं, वे सभी प्रकार की समस्यायें लेकर आते हैं, दुःख-दर्दों से पीड़ित, संकटों और समस्याओं में ग्रस्त तथा विभिन्न उद्देश्यों से प्रेरित। पाठशाला के विद्यार्थियों के रूप में तुम्हें उन लोगों के समक्ष विनम्रता, सद्भाव और सम्मान के दीप्तिमान उदाहरण होना चाहिए। तुम्हारे व्यवहार से तुम्हारे माता-पिता का नाम उज्ज्वल होना चाहिए जो सदा यह प्रार्थना करते रहते हैं कि उनके बालकों का जीवन बिना किसी संकट या अपमान के सदा निरापद या सम्मानपूर्ण रहे। केवल धनाढ्य बन जाना कोई उच्च स्थिति नहीं, काला-बाज़ार करने वाले, चोरी या डकैती करने वाले भी धनाढ्य बन जाते हैं। न तो स्वयं दुःखी होना और न किसी को दुःख पहुंचाना बल्कि दूसरों के कष्टों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहना—यही महान और उत्तम जीवन है। तुम्हें अपने कायम् (शरीर), कालम् (समय) और कांक्षा (इच्छाओं) को श्रेय मार्ग पर आगे और ऊपर उठाने वाले साधनों के रूप में विकसित करना चाहिए, न कि नीचे की ओर ले जाने वाले अधोगमन के साधन के रूप में।

भविष्य में आप लोगों को इस देश के कोने-कोने में जाकर आध्यात्मिक क्षुधा जागृत करनी होगी और वे साधन उपलब्ध करवाने होंगे जिनसे उनकी शान्ति हो सके। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए जिस प्रशिक्षण की आवश्यकता है वह आप लोगों को, इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त और अनुकूल वातावरण में मिल रहा है। आपको ऐसे गुरुजन और पंडित शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, जिन्होंने त्यागपूर्ण जीवन अपना रखा है, अपने घर-बार छोड़ दिए हैं और जो भी सेवा करने का अवसर प्राप्त होता है उसे ही अपना सौभाग्य समझते हुये वे प्रसन्नता के साथ पूर्ण करते हैं। आस्था, विश्वास और भक्ति से परिपूर्ण तुम्हारे अध्यापकों में से कुछ अमेरिका और उत्तरी भारत से आये हुये हैं। वे तुम्हारी ओर अपने बच्चों के समान प्रेम के साथ देखते हैं; मैंने तुम्हें उनके सुपुर्द कर रखा है अतएव वे तुम्हारी इसी प्रकार रक्षा और पोषण करते हैं जिस प्रकार आंखों की पलकें आँखों की पुतलियों की। तुम्हें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये; तुम पर उनका बहुत बड़ा ऋण है जैसा कि संतान अपनी माता की ऋणी होती है।

तुम्हें मेरे उपदेश सुनने और मुझसे निदेशन प्राप्त करने के अमूल्य अवसर प्राप्त होते हैं। ये सब तुम्हारे हृदय-पटलों पर अंकित हो जाते हैं। तुम उनके सम्बन्ध में बातें करते हो, तुम्हारे वार्तालाप मेरे विषय को लेकर होते हैं, तुम मेरे संबंध में, मेरे शब्दों, मेरी लीलाओं और मेरी महिमाओं के विषय में चर्चायें करते हो। जब तुम अपने गांवों में जाते हो और वहाँ रहने वाले अपने भाई-बहनों तथा दूसरे

साथियों को मधुर स्मृतियाँ सुनाते हो तो बड़े गर्व और आनन्द का अनुभव करते हो और सबको आनन्दित करते हो।

मेरा तुम्हें उपदेश है कि इस भक्ति का जीवन में उपयोग करो। अपने साथियों को यहाँ और अपने गाँवों में अपने आचरण और व्यवहार से यह बता दो कि तुम कितने अनुशासन का पालन करने वाले, अपने माता-पिता की पूर्ण निष्ठा के साथ आज्ञा पालन करने वाले, अपने गुरूजनों के प्रति कितना आदर और सम्मान रखने वाले हो। अपने गांव में और जहाँ कहीं भी तुम रहो एक प्रदीप्त ज्योति, एक प्रकाश-पुंज, सद्गुणों से देदीप्यमान तथा चारों ओर के वातावरण को आलोकित करने वाले आत्म-संयमी[1] आदर्श के रूप में रहो। और ऐसी सुदृढ़ हो तुम्हारी स्थिति कि तुम कभी भी अनुशासन हीनता, दुर्व्यवहार, अनुत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य या व्यवहार और बुरी आदतों में न पड़ सको। जैसा प्रशंसनीय आचरण और व्यवहार तुम्हारा यहाँ रहता है वही सदा और सब कहीं बना रहना चाहिये। यहाँ के समान ही घर पर भी वही ब्रह्म मुहूर्तम् में (४.३० से ५.१५ बजे) उठ बैठो, प्रणव का उच्चारण करो, यदि अन्य कोई साथी न हो तो भी सुप्रभातम् का गान करो तथा कुछ समय तक ध्यान करो। सूर्य नमस्कार का यौगिक व्यायाम करो। प्रशान्ति निलयम् के भजन के समयों की याद करके भजन करो। इस प्रकार प्रशान्ति निलयम् के पवित्र वातावरण को तुम अपने साथ ले जाओगे तो तुम्हारे माता-पिता प्रसन्न होंगे, गौरव का अनुभव करेंगे; तुम से बड़े लोग तक शिक्षा ग्रहण करेंगे, अनुशासन सीखेंगे, जिससे उन्हें भी साहस और समता प्राप्त होगी।

भोजन के सम्बन्ध में शिकायत मत करो; माता-पिता जो भी खाने को दें उसे प्रसन्नता के साथ ग्रहण करो। वे जो भी काम बतायें उसे भी प्रसन्नता के साथ बिना किसी विरोध के, दौड़कर पूरा करो। जब कभी उनकी सेवा का अवसर प्राप्त हो तो उसे अपना परम सौभाग्य समझते हुये, पूर्ण बुद्धिमत्ता और प्रसन्नता के साथ उनकी सेवा करो। तुम यहां रहते हो या और कहीं, अभी और सदा ही मैं तो तुम्हें देखता हूं, तुम्हारे भाव, विचार, शब्द और कार्यों को जानता हूँ, तुम पर अपने अनुग्रह की वर्षा कर सकता हूँ।

प्रशान्ति निलयम्
२२-२-१९६८

---

१ मन को नियंत्रित (काबू में) रखने वाला

३६. मृत्यु—एक स्वागतयोग्य समुद्र-यात्रा

आंध्र प्रदेश के सत्य साई सेवा संगठनों के पदाधिकारियों का सम्मेलन, जैसा कि दूसरे प्रदेशों ने अपने-अपने प्रदेशों की राजधानियों—बम्बई, मद्रास में आयोजित किया था, उस प्रकार अपने प्रदेश की राजधानी में आयोजित न करके प्रशान्ति निलयम् में आयोजित किया है। यह आप लोगों के लिये सौभाग्य की बात है। इसके साथ आप को यह स्मरण रखना चाहिये कि आपने जो कार्य हाथ में लिया है उसके द्वारा आपको अपने हृदयों को प्रशान्ति निलयम् के रूप में परिवर्तित करके प्रत्येक नगर और ग्राम को प्रशान्ति निलयम् बना देना है।

यही सनातन धर्म का संदेश है, यही वह लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति के लिये समस्त आध्यात्मिक प्रयास किये जाते हैं। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों और मुनियों ने बाह्य आडम्बर, मिथ्या प्रदर्शन और अस्थायी सुरक्षा के मार्गों को त्याग कर आन्तरिक शान्ति, स्थायी सुख और सुरक्षा प्राप्त करने के लिये प्रयत्न किये थे। उन्होंने यह पाया कि इसकी प्राप्ति अपने आन्तरिक सत्य अर्थात् आत्मा के मूल से जीवन रस ग्रहण करने से ही हो सकती है। यद्यपि कि उन्हें इस परम सत्य का बोध भगवान ने स्वयं ही कराया था और अनेक शताब्दियों से ऋषि, मुनि, संत, विद्वान, पंडित, कवि और साहित्यकार आदि उन्हें दोहराते आ रहे हैं; किन्तु बहुत ही कम लोग ऐसे होते हैं जो इसे जीवन के आधार के रूप में स्वीकृत करते हैं। इस धरती पर अब भी लोग ईश्वर के नाम का जाप करते हैं किन्तु दृढ़ विश्वास वाले कम ही हैं, आन्तरिक ईश्वर की महिमा अर्थात् आत्मा के चिन्तन, मनन और ध्यान से जो आनन्द प्राप्त होता है उसको पाने वाले बहुत ही कम होते हैं। वे तो बस आदत वश या सामाजिक या धार्मिक प्रथा को निभाने के लिये अथवा फिर अपनी धार्मिकता का प्रदर्शन कर नाम-यश कमाने के लिये ऐसा करते हैं। इसीलिये नाम जप से ऐसे लोगों को कोई लाभ नहीं होता उनके दुःख-दर्द, शोक-संताप, या लोभ-मोह का नाश नहीं होता।

पंडित लोग प्राचीन धर्म ग्रन्थों और शास्त्रों का अध्ययन तो कर लेते हैं किन्तु जो कुछ मुख से कहते हैं उसका व्यवहार में पालन नहीं करते; वेदों में जो कुछ कहा गया है उसमें उनकी पूर्ण आस्था नहीं रही। उन्हें संदेह का ऐसा कीड़ा लग गया है कि उसने वेदों के प्रति उनके सम्मान की जड़ें खोखली कर दी हैं। वे अब अपनी सन्तानों को वेदों का अध्ययन करने की दीक्षा नहीं देते और इस प्रकार वेदाध्ययन के क्रम को सतत् रूप में आगे बनाये रखने और बढ़ाने के प्रयत्नों का सुनिश्चय नहीं करते। वे वेदों को अर्थार्जन का साधन बनाकर उनके मूल्य को

घटाना चाहते हैं और इसीलिये जब उन्हें वेदों के माध्यम से धन की प्राप्ति नहीं होती तो वे निराश होते हैं और जो धर्मनिर्पेक्ष वृत्ति का पालन करते हैं उनसे ईर्ष्या करते हैं। किन्तु यदि वे वेदों में अपनी आस्था और विश्वास का विकास करें, उसे सुदृढ़ और अडिग बनावें तो यह बात निश्चित है कि वेद स्वयं ही उनका पालन करेंगे, उनके जीवन को सुख और संतोष-पूर्ण बनाने का सुनिश्चय करेंगे।

छोटे-छोटे कीट-पतंगों को मेंढक की लपलपाती जीभ निगल लेती है, मेंढक को सर्प ग्रस लेता है, सर्प को मोर खा लेता है और मोर को शिकारी मार डालता है। एक जीव दूसरे का भक्ष्य है। मृत्यु तो सदा प्रतीक्षा करती रहती है, समय पलटने की। मृत्यु मनुष्य का घात लगाये सतत् रूप से पीछा करती रहती है, किसी भी क्षण वह अपने शिकार को चुपके से दबोच सकती है। मनुष्य अपने इस छिपे हुये पिछलगुवे साथी से परिचित नहीं है, उसने यह भी अभी नहीं सीखा है कि उसका कैसे सामना किया जाये, उसके पराक्रम के फलों को उससे कैसे छीना जाये। आत्मा नहीं मरती, मरता तो केवल शरीर है। जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है, तो मृत्यु का डंक नष्ट हो जाता है, उसका भय नहीं रहता; मृत्यु एक स्वागत योग्य समुद्र यात्रा लगती है जो किसी परिचित बन्दरगाह तक ले जायेगी।

महाराज दशरथ अपनी छोटी रानी कैकयी से इतने अनुरक्त थे कि उन्होंने उसे किसी भी समय, उसकी इच्छानुसार कोई दो वरदान मांगने का वचन दे रखा था। यह कोई बुद्धिमत्तापूर्ण बात नहीं थी! वह किस समय और क्या मांग ले कोई नहीं जानता था? महाराज दशरथ इस दृष्टि से अपनी रानी की पूर्ण दया पर निर्भर थे। और रानी कैकयी को एक भयंकर फितूर सवार हो गया। राम को राजतिलक होने वाला था कि रानी ने अपनी कुटिल दासी मंथरा के उकसाने पर दो वर मांग लिये—पहला यह कि राम के स्थान पर उसके पुत्र भरत को राजतिलक हो और राम तापस-वेष[1] में और उदासी बनकर चौदह वर्षों के लिये बनवास के लिये जायें। महाराज दशरथ को स्वीकार करना पड़ा। और जब राम अयोध्या छोड़कर बनवास के लिये चले गये तो महाराज दशरथ अपने प्रिय पुत्र के वियोग को सहन नहीं कर सके, और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। भौतिक सुख और अनुरक्ति के कारण, उसमें पूर्ण आबद्ध हो जाने के फलस्वरूप, महाराज दशरथ की मृत्यु हुई। सभी मनुष्य दशरथ हैं। वे सभी बाह्य पदार्थों से सुख की प्राप्ति में आसक्त और अनुरक्त रहते हैं; एन्द्रिक सुख भोग, लिप्साओं की पूर्ति के पीछे भागते हैं तथा उसका फल शोक और मृत्यु के रूप में प्राप्त करते हैं।

---

१ तपस्वियों की वेष-भूषा

मेरे नाम से चलने वाले संगठनों को मेरे नाम का प्रचार करने की दृष्टि से उपयोग में न लाया जाये, अथवा मेरी पूजा के लिये कोई नया सम्प्रदाय नहीं बनाया जाये। इन संगठनों को चाहिए कि वे जप, ध्यान तथा अन्य साधनाओं का प्रचार करें जिससे कि मनुष्य में भक्ति की भावना जागृत हो, वह ईश्वराभिमुख हो और उस ओर चलने लगे। उन्हें प्रचार करना चाहिए और यह प्रत्यक्ष रूप से बताना चाहिए कि सत्संग, भजन, कीर्तन, नामस्मरण, जप, ध्यान आदि से कितना आनन्द प्राप्त होता है, सन्तप्त मन को कितनी शान्ति प्राप्त होती है! असहाय, अशिक्षित, निर्बल, बीमार, संकटग्रस्त लोगों की सेवा करो। वह सेवा प्रदर्शनात्मक नहीं होनी चाहिए, उससे किसी फल की प्राप्ति, नाम-यश कमाने की आशा नहीं रखनी चाहिए। सेवा तो साधन है, बड़े और अमीर लोगों के मनोरंजन या समय काटने का साधन नहीं है। प्रत्येक को अपने स्वयं के सत्य का साक्षात्कार करना चाहिए। मेरे सारे आदेशों, उपदेशों, निर्देशों, उपचारों, सभी संगठनात्मक कार्यों का यही उद्देश्य है।

शरीर में वही रक्त है जो शरीर के सभी अंगों में है, किन्तु नेत्र जो कार्य करते हैं वह नेत्र ही कर सकते हैं अन्य कोई अंग नहीं। इसी प्रकार कानों का सुनने का कार्य है। जिस लवण का जिह्वा रस लेती है यदि वह तनिक सा भी नेत्र में पड़ जाए तो कितना कष्ट होता है। यही वर्णाश्रम व्यवस्था का आधार है। पैतृक परम्परा के अनुसार जिन कर्म और कर्त्तव्य विशेषों में योग्यता और दक्षता अर्जित है और जिनके प्रति जन्मजात रुचि और रुझान है उसके अनुसार कर्त्तव्य और दायित्वों का निश्चित करना, वर्ण व्यवस्था का आधार है। आवेगों, संवेगों, भावना, विचार तथा चरित्रगत आचरण के नियंत्रण तथा शान्ति और संतोष की प्राप्ति के लिये ये सामाजिक व्यवस्थायें आवश्यक होती हैं किन्तु ये सब पारस्परिक प्रेम, सद्भाव और सहयोग से परिपूर्ण होने चाहिये। अतएव प्रेम का विकास करो, प्रेम का प्रसार करो, प्रेम की फसल काटो। इससे बड़ा कोई धर्म नहीं है। यह ही सर्वोत्तम सेवा है।

किसी को प्रसन्न करने के लिये या किसी दबाव अथवा विवशता में आकर सत्य साई संगठन प्रारम्भ मत करो। आने वाले मई के महीने में जो विश्व सम्मेलन होने जा रहा है, उसमें केवल सत्य साई संगठनों के पदाधिकारी ही आमंत्रित किये जायेंगे; केवल इसीलिये कि उस सम्मेलन में भाग लेने का अवसर मिल सके, अब कोई समिति बना कर उसके पदाधिकारी बनने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। भजन मंडली बना कर, उसमें स्वयं ही भाग न लेकर उपहास के पात्र मत बनो। यदि आप वास्तव में यह अनुभव करते हैं कि सभी गतिविधियों में भजन के कार्यक्रम बहुत उपयोगी और लाभप्रद हैं तभी भजन मंडली का गठन करो अन्यथा फिर जैसा चलता है वैसे ही चलने दो।

आप और मैं अब एक साथ हैं, आपके गाँव के भक्तगण मेरे लिये साधना की माला तैयार करने हैं। मेरा किसी से विशेष लगाव नहीं है और न ही किसी के प्रति कोई घृणा। आप यह बिजली का पंखा देख रहे हैं न, मैं बस इसी के समान हूं; इसका स्विच दबाओ यह ठंडी हवा देने लगता है, स्विच आफ कर दो यह हवा देना बन्द कर देगा। पंखे को न किसी से मोह या लगाव है और न ही किसी से कोई घृणा या द्वेष। किसी के सन्मुख एक बात कहना और उसकी पीठ पीछे दूसरी बात कहना एक बुरी आदत है संगठनकर्ताओं में कोई ऐसा दोष नहीं होना चाहिए। अपने दृढ़ विश्वासों में सदा स्पष्ट, विनम्र, सत्यानुगामी, निडर और अडिग रहो। फिर आप जो भी कार्य करेंगे उसे मेरा आशीर्वाद प्राप्त होगा।

प्रशान्ति निलयम्
२३-२-१९६८

३७. अन्तःस्थ मैं

मनुष्य द्विपाद, अर्थात् चार पैरों के स्थान पर केवल दो पैरों पर चलने वाला पशु मात्र नहीं है। मनुष्य को सत्यम्, शिवम्, और सुन्दरम् तथा सामंजस्य और माधुर्य का अनुभव करने, उसको समझने, सराहने और उसका आनन्द लेने का विशेष सौभाग्य प्राप्त है; वह प्रेम करुणा और सहानुभूति स्वयं ग्रहण कर सकता है और दूसरों को भी प्रदान कर सकता है। वह केवल प्रकृति के गुप्त रहस्यों की ही खोज नहीं कर लेता बल्कि वह अपने स्वयं के रहस्यों को भी ज्ञात कर लेता है और ईश्वर तक को खोज निकालता है जो उसके और प्रकृति के रहस्यों के पीछे छिपा रहता है। अज्ञान, मोह और माया के बादलों का आच्छादन मनुष्यों को उसके इस सौभाग्य से ओझल रखता है। वह अपने हृदय पटल पर शिव को स्थापित कर सकता है जो समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का प्रेरक है। शिवम् ही सत्यम् और सुन्दरम् है वही सच्चिदानन्द है। आज शिवरात्रि का परम पावन पर्व है, उस शिव की ही अपने जीवन के मूल आधार और प्राण के रूप में पूजा करने का शिव संकल्प करो।

आप में से बहुत से आज दैविक शक्ति के अद्भुत प्रमाण को प्रत्यक्ष देखने के लिये आये हुये हैं। किन्तु आप लोगों को इस शक्ति के स्वभाव और प्रकृति तथा उसके प्रकट होने की प्रक्रिया आदि के सम्बन्ध में व्यर्थ के वार्तालाप और वाद-विवाद में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए। देखो, अनुभव करो, स्फूर्ति और उत्साह ग्रहण करो, रहस्यमय चमत्कार का जो स्वयं ही दिव्यता है, दर्शन कर आनन्द लाभ प्राप्त करो।

यह घंटा-ध्वनि, तुरही-घोष और मृदंग नाद शिव के निवास स्थल कैलाश पर होने वाले घंटा, तुरही शंख और मृदंग-वादन की स्मृति दिलाते हैं। भजन के समय प्रकट होने वाली विभूति का प्रवाह भी इसी प्रकार दिव्यता की स्मृति कराता है। इस शरीर से लिंगोद्भव भी पूर्णावस्था है, इस बात की घोषणा है कि आप कैलाश में है। लिंगोद्भव सायंकाल होता है, आप लोग पूरी रात जागरण रखते हैं, व्रत, पूजन, भजन और जाप करते हैं।

मधु-मक्खी भन-भन करती हुई कमल के चारों ओर चक्कर लगाती है, उस पर बैठती है, रस-पान करती है और उस माधुर्य का पान करते समय इतनी शान्त, दृढ़ तल्लीन, मद-मस्त और विस्मृत हो जाती है कि उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती। भगवान के सान्निध्य में मनुष्य की भी यही दशा होती है। मधु-मक्खी कमल पर

बैठ कर शान्त हो जाती है और जैसे ही रस-पान करने लगती है उसकी भिन-भिनाहट बन्द हो जाती है। मनुष्य भी जब तक उस ईश्वरीय रस की खोज में रहता है, उसको पाने की टोह में रहता है वह भी भिन-भिन करता रहता है, गाता है, स्तुति और प्रशंसा करता है, तर्क-वितर्क करता रहता है। वह रस है, प्रेम रस, प्रेम की सुगन्धि। जहां प्रेम होता है वहां न भय है, न चिन्ता है, न संदेह है, न अशान्ति है। जब आप अशान्त हों, समझ लो कि आपके प्रेम के प्रवाह में कोई बाधा आ गयी है, उसमें अहंकार का मिश्रण हो गया है।

इस प्रेम की अनुभूति करने वाला है अन्तःस्थ[1] मैं, जो वास्तविक मैं अर्थात् आत्मा का ही प्रतिविम्ब है। जब इन्द्रियां निश्चल हो जाती हैं, अक्रिय हो जाती हैं तो वहां मैं अपने पूर्ण तेज के साथ दीप्तिमान होता है। ये इन्द्रियाँ ही मनुष्य की प्रबल शत्रु हैं क्योंकि ये ही आनन्द के आन्तरिक स्रोत से आपको बाह्य सुख के साधनों की ओर खींचती हैं। जब आप यह भली प्रकार समझ जाते हैं कि आपको पथभ्रष्ट करने के षडयंत्र के मूल में ये इन्द्रियाँ हैं तो आप निश्चित रूप से उनकी आवश्यकताओं और माँगों की पूर्ति नहीं करेंगे। मछली पकड़ने वाला एक लम्बी छड़ी रखता हैं, उसमें लम्बी डोर (मत्स्यरज्जू) बंधी होती है, उस डोरी के सिरे पर एक तैरता हुआ काग या पर होता है जिसमें एक तीव्र कांटा लगा होता है, जिसमें चारा (केचुआ) फंसा होता है। मछली केचुए से आकर्षित होकर काँटे में आ फसती है, मछली पकड़ने वाले के हाथ में पकड़ी डोरी पर मछली का खिचाव आता है, वह डोरी को खींच लेता है और मछली जमीन पर आ जाती है जहां वह असहाय हो जाती है, साँस भी नहीं ले सकती। यह शरीर वह छड़ी हैं, इच्छायें, तृष्णायें मत्स्यरज्जू है, बुद्धि तैरता हुआ काग या पर है, विवेक कांटा है, ज्ञान केचुआ है, आत्मा मछली है जो इसकी सहायता से चतुर मछेरे द्वारा पकड़ी जा सकती है। जब आपको ज्ञान प्राप्त होता है तो कैवल्यम् आपकी ओर खिचा चला आता है।

कैवल्यम् वह स्थिति है जिसमें परमात्मा की पूर्णता की अनुभूति होती है कि वही सर्वत्र पूर्ण रूप से व्याप्त है, वही इच्छा है, वही कर्म है, वही आनन्द है, वही ज्ञान है, जो कुछ अस्तित्व में है सब वही है सत् है, सत्ता है, प्राण है। अपने तामस का शमन[2] करो, राजस का शोधन[3] करो तथा सत्व का विकास करो जिससे कि आप कैवल्य की परम स्थिति प्राप्त कर सकें, उसमें स्थित हो सकें। आप को प्रशान्ति निलयम् के ध्वज-चिन्ह से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और उसे हृदयंगम[4] कर लेना चाहिए। उसका आपको संदेश है कि काम, क्रोध और घृणा के क्षेत्रों को पार कर

---

१ अन्तरस्थित २ नाश ३ शुद्ध करना ४ हृदय में स्वीकृत

आपको प्रेम के विस्तृत और सदा-बहार क्षेत्र में पहुँचना है। वहाँ आसन जमा कर बैठो, एकाग्रचित्त, ध्यानावस्थित हो प्रार्थना करो और योग के द्वारा अपने हृदय-कमल की बन्द पंखुड़ियों को खोलो जिससे कि परम प्रकाश को प्राप्त कर सको।

उस परम प्रकाश युक्त कमल में अपना मन स्थिर कर दो, आपके हृदय में प्रशान्ति का साम्राज्य होगा। लिंगोद्भव के रहस्य को समझने के लिये यह सर्वश्रेष्ठ तैयारी है।

प्रशान्ति निलयम्
२६-२-१९६८

३८. दिव्य महिमा का परमाणु

मनुष्य का मन संसार में अत्यधिक फंसा हुआ है, अपनी उदर पूर्ति के लिये ही उसे अपनी बहुत अधिक शक्ति और समय को व्यय करना पड़ता है। इसकी इच्छायें और आकांक्षायें इतनी तीव्र गति के साथ बढ़ती और प्रबल होती जा रही हैं कि उनको पूर्ण करना मनुष्य की शक्ति और क्षमता के परे है। उसके स्वप्नों का साकार हो पाना उसके लिये असम्भव है किन्तु फिर भी वह मूर्खता पूर्ण साहसिकता और मिथ्या विजय और उपलब्धियों के चक्र में फंसा रहता है। भौतिक जगत के विश्लेषण में वह इतना तल्लीन हो गया है कि उसमें भलाई-बुराई, प्रेम, माधुर्य और विनम्रता का तो बोध ही नहीं रह गया है; संसार की इस वर्तमान व्यवस्था में सचाई तो व्यावहारिकता से लुप्त होकर केवल शब्दकोष का एक शब्द मात्र रह गयी है। करुणा एक अर्थहीन उपहास बन गयी है। विनम्रता, सहनशीलता, सौजन्य और सम्मान सब अपंग और अशक्त बन गये हैं जैसे कि किसी दूर स्थान पर एक बिना लौ के कोई दीपक हो।

इस भयंकर अंधकार पूर्ण स्थिति में यदि मनुष्य को किसी का सहारा है तो वह भगवान के नाम का है। केवल नाम ही वह नाव है जो मनुष्य को संसार के तूफानी समुद्र से, जिसमें घृणा और भय का घोर अंधकार छाया हुआ है तथा चिन्ताओं और अनिश्चितताओं की त्रासदायक[1] उत्ताल[2] तरंगें उठ रही हैं।

लोग विज्ञान की प्रगति की बड़ी प्रशंसा करते हैं। किन्तु प्रगति हुई है भय से और अधिक भय, अधिक त्रासदायक स्थिति की ओर; नाश से सर्वनाश की ओर हुई है। प्रागैतिहासिक युग में एक मनुष्य दूसरे को तीर कमान से मारता था किन्तु अब तो अणु बम से सम्पूर्ण आबादी को ही समाप्त कर देते हैं। और इसको एक उल्लेखनीय प्रगति के रूप में प्रशंसा की जाती है। वैज्ञानिक मानव हृदय में लोभ और घृणा की वृद्धि को रोक नहीं सकते, वे तो जैसे चाहते हैं विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर सकते हैं और उनकी विनाश की शक्ति और दक्षता बढ़ा सकते हैं। विज्ञान के अन्वेषणों और आविष्कारों के परिणाम स्वरूप आज सम्पूर्ण मानवता सदा अपने समूल विनाश के भय से त्रस्त रहती है क्योंकि पारस्परिक घृणा का तूफान न जाने कब उठ खड़ा हो और उनके घरों पर अणुबमों की वर्षा हो जाए। विज्ञान ने मनुष्य को उसके आत्म विश्वास से वंचित कर दिया है। मनुष्य अपने स्वयं के सम्बन्ध में

---

१ दुख देने वाली २ तीव्र, ऊंची

हो निश्चित नहीं है बल्कि वह तो अपने आप से ही भयभीत है क्योंकि किसी के थोड़ा उकसा देने पर ही वह जंगली हिंसक पशु के समान भयंकर बन सकता है।

आप को इस बात के लिये कृतज्ञ होना चाहिए कि कम से कम यहाँ आप अपने आन्तरिक स्वभाव और प्रकृति पर विचार कर सकते हैं तथा ऐसे सत् संकल्प कर सकते हैं जिनके आधार पर आप अपने जीवन को ऐसा ढाल सकें कि वह प्रेम और संतोष से पूर्ण हो। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिये सनातन धर्म द्वारा निर्धारित आदर्श आज भी उतने ही सत्य और उपयोगी हैं; अनुशासन आज भी उतना ही हितकर और कल्याणकारी है जितना कि शास्त्रों में उसके सर्वप्रथम निर्दिष्ट किये जाने के समय था। अपने आपको केवल इसलिये हिन्दू मत समझो कि आपने हिन्दुस्तान में जन्म लिया है। धर्म के मूल्य अपरिवर्तनीय हैं और उन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती। आप अपने अन्तर के सत्य को समझने के लिये जातीय नियमों, रीति-रिवाजों, अनुष्ठानों और उनकी क्रिया-विधियों, ज्योतिष की कुण्डलियों में बहुत अधिक फंसे रहते हैं। आप अपने भीतर छिपी देवत्व की चिनगारी का अनुभव करने और उसे दिव्य अग्नि के रूप में प्रज्वलित कर अपने 'मैं' के अहं को भस्म करने के प्रयत्न नहीं करते हैं। सनातन धर्म आपको आपके भीतर छिपी उस दैविक चिनगारी के सम्बन्ध में बताता है, संकेत करता है और उसे विकसित और पूर्ण चेतन करने की शिक्षा देता है। आप जब इस धर्म की उपेक्षा करते हुए केवल विज्ञान के प्रलोभन में फंस जाते हैं तो अपनी संस्कृति का अपमान करते हैं, अपने देश से विमुख होते हैं।

समुद्र पार के देशों के लोग इस देश की प्राचीन संस्कृति, आन्तरिक शान्ति और सत्य का प्रकाश प्राप्त करने के लिये, जो मार्ग, शिक्षा और ज्ञान इस देश ने विश्व को दिया है उनसे आकर्षित होकर यहाँ चले आते हैं। जिस महान संकट और नाश की ओर उनके देश बढ़ते चले जा रहे है उसका उन्हें ज्ञान हो गया है। बहुत सी ऐसी साधनाएं और विश्वास जिन्हें आपने केवल अंध विश्वास समझ कर त्याग दिया था, उन की उपादेयता[1] का उन्होंने पता लगा लिया है और उनके सत्य को स्थापित किया है। विज्ञान से तनिक सा परिचय प्राप्त कर जिस श्रेष्ठता के अभिमान में आप लोगों ने अपने जिन जीवन मूल्यों को उपेक्षा के साथ त्याग दिया था उनके सम्बन्ध में उन लोगों ने आपकी आँखें खोल दी हैं। उन्होंने इन तथ्यों का पता लगा लिया है कि मंत्रों में प्रकृति को रूपान्तरित करने की शक्ति होती है, वैदिक पाठ से समत्व और सामंजस्य स्थापित होता है, मंत्रों के अशुद्ध उच्चारण के घातक प्रभाव होते हैं।

उसकी महिमा, उसके यश, गौरव और प्रताप के पूर्ण परिवेश और प्रभा मंडल

---

१ उपयोगिता

के साथ भगवान का नाम मन को वासनाओं, भावावेश और संवेगों से मुक्त कर शुद्ध और निर्मल कर देता है। यदि नाम बिना ध्यान, बिना किसी आदर और सम्मान के यों ही दोहराया जाता रहे तो उसका कोई प्रभाव नहीं होता है। भलाई और बुराई सदा रहती है। रावण, कुम्भकरण तथा अन्य बहुत से बलशाली राक्षसों ने घोर तपस्यायें कीं और भगवान को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्हें उनके समक्ष उपस्थित होना पड़ा। यद्यपि उन लोगों ने भगवान से अपने इच्छित वरदान प्राप्त किये किन्तु फिर भी वे अपनी बुराइयों का त्याग नहीं कर सके। हम गौ का उसके दूध के आधार पर मूल्यांकन करते हैं। हर मनुष्य का उसके चरित्र के आधार पर कि वह कितना सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण, मैत्री भाव, सेवा और सुरक्षा के लिये तत्परता, योग्यता, निःस्वार्थ भावना और विवेक रखता है, मूल्यांकन करते हैं।

इस सत्य की कि व्यक्ति और समष्टि में पूर्ण तादात्म्य है, अभेद है प्रत्येक श्वास के साथ घोषणा होती है, सोहम्—मैं वही हूं। भगवान तो निकटतम, प्रियतम और परम विश्वसनीय मित्र हैं। किन्तु मनुष्य अपनी अज्ञानतावश उनकी उपेक्षा कर दूसरों का साथ खोजता फिरता है। भगवान को कहीं खोजने की भी आवश्यकता नहीं है। वह तो सभी समय और सभी स्थानों पर विद्यमान[1] है। वह सर्वशक्तिमान और पूर्ण ऐश्वर्यवान[2] संरक्षक है फिर भी आप उसकी उपेक्षा करते हैं। भगवान तो यहीं है, निकट है, प्रेमपूर्ण है, आपकी पहुंच में है और प्रिय है। किन्तु इतना महान अवसर प्राप्त होने पर भी लोग अपनी आंखें नहीं खोलते हैं। नाम, भगवान को आपके निकट ले आयेगा। अभी तो केवल नाम आपकी जिह्वा पर रहता है संसार मन में समाया होता है और भगवान हृदय के भीतर छिपा होता है। संसार और उसका आकर्षण आपको अपनी ओर खींच कर सत् पथ से हटा देता है और आप की पुकार का जो उत्तर भगवान आपको देते हैं उसे आप सुन नहीं पाते।

आध्यात्मिक विषयों में तर्क अच्छा नहीं, अहंकार का तो अंशमात्र तक घुल कर निकल जाना चाहिए, अन्यथा वह सदा ऐसे तर्क खोज निकालता है जो व्यक्ति को प्रिय होते हैं। एक व्यापारी ने अपने घर-बाग आदि की रक्षा के लिये एक भयंकर कुत्ता पाल रखा था जिससे कि कोई बाहरी व्यक्ति भीतर न आ सके। एक दिन एक यात्री पास की सड़क पर होकर जा रहा था। कुत्ता भौंकता हुआ अपने दांत निकालता उसके ऊपर झपटा तो उस व्यक्ति ने अपनी मोटी लाठी से कुत्ते के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह पीड़ा से चीं-चीं करता दुम दबाकर घर में लौट आया। उसका मालिक बड़ा क्रोधित हुआ। उस यात्री ने जो कुछ स्पष्टीकरण दिया उससे वह धनाढ्य व्यक्ति संतुष्ट नहीं था अतएव वह उस यात्री को न्यायाधीश के समक्ष ले

१ वर्तमान में स्थित २ धनवान

गया और वहां उस पर कुत्ते के प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार का अभियोग लगाया। अपना तर्क देते हुये उसने कहा, "यह कुत्ते की पूंछ पर भी मार सकता था, इसने उसके सिर पर क्यों प्रहार किया ?" यात्री ने उत्तर दिया, "कुत्ता अपना मुंह फाड़े मुझे काटने के लिये झपटा, उसका सिर सामने था इसीलिये अपनी रक्षा के लिये उसके सिर पर वार करना पड़ा। यदि वह पूंछ से मुझे काटने आता तो मैं अपनी रक्षा के लिये उसकी पूंछ पर वार करता।" न्यायाधीश ने उसे निर्दोष घोषित कर छोड़ दिया।

लम्बे चौड़े तर्क देकर अपनी रुचियों-अरुचियों तथा राग-द्वेषों का औचित्य सिद्ध करने के प्रयास मत करो। इससे तो आपको आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के स्थान पर ज्ञान प्रवंचना ही होगी, अहंकार कम होने के स्थान पर और अधिक बढ़ेगा ही। भगवान सूक्ष्मरूप से लिंग स्वरूप सब में विद्यमान हैं। अंग में संग (आन्तरिक और बाह्य दोनों ही संसारों से सम्पर्क) होता है, संगम् में होता है जंगम् जिसका अभिप्राय हैं हिलने-डुलने वाला, एक स्थान पर न टिकने वाला। और उस जंगम का आधार है लिंगम्। लिंग में दो अक्षर हैं लि और ग जिसमें लि का अर्थ है जिसमें सब समा जाये—(लियति और ग का अर्थ है जिसमें सब जाते हैं (गम—यति)। लिंग वह सार्व-भौमिक प्रतीक है जिसमें सब का लय होता है जिससे सबकी उत्पत्ति है। लिंग सत्य का वास्तविक स्वरूप है, स्व-स्वरूप है। लिंगोद्भव, अवतार के संरक्षक और मार्ग-दर्शक के रूप में आगमन की घोषणा है।

व्यक्ति को अवतार के आगमन का, अपने उत्थान और मुक्ति के लिए, पूर्ण लाभ उठाना चाहिए। उनके चरणों की ओर निहारो, उनकी गति का अवलोकन करो, वे क्या करते हैं इसको भली भांति देखो, जिस मार्ग-दर्शक सिद्धान्त का उनका जीवन स्वयं सविस्तार साक्षात् स्वरूप है उसका पालन करो। उनके प्रेम, उनकी करुणा, उनके ज्ञान को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप में लाने के सद्प्रयत्न करो। मनुष्य बनावटी, छली-कपटी बन गया है; उसने अपने वास्तविक रूप को विकृत कर लिया है। उसने सहज, सरल, नैसर्गिक मार्गों और साधनों को त्याग दिया है और अपने मन को विचारों, महत्वाकांक्षाओं, चिन्ताओं और भय का कबाड़खाना बना लिया है। अपनी आवश्यकताओं को बहुत कम करके वह स्वंय बहुत सुख-चैन से रह सकता है और दूसरों को भी सुख-चैन प्रदान कर सकता है यदि वह सदा इस सत्य को याद रखे कि वह दैविक प्रकाश का प्रकाश स्तम्भ है तो वह अधिक प्रेमपूर्ण और परोपकारी बन सकता है। भगवान धर्म के संस्थापन के लिये अवतार लेते हैं। धर्म में व्यक्ति और समष्टिगत जीवन का अभ्युत्थान करने वाले सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहिष्णुता, संतोष, नैतिकता, धृति[1], धैर्य आदि अनेकों सद्गुण सम्मिलित हैं। धर्म का अभ्युत्थान अवतार

---

१ धैर्य

का मुख्य कार्य है, दुष्टजनों का विनाश, भक्तजनों का संरक्षण आदि अन्य कार्य तो गौण हैं। क्योंकि जो धर्म का पालन करता है धर्म उसकी रक्षा करता है (धर्मे यत्नः सदा कार्यो धर्म एकः सुखावहः। धर्मेण पाल्यते सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥—अर्थात् धर्म की प्रवृत्तियों में निरन्तर लगे रहना चाहिए। धर्म ही एक अकेला सुख देने वाला है। धर्म के द्वारा ही चर-अचर सहित तीनों लोकों की रक्षा होती है।) जो धर्म हीन हैं, वे अपने दुष्कर्मों से स्वयं ही नाश को प्राप्त होते हैं। अवतार के मुख्य कार्य में अन्य सब कार्य सम्मिलित होते हैं।

मैं उस कार्य को पूरा करूंगा, दूसरे कुछ भी आलोचनायें करते रहें। आलोचनायें, टीका-टिप्पणियां होना तो स्वाभाविक होता है। जितना ऊंचा पर्वत होता है उतनी ही गहरी घाटी होती है। प्रशंसा या निन्दा, यश या अपयश का मुझ पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ने वाला है, मेरा कार्य तो अबाध गति से चलता रहेगा। जिस दृढ़ नींव पर मेरा कार्य आधारित है वह है आनन्द। मुझे इससे तनिक भी विचलित नहीं किया जा सकता, फिर—कोई भी, कभी भी, और कितना भी प्रयत्न करे इसके लिये। पांडव इस सत्य को भली भांति जानते थे। इसीलिये पांचों पांडव एक शरीर रूप में थे तो उनके हृदय थे कृष्ण। धर्मराज सिर थे, अर्जुन स्कंध, भीम उदर, नकुल और सहदेव पैर। इस प्रकार वह एक शरीर हो कर ही कौरवों की अपार सेना से लड़े और विजयी हुये। कुरुक्षेत्र में हुआ वह महाभारत युद्ध, अधर्म पर धर्म की विजय थी।

अपना हृदय भगवान को समर्पित कर दो, फिर भगवान आप के साथ एक हो जायेंगे। लिंगोद्भव के साथ अतिशयोक्ति मत करो यह तो मेरी दिव्य महिमा का एक अणु मात्र प्रकट होता है। मैं, जहाँ लोक सृजित कर सकता हूं और विश्व भर सकता हूं, वहां मुझ में आप के लिये बहुत सी अनेकों और भी अधिक पूज्य बातें है—सार्वलौकिक प्रेम, धर्म का शिक्षण, वेदों का पुनरुद्धार, सत्य का पोषण और साधकों का कल्याण।

लोगों के छल-कपट, चतुराई, वाक् जाल और थोथे विश्वासों और प्रलोभनों के शिकार मत बनो। एक लड़के के पिता के पास दो नारंगियां थीं। उसने लड़के से प्रश्न किया बताओ कितनी नारंगियां हैं। लड़के ने नारंगियों को छूते हुये अपनी वाक् चातुरी प्रकट करने के लिये कहा, "एक, दो......एक और दो बराबर तीन—तीन नारंगियां हैं।" पिता ने उत्तर दिया, "तो ठीक है, दो नारंगियां मैं खा लेता हूं, तीसरी तुम खा लो।" बस उस बालक की सारी वाक् चातुरी धरी रह गयी। सदा सीधे और सच्चे रहो, सीधे और सच्चे मार्ग का अनुसरण करो, आप अपने लक्ष्य तक पहुंच जायेंगे।

प्रशान्ति निलयम्, महाशिवरात्रि
२६-२-१९६८

३९. ऊपर और नीचे की ओर खिंचाव

ज्योतिलिंग को ऊपर और नीचे दोनों ओर से चुम्बकत्व के कर्षणों[1] के बीच हवा में अधर लटकता हुआ बताया जाता है, स्पष्ट है कि यह लौह धातु से निर्मित है। मनुष्य भी लौह-लिंग के समान है जो मुक्ति के लिये परमात्मा में लीन होने की उत्कंठा से ऊपर की ओर खिंचता है तो वासनाओं और एन्द्रिक सुख-भोग की लालसाओं, भौतिक प्रकृति पर अधिकार करने की इच्छाओं से नीचे की ओर खिंचता है। इस प्रकार वह निवृत्ति और प्रवृत्ति, पारलौकिक और लौकिक खिचावों के बीच अधर में लटकता रहता है, किन्तु अब ऊपर की ओर का खिंचाव ढीला होता जा रहा है। आध्यात्मिक आश्रमों, मंदिरों, तीर्थ स्थलों, सत्पुरुषों और सद्ग्रन्थों के प्रति आदर और सम्मान बड़ी तीव्र गति से क्षीण पड़ता जा रहा है। इसके स्थान पर भौतिक सुख-साधनों को जुटाने, धन का संचय करने के प्रयास तथा पारस्परिक प्रतियोगिता उतनी ही क्या उससे भी तीव्र गति के साथ बढ़ रही है। यह आज के समय की दुःखद स्थिति है।

मनुष्य यह सोचता है कि उसने भौतिक सुख-साधनों की खोज के फलस्वरूप बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है, उसकी उपलब्धियां महान हैं। वह सोचता है कि उसने बिजली के आविष्कार से और उसको अपने उपयोग में लाकर शक्ति और प्रकाश प्राप्त किये हैं। किन्तु जब सूर्य निकलता है तो तीव्र से तीव्र चमकते विद्युत ब्लब का प्रकाश भी महत्व हीन हो पीला पड़ जाता है। मनुष्य ने हवा देने वाले एक से एक बड़े पंखे बनाये हैं, किन्तु जब प्रकृति में वायु का प्रचंड वेग आता है, तूफान उठता है तो विशाल वृक्ष जड़ से उखड़ जाते हैं। चूने और पत्थर से मनुष्य द्वारा निर्मित भवनों की छतें हवा में उड़ जाती हैं, वे ध्वस्त होकर खंडहर बन जाते हैं। मनुष्य भला फिर किस आधार पर अपने अभिमान को सीधा खड़ा रख सकता है? और सूर्य की स्थिति क्या ठहरती है अनन्त अन्तरिक्ष के अरबों-खरबों तारों में। और पृथ्वी तो सूर्य के चारों ओर घूमता एक नगण्य चिह्न-मात्र सा रह जाती है और इस परिप्रेक्ष्य[2] में और आगे देखते हैं तो उस राष्ट्र या देश की स्थिति जिसमें मनुष्य रहता है अदृश्य रूप से सूक्ष्म हो जाती है, उसका शहर या गांव तो सूक्ष्म-दर्शी यंत्र—माइक्रोस्कोप—से एक सूक्ष्म बिन्दु सा दिखायी देगा और मनुष्य होगा उसका भी शायद लाखवां भाग। समय की गति के प्रबल प्रवाह में मनुष्य की स्थिति पलक की झपक मात्र के लिये

---

१ घिसना, रगड़, प्रयत्न, २ दृष्टिकोण, पर्दे के पीछे

उठे किसी पानी के बुद-बुदे की सी है। किन्तु फिर भी देखो मनुष्य का अभिमान कितना मूर्खतापूर्ण गर्व है उसे, अपने आपको सब का स्वामी समझता है।

किन्तु उसके सुख का मूल आधार यह नहीं है। वह तो अमरता का अधिकारी है—अमृतस्य पुत्रम्। वह विभिन्न पथों से स्वयं दैवत्व को प्राप्त कर सकता है। यदि किसी मशीन को चलाने वाली शक्ति नहीं हो तो मशीन का कोई उपयोग नहीं होता है, इसी प्रकार मनुष्य का कोई उपयोग नहीं यदि उसमें दैविक स्फुरण नहीं हो। उस दैविक स्फुरण के विना मनुष्य ऐसे ही है जैसे बिना फल के वृक्ष, विना दूध के गाय। मनुष्य को अपने अन्तर में निहित उस दैविक स्फुरण का बोध होना चाहिए और यह ज्ञान होना चाहिए कि वह उससे अपने आप को कैसे प्रकाशयुक्त बनाये और उसकी दिव्य ज्योति से अपने आप को चहुँ ओर से आलोकित कर ले।

इस समय आप अविद्या और अज्ञान के अंधकार में फंसे हैं। यह, ज्ञान अनुभूति कि आप स्वयं वह दैविक प्रकाश ही हैं जो अन्नमय, प्राणमय मनोमय, ज्ञानमय और आनन्दमय कोषों की पर्तों में आबद्ध है—यह ज्ञान ही सत्य ज्ञान है—प्रकाश है। आपको अपना स्वयं का दीप जलाना चाहिए। आप दूसरे के दीपक के प्रकाश में नहीं चल सकते। दूसरे की जेब के पैसे से आप अपना अस्तित्व नहीं बनाये रख सकते, आपको अपनी जेब में पैसा रखना होगा, अपने स्वयं के साधनों से सम्पन्न होना होगा, तभी आप स्वतंत्र हो सकते हैं। स्वयं ज्ञानार्जन करो। केवल कुछ जान लेना ही पर्याप्त नहीं है, स्वयं अनुभव करो। यह जान लेना कि कुवें में पानी है पर्याप्त नहीं होता बल्कि पानी को खींच कर ऊपर लाना, उससे अपने हाथ-मुंह धोकर, स्नान करके शीतलता और स्वच्छता प्राप्त करनी और पीकर प्यास बुझानी चाहिये।

मन स्वतः ही सत्य, शिव और सुन्दर की ओर बढ़ता है किन्तु बाहरी जगत और इन्द्रियां उसे अशुभ और अपवित्र की ओर धकेलती हैं। श्वेत वस्त्र मलीन जल्दी होता है किन्तु अच्छी प्रकार धोने से स्वच्छ और श्वेत हो जाता है। प्रशान्ति विद्वान महा-सभा की स्थापना इसीलिये हुई है कि वह लोगों को सत्य का बोध करवाये, उन्हें जीवन की मूलभूत प्रक्रिया से, जो कि जीवन यात्रा के लिये श्रेयस्कर मार्ग है, अवगत करवाये। शंकर कहते हैं, "ईश्वर अनुग्रहाद् एव पुंसाम् अद्वैत वशन"—ईश्वर के अनु-ग्रह से ही मनुष्य में अद्वैत के लिये इच्छा हो सकती है। अद्वैत में स्थिति ही ज्ञान की उपलब्धि है और ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति है।

अब तक जिन वस्तुओं के लिये तुम चिल्लाते, माँग करते रहे हो यदि उनकी एक सूची बनाओ तो पाओगे कि तुम्हारी इच्छायें कितनी तुच्छ रही हैं केवल भौतिक सुख-सुविधाओं के लिये यश और नाम के लिये पद और सम्मान के लिये। तुम्हारी तड़प होनी चाहिए भगवत् प्राप्ति की आत्म, शुद्धि की, आत्म-साक्षात्कार की, पूर्णता की

प्राप्ति की । षड्रिपु[1] तुम्हारे भीतर छिपे बैठे हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर । ये छः ही भयंकर विषधर काले नाग हैं जो अपने फन फैलाये तुम्हें डसने को सदा तैयार रहते हैं । जिस प्रकार सपेरा मधुर वीणा बजा कर सर्पों को बस में कर लेता है इसी प्रकार तुम्हें भी भगवान के नाम की जाप-रूपी मधुर प्रभावकारी वीणा बजा कर उन्हें अपने बस में कर लेना चाहिए । नाम के जाप की वीणा बजाते रहो, वीणा का मधुर संगीत सुनते-सुनते जब ये विषधर मुग्ध और बेसुध हो जायें तो उन्हें फन के पास से कस कर पकड़ लो और उनके विषैले दांत निकाल दो जैसा कि सपेरा करता है । फिर वे तुम्हें कोई क्षति नहीं पहुँचा सकेंगे ।

इन षड्रिपुओं के शमन से तुम समत्व प्राप्त कर सकोगे । फिर सारे द्वन्द समाप्त हो जायेंगे, तुम लाभ और हानि, मान और अपमान, सुख और दुःख से अप्रभावित रहोगे । राम का राज्याभिषेक होने वाला था किन्तु दूसरे दिन पिता की आज्ञानुसार उन्हें १४ वर्ष के लिये बन में जाना पड़ा । राम को न राज्याभिषेक की प्रसन्नता थी औन न ही वन-गमन का दुख । राम ने सीता स्वयम्वर में जिस शान्ति, धैर्य और विनम्रता से शिव-धनुष तोड़ा था और सीता से जयमाला प्राप्त की थी वही धीरता, गंभीरता, विनम्रता और शान्ति परशुराम द्वारा उन्हें स्वयम्बर सभा में लल-कारने पर भी बनी रही और अन्त में परशुराम को अपनी समस्त शक्ति राम को समर्पित कर पीछे हटना पड़ा । कष्ट आने पर द्रोपदी ने अपने पंचपतियों के साथ वन में कष्टमय जीवन बिताया, राम के बन-गमन पर सीता पीछे नहीं रही और उनके साथ वनवास में रही । सीता ने कहा था, "मुझे मेरे माता-पिता ने पतिव्रता धर्म की पूर्ण शिक्षा दी है, पत्नी का कर्तव्य सदा पति की अनुगामिनी रहना है । रामचन्द्र यदि चन्द्र हैं तो मैं चाँदनी हूँ । हम एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते, हमें तो साथ-साथ ही रहना होगा ।" उर्मिला ने अपने पति लक्ष्मण से कहा था, "मैं अयोध्या में ही रहूंगी, यदि मैं भी आपके साथ जाऊंगी तो आप पूर्ण एकाग्रता के साथ भगवान राम की सेवा नहीं कर सकेंगे ।" इस प्रकार उर्मिला ने अपनी महानता प्रकट की । राम वन में जाने से पूर्व जब अपनी माता कौशल्या के पास पहुंचे तो वह बहुत प्रसन्न हुई यह सोचते हुये कि राज्याभिषेक से पूर्व राम आशीर्वाद प्राप्त करने आये हैं । किन्तु उस समय उनके दुख का ठिकाना न रहा जब राम ने उनसे बनवास काल में सुख-मय जीवन के लिये आशीर्वाद मांगा । राम ने कहा, "जब मैं चौदह वर्षों तक बन में रहूं तो आप यहां प्रसन्नता पूर्वक रहेंगी ।" कौशल्या ने उत्तर दिया "मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूंगी । रानी तो मैं केवल नाम मात्र की ही रह गयी हूँ मेरा जीवन तो आसुओं की धारा बन कर रह गया है । पहले तुम्हें विश्वामित्र लिवा ले गये थे तो मैंने सदा तुम्हारी याद में दिन बिताये । कितने बलशाली राक्षसों से युद्ध किया तुमने

---

१ छः दुश्मन (काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और अहंकार), २ मध्य में स्थित

उस छोटी सी अवस्था में ही। फिर परशुराम ने भी तुम्हें युद्ध के लिये ललकारा था। मैं तो सचमुच बहुत चिन्तित हो गयी थी। मैं तुमसे अलग रहकर कभी सुखी नहीं रह सकती हूं।" राम ने उन्हें समझाया कि उनका कर्तव्य है कि वह शोक-ग्रस्त महाराज दशरथ की सेवा में ही रहें। कौशल्या जैसे-तैसे मान गयी और आशीर्वाद दिया, "जिस धर्म का तुम पालन कर रहे हो वही सदा तुम्हारी रक्षा करे।"

धर्म मर्यादा है, इसके द्वारा ज्ञान और विवेक की वे सीमायें निर्धारित होती हैं जिनसे भावनाओं, मनोविकारों, वासनाओं, संवेगों आदि का नियंत्रण और नियमन होता है। दैविक जीवन में इनके महत्व और उपयोगिता को समझाने का कार्य मैंने प्रशान्ति विद्वान महासभा के सदस्य पंडित जनों को सौंपा है। मानव का अभिप्राय ही है कि जो मन या सीमा का पालन करे। वह इधर-उधर नहीं भटकता, वह तो अपने आप, स्वेच्छा से पूर्ण नियंत्रित, नियमित, संयमित और अनुशासनबद्ध होकर पूर्ण समर्पण के साथ जीवन बिताता है।

वेंकटगिरि
२६-३-१९६८

४०. एक-चौथाई और तीन-चौथाई

मनुष्य की यह आन्तरिक इच्छा होती है कि वह अपना समय अधिक से अधिक दैविक उपस्थिति में, भगवान की सेवा में, ईश्वर के ध्यान में बिताये क्योंकि वह दैविक वातावरण ही मनुष्य के जीवन का प्राण होता है। इसके बिना मनुष्य-जीवन पशु तुल्य है। जन्म से ही मनुष्य को सुसंस्कारित किया जाता है, उसका नैतिक शुद्धिकरण किया जाता है जिससे कि उसकी समस्त गतिविधियां जीवन, के क्रिया-कलाप आध्यात्मिक उपलब्धियों की ओर केन्द्रीभूत हों। इसी से स्थायी सुख की प्राप्ति हो सकती है।

आध्यात्मिक सफलता का सबसे अधिक सीधा उपाय है निष्काम कर्म; फल-प्राप्ति की इच्छा से रहित होकर किया गया कार्य, कर्त्तव्य-कर्म; समर्पण-भावना के साथ की गयी पूजा। कर्म और उसका फल कोई अलग-अलग नहीं है, कार्य का परिणाम स्वयं में कार्य ही है, उसकी पराकाष्ठा है; परिणति है। पुष्प ही फल है, फल ही पुष्प है। एक प्रारम्भ है तो दूसरा उसकी विधिवत्, पूर्ण चर्म स्थिति। पुष्प ही फल बनता है। कर्म की अंतिम परिणति ही उसका परिणाम होता है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपना कर्म करे, भली प्रकार, दक्षता और कुशलता के साथ करे, नैतिक मर्यादाओं की सीमा में रहकर कार्य करें। प्रेममय होकर, पूर्ण तन्मयता के साथ कर्म करो उसका परिणाम तो अवश्यम्भावी रूप से निकलेंगे ही जैसे पुष्प का फल बनता है। परिणामों की चिन्ता बिलकुल नहीं करनी चाहिए। पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ कर्म रत रहो, पूर्ण उत्साह और स्फूर्ति के साथ उसे पूर्ण करो, सफलता अवश्य मिलेगी। अर्जुन ने इसी प्रकार कर्म किया था। उसने कभी हिम्मत नहीं हारी, बस एक बार गीता का उपदेश जो सुना तो अपने कर्तव्य-कर्म में—महाभारत के रणक्षेत्र में—ऐसा युद्धरत हुआ कि वह निराश और हिम्मत हारने वालों को सद्प्रेरणा और उत्साह प्रदान करता रहा। अर्जुन का घोरतम प्रतिद्वन्दी था कर्ण; किन्तु उसका सारथी था शल्य जो उसे सदा संदेह और निराशाजनक स्थिति में डाल देता था जब कि अर्जुन के सारथी थे श्रीकृष्ण जो निराशाजनक स्थितियों में भी साहस और धैर्य दिलाते और सद्बुद्धि व प्ररणा प्रदान करते थे। शल्य का अर्थ ही होता है डंक और वह कर्ण के लिये डंक ही सिद्ध हुआ। वह कर्ण की मृत्यु के लिये घातक हथियार सिद्ध हुआ। भगवान को अपना सारथी बनाओ, आपकी विजय निश्चित है। किसी शल्य को अपना मार्ग-दर्शक या गुरु मत बनाओ।

विवेक से काम लो। इस बात का अच्छी तरह से पता लगाओ कि क्या अच्छा है, क्या हितकर है, शुभ है, शिव है। फिर उसको अपनालो और कुछ भी क्यों न

हो जाये उसे मत त्यागो। दशरथ की ओर देखो ! दशरथ का अर्थ है जो दश रथों (पंच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों) पर सवार हो—दशों दिशाओं में भटकता हो। इसी कारण अपनी रानी कैकयी की मीठी वाणी के भुलावे में फंस कर उन्होंने अपने पुत्र गंवा दिये। प्रवृत्ति होनी चाहिये निवृत्ति के परिणाम स्वरूप; विरक्ति की चेतना के परिणाम स्वरूप; कर्म की प्रेरणा होनी चाहिये। सुखी जीवन का यही रहस्य है।

चार योगों के सम्बन्ध में यह सोचना, विचारना और तर्क करना कि भक्ति, ज्ञान, कर्म, और राज योगों में से कौन-सा श्रेष्ठ है व्यर्थ है, समय की बरबादी है । चारों ही अंतिम विजय के लिये अपना-अपना योगदान करते हैं। कर्म योग माटी का दीया है, भक्ति योग उसमें तेल है, राज योग उसमें बाती है तथा ज्ञान योग प्रकाश है। शुभ कर्म से भक्ति और समर्पण की भावना की जागृति होती है, मनुष्य सब में भगवान को देखता है कि जो कुछ घटित होता है सब भगवान की इच्छा मात्र है, सब में उसका ही हाथ है। भक्ति के इस विकास के साथ ही विकसित होने जाते हैं धारणा और ध्यान भी और फिर उस साधना की चरम परिणिति होती है परम सत्य के साक्षात्कार में।

अहंकार मनुष्य का प्रबलतम शत्रु है, जिसे मनुष्य को विजय प्राप्त करके, नष्ट कर देना चाहिए। राम के बनवास काल में जब वे एक ऋषि के आश्रम में जाते थे तो उनके स्वागत के लिये ऋषिगण बड़ी व्यवस्थायें करते थे। अपने दुःख-दर्दों, कठिनाइयों और संकटों की बड़ी लम्बी-चौड़ी सूचियां तैयार करते और उन्हें राम के समक्ष प्रस्तुत करते थे जिससे कि वे उनकी सहानुभूति, प्रेम और अनुग्रह प्राप्त कर सकें और अपने त्याग और तपस्या का प्रदर्शन कर दूसरों से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर सकें। मतंग ऋषि ने अपने आश्रम की एक वृद्ध परिचारिका को अपनी मृत्यु के समय कहा था कि भगवान राम उस मार्ग से जायेंगे, इसीलिये उसी समय से वह सदा राम के आगमन की उत्सुकता के साथ बाट जोहा करती थी। वह बहुत वृद्धा हो गई थी; किन्तु वेदनापूर्ण हृदय से सदा यही प्रार्थना करती थी कि उस समय तक प्रभु उसे जीवित रखे जब तक उसे भगवान के चरण कमलों को अपने अश्रुओं से धोने का परम सौभाग्य प्राप्त नहीं हो जाये। ऋषिगण उसकी बातों की हंसी उड़ाया करते थे कि देखो इस भीलनी की हिम्मत और मूर्खता कि भगवान के पगपखारने की बात सोचती है। राम जब बन में आये तो वे उन अहंकारी ऋषियों के आश्रमों में गये, उन्होंने भगवान के स्वागत में स्तोत्र पाठ किये। राक्षसों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों और अपनी कठिनाइयों और संकटों का उनके समक्ष विषद् विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि उनकी कठिनाइयां इस सीमा तक बढ़ गयी हैं कि नदी का जल, जो उनकी जल की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का एक मात्र साधन है, भी दूषित कर दिया गया है और वे प्यासे मर रहे हैं। भगवान राम ने उनसे कहा, जिस दिन से वे शबरी के प्रति अपनी भावनायें बदल देंगे, उसकी सरल और अबोध भक्ति की सराहना करने

लगेंगे उसी दिन से जल के समस्त दोष दूर हो जायेंगे। शबरी की भक्ति, श्रद्धा और विश्वास इतने दृढ़ और सबल थे कि भगवान राम को स्वयं ही उसकी कुटिया पर जाना पड़ा था। जिस सरल, अबोध और निर्मल भक्ति के, दृढ़ और सबल विश्वास के वशीभूत भगवान हो जाते हैं, उनके प्राप्त करने में पांडित्य, शक्ति, अधिकार, तपस्या, विद्वत्ता, धन आदि बाधक होते हैं।

वासनाओं और लिप्साओं की तृप्ति के लिये धन, दौलत और भौतिक सुख सुविधाओं के पीछे मत दौड़ो। इन आकर्षणों और प्रलोभनों से बचो ही नहीं, बल्कि उनका प्रतिकार करो। महाराज रघु के राज्य में एक शिष्य ने अपनी शिक्षा पूर्ण हो जाने पर अपने गुरु से यह जानना चाहा कि वह क्या गुरु दक्षिणा चाहते हैं ? गुरु ने उससे कहा कि मुझे किसी दक्षिणा की आवश्यकता नहीं है जो कुछ शिक्षा तुम्हें दी गयी है उसका पूर्ण कृतज्ञता के साथ पालन कर अपने गुरु के नाम को उजागर करो : बस यही गुरु-दक्षिणा पर्याप्त है। किन्तु शिष्य ने हठ किया कि कुछ धन, द्रव्य, वस्तु या पदार्थ अवश्य बताये जिसे वह गुरु-दक्षिणा-स्वरूप उन्हें भेट कर सके। उसके गुरु ने उसे टालने के लिये एक असम्भव धन राशि बता दी और कहा, "तुम ने सोलह विद्यायें मुझसे सीखी है इसीलिये तुम मुझे सोलह लाख निष्क (स्वर्ण मुद्रायें) भेंट करो।" इसे सुनकर वह शिष्य धन एकत्रित करने के लिये चल दिया। वह सर्वप्रथम सम्राट् रघु के पास पहुंचा और उनसे वह वचन ले लिया कि वह उस की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति कर देंगे। इस पर उसने १६ लाख निष्क (स्वर्ण मुद्राओं) की मांग प्रस्तुत की। इतनी बड़ी धन राशि की बात सुनकर महाराज रघु भी दुविधा में पड़ गये कि क्या करें क्योंकि इतनी बड़ी धनराशि एकदम दे पाना उनके लिये भी उस समय संभव नहीं था। फिर भी अपना वचन रखने के लिये उन्होंने कुवेर पर चढ़ाई कर दी जिससे कि उसके खजाने को लूटकर वाँछित धन प्राप्त किया जा सके। महाराज रघु ने वाँछित धन से अधिक धन प्राप्त कर लिया और उसे यह कहते हुये सब धन दे दिया कि जितना अपने गुरु को देना है दे देना और शेष अपने पास रख लेना। किन्तु उस शिष्य ने जितना धन गुरु को देना था उससे एक सिक्का भी अधिक लेना स्वीकार नहीं किया। महाराज रघु ने कहा, "यह तो सब धन मैं तुम्हारे लिये ही लाया हूं अतएव यह सब तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा।" किन्तु वह धन के आकर्षण में नहीं पड़ा और अपने दृढ़ नैतिक आधार पर टिका रहा। यही सच्ची वीरता है। "असंतुष्टः द्विजो नष्टः"— जिन्हें संतोष नहीं होता उनका नाश हो जाता है। भगवान पर भरोसा रखो और जो कुछ तुम्हें प्राप्त होता है उसे स्वीकार करो। भगवान सदा तुम्हारे साथ हैं, तुम्हारे में ही हैं। वह यह भली प्रकार जानते हैं कि कब, कितना और किस को देना है। वह प्रेममय हैं।

यही मेरी विशेषता है : प्रेम। प्रेम ही मेरी विशेष भेंट है, प्रेम ही वह विशिष्ट माध्यम है जिसके द्वारा मेरा अनुग्रह कार्य करता है। यही मेरे सब कार्यों का आधार है।

कहते हैं भगवान सब में वास करते हैं। हाँ; वह प्रेम के रूप में सब में रहते हैं। प्रेम के बिना संसार दुख का उबलता सागर बन जायेगा। प्रेम के बिना मनुष्य की वही स्थिति है जैसे पानी के बिना मछली की। बिना जल के यदि मछली को किसी रत्न जड़ित स्वर्ण के पात्र में रख दो तो भी मछली छटपटाती रहेगी और अन्त में मर जायेगी। इसी प्रकार मनुष्य भी बिना प्रेम के छटपटाता रहता है। लक्ष्मण अपनी शैशवावस्था में एक रात बड़े जोर-जोर से रोने लगे तो उनकी माता सुमित्रा बड़ी चिन्तित और भयभीत हुईं कि कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं लग गया है। वे मुनि वशिष्ठ के पास पहुंचीं कि वे बालक के माथे पर विभूति लगायें जिससे कि उसका भूत उतर जाये। वशिष्ठ बालक के रोने के रहस्य को जानते थे। उन्होंने कहा, "जाओ बालक को ले जाओ और राम के पास लिटा दो, यह अपना रोना बन्द कर देगा।" लक्ष्मण, राम से कुछ क्षणों का विछोह भी सहन नहीं कर सकते थे। सबको ही उस निकटतम स्थान की आवश्यकता है। वास्तव में वह ही सब का मूल स्थान है। यही कारण था कि लक्ष्मण वन में भी राम के साथ गये थे। विश्वामित्र भी जब उन्हें अपने साथ अपने आश्रम में लिवा कर ले गये थे, तब भी लक्ष्मण ही उनके साथ गये थे।

साधना तो आध्यात्मिक प्रक्रिया का एक-चौथाई है, शेष तीन-चौथाई तो विचार हैं। मधुमेह के उपचार में 'इन्सुलिन' का इंजेक्शन तो एक चौथाई भाग है, शेष तीन-चौथाई तो संयत भोजन, व्यायाम तथा अन्य संयमों का पालन होता है। जिस नाम स्मरण की साधना पर मैं बल देता हूं उसके साथ-साथ दो और बातें निहित हैं। पहली तो यह कि मन नाम के अर्थ और रूप में स्थिर हो जाये और दूसरे इसके साथ ही भाव-शुद्धि और अर्थ विचारण। सफलता सुनिश्चित होगी।

वेंकटगिरि
२७-३-१९६८

४१. सींग और हाथी दांत

गुडूर क्षेत्र में अभ्रक प्राप्त होती है किन्तु वह वैसे ही नहीं मिल जाती, उसे खानों से खोदकर चट्टानों से अलग करके निकालना होता है। प्रयत्न पूर्वक खनन[1] करके अभ्रक की उपलब्धि में एक आनन्द निहित है जो उसके सीधे जमीन की सतह पर प्राप्त हो जाने में नहीं है। सतत् प्रयत्नों के फलस्वरूप ही आनन्द की प्राप्ति होती हैं। दीर्घ काल तक कष्ट, अपमान और अपयश सहन करने के पश्चात ही मनुष्य परमानन्द प्राप्त कर सकता है। महाराज जनक ने जब अपनी पुत्री सीता के लिए स्वयंवर किया था उसमें अनेकों ऋषि व मुनि गण भी आये थे। उस समय शौनक ऋषि ने कहा था, "हे राजन्! हम लोग यहां इसलिये आये हैं क्योंकि भगवान स्वयं इस स्वयंवर में दशरथ पुत्र श्रीराम के रूप में पधारे हुये हैं। भगवान के दर्शनों के लिए हम बहुत काल से प्रार्थना करते रहे हैं और उन्होंने मानवरूप में अवतार लेकर हम पर कृपा की है। हमने तो स्वयं ही पहले से उनका वरण कर लिया है। यह स्वयम्वर है जिसमें कन्या अपने लिये योग्य पति का स्वयं वरण करती है, हमने यह पहले ही कर लिया है।" जिन्होंने पहले ही यह निर्णय कर लिया है कि वह उनके भगवान हैं, स्वामी हैं; वे ही परमानन्द प्राप्त कर सकते हैं।

घड़ी में सेकण्ड की सूई बहुत तेज चलती है; जब वह पूरा एक चक्कर काट लेती है तो मिनट की सूई उसका साठवां भाग ही खिसकती है और उसकी चाल दिखाई नहीं देती। जब मिनट की सुई एक चक्र पूर्ण कर लेती है तो, 'घंटे की सूई' केवल एक अंक ही आगे बढ़ती है। सैकण्ड की सूई कर्म का प्रतीक है, स्थूल शरीर द्वारा किये गए अनेकों शुभ कार्यों के फलस्वरूप सूक्ष्म शरीर अथवा आन्तरिक चेतना में गति आती है और वह थोड़ा-सा आगे बढ़ती है। इस प्रकार चित्त या आन्तरिक चेतना की शुद्धि के परिणाम-स्वरूप 'कारण शरीर' आत्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता है। यदि सैकण्ड की सूई चलती रहे तो ही पर्याप्त होगा, अन्य सूइयां तो अति सूक्ष्म और अदृश्य गति से आगे बढ़ती रहेंगी। त्याग वह चाबी है जो सूई को आगे चलाती है। त्याग से ही अमरत्व प्राप्त होता है। त्यागराज बनो, भोगराज मत बनो।

यह जो यज्ञ पूर्ण हुआ है उसके महत्व को समझाते हुये अभी पंडितजी ने बतलाया था कि यज्ञ के द्वारा रुद्र का रौद्र रूप शान्त हो जाता है और रुद्र परम कल्याणकारी और आनन्ददाता शिव बन जाते हैं। भगवान सब गुणों से परे—गुणातीत[2] हैं। उन्हें कोई आग्रह या क्रोध नहीं। वह तो सदा प्रेमस्वरूप हैं। मिट्टी

---

१ खोदना २ गुणों से अलग अर्थात् ईश्वर

के घट में मिट्टी होती है किन्तु मिट्टी में घट नहीं होता है। भगवान से किसी को भयभीत नहीं होना चाहिये। भगवान से तो इतना प्रेम होना चाहिये कि जो कार्य भगवान को अप्रिय हैं उन्हें आप स्वयं ही उनके प्रेम में त्याग दें। आपको भयभीत होना चाहिये कुछ भी अशुभ, असत्य या मिथ्या करने में, घृणा या द्वेष करने में, भय होना चाहिये कि कहीं कोई ऐसा कार्य न हो जाये जिससे कि प्रभु के अनुग्रह से वंचित रह जायें। यज्ञ का तभी तक महत्व है जब तक आप 'अहं देहास्मि' की अनुभूति रखते हैं, जब आपको 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति हो जाती है तो यज्ञ का कोई महत्व नहीं रहता। या जब आप सब कुछ भगवान के प्रति समर्पित करते हुए, त्याग स्वरूप यज्ञ करते हैं और फल की कोई इच्छा नहीं रखते उसमें किसी प्रकार के लाभ की कोई अभिलाषा निहित नहीं होती तो यज्ञ सार्थक होता है।

किसी ने रामकृष्ण परमहंस से प्रश्न किया, "आप अपनी काया को क्यों इतना कष्ट देते हैं और दुःख उठाते हैं ? भौतिक सुख-साधनों के प्रति इतनी उपेक्षा, उनसे वैराग्य क्या पागलपन के प्रतीक नहीं है ?" रामकृष्ण ने उत्तर दिया, "जो लोग मुझ में दोष ढूंढ़ते हैं उन बेचारों को स्वयं के अपने दोषों का ही पता नहीं। इस हाड़-माँस के पुतले के लिए ही इतने कष्ट सहना पागलपन नहीं है क्या ?" इस देह की सार्थकता उपयोगिता तो इस बात में निहित है कि इसके माध्यम से हम स्थायी सुख, परमानन्द के स्रोत का पता लगाकर उससे अपना सम्बन्ध स्थायी बना लें तो फिर कोई दुःख या कष्ट रह ही न जाये। रामकृष्ण दक्षिणेश्वर मंदिर के फर्श पर व्यग्रता से तड़पते लोट-पोट हो जाते थे, आनन्द के स्रोत का पता लगाये बिना, आत्म साक्षात्कार किये बिना, जगत् जननी माँ के दर्शन के बिना जो घड़ी, जो दिन निकल जाता था उसका उन्हें बड़ा पश्चाताप होता था, वे व्याकुल हो जाते, विह्वल हो उठते, रोते और अन्तर वेदना से कराहते थे। उस साधना के कारण ही रामकृष्ण अमर हो गये जब कि वह मूर्ख प्रश्नकर्ता इतिहास के पृष्ठों से विस्मृत है। भगवान के सम्बन्ध में कहा गया है, "शान्ताकारम् भुजगशयनम्"। भुजग महान विषधर सर्प होता है, उसका विष संसार की इच्छाओं, विषय-वासनाओं का प्रतीक है। भगवान इस संसार रूपी भुजग पर बिना किसी प्रकार प्रभावित हुये पूर्ण शान्ति के साथ शयन करते हैं। भगवान सम्पूर्ण सृष्टि में पूर्ण रूप से अन्तर स्थित हैं; व्याप्त हैं, किन्तु फिर भी वह उससे अप्रभावित हैं। मनुष्य को भी संसार में रहना चाहिये लेकिन संसार का होकर नहीं उसके ऊपर उठकर रहना चाहिए।

यदि पंखा हाथ में ही पकड़े रहे तो हवा नहीं प्राप्त होगी, उसके लिए तो पंखे को, हाथ हिलाकर हिलाना होगा। जितनी तेजी से उसे हिलाओगे उतनी ही हवा मिलेगी। पंखे में वह शीतल बयार नहीं होती, वह तो चारों ओर व्याप्त रहती है, साधन के द्वारा उसको अपनी ओर करो। इसी प्रकार भगवान का अनुग्रह, उनकी कृपा तो सर्वत्र व्याप्त है साधना के द्वारा उसे अपनी ओर करो और आनन्द प्राप्त करो। आप लोगों को इस उपदेश की आवश्यकता है और वही मैं आपको देता हूं।

आप लोगों ने तीन दिनों तक पंडितों के प्रवचन सुने और अब आप इस नगर में सत्य साई सेवा समिति की स्थापना कर रहे हैं। अन्य सभी संस्थाओं से आपकी संस्था भिन्न होगी। आपको इसका गठन प्रेम के आधार पर करना होगा, उसका आधार होगा "वासुदेव सर्वम् इदम्"—अखिल विश्व वासुदेवमय है, सभी वासुदेव रूप है, अतएव सबकी सेवा भगवान की पूजा के रूप में करनी है। इसमें दृढ़ विश्वास लाना होगा और इसका अनुपालन करते हुये इस सत्य का साक्षात्कार करना होगा, आत्मानुभूति प्राप्त करनी होगी। पूर्ण सजग और सावधान रहना होगा कि कहीं घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, दंभ और पाखंड का कोई अंश भी आप में शेष नहीं रह जाये अन्यथा आपकी समिति का सर्वनाश हो जायेगा। ईश्वर में विश्वास से ही मनुष्य का मनुष्य में विश्वास दृढ़ होता है, क्योंकि मनुष्य ईश्वर का चलता-फिरता मंदिर है इससे 'मैं' और 'मेरा' की स्वार्थ भावना नष्ट हो जायेगी क्योंकि सब कुछ भगवान ही है और प्रत्येक वस्तु उसकी ही है।

प्रारम्भ से ही इस बात की पूर्ण सावधानी रखी जानी चाहिये कि जो भी बीज बोया जाये वह सब प्रकार से दोष रहित और अच्छी किस्म का हो और उसको ठीक और उचित ढंग से बोया जाता है। कोई भी कार्य केवल दिखावे के लिए, नाम और यश कमाने के लिए, प्रतिस्पर्धा में दूसरों को नीचा दिखाने के लिए मत करो। अपनी स्वयं की गल्तियों से होने वाले दुष्परिणामों का दोषारोपण दैव पर मत डालो। हर कार्य के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में भगवान से प्रार्थना करो कि दंभ का कीड़ा प्रयत्नों का नाश न कर दे। भैंस के सींग होते हैं और हाथी के दांत होते हैं, किन्तु दोनों में कितना अन्तर होता है। हाथी के दांत बहुत मूल्यवान समझे जाते हैं। ईश्वर में विश्वास करने वाले और ईश्वर में विश्वास नहीं करने वाले दोनों ही मनुष्य होते हैं; किन्तु दोनों में कितना अन्तर होता है। ईश्वर में विश्वास के कारण मनुष्य कितना अधिक दक्ष, आत्मविश्वासी, साहसी और बुद्धिमान् हो जाता है।

वेंकटगिरि के राजा ने अभी आप से कहा है कि भगवान के नाम में अपार शक्ति होती है। आप हाथों से कोई भी कार्य करते रहें, जिह्वा पर भगवान का नाम रहना चाहिये, मन नाम में रमा होना चाहिये। इस प्रकार भगवान चिन्तन करते हुये कार्य करने से आप पायेंगे कि कार्य कितना सरल और प्रिय हो जाता है। नाम स्मरण के प्रभाव से जो गर्मी उत्पन्न होगी उसके कारण कर्म फलों की जमी हुई बर्फीली ऊंची चोटियां पिघल-पिघल कर ढेर की ढेर बर्फीली चट्टानें और हिम खंड नीचे खिसक आयेंगे और गलकर बह जायेंगी। दिन में सूर्य का ताप चोटी की बर्फ को पिघलाकर बहा देता है किन्तु रात्रि में शीत के कारण चोटी पर फिर हिम जम जाता है इसी प्रकार नाम स्मरण की उष्णता के अभाव में अज्ञान और अविवेक के कारण कर्म-फलों की बर्फ फिर से जमने लगती है। पश्चाताप और प्रार्थना के प्रभाव से

कर्म-फलों के हिम का संचय रुक जायेगा, भगवान के तेज और प्रताप, ऐश्वर्य और गौरव-गरिमा के स्मरण की उष्णता से जो भी हिम जम गया होगा पिघलकर बह जायेगा नाम स्मरण के प्रभाव से हिम शिखर गलकर समतल बन जायेगा।

मलेरिया ज्वर से पीड़ित रोगी लड्डुओं का स्वाद नहीं ले सकता। स्वस्थ आदमी को लड्डू मीठे लगते हैं किन्तु मलेरिया ज्वर से पीड़ित व्यक्ति की जीभ का स्वाद कड़वा हो जाता है अतएव उसे मीठे लड्डू भी कड़ुवे लगते हैं। जो लोग सांसारिक महत्वाकांक्षाओं, भौतिक सुख-सुविधाओं, इन्द्रिय-लिप्साओं और वासनाओं की पूर्ति के लिये दीवाने हुये लोग, आध्यात्मिक विचार से दृष्टि-दोषों से पीड़ित जन ईश्वर के प्रेम और माधुर्य का रसास्वादन नहीं कर सकते, वे उसके कल्याणकारी प्रभाव से वंचित रह जाते हैं। सेवा समितियों के सदस्यों को चाहिये कि वे अपने भीतर के इस प्रकार के दोषों को दूर करें, पूर्ण रूप से लाभान्वित हों तथा दूसरों के लिए प्रेरणा के स्रोत बनें। दूसरों के दोषों की ओर उंगली उठाने से पूर्व स्वयं आत्म-निरीक्षण करो और यह सुनिश्चित कर लो कि आप स्वयं सब दोषों से रहित हैं, तभी आप किसी के सम्बन्ध में कुछ कह सकते हैं; किन्तु विस्मय तो यह है कि दोष व्यक्ति में स्वयं में किसी न किसी रूप में विद्यमान होते हैं, वे ही दोष वह दूसरों में देखता है और उनकी ओर इन्गित करता है। एक बार जब आप स्वयं पूर्ण रूप से दोषों से मुक्त होकर शुद्ध और निर्मल बन जायेंगे तो आपको दूसरे भी दोष रहित, निर्मल और पवित्र भगवान के स्वरूप दिखाई देंगे। ऐसी दैविक पारस मणि की सी शक्ति आ जाती है कि जिसे छू दो वही स्वर्ण— जिस ओर निहारो भगवान ही भगवान। दैविक प्रेम, सारी सृष्टि प्रेम-मय हो जाती है, विशुद्ध निर्मल प्रेम, केवल प्रेम के लिए प्रेम।

वेंकटगिरि
२८-३-६८

४२. खोयी हुई कुन्जी

आध्यात्मिक सम्भाषणों और उपदेशों के इस भोजोत्सव में भाग लेने के लिये आप लोग कई हजारों की संख्या में यहाँ उपस्थित हुये हैं। नववर्ष के शुभागमन को मनाने का यह सर्वश्रेष्ठ और परम लाभप्रद तरीका है। शेर किसी एक झाड़ी में मार्ग के पास छिपा रहता है और जैसे ही उसका शिकार उस ओर से निकलता है उस पर टूट पड़ता है और फिर उसे दबोच कर घसीटता हुआ अपनी मांद पर ले आता है। इसी प्रकार मृत्यु अपने शिकार—मनुष्य—की प्रतीक्षा में छिपी हुई बैठी रहती है, दुबकी हुई चुपचाप मनुष्य का पीछा करती है और जैसे ही उसका समय आता है वह मनुष्य को अपने पंजों में दबोच कर उसकी जीवन लीला समाप्त कर देती है। पुष्प मुरझा जाते हैं, फल सड़ जाते हैं, पेड़ सूख जाते हैं। जीवन तो जन्म और मृत्यु के बीच का अन्तराल[1] है, जन्म के समय प्रारम्भ हुआ जुलूस है जो श्मसान या कब्रिस्तान पर जाकर समाप्त हो जाता है।

भगवान को अपने दीपक के स्वरूप में ग्रहण करो फिर आप अपनी जीवन यात्रा सुरक्षा के साथ पूरी कर सकोगे। अपनी जिह्वा पर भगवान का नाम सदा बनाये रखो, उस नाम के रूप का सदा ध्यान रखो, बस वह नाम और रूप में आप से आबद्ध हो जायेंगे। आज ही इस साधना का सत्य संकल्प ले लो सदा सतत् नाम स्मरण करने का। राम नाम का स्मरण करो क्योंकि राम का अर्थ ही है जो आनन्द प्रदान करे, जो स्वयं आनन्द रूप है, "रमते रमयते इति राम"। अध्यात्म रामायण पढ़ो जो रामायण महाकाव्य के आध्यात्मिक महत्व को स्पष्ट करती है।

सम्पूर्ण रामायण महाकाव्य दो स्त्रियों और दो विकारों पर ही आधारित है, मंथरा जो क्रोध का प्रतीक है और शूर्पणखा जो काम का प्रतीक है। मंथरा ने राम को बनवास में भेजने का षडयंत्र रचा, तो शूर्पणखा ने सीता हरण का जिसके फलस्वरूप राक्षसों का नाश हुआ। दोनों ही स्त्रियाँ कथा में महत्वहीन पात्र हैं; किन्तु जो भी अभिनय, जो भी भूमिका उनके सुपुर्द है उसका वे बड़ी कुशलता और दक्षता के साथ सम्पादन करती हैं; उनके कार्य मुख्य कार्य बन गये जिनके कारण वह चिनगारी फैली कि करुणा और शोक के लम्बे-लम्बे अध्याय रचे गये। क्रोध और काम अणु बम से भी अधिक शक्तिशाली और विनाशकारी हैं किन्तु जब राम हृदय में स्थापित हों तो वे निष्क्रिय सिद्ध हो जाते हैं।

---

१ समय

इन महाकाव्यों का इसी प्रकार स्वागत करो और उन्हें अपनाओ जिस प्रकार आप प्रभावशाली मूल्यवान औषधियों को अपनाते हैं; इन महाकाव्यों के अध्ययन और परिशीलन से मानसिक विकारों की गहरी जमी जड़ें भी निकल जायेंगी और दोषों और विकारों से रहित शुद्ध और निर्मल बन जाओगे। मन के भय और संदेहों को निकालने के लिये अंतः करण के विकारों और आन्तरिक चेतना के दोषों को दूर करने के लिये मंत्रों को औषधियों के रूप में ग्रहण करो। वे आपके दृष्टि दोषों को दूर कर आपको अधिक शक्तिशाली और समर्थ बना देंगे जिससे कि आप ईश्वरीय मार्ग पर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते चले जाय।

भगवान का अनुग्रह तो वर्षा के समान है, सूर्य के प्रकाश के समान है सबके लिए एक समान रूप से। आपको उसको ग्रहण करने के लिए कुछ साधना करनी होगी। जिस प्रकार वर्षा का जल प्राप्त करने के लिए एक खाली और खुले बर्तन को सीधा रखते हैं वैसे ही अपने हृदय के द्वार खोल उसे विकारों से रहित करके ईश्वरीय कृपा-वृष्टि की ओर लगा देना होगा, द्वार खुला कि प्रकाश भीतर आयेगा, हृदय का द्वार खोलो।

रेडियो पर प्रसारित होने वाला संगीत वायु मंडल में सर्वत्र उपस्थित रहता है किन्तु आपको अपने अभिग्राही यंत्र अर्थात् रेडियो रिसीविंग सेट को वांछित वेवलेंग्थ[1] पर लगाना होगा जिससे कि आप उस संगीत को सुन सकें। भगवान के अनुग्रह के लिए प्रार्थना करो; कम से कम इतनी साधना तो करो ही। प्रभु की कृपा से सब कुछ ठीक होता चला जायेगा। इसका लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार किन्तु साथ में आत्म लाभ भी है। यहाँ जीवन सुख और संतोष से पूर्ण और शान्ति और समत्व में नित्य स्थिति। किसी के पास कोई रत्न या हीरा होता है तो उसे व्यक्तिगत संतुष्टि होती है; किन्तु इसके साथ ही उसका और भी लाभ यह होता है कि यदि कभी सम्पूर्ण धन समाप्त हो जाये और एक पैसा तक न बचे तो वह व्यक्ति उस हीरे को बेचकर धन प्राप्त कर सकता है और अपना फिर से जीवन यापन प्रारम्भ कर सकता है। केले के पेड़ का मुख्य लाभ है केले के फल प्राप्त करना किन्तु केले के पुष्प, उसके पत्ते, उसका तना सभी किसी न किसी रूप में उपयोग में आते हैं और उनका उपभोग किया जाता है। इसी प्रकार होता है भगवत अनुग्रह। उससे भी अनेकों आवश्यकताओं की स्वतः ही पूर्ति हो जाती है।

यदि आप का भगवान में विश्वास नहीं है तो आप उनके अनुग्रह के प्रभाव को नहीं समझ सकते, नहीं पहचान सकते। यदि आप भ्रम, संदेह, आलोचनायें करें और

१ दूरगामिनी लहरें, विद्युत तरंगें

दोष ढूंढने लगेंगे तो उसका परिणाम और अधिक उलझन और अंधकार में पड़ना होगा। अपवित्र विचारों से एक ऐसी धुंध और धुआं उठता है कि वह मन और मस्तिष्क को आच्छादित कर देता है। फिर भला दृष्टि स्पष्ट कैसे हो। एक गडरिये के लड़के को एक बड़ा हीरा मिला और उसने उसे कांच का टुकड़ा समझ कर उठा लिया और उसे अपनी भेड़ के गले में बांधने लगा। वास्तव में वह उसके लिये उपयुक्त स्थान नहीं है। किन्तु अज्ञान वश ऐसा होता है। मनुष्य ने भी अज्ञान के कारण अपने मूल्य को, अपने दैवत्व को भुला दिया है और वह भी भेड़ के गले में मूल्यवान हीरे को कांच के रूप में बंधे जाने वाली स्थिति में ही है। वह अपनी वास्तविक स्थिति को भूलकर जिस स्थान पर होना चाहिए वहां नहीं है और किसी अन्य अनुपयुक्त स्थान पर चिपका हुआ है।

देश भी इस मूल्य-ह्रास[1] का शिकार हो गया है। भारत जिसको संसार मानवता के विश्व गुरु के रूप में देखता था। संसार के देश जो वास्तविक सुख-शान्ति चाहते थे भारतवर्ष की ओर आशा भरी दृष्टि से देखते थे और वही भारत आज अपने उस प्राचीन महान मूल स्वरूप को भूल गया है और सिर नीचा किये उन्हीं देशों के द्वार पर कुछ प्राप्त करने के लिये अपना हाथ पसारे हुये खड़ा है। उस वैदिक अनुशासन की जिससे कहा गया है कि अपनी माता को देवरूप समझने वाले बनो। 'मातृ देवो भव' हर घर में उपेक्षा की जा रही है अतएव आज देश की संतान भ्रमित, माँ के आशीर्वाद से वंचित है। वे पूर्ण समृद्धि, और शान्ति नहीं पा रहे हैं। अपने माता पिता का, आचार्य और गुरुजनों का देवतुल्य सम्मान करो यही सनातन धर्म की शिक्षा है। भाई के साथ पूर्ण भ्रातृभाव के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए, स्नेह और प्रेम से पूर्ण। जो अपने बन्धु-बाँधवों से घृणा और द्वेष करते हैं उनका समूल नाश हो जाता है, यह शिक्षा है महाभारत की जिसे इस देश में करोड़ों लोग पंचम वेद के रूप में मानते हैं।

एक बार एक गुरु ने अपने शिष्यों को उनके द्वारा समर्पित फल उन्हें ही यह कहकर लौटा दिये कि जो फल जिसे प्रिय हो वह ले लो। अन्य शिष्यों ने तो अपनी-अपनी रुचि के अनुसार फल उठा लिये किन्तु एक शिष्य एक कोने में चुपचाप बैठा रहा मानो उसे उनसे कोई मतलब ही न हो। उसके गुरु ने उससे पूछा, "क्यों भाई, कैसे चुपचाप बैठे हो। तुम्हें क्या पसंद है?" उस शिष्य का उत्तर था, "मैं ही।" यह होना चाहिए दृष्टिकोण। यदि आप अपने आप को ही सबसे अधिक चाहते हैं तो अपना निर्माण करो अपने आपको सच्चे और स्पष्ट रूप में पहचानो, अपने आपका पूर्ण सम्मान करो, जितने भी श्रेष्ठ बन सकते हो बनो, अपनी शक्ति, प्रतिभा, कौशल

---

१ मूल्य में ह्रानि, कमी

ग्रौर ज्ञान का श्रेष्ठतम उपयोग करो ग्रौर परमानन्द तथा परम शान्ति को प्राप्त करो। ग्रपने भीतर जो शिव है उस पर विश्वास करो, न कि शरीर पर जो उस शिव के विना शव-मात्र है। हर श्वास उच्छ्वास में उसके नाम ग्रौर यश का स्मरण करो। मन, कार्य ग्रौर वचन से दैवत्व से परिपूरित हो जाग्रो। फिर तुम मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकोगे ग्रौर अमर हो जाग्रोगे। शिव का नाम याद रखकर शव-मात्र बनने से ग्रपनी रक्षा करो। तुम वास्तविक रूप में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के प्रतिरूप हो। किन्तु वह चावी जिससे ये सब स्रोत खुलते हैं तुम कहीं रखकर भूल गये हो। वह चावी तुम्हारी ही अन्तर चेतना के क्षेत्र में रखी हुई है किन्तु उसे बाह्य जगत में भौतिक पदार्थों की जगमगाहट में ढूंढते हो ग्रौर उस बुढ़िया की कहानी चरितार्थ करते हो जिसकी सुई तो खो गई थी उसकी झोंपड़ी के अंधकार में, ग्रौर वह उसे ढूंढ़ती थी बाहर सड़क की बत्ती के नीचे यह कहकर कि भीतर अंधेरा है ग्रौर बत्ती के नीचे उजाला है।

आप लोगों को नामस्मरण सिखाने के लिये मैं नामावलियाँ अपने संभाषण के बाद गाता हूं ग्रौर ग्राप सब लोगों से भी उन्हें गाने के लिये कहता हूं। एक ग्राई. सी. एस. ग्रधिकारी को भी ग्रपने बच्चों को पढ़ाने के लिये स्लेट पर A, B, C, D वर्णमाला के ग्रक्षर लिखने पड़ते है। जब यह ऐसा करता है तो क्या ग्राप इसका ग्रर्थ यह लगाते हैं कि वह उच्च अधिकारी वर्णमाला के ग्रक्षर सीख रहा है। इसलिये यदि मैं ग्रपना भजन गाता हूं तो ग्राप लोगों को इष्ट-फल-प्रदायक[1] साधन की दीक्षा देता हूं। इस नाम स्मरण के द्वारा अपने ग्राप को सुदृढ़ ग्रौर सबल बनाओ; ग्रपने मल विक्षेप[2] ग्रौर आवरणों को हटाकार विशुद्ध ग्रौर निर्मल बनो —सुशिक्षित बनो। सब साथ मिलकर जोर से बोलो। जो ग्रापके साथ बैठे वे भी सुने ग्रौर नाम के ग्रमृत रस पान करे। मेरा ग्रापको नववर्ष का यही संदेश है।

मैं ग्राप लोगों को नववर्ष के शुभागमन पर भक्ति ग्रौर मधुर ग्राध्यात्मिक अनुभवों के लिये ग्राशीर्वाद देता हूं। ग्राज प्लवंग[3] वर्ष विदा ले रहा है ग्रौर कीलक[4] का शुभागमन हो रहा है। मानव इतिहास में यह क्रम कितने वार हुग्रा है ग्रब तक समय के काल-चक्र में इसकी ग्रसंख्य बार आवृत्ति[5] हो चुकी है। यह ग्रवसर ऐसे ही मत निकलने दो। कीलक का ग्रर्थ होता है कील, खूंटी, खम्भ, स्तंभ। ग्राज के दिन ग्रापको चाहिये उस एक ग्राधार को, उस एक स्तंभ को ढूंढ़ निकालें जिस पर सम्पूर्ण ग्राध्यात्मिक सफलता ग्राधारित है—टिकी हुई है। मैं आपको बताता हूं कि वह क्या है? प्रेम, भक्ति, सर्वेश्वर की सेवा जो सम्पूर्ण मानवता में समान रूप से समाया है।

---

१ इच्छित फल देने वाला। २ बाधा, व्यवधान। ३ विक्रमी संवत् के वर्ष का नाम। ४ कील या खूंटी, ग्रथवा विक्रमी संवत् के वर्ष का नाम। ५ पुनरावृत्ति, दोहराया जाना।

प्रेम, भक्ति और सेवा से भगवान को प्राप्त करो, उनका साक्षात्कार करो—आत्म-साक्षात्कार करो। भूखों को भोजन दो क्योंकि भोजन तो अन्न-पूर्णा मां की भेंट है; प्रेम और विनम्रता से दो, भगवान के मधुर नाम के साथ दो।

नभ मंडल में नक्षत्र चक्र लगा रहे हैं, नव गठन और विगठन हो रहे हैं, समय भागा चला जा रहा, युगों के बाद युग बीतते चले जा रहे हैं; जो शरीर जन्म लेता है, विकसित होता है उसका अन्त हो जाता। और यह क्रम अबाध गति से चलता चला आ रहा है; किन्तु शुभ विचारों और शुभ कर्मों से जीवन को पवित्र बनाने की अन्तः प्रेरणा कहीं दिखाई नहीं देती। त्याग और वैराग्य के द्वारा बहुत कुछ उपलब्ध किया जा सकता है। संसार से विरक्त हो जाओ, भगवान से अनुरक्त हो जाओगे। जो कुछ बीत चुका है उसे बिसार दो, आने वाले कल की सुध लो और उसके लिये आज से तैयारी करो। उसे प्रेम, सेवा और साधना के द्वारा पावन और पवित्र बनाने का आज ही दृढ़ संकल्प करो।

वेंकटगिरि
नववर्ष दिवस
२९-३-१९६८

४३. एकता की इकाई

आध्यात्मिक मूल्यों के सम्वन्ध में भारतीय ऋषि-मुनियों की मूलभूत शिक्षाओं की इतनी घोर उपेक्षा की गयी है कि लोभ और स्वार्थपूर्ण प्रतिस्पर्धाओं के कारण यह देश वास्तविक सुख और शान्ति से शून्य होता जा रहा है। जीवन कृत्रिम बन गया है; रक्तहीनता से पीड़ित भय और चिन्ताओं से आक्रान्त है। ऐसी स्थिति में आप लोगों ने अपने इस वम्बई नगर में धर्मक्षेत्र का निर्माण किया है। अणुवम के इस युग में अन्य लोगों ने यह आत्मिक आनन्द की पूजा स्थली निर्मित की है। यह आप लोगों की भक्ति और विश्वास का प्रतीक है, इस देश के उच्च आदर्शों के प्रति आस्था और ऋषि-मुनियों द्वारा पोषित महान परम्पराओं के प्रति आपकी भक्ति का परिचायक है। परमानन्द को प्राप्ति का बीज मनुष्यों के हृदय में सुषुप्त दवा पड़ा है, वहुत कम लोग ऐसे हैं जो उस बीज को उगाते हैं, उसके पूर्ण रूप से विकसित और फलित होने तक उसका पालन-पोषण करते हैं। अधिकतर तो ऐसे ही लोग हैं जिन्हें उसके अस्तित्व का ही बोध नहीं है; वे तो कटीले झाड़ बोते हैं, घृणा के कड़वे फल देने वाले वृक्ष लगाते हैं।

विकासवाद की प्रक्रिया में मनुष्य प्रकृति द्वारा वैसे ही फेंक दिया गया कोई जीव नहीं है। उसकी तो अपनी एक विशेष स्थिति है, उसका एक विशिष्ट लक्ष्य है, अर्थ है, उद्देश्य है और उसका एक विशेष कार्य है। वह तो मनुष्य के रूप में देव है। भगवान कृष्ण ने गीता के १५वें अध्याय के ७वें श्लोक में कहा है "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति" अर्थात् इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है (और वही इस) त्रिगुणमयी माया में स्थित हुयी मन सहित पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है। इस प्रकार मनुष्य तो इस एकता की एक इकाई मात्र है, वह तो परमात्मा का ही अंश है, इस नाशवान शरीर के भीतर छिपा अविनाशी तत्व है। उसका लक्ष्य है उस परमात्मा में लीन होना जिससे वह प्रकट हुआ है। स्वर्ग सदा बसन्त बहार वाला कोई पृथ्वी से परे अन्य लोक नहीं है बल्कि वह तो आन्तरिक अनुभव है जिसे परमानन्द की स्थिति कहते हैं।

यदि आप लोगों से कोई प्रश्न करता है कि आप कहाँ से आये हैं तो आप तत्काल उत्तर देते हैं 'दिल्ली' से या 'कलकत्ता' से या 'त्रिवेन्द्रम' से। किन्तु वे तो वे स्थान हैं जहाँ से आप लोगों के शरीर बम्बई आये हैं। इस देह में उनका स्रोत, अवलम्ब और आधार—'देही'—वन्द है। यह देही देह से भिन्न है। वह देही या आत्मा कहां से आयी यह आपके ज्ञान से परे है। इसका पता लगाओ, इसकी खोज

करो यही मनुष्य का कार्य है। जब आप अपने मूल स्रोत, अवलम्ब और आधार का पता लगायेंगे तो पायेंगे कि वह न केवल आपके व्यक्तित्व का ही, वल्कि समस्त सृष्टि का स्रष्टा है, पालन करता और विनाश करता है; वही एक परम शक्ति है और नाना रूपों में भासित हैं। फिर आप सव बन्धनों से मुक्त हो जायेंगे। इसमें विलम्ब मत करो। समय उड़ता चला जा रहा है, अपने सत्य ज्ञान की पिपासा से, अमृत-पान की इच्छा से, आत्म-साक्षात्कार की लगन से प्रेरित होकर बढ़ते चलो।

कहते हैं कि ज्ञान की उपलब्धि-विश्लेष्णात्मक[1] पद्धति का परिपालन करने से होती है। किसी वस्तु को विभाजित करके उसके खंड करके श्रेणीवद्ध करने, उसके देखने, अनुभव करने, उसके पक्ष-विपक्ष में विचार करने, हानि-लाभ, अनुकूलता-प्रतिकूलता, स्थायित्व-अस्थायित्व आदि वातें जानने विचारने से उसका ज्ञान प्राप्त होता है। किन्तु उच्चतर ज्ञान प्राप्त होने पर विश्लेषण और विभाजन समाप्त हो जाता है, उस ज्ञान के प्राप्त होने पर तो अनुभव होता है कि एक ही परम सत्य सब में समान रूप से समाया है और वही विभिन्न रूपों में भासित हो रहा है, विभिन्न मिथ्या आवरणों से ढका सत्य स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है। इस सत्य का पता लगाने के लिये धर्म-शास्त्रों में दो अनुशासन वतलाये हैं—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य है 'निष्काम कर्म' और आन्तरिक है 'ध्यान'। कर्म का नियमन धर्म से होना चाहिये फिर वह ब्रह्म तक, स्वयं के और इस सम्पूर्ण सृष्टि के परम तत्व तक पहुंचा देगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यहाँ उपस्थित जन समुदाय में बहुत से ऐसे हैं जो इन अनुशासनों—आध्यात्मिक साधनों के सम्बन्ध में बड़े उत्साह और कुशलता के साथ किसी मंच से व्याख्यान कर सकते हैं। वे बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि इस देश के ऋषि-मुनियों ने सम्पूर्ण मानवता को सुख-शान्ति का मार्ग दिखाया है। किन्तु इस प्रकार विना स्वयं के अनुभव के व्याख्या प्रस्तुत करने से सब कोई सहज रूप से उनके कथन की सार्थकता को स्वीकार नहीं कर लेते। यह तो अन्तरतम की अनुभूति की अभिव्यक्ति में निकले शब्द ही होते हैं जिन्हें सुनकर सुनने वाले में भी उसी प्रकार की जिज्ञासा और अनुभूति होने लगती; अनुभव जन्य ज्ञान के प्रकट करने पर वक्ता श्रोता को अपने स्वयं के अनुभव की अनुभूति करवा देता है। सत्य के अनुभव से ही प्रेम उत्पन्न होता है, क्योंकि सत्य सब में समान रूप से व्याप्त है। अतएव उसकी अनुभूति के पश्चात कोई भेद-बुद्धि रह ही नहीं जाती। सत्य यदि विद्युत् धारा है—बिजली की करेन्ट है—तो प्रेम वल्ब है, बस उसे प्रदीप्त करने की आवश्यकता है। सत्य के माध्यम से आप प्रेम की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं;

---

1 हर प्रकार से विचार कर जो सार निकले

प्रेम के माध्यम से आप सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं। भगवान से प्रेम करो, तुम्हें सब प्राणियों में भगवान ही दिखाई देंगे, अथवा फिर किसी एक व्यक्ति से विशुद्ध प्रेम करो और प्रेम के दायरे को बढ़ाते हुये उसमें समस्त सृष्टि को समा लो और उसे पूर्ण व्यापक और समष्टिगत बनाओ, परम सत्य को पा सकोगे।

मन को सदा भगवान में ही लगाये रखो उसे ऐसा बना दो कि वह सबमें भगवान को ही देखे, उसे सब राममय ही दिखाई दें। ऐसी स्थिति को कहते हैं चित्त की एकाग्रता। यदि चित्त इस रूप में एकाग्र हो जाये तो फिर दूसरों में कोई दोष दिखाई नहीं देगा, दूसरों में दोष ढूंढ़ने की आदत ही नहीं रहेगी, मन की चंचलता समाप्त हो जायेगी, उसका क्षुद्र और अपावन भटकाव बन्द हो जायेगा, वह अनावश्यक, अधम और अनित्य के संचय के लिये व्याकुल नहीं होगा। यह शरीर तो टार्च का ढाँचा या खोल मात्र है, इन्द्रियां बल्ब हैं, मन सैल है और बुद्धि स्विच है। फिर टॉर्च का प्रकाश अवांछित स्थान पर नहीं पड़ेगा। उसका उपयोग मनुष्य की दैविक प्रगति की ओर बढ़ने में सहायता प्रदान करेगा।

जिस क्षेत्र में 'सत्यदीप' भवन का उद्घाटन हुआ है, उसका नाम धर्मक्षेत्र रखा गया है। यह बड़ा उपयुक्त नाम है क्योंकि इस स्थान से सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम की वे शुद्ध, सात्विक, पवित्र और निर्मल धारायें प्रवाहित होंगी जिनसे सूखे प्रदेशों की तृष्णा शान्त होगी; संतप्त मानवता सुख शान्ति पा सकेगी।

गीता का प्रथम शब्द धर्मक्षेत्र है। प्रथम श्लोक है "धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।" धृतराष्ट्र ने संजय से प्रश्न किया था कि कुरूक्षेत्र (कर्मभूमि) में एकत्रित हुये मेरे और पाण्डव के पुत्रों ने क्या किया? अंधे धृतराष्ट्र ने कौरवों को अपने मोह और अहंकार के वशीभूत 'मेरे पुत्रों' ने कहा। वे लोग मोह, दंभ और वासनाओं से प्रेरित थे। पाण्डव, दूसरे पक्ष के लोग, न्याय, सत्य और धर्म से प्रेरित थे, अतएव वह कर्मक्षेत्र-कुरूक्षेत्र-धर्मक्षेत्र में परिवर्तित हो गया था। विजय सदा धर्म की होती है, न कि लोभ, मोह, दंभ और पाखंड की जो मनुष्य को अंधा बना देते हैं। भगवान पाण्डवों के सारथी थे; क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण की विशाल सेना के स्थान पर केवल एक मात्र श्रीकृष्ण को ही चाहा था और उन्होंने उनका साथ दिया था। अतएव धर्मक्षेत्र शब्द स्मरण करवाने वाला है, सचेतक और मार्ग-दर्शक है, प्रेरणा और प्रकाशदायक है। इस नाम को अपने हृदयों में स्थापित करो क्योंकि वहां ही धर्म और अधर्म की शक्तियां संघर्षरत हैं, धर्म की शक्तियों को सफल बनाने के लिये भगवान सदा सहायता करते हैं।

हिमालय भारत का भाल है, कन्याकुमारी उसके चरण हैं, बम्बई उदर है, प्रशान्ति निलयम् हृदय है। उदर भोजन ग्रहण करता है और फिर वह उसको

शक्ति में परिवर्तित कर शरीर के समस्त अंगों को वल और सामर्थ्य प्रदान करता है। अतएव आपका उत्तरदायित्व बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण है; यदि आपने इसकी उपेक्षा कर दी तो फिर देश को तथा उन महान आदर्शों की जिनके लिये यह खड़ा है, बहुत क्षति उठानी पड़ेगी। आप लोगों ने यहां अगले सप्ताह होने वाले सत्य साई संगठनों के विश्व सम्मेलन के आयोजन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है; यह प्रेम और भ्रातृभाव को व्यावहारिक रूप में प्रकट करने का सुन्दर अवसर है। नवयुवकों और नवयुवतियों के जिन सेवा दलों का आप लोगों ने संगठन किया है और स्वयंसेवकों और स्वयंसेविकाओं को प्रशिक्षण दिया है वे भारत के अन्य प्रदेशों के लिए प्रेरणा और उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। यदि भारत के युवकों का सही दिशा निर्देशन और मार्गदर्शन किया जाये तो उन्हें उद्देश्यहीन भटकाव, दुस्साहसिक कृत्यों, दूसरों के अनुकरण, कल्पनालोक के विचरण, कुंठा और निराशा से बचाया जा सकता है तथा उन्हें सहानुभूति और प्रेम पूर्ण रचनात्मक कर्मों में लगाया जा सकता है जहाँ उनकी शक्ति, बुद्धि और प्रतिभा का सदुपयोग हो सकता है और उनका और समाज का, दोनों का, लाभ हो सकता हैं।

बम्बई, भारतीय विद्याभवन क्षेत्र
१२-६-१९६८

४४. नाम की महिमा

तपस्या, वर्षानुवर्ष किये गए सतत् नाम जाप, तीर्थाटन, धर्मग्रंथों के अध्ययन और स्वाध्याय से भी साधकों को वह आध्यात्मिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकती जो सत् पुरुषों की सत्संगति से प्राप्त होती है। भारतवर्ष आध्यात्मिक मणि-माणिक्यों की खान रहा है जिसका अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। जो सच्चे साधक हैं उनके लिए तो यह देश वरदान स्वरूप है और साधकों का यह सम्मेलन वास्तव में एक महान अवसर है; बम्बई के लोगों के लिए तो यह उनके परम सौभाग्य का प्रतीक है। इस महान अवसर के अनुकूल, समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा में कुछ शब्द कहने के पश्चात् अब मैं अपना भाषण इसके आगे तेलुगू में जारी रखुंगा और कस्तूरी अंग्रेजी अनुवाद करेंगे। (बाबा ने ये वाक्य संस्कृत में बोले थे)

भारत वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों, महाकाव्यों और पुराणों की जन्म-स्थली है। उनमें सर्व साधारण के अभ्युत्थान[1] के लिए शिक्षायें दी गई हैं। यह वह देश है जहां मनुष्य ने अपनी अन्तः प्रेरणा के बल पर मानवीय कौशल का उच्चतर पावन उद्देश्यों के लिए, दैविक पूजन और आराधन तथा इन्द्रियातीत सम्बन्धों के स्थापन और दिव्य अनुभूतियों की प्राप्ति के लिए संगीत तथा अन्य विविध कलाओं का विकास किया है। यह देश साधकों कौर सिद्ध पुरुषों, ज्ञानियों और तपस्वियों तथा भक्तों और कर्मयोगियों को आधार, सम्बल और पोषण प्रदान करता आया है। यहां योग के विज्ञान का उद्भव और विकास हुआ। इसलिये इसमें कोई विस्मय नहीं है कि काल के प्रवाह में जहां अनेकों सभ्यताओं और संस्कृतियों का नाश हो गया, यह देश आज भी अपने योग और त्याग के बल पर जीवित है। संस्कृति की इन विशेषताओं के लिए, भौतिक सुख-सुविधाओं को ही सब कुछ समझने वाली धर्म-निर्पेक्ष सभ्यता और संस्कृति शंका संदेहों और अविश्वासों के तूफान और बवंडर उठाकर कुछ समय के लिए सूर्य या चन्द्रग्रहण का सा अंधेरा भले ही कर दें; किन्तु इनको मानव हृदयों से कोई जड़ से नहीं उखाड़ सकता है। अतएव भारतवर्ष के लोगों का यह कर्तव्य हो जाता है कि अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं का पोषण करें, मानव समाज में प्रेम के बीज बोएं, जिससे कि सारे विश्व में प्रेम की फसल लहराने लगे, संसार पारस्परिक सहृदयता, सहिष्णुता और सम्मान की सुगन्ध से सुवासित और सम्पन्न हो जाये। कोई व्यक्ति अपने ही सम्पूर्ण से अलग होकर नहीं रह सकता।

---

१ उन्नति

इसी प्रकार कोई देश संसार के रंगमंच पर अन्य देशों से अलग होकर अकेला ही अपना कोई अभिनय नहीं कर सकता क्योंकि इस युग में कोई भी देश एक दूसरे से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। यही बात भारतवर्ष और विश्व के अन्य राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध और प्रभाव के लिए भी लागू होती है। भारतवर्ष का दूसरे देशों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। सम्पूर्ण अंगों में एक ही रक्त का संचार होता है, एक ही दैविक सिद्धान्त विश्व के समस्त लोगों और देशों में समान रूप से व्याप्त है। यह विश्व उस विराट पुरुष—भगवान का शरीर है, अतएव इस शरीर के किसी भी अंग में हुई चुभन या पीड़ा, फिर वह काले व्यक्ति में हो या गोरे में; जल, थल या अम्बर कहीं भी और कभी भी क्यों न हो, भगवान को ज्ञात रहती है, वह सदा उसका अनुभव करते हैं।

अभी मोरारजी देसाई ने अपने भाषण में धर्मशब्द का अनेकों बार उपयोग किया है। यदि इस देश के नेतागण धर्म को अपने हृदयों में स्थापित कर लें तो वे अपनी समस्त गतिविधियों और क्रियाकलापों को धर्म के आचरण और उपाधियों के अनुकूल समुन्नत कर सकते हैं। धर्म मन, वचन और कर्म का समन्वय कर देगा, मन को लोभ, मोह और घृणा से मुक्त कर निर्मल बना देगा। आज यहां सभी धर्मों और विश्वासों के प्रतिनिधिगण उपस्थित हैं; आप यहां इस बात की जांच कर सकते हैं कि प्रत्येक विश्वास, विचारों, प्रेरणाओं और संवेगों के विशुद्धिकरण का, प्रत्येक प्रयास, दृश्य और अदृश्य जगत के सत्य को खोज निकालने के प्रयत्नों का ही एक अंग मात्र है। जो भी कोई इस मार्ग पर चला है, जिसने भी सत्यान्वेषण का प्रयत्न किया है वह मिथ्या अभियोग, आक्षेप तथा क्रूर अत्याचारों से नहीं बच सका। मोहम्मद ने एक निराकार ईश्वर के सत्य को स्थापित करने का प्रयास किया तो उसे अनेकों यातनायें, निन्दा, एकान्तवास और कष्ट सहन करने पड़े। ईसा मसीह को जिसने प्रेम के आधार पर मानवता का पुनर्निमाण करने का प्रयास किया था, क्षुद्र लोगों ने फांसी पर चढ़ा दिया क्योंकि उन्हें भय हो गया था कि प्रेम के प्रसार से घृणा और लोभ के आधार पर निर्मित उनकी अट्टालिकायें और विजय-स्तम्भ नष्ट हो जायेंगे। हरिश्चन्द्र को सत्य पालन के दृढ़ संकल्प के कारण एक के बाद एक अनेकों यातनायें और घोर कष्ट सहन करने पड़े थे। इसलिये इस पथ के राहियों को ईश्वर का ज्ञान और साक्षात्कार करने के उत्सुक जिज्ञासुओं और साधकों को अपमान, अपयश, यातनायें और कष्ट सहन करने के लिए वज्र सा कठोर बना लेना चाहिये किन्तु व्यवहार में सदा विनम्र और मुख पर सदा मुस्कराहट रहनी चाहिए।

उसी खज़ाने की तलाश है, मंजिल तो सब की एक ही है किन्तु उस तक पहुंचने के मार्ग अनेक हैं, मार्ग-दर्शक भी अनेक हैं, बस वे ही आपस में लड़ते-झगड़ते, एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी बने हुये हैं। आप लोगों को वह अंधे और हाथी वाली कहानी ज्ञात है न कि सात अंधे थे। उन्हें एक हाथी के पास लेजाकर खड़ा कर दिया।

प्रत्येक ने जिस स्थान पर वह हाथी के पास खड़ा था हाथी को छूकर उसका अपने स्पर्श के अनुभव के आधार पर वर्णन करना शुरू किया। जिसने हाथी के कान छूये थे वह उसे सूप के समान बताता तो जिसने पैर छूये थे वह विशाल स्तम्भ के समान और इस प्रकार प्रत्येक का वर्णन एकांगी और अधूरा था, कोई भी हाथी का सही और पूर्ण विवरण नहीं दे सका। हिन्दुत्व उस हाथी का उदर है जो समस्त धर्मों को शक्ति और सम्बल प्रदान करता है। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि उदर ही तो पूर्ण शरीर नहीं होता, उसका एक भाग ही होता है। अन्य धर्म हाथ और पैरों के समान हैं। जो लोग यह कहते हैं कि उन्होंने बाह्य अंतरिक्ष में किसी भगवान का कोई अंश मात्र भी नहीं देखा, अथवा जो यह कहते हैं कि भगवान तो मर चुका है और यदि कहीं जीवित भी है तो उसकी मानवता के लिए कोई आवश्यकता नहीं है बल्कि वह तो मानवता के विकास और प्रगति के लिए बाधक है—उन सब को यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ तो ऐसा है अवश्य जिसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती, अबोध्य, अगाध और अगम्य है, तर्क और विज्ञान की पहुँच के परे है, कोई है अज्ञात जो सम्पूर्ण सृष्टि में समान रूप से व्याप्त है और जो सबके भाग्य को प्रभावित करता है।

भारतीय योगीजन अपने अन्तः चक्षुओं की दिव्य अन्तर दृष्टि से सृष्टि के अनेकों गुप्त रहस्यों को खोज निकालने और अपनी इच्छानुसार भूत और भविष्य को देख सकने में समर्थ थे। कोई बीस वर्ष पूर्व ही अंग्रेज भारत छोड़कर गये हैं किन्तु इसकी भविष्यवाणी एक भारतीय योगी ने ५०४३ वर्ष पूर्व ही कर दी थी कि पश्चिम की एक जाति के साम्राज्य से भारत नन्द वर्ष में मुक्त हो जायेगा। भारतवर्ष ने अंग्रेजी साम्राज्य से नंद वर्ष में स्वतंत्रता प्राप्त की। इसकी ५०४३ वर्ष पूर्व कैसे घोषणा की जा सकी? बिहार में आये भूकम्प की वाराणसी के ज्योतिषियों ने दो वर्ष पूर्व ही घोषणा कर दी थी। प्राचीन ज्योतिष शास्त्र का आधार क्या है? जैसा कि आज के वैज्ञानिक चाहते हैं इसका आधार वैसा वैज्ञानिक नहीं है, यह तो अन्तः प्रज्ञा के आध्यात्मिक अनुभव पर आधारित होते हैं। जब अन्तर की दिव्य दृष्टि खुलती है तो देश और काल की सीमाओं से परे सब कुछ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो जाता है। लीडबीटर का कथन है कि यदि गायत्री मन्त्र का पूर्ण शास्त्रीय पद्धति से स्वरों के उदात्त (ऊंचे), अनुदात्त (नीचे) और स्वरित (दोनों के बीच के) आदि निर्धारित क्रमों के अनुसार विधिवत उच्चारण से दिव्य अनुभव और प्रकाश प्राप्त होते हैं, तो बिना किसी स्वर बोध के अशुद्ध उच्चारण से अंधकार अधिक सघन हो जाता है। इसलिये नाम-जाप, ध्यान, प्रार्थना, विधिपूर्वक पूजा-पाठ, मन्त्रोच्चारण की हंसी उड़ाने और बिना सोचे आलोचना करने के स्थान पर आवश्यक यह है कि उनके मूल्य और महत्वों की उपयोगिता और आवश्यकताओं को समझा और स्वीकार किया जाये तथा उनके परिणामों की जांच की जाय, अभ्यास और व्यवहार द्वारा उनकी पूर्ति की जाय।

मन की शुद्धि और मुक्ति का श्रेष्ठ और सबल साधन है राम नाम । राम को हम केवल रामायण महाकाव्य के नायक, महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में ही न समझें। रघुकुल के राजगुरु ने महाराज दशरथ के पुत्र का नाम 'राम' वैसे ही नहीं रख दिया था उन्होंने कहा था कि राम का अर्थ होता है आनन्दप्रद, हर्षदायक। जब कि प्रत्येक अपने आपको प्रसन्न रखना चाहता है, आनन्द चाहता है, देह में बंद देही (आत्मा) को, पूर्ण स्वतन्त्र और समष्टिगत आत्मा (परमात्मा) के अतिरिक्त भला और कौन आनन्द प्रदान कर सकता है। इसलिये आत्मा को आत्माराम कहते हैं जो सदा चिरस्थायी आनन्द प्रदायक है।

राम के नाम के महत्व को स्पष्ट करने वाली एक पौराणिक कथा है। एक बार प्रचेता ऋषि ने एक सौ करोड़ श्लोकों की रचना की। तीनों लोकों में सम्पूर्ण रचना को अपने पास रखने के लिए प्रतिस्पर्द्धा हो गई। उनका इस विषय को लेकर झगड़ा बहुत अधिक विपत्तिकारक स्थिति में पहुंच गया अतएव भगवान को बीच में पड़ना पड़ा और प्रत्येक लोक को ३३ करोड़, ३३ लाख, ३३ हजार तीन सौ तेंतीस श्लोक बांट दिये गये फिर भी एक श्लोक बचा रहा। उसमें कुल ३२ अक्षर थे अतएव जब उनका भी तीन भागों में विभाजन कर दिया गया तो और प्रत्येक को १०-१० अक्षर दे दिये तो फिर भी दो अक्षर शेष रह गये। दो का तीन में विभाजन कैसे किया जाय? भगवान ने इसके सम्बन्ध में निर्णय दिया कि उन दोनों अक्षरों की तीनों लोकों में पूर्ण सम्मान और आदर के साथ समान रूप से पूजा और वन्दना की जाये— वे अक्षर थे 'रा' और 'म' तीन लोकों में आनन्द और मोक्ष प्रदायक—'राम'।

राम तो मधुमक्खी हैं जो हृदय कमल से भक्ति के अमृत-मधु का पान करती है। जिस पुष्प पर मधु-मक्खी बैठती है उसकी पंखुड़ियां खिल जाती हैं किन्तु; राम जिस हृदय कमल पर विराजते हैं उसके सौंदर्य और सुगन्ध की सीमा ही नहीं रहती। राम तो सूर्य के सदृश है जो अपनी किरणों के माध्यम से जल को ऊपर खींचता है और बादलों के रूप में एकत्रित कर सर्वत्र उसकी वर्षा कर धरा की प्यास बुझा देता है। राम नाम की ओजस्वी और शक्तिशाली रहस्यपूर्ण ध्वनि नाभि से उत्पन्न होती है और जिह्वा तक ऊपर आकर वहां आनन्दपूर्वक नर्तन[1] करती है। 'तत्-त्वम-असि' का वैदिक उद्घोष 'राम' में समाहित है। राम में तीन ध्वनियां हैं 'र' 'आ' 'म', र है तद (ब्रह्म) का बोधक, म है त्वम् (तू-जीव) का बोधक और 'आ' दोनों (ब्रह्म और जीव) को मिलाने वाला संयोजक है। राम शब्द का अंकार्थ विज्ञान से भी महत्व है। इस विज्ञान के अनुसार र के २, आ के०, म के ५ अंक होते हैं जिन सब का योग होता है ७। संगीत में सात स्वर होते हैं, आकाश में सप्त ऋषि होते हैं और

---

१ नाचना

सप्ताह में सात दिन होते हैं। यदि सप्ताह के सातों दिन सतत् रूप से राम नाम का जाप किया जाये तो वह विशेष रूप से फलप्रदायक समझा जाता है।

इस सम्मेलन में नाम स्मरण की आध्यात्मिक साधना पर विचार किया जायेगा। अतएव इस सम्बन्ध में मैं आप लोगों को स्पष्ट कर दूं कि किसी एक नाम विशेष को किसी दूसरे नाम से उच्च स्थिति पर नहीं रखा जा सकता क्योंकि सब नाम भगवान के नाम हैं और उन्हें किसी भी नाम से पुकारो वह सुनते हैं, उत्तर देते हैं। इस विषय पर मैं कल के अधिवेशन में सविस्तार आप लोगों को बताऊंगा क्योंकि यह विषय न केवल इस देश से अपितु समस्त विश्व से सम्बन्धित है। मुझे इस बात का बड़ा सन्तोष है कि यह सम्मेलन भारतीय विद्याभवन के क्षेत्र में हो रहा है, वास्तव में इस सम्मेलन के लिए बम्बई में इससे अधिक उपयुक्त अन्य कोई स्थान नहीं हो सकता क्योंकि भारतीय विद्या का संदेश सम्पूर्ण मानवता तक पहुंचाने के लिए ही इस सम्मेलन का आयोजन किया गया है।

उद्घाटन
भगवान श्री सत्य साई सेवा संगठनों का
विश्व-सम्मेलन, भारतीय विद्याभवन-बम्बई
१६-५-१९६८

४५. दैविक उद्घोष

आप लोग समस्याओं के समाधानों के लिये, संदेह और शंकाओं के निवारण के लिये, तर्क और विचारों में लीन हैं; नयी समस्यायें और संदेह उत्पन्न ही न हों इसके लिये विविध उपायों के खोजने में लगे हुये हैं। जहां कहीं सभा-सम्मेलन होते हैं इस प्रकार के प्रयास किये जाते हैं, किन्तु जहां तक आध्यात्मिक साधनों से संसार-सागर को पार करने का प्रश्न है ये प्रयास सफलता में सहायक नहीं हो सकते। ये वाद-विवाद, प्रस्ताव, भाषण और नियम आदि सब धोखा देने वाली निरर्थक बातें है। संसार में इस समय जो तूफ़ान उठा हुआ है, जो उत्तेजना और अशान्ति व्याप्त है उन्हें शान्त करने के लिये ये प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। यह समय है जबकि उद्वेलित मन और मस्तिष्क से आवेग और अनुमान के साथ किसी निर्णय पर पहुंचने की जल्दबाजी के स्थान पर शान्ति और गंभीरता के साथ विचार करने की आवश्यकता है।

यह आवश्यक है कि भारतीय चिन्तक और विचारक ऋषि-मुनियों ने जो शाश्वत ज्ञान और उपदेश दिये हैं उन पर आप लोग एक बार फिर से गंभीरता के साथ विचार करें क्योंकि आज कल उनके उपदेशों और शिक्षाओं को कुटिलतापूर्ण उपेक्षा के साथ भुला दिया गया है। आज के विचार-विमर्श के फलस्वरूप जो भी सुझाव और समाधान सामने आये हैं वे सभी अच्छे हैं; किन्तु वह आदमी जो स्वयं ही तैरना नहीं जानता हो, वह कैसे दूसरों को तैरना सिखा सकता है? जिसका स्वयं ही अन्न भंडार खाली हो वह कैसे अन्नदान कर सकता है? भक्ति, धैर्य और शान्ति की अतुल सम्पत्ति पहले स्वयं तो कमाई करके प्राप्त कर लो, फिर उसके सम्बन्ध में दूसरों को उपदेश देने की हिम्मत करो। देश में उपदेश करने वाले, अपने को गुरु कहलाने वाले बहुत हैं; किन्तु वे जो कुछ कहते और उपदेश देते हैं उसका वे अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से पालन नहीं करते, इसी कारण देश को बहुत ही उपेक्षा और अपमान सहन करना पड़ा है। मैं यह जानता हूं कि आप लोगों में मेरे उपदेश और संदेश को देश और विदेशों में ले जाने और फैलाने के लिये बड़ा साहस और उत्साह है। किन्तु मैं आपको याद दिला दूं कि मेरे संदेश और उपदेश को दूसरों तक पहुँचाने का श्रेष्ठ और सफल उपाय है कि आप स्वयं अपने जीवन में दृढ़ता और सच्चाई के साथ उनका पूर्णरूप से पालन करो। आपके विचार, आपके शब्द, आपके कर्म उन संदेशों के साकार स्वरूप होने चाहिए तभी उनका प्रसार सरलता, सुगमता और प्रभावशाली ढंग से हो सकेगा और सम्पूर्ण विश्व में परिवर्तन आ सकेगा।

विश्व भर के सत्य साई संगठनों के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मंत्रीगण यहाँ उपस्थित हैं। आप लोग साई सेना के अधिकारी वर्ग हैं। यदि आप लोगों को ही

युद्ध-कौशल का ज्ञान न हो, आप ही सम्पूर्ण बारीकियों को भली प्रकार नहीं समझते हों आप में ही जब सैनिक अधिकारी की दक्षता, कुशलता, दृढ़ता और साहस न हो तो भला फिर आप अपने सैनिकों को कैसे मार्ग-दर्शन और नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं और युद्ध में विजय कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? जब आप सतत् अभ्यास के द्वारा सम्पूर्ण अनुशासनों में पूर्णता प्राप्त कर लेंगे तभी दूसरों को मार्ग-दर्शन और नेतृत्व प्रदान करने के अधिकारी हो सकते हैं। यह बात सभी मानवीय क्षेत्रों में समान रूप से लागू होती है । आनन्द और प्रशान्ति का सुखद प्रसाद पहले स्वयं प्राप्त कर लो फिर उसका दूसरों में वितरण करो।

अध्यापकों को चाहिए कि वे स्कूलों में विद्यार्थियों के समक्ष अपने आदर्श उपस्थित करें। जो लोग उच्च पदों और अधिकार पूर्ण स्थितियों में हैं और दूसरों को प्रम और सहयोग के साथ रहने का उपदेश देते हैं उन्हें स्वयं इन बातों का पालन करना चाहिए। आजकल न तो नेताओं में ही नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता और योग्यता है और न ही लोग नेताओं का अनुसरण करने के लिए तैयार हैं। प्रगति तो जनता और नेता के पारस्परिक सद्भाव और प्रेमपूर्ण सहयोग पर आधारित रहती है। आज जो चारों ओर हर क्षेत्र और हर वर्ग में अशान्ति और असन्तोष व्याप्त है उसका कारण है कि माता-पिता, अध्यापक, प्रशासक और नेता आदि सभी अपने-अपने उत्तरदायित्वों को ठीक से नहीं निभाते, उनके कार्य और व्यवहार अपने-अपने स्वार्थों की सिद्धी के लिये होते हैं, उन्हें दूसरों के हित-अहित का तनिक भी ध्यान नहीं रहता।

नाम स्मरण के महत्वपूर्ण अनुशासन की ओर इस सम्मेलन का ध्यान आकर्षित है। शास्त्रों का कथन है कि इस कलयुग में राम नाम ही एक आधार है जिसके सहारे मनुष्य अपना उद्धार कर सकता है। संत तुकाराम ने नाम-रत्न का ही गान किया था। आपको चाहिये कि राम नाम के अमूल्य रत्न के मूल्य और महत्व को समझें, उसे कांच का पत्थर का टुकड़ा समझ कर कहीं फेंक न दें। एक बार एक लड़के को एक मूल्यवान चमकीला रत्न मिला। वह उसके मूल्य को नहीं समझता था, अतएव उसे एक अच्छा कंचा समझ कर गली में लडकों के साथ गोलियां खेलता रहता था। एक दिन एक जौहरी उधर से निकला तो उस लड़के को उस रत्न के साथ गोलियां खेलते हुये देख कर दंग रह गया। उसने उस लड़के को एक ओर बुला कर कहा कि पचास रुपये ले लो और यह कंचा मुझे दे दो। लड़का भाग कर अपनी मां के पास गया और सारी बात बतायी। माँ को समझ आयी और उसे मना कर दिया और लड़के से कह दिया कि अपने कंचे को लेकर गली में न जाए, घर पर ही खेले। इस प्रकार जब मूल्य का पता लगा तो सीमाएं निर्धारित हो गयीं।

उस जौहरी को रातभर नींद नहीं आयी क्योंकि वह उस रत्न के मूल्य को समझता था और किसी भी प्रकार उस ग्रामीण बालक से रत्न को प्राप्त कर लाखों

रुपये कमाना चाहता था। किसी प्रकार उसने उस लड़के के घर का पता लगाया और बाहर रास्ते पर चक्कर लगाने लगा कि लड़का मिल जाए। जब उसने देखा कि लड़का उससे गोलियाँ खेल रहा था तो उसके दिल को बड़ी चोट लगी। उसने लड़के को सौ रुपये देकर वह रत्न प्राप्त करना चाहा किन्तु लड़का नहीं माना और अपनी मां को बुला लाया। माँ आयी तो जौहरी ने उसके सामने पाँच सौ रुपये का प्रस्ताव रखा किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। और जौहरी को लौटा दिया।

अब उसकी माँ ने उस रत्न को अपने पास ले लिया और अपने बक्से में ताले में रख दिया और वह सौदागर दूसरे दिन फिर आया और दस हजार रुपये देने लगा किन्तु उस लड़के की माँ ने उसे देना स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह समझ गयी थी कि वह काँच का टुकड़ा नहीं बल्कि बहुमूल्य रत्न है। इसीलिये उसने उसको तिजोरी में बन्द कर दिया। इधर जौहरी बेचैन था उसे प्राप्त करने के लिये अतएव वह तीसरे दिन फिर आया और पचास हजार रुपये देकर वह रत्न प्राप्त करना चाहा। लड़के की माँ ने स्वीकार नहीं किया और जाकर बैंक में लाकर में सुरक्षा पूर्वक रख आयी। लोग राम-नाम से उस बालक के समान केवल गोलियों का खेल खेलते हैं, उसके मूल्य को नहीं समझते। एक बार भी यदि आप उसके मूल्य को समझ जायें तो फिर उसे अमूल्य निधि के रूप में सुरक्षित रूप से ताला लगा कर रखेंगे। यह भली प्रकार जान लो कि नाम, सुख, संतोष और साहस, प्रकाश और मोक्ष प्राप्ति के प्रयासों में सफलता की कुंजी है।

शास्त्रों का एक उदाहरण और समझिए। एक बार शिव के गणों का नेता के चुनाव के लिये एक प्रतियोगिता हुई जिसमें देवताओं ने भाग लिया। शर्त थी कि जो समस्त ब्रह्माण्ड की परिक्रमा लगा कर सबसे पहले आकर शिव के चरण में पहुंच जायेगा वही सर्व प्रथम पूज्य समझा जायेगा। सब देवता अपने-अपने वाहन पर सवार हो कर निकले। बेचारे गणेश जो लम्बोदर और गज बदन हैं, अपनी चूहे की सवारी पर निकले तो सबसे पीछे असमंजस में पड़े रह गये कि क्या करें। इतने में उधर से नारद जी अकेले ही सामने आ गये और पूंछ बैठे कि आज किधर जा रहे हैं। गणेश बहुत नाराज हुये क्योंकि किसी शुभ कार्य पर निकलते ही सामने अकेला ब्राह्मण मिल जाये तो अपशुकन होता है और यदि निकलते ही टोक दे कि कहाँ जा रहे हो तो वह भी अपशुकन और अशुभ माना जाता है।

नारद ने गणेश जी के क्रोध को किसी प्रकार समझा-बुझाकर शान्त किया और सारी बात जानी तथा गणेश जी को आश्वासन दिलाया कि उनकी विजय निश्चित है। नारद ने उन्हें उपाय बताया कि राम नाम वह बीज है जिससे इस समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है। अतएव पृथ्वी पर राम नाम लिखो और उसकी परिक्रमा लगाकर निश्चिन्त हो जाओ; राम नाम में ही अखिल सृष्टि निहित है। गणेश जी ने

ऐसा ही किया, राम नाम लिख कर उसकी परिक्रमा कर डाली और जाकर अपने पिता शिव जी के चरणों में खड़े हो गये। शिवजी ने प्रश्न किया कि इतनी जल्दी ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करके कैसे आ गये ? गणेश जी ने नारद के उपदेश की बात कह सुनाई। शिवजी बड़े प्रसन्न हुये और गणेश जी को गणपति और विनायक की उपाधियों से विभूषित किया। गणेशजी सर्वप्रथम पूज्य हो गये यह राम-नाम की महिमा है।

यह तो निस्संदेह सत्य है कि नाम से भगवत् अनुग्रह की प्राप्ति होती है। राजस्थान में मेवाड़ की महाराणी मीराबाई ने अपने कुल और राजघराने की सभी मर्यादाओं, वैभव, सुख और सम्पत्ति को त्याग कर 'गिरिधर गोपाल' की भक्ति में समर्पित कर दिया था। मीरा के पति (मेवाड़ के महाराणा भोजराज) ने जब उनको विष का प्याला दिया तो वह कृष्ण का नाम लेकर उसे पी गयीं, नाम के प्रभाव से वह तो अमृत बन गया था उसका भला क्या बिगड़ता बल्कि उस अमृत पान से वह अमर हो गयी।

भगवान के नाम और यश के गान को कीर्तन कहते हैं। जब नाम का जाप या गान आनन्द विभोर होकर पूर्ण तन्मयता के साथ जोर-जोर से किया जाता है तो वह संकीर्तन कहलाता है। नाम-संकीर्तन चार प्रकार के होते हैं भाव नाम-संकीर्तन, गुण नाम-संकीर्तन, लीला नाम-संकीर्तन और केवल नाम-संकीर्तन। भगवान के नाम का उनके प्रति भाव विशेष के साथ जो संकीर्तन होता है उसे भाव नाम-संकीर्तन कहते हैं। यह मधुर भाव हो सकता है जैसा कि राधा का कृष्ण के प्रति था और जिस भाव में वह सदा समाहित रहती थी। वह हर समय और हर स्थान पर उसी भाव में लीन देखती, सुनती, खाती, पीती और अन्य समस्त व्यवहार करती थी। 'रसो वै सह' (वह रस है)। राधा के लिये प्रकृति और पुरुष में कोई भेद नहीं रहा था, सब कृष्ण रूप था। वह यह जानती और अनुभव करती थी। हर समय, हर क्षण, हर स्थान पर कृष्ण उपस्थित हैं चाहे वह सोती हो, जागती हो, चलती हो, सोचती हो, या कुछ भी करती हो। वह गीता में कृष्ण द्वारा की गई घोषणा के सत्य को सदा प्रत्यक्ष अनुभव करती थी कि कृष्ण अपने सम्पूर्ण अंगों— हाथ, पांव, नेत्र, मुख, सिर आदि सहित सर्वदा और सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। मधुर भाव नाम संकीर्तन का वह सर्वोच्च और श्रेष्ठतम उदाहरण है।

फिर आता है सखा भाव नाम संकीर्तन जिसमें भगवान को अपने सखा या मित्र के रूप में मान कर सारा व्यवहार करता है जैसा कि अर्जुन का भगवान कृष्ण के प्रति था। अर्जुन, श्री कृष्ण को अपना अनन्यतम मित्र और सखा मानता था और दोनों में साले बहनोई का नाता था क्योंकि श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा का अर्जुन के साथ विवाह हुआ था। इस भाव से भी जब आदमी अपना भगवान से सम्बन्ध जोड़

लेता है और उनकी भक्ति में लग जाता है तो उसकी पाशविक वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं और वह प्रभु को प्राप्त कर लेता है। दास्य भाव नाम संकीर्तन में भक्त अपने को भगवान के दास के रूप में रखता है और भगवान को अपने मालिक के रूप में रखता है और उसकी भक्ति इस भाव पर चलती है। इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है हनुमान की भगवान राम के प्रति भक्ति। दास्य भाव में हनुमान के समान और कोई भक्त नहीं। हनुमान की अपनी कोई इच्छा या आकांक्षा नहीं थी। उनकी एक ही प्रार्थना थी कि वह हर क्षण, हर घड़ी भगवान की सेवा में लगे रहें। अंतिम है संत भाव नाम-संकीर्तन जिसमें भक्त भगवान के नाम का निर्लिप्तता के साथ यशोगान करता रहता है और उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं रहती कि क्या हो रहा है। इसका उदाहरण आपको मिलेगा महाभारत में भीष्म का जो सदा इसी भाव में रहते थे। कृष्ण दौड़े रथ का पहिया अपने हाथ में उठा कर भीष्म से लड़ने के लिये तो भीष्म उसी भाव में लीन कृष्ण का मन ही मन यशोगान कर रहे थे और कह रहे थे, "हे सात्व शिरोमणे! इस महा समर में आज मुझे मार गिराइये! देव! निष्पाप कृष्ण! आपके द्वारा संग्राम में मारे जाने पर भी संसार में सब ओर मेरा कल्याण ही होगा।"

नाम संकीर्तन की दूसरी पद्धति है भगवान की विभिन्न लीलाओं, क्रीड़ाओं अनुग्रह के अनेकों कार्यों, चमत्कारों, भक्तों के उद्धार और दुष्टों के संहार की कथाओं का यशोगान और स्मरण! उसे कहते हैं लीला नाम-संकीर्तन। चैतन्य और त्यागराज को इस श्रेणी के भक्तों में माना जाता है। गुण नाम-संकीर्तन में भगवान के गुणों का गान करते हैं कि भगवान की महिमा कितनी महान है, दिव्य है, वे करुणा सागर हैं, दया सिन्धु हैं, प्रेम स्वरूप हैं आदि। अनेकों देशों में जो संत हो गये हैं और जिन्हें लोग श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते और मानते हैं वे अधिकतर इसी श्रेणी के थे। भक्तों की एक श्रेणी और होती है जो केवल नाम के अक्षरों और उनके उच्चारण पर ही ध्यान देते हैं, अर्थ और भाव पर नहीं जाते। वे कहते हैं कि जब भगवान का नाम लिया जाता है तो भगवान स्वयं ही खिंचे चले आते हैं और उनकी कृपा होती है फिर नाम संकीर्तन में कोई भाव, कोई लीला या कोई गुणगान हो या नहीं। वे दृढ़ता के साथ कहते हैं कि नाम अकेले में ही बिना किसी की सहायता के समस्त रोगों का नाश करने वाली औषधि, समस्त संकटों को निवारण करने की शक्ति, सबका संरक्षण करने का सामर्थ्य होता है; नाम की महिमा महान है।

राम ने स्वयं ही राम नाम को मुक्ति का साधन बताया है। जब राम बनवास में थे और सीता तथा लक्ष्मण के साथ तपस्वियों के आश्रमों से होकर वन में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे तो उन्हें पहचान लेते थे कि राम भगवान हैं, विष्णु के अवतार हैं तो वे उनका दर्शन कर अपना अहोभाग्य मानते और उनसे

प्रार्थना करते कि उन्हें कोई मंत्र देने की कृपा कर जिससे कि उसका जाप करते हुये वे अपने आध्यात्मिक जीवन में कुछ प्रगति कर सकें और उसे सफल बना सकें। राम ने उन्हें उत्तर दिया, "मैं तो एक राजकुमार हूं और मुझे बनवास हो गया है इसलिये अपनी पत्नि और भाई के साथ वन में भटकता फिरता हूं अतएव मैं नहीं समझता कि मैं आप लोगों को मंत्र-दीक्षा देने का अधिकारी हूं।" यह कह कर राम आगे बढ़ गये। आगे-आगे राम तेजी से चल रहे थे, उनके पीछे सीता थीं और उनके पीछे लक्ष्मण (उभय बीच सिय सोहति कैसी, ब्रह्म जीव बिच माया जैसी) उन्हें देखकर एक वृद्ध तपस्वी चिल्ला पड़ा, "बन्धुओ देखो ! भगवान राम हमें मन्त्र दीक्षा दे रहे हैं; भगवान आगे-आगे हैं, प्रकृति (जो सदा उनकी सहचरी है छाया है) उनके पीछे-पीछे है और जीव जो भगवान का ही अंश है, उस महासागर की एक लहर मात्र ही है, उसके पीछे है। वह जीव भगवान को तभी देख सकता है जब भगवान और जीव के बीच आयी माया हट जाये या वह उसे पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाये। यह साधना का मूल पाठ है। र (भगवान) आ (प्रकृति) और म (जीव) है। बस राम नाम को ग्रहण कर लो यही मंत्र है इसी में सबका कल्याण है, हित है, मुक्ति है।"

मैं राम नाम पर बल दे रहा हूँ, क्योंकि राम आत्म तत्व है। राम का अर्थ होता है आनन्द-प्रदायक, हर्षदायक, सुन्दर और प्रिय। आत्मा आनन्द का स्रोत होती है, उसका स्वभाव ही आनन्द है। त्यागराज ने कहा है कि राम नाम एक ऐसा नाम है जिसे वैष्णव और शैव समान रूप से अपना सकते हैं। (राम नाम के लिये तुलसी ने कहा है—मंगल भवन अमंगल हारी, उमा सहित जेहि जपत मुरारी) नारायण मंत्र (ॐ नमो नारायण) का मूल अक्षर 'र' है, शिव मंत्र (ॐ नमः शिवाय) का मूल अक्षर 'म' है। वैष्णव और शैव मतावलम्बियों का पारस्परिक मतभेद मिथ्या है क्योंकि नारायण और शिव दोनों अन्ततोगत्वा एक ही परम सत्य के प्रतीक है। दोनों की पहचान दोनों के द्वारा धारण किये गये चिन्हों से होती है। नारायण शंख और चक्र धारण करते हैं तो शिव त्रिशूल और डमरू। शंख और डमरू शब्द के, ध्वनि के प्रतीक हैं कि भक्त की भगवान तक पहुंच शब्द के द्वारा है—नाम के द्वारा है—भगवान के यशोगान के द्वारा है। चक्र और त्रिशूल इस बात के द्योतक हैं कि नारायण और शिव दोनों ही काल के निर्माता और स्वामी हैं, चक्र काल चक्र का ही प्रतीक और त्रिशूल के तीनों शूल भूत, वर्तमान, भविष्य के इंगित हैं जो शिव के हाथ में है। नारायण को हरि कहते हैं और शिव को हर। हरि (हृ+इन्) और हर (हृ+अच्) दोनों ही एक ही हृ धातु से निकले हैं जिसके अर्थ होते हैं नष्ट करना, उठाकर ले जाना, अपहरण करना, आकृष्ट करना, मुग्ध करना, जीत लेना आदि और जो कार्य भगवान ने अपने स्वयं के हाथ में रखे हैं।

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सतत् नाम स्मरण के द्वारा अपने रात और दिन

के समय को पावन बनावें। आनन्द विह्वल होकर नाम स्मरण करो। यदि आप इस प्रकार भगवान की याद करेंगे तो उनकी दया अवश्य होगी, वे उसी में सुन्दर और श्रेष्ठ नाम और रूप में जिसमें आप उन्हें देखना चाहते हैं वे आपके समक्ष प्रकट होंगे, दर्शन देंगे और आपकी साधना सफल होगी। संसार में विभिन्न मतों, जातियों और समाजों के लोग विभिन्न नामों और रूपों से भगवान का भजन, पूजन करते हैं। वे सभी नाम और रूप उस एक ही परमेश्वर के अंग हैं। जिस प्रकार अंगों और इन्द्रियों को मिलाकर शरीर कहलाता है, इसी प्रकार मनुष्य द्वारा दिये गये नामों और रूपों को मिलाकर ही ईश्वर है। जो भगवान की सच्ची दिव्यता और महानता को नहीं समझते वे ही किसी एक नाम और रूप पर अत्यधिक बल देते हैं और जो सबसे दुर्बुद्धि पूर्ण कार्य करते हैं वह यह कि उस एक नाम और रूप के अतिरिक्त अन्य सब नाम और रूपों की निन्दा करते हैं। चूंकि आप सब लोग सत्य साई संगठनों से सम्बन्धित हैं इसलिये मैं आप लोगों को सचेत कर देना चाहता हूं कि इस प्रकार का मूर्खतापूर्ण दुराग्रह कभी न करें। यह कभी कहते न फिरें कि आप का अपना कोई अलग सम्प्रदाय है और आप लोग उनसे भिन्न हैं जो भगवान का अन्य नाम और रूपों में स्मरण, भजन और पूजन करते हैं, भक्ति करते हैं। इस प्रकार करके तो आप उस सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक भगवान को जिसकी आप पूजा करते हैं बहुत ही सीमित कर लेना, ठीक नहीं। अपने उत्साह में ऐसे मतवाले मत हो जाओ कि कह उठो, "हमें तो केवल साई चाहिए, अन्य किसी से हमारा वास्ता नहीं। आप में यह विश्वास होना चाहिए कि सब नाम साई के ही नाम हैं, सब वही है।

आप लोगों ने यह देखा होगा कि अपने भाषणों में मैं कभी साई के सम्बन्ध में नहीं बोलता और न ही अपने भाषण के बाद जो भोजन करवाता हूं उनमें साई नाम होता है। और आप लोगों को आश्चर्य होता होगा कि ऐसा क्यों ? मैं आप लोगों को इसका कारण स्पष्ट किये देता हूँ। मैं इस बात की छाप नहीं जमने देना चाहता हूं। मैं कोई नया सम्प्रदाय स्थापित करने के लिये नहीं आया हूं। मैं यह नहीं चाहता कि लोग इस सम्बन्ध में किसी भ्रम में रहें। मैं तो कहता हूं कि इस साई रूप और नाम में वे सब नाम रूप समाये हैं जिनके माध्यम से मनुष्य देव की उपासना करते हैं। इसीलिये मैं सदा इस बात की शिक्षा देता हूं कि राम, कृष्ण, ईश्वर, साई नामों में कोई भेद नहीं, कोई अन्तर नहीं है सब मेरे ही नाम हैं।

जब मैं यह जानता हूं कि मैं वह करंट हूं जिसके द्वारा बल्ब प्रकाशित होते हैं तो फिर मुझे यह क्या चिन्ता कि आप कौन सा बल्ब जलाते हैं और किस को महत्व देते हैं। जब आप बल्ब को महत्व देते हैं तो मतभेद उत्पन्न होते है. झगड़े खड़े होते हैं, मत-भेदों से मत पैदा होते हैं और सम्प्रदाय खड़े होते हैं। सत्य साई सेवा समितियों को मतभेद और झगड़े नहीं खड़े करने चाहिए, बल्कि उस एक ही की पूजा अर्चना करनी चाहिए जो एक ही विद्युत-धारा (करंट) के रूप में अनेकों बल्बों को

प्रकाशित करती है। वही परम सत्य विभिन्न नाम और रूपों में समान रूप से व्याप्त है जैसे विभिन्न आकार-प्रकार और रंगों के बल्वों को एक ही करंट प्रकाशित करता है। मेरी इन सेवा समितियों के माध्यम से अपने नाम के प्रचार करने या सम्मान प्राप्त करने की लेशमात्र भी इच्छा नहीं है। मुझे तो इसी बात से संतोष प्राप्त होता है कि मनुष्य अपनी आन्तरिक शुद्धि और उन्नति के लिये आध्यात्मिक साधनों और अनुशासनों का पालन करता हुआ ऊपर उठे, अपने चारों ओर का वातावरण शुद्ध करे और आनन्दमय बनाये। इसके द्वारा ही मेरे सार्वभौमिक और सार्वलौकिक सत्य का प्रकाश चारों ओर फैलता है। दैविक सत्य प्रकट होता है और उसके प्रकाश में व्यक्ति और समष्टि दोनों का कल्याण होता है। इसलिये मुझे किसी एक नाम या रूप में सीमित करके मत बांध दो। आप लोगों का उद्देश्य होना चाहिए कि एक ईश्वर का सभी नाम और रूपों में समान रूप से दर्शन करें। इतना ही नहीं बल्कि सृष्टि के कण-कण में उसकी अनुभूति करें, वही सब का स्रष्टा पालनकर्त्ता और संहारक है, वही सब में समान रूप से व्याप्त है। इसीलिये किसी को अत्यधिक सम्मान के योग्य या किसी को अपमान के योग्य मत समझो। प्रत्येक साई है इसलिये सब ही आप के सम्मान और सेवा के पात्र हैं। इस सत्य की अनुभूति करो और फिर उसका पालन करते हुये सबको इसकी अनुभूति करवाओ, इस सत्य का प्रचार करो। मुझे सेवा समितियों से इसी कार्य की अपेक्षा है।

मुझे और मेरे कार्यों की ओर निहारो, ध्यान दो कि मैं सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम का किस प्रकार पालन करता हूं। मैं चाहता हूं कि आप यह मुझ से सीखें और उसका पालन करें। आप लोग अक्सर कहते हैं कि स्वामी अपना संदेश दीजिये जिसे हम अपनी समिति के सदस्यों को दें। मैं तो कहता हूं कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। आप इसी प्रकार रहें तो आप मेरे संदेश का ही पालन करेंगे। मेरा जीवन तो आप लोगों को यही प्रेरणा देता है कि अपने जीवन को निर्लिप्त बनाओ, साहस, उत्साह और विश्वास रखो तथा जो दुख और संकट में पड़े हों उनकी सेवा करने के लिये सदा उत्सुक और तत्पर रहो।

भगवान तो संसार में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हैं। इसलिये संसार में सब के साथ प्रेम पूर्वक रहो, और वर्ताव करो। कृष्ण ने पांडवों की सेवा की और अर्जुन के सारथी बने, उसका रथ चलाया। यद्यपि कृष्ण कोई सम्राट् नहीं थे किन्तु सम्राटों के भी सम्राट् थे, सम्राटों के भी विगाड़ने और बनाने वाले थे। कोई आपकी कितनी भी आलोचनायें करे, हंसी उड़ाये, कितनी भी बाधायें और रुकावटें आयें किन्तु जो सेवा का व्रत अपनाया है उसे कभी मत त्यागो, जरूरत मन्दों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करते रहो। जो भी कोई सद्कार्य में लगा होता है उसके सामने इस प्रकार के अवरोध रुकावटें और कठिनाइयां आती ही हैं। मेरा उदाहरण आपके सामने है। निन्दा और स्तुति, यश और अपयश युग-युगों से साथ में चला आ रहा है।

जो विरोध और रुकावटें आती हैं उनमें तो संकल्प दृढ़ होते हैं और कुछ अधिक अच्छा ही होता। प्रह्लाद को उसके पिता हिरण्यकश्यप ने अनेकों यातनायें दीं जिससे कि उसका मन ईश्वरभक्ति से हटकर दूसरी ओर लग जाए किन्तु; उन यातनाओं का परिणाम उल्टा ही हुआ, प्रह्लाद की भगवान में आस्था, विश्वास और भक्ति दृढ़ से दृढ़तर होती चली गयी। रावण की दुष्टता के कारण ही राम के धनुष-बाण की शक्ति प्रकट हुई। प्रत्येक अवतार में शिशुपाल, दन्तवक्र, रावण, कंस आदि सदृश दुष्ट और कलंकी लोगों के अत्याचार और अनाचार के कारण भगवान को स्वयं अवतार लेना पड़ा। इस साई राम के साथ भी वही युग-युगों पुरानी परम्परा चली आयी है। अब भी उनकी सन्तानों का कार्य उजागर हो रहा है। जहां एक ओर पूजा-अर्चना, सम्मान और अभिनन्दन अपने उच्च शिखर पर पहुंच रहे हैं तो दूसरी ओर निन्दा और उपेक्षा अपने उच्च शिखर पर पहुंच रहे हैं। दोनों के बीच खड़ा हुआ मैं हाथ उठाकर दोनों को ही अपना आशीर्वाद देता हूं। न तो स्तुति से अपने आपको सम्मानित और गौरवान्वित अनुभव करता हूं और न ही निन्दा के कारण अपमानित और लज्जित ही। मैं तो दोनों से अप्रभावित और अविचलित हूं। जिस सम्मान के पात्र वे निन्दक लोग हैं उन्हें वह सम्मान मिल जायेगा और मैं अपने स्वयं के प्रताप और गौरव से सफलता और सम्मान पाऊंगा।

यदि आप उस समत्व को, जो मुझ में है, मेरी शान्ति, मेरा प्रेम, मेरी सहिष्णुता, मेरा आनन्द आप नहीं अपनाते, उसका पालन नहीं करते तो भला फिर मेरा स्मरण, भजन और पूजन करके क्या लाभ, उसकी क्या सार्थकता ? आप लोग अपने भाषणों में साई की अद्वितीय शक्ति का वर्णन करते हैं, उन घटनाओं का वर्णन करते है जिन्हें आप चमत्कार कहते हैं और जिनका मेरे सम्बन्ध में कुछ लोगों द्वारा लिखित पुस्तकों में वर्णन है। किन्तु मेरा आप से कहना है कि आप इन्हें अधिक महत्व न दें। इनके महत्व का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन न करें। मैं आपको स्पष्ट कर दूं कि जो बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह है मेरा प्रेम। मैं आकाश को पृथ्वी में और पृथ्वी को आकाश में परिवर्तित कर सकता हूं किन्तु वह मेरी दैविक शक्ति मेरा प्रतीक नहीं है, वह प्रतीक तो मेरा प्रेम है, मेरी सहिष्णुता है, कारण जो सर्वदा और सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है।

जब आप इस प्रेम और सहिष्णुता को अपने में उत्पन्न कर इसको फैलाओगे तो अनेकों कष्ट-कठिनाइयां आप के पग-पग पर कुत्तों के समान पीछे लग जायेंगी। आप को उनका स्वागत करना चाहिए क्योंकि उनके विना आपमें जो कुछ श्रेष्ठ छिपा है वह प्रकट नहीं होगा, संकट की स्थिति में ही मनुष्य के गुणों की परख होती है, तपाने से ही स्वर्ण की शुद्धता ज्ञात होती है। यदि धूल और रेत के समान असीमित मात्रा में स्वर्ण मिलने लगता या कंकड़-पत्थरों के समान हीरे-जवाहरात मिलने लगते तो स्वर्ण और हीरे-जवाहरात की कोई परवाह नहीं करता। उनका मूल्य इसीलिये

होता है कि उनको प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है वे बहुत दुर्लभता से मिलते हैं और दूसरे उन पर बाह्य वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता सर्वदा और सर्वत्र एक से बने रहते हैं।

यहाँ समस्त राष्ट्रों के लोग एकत्रित हुये हैं, उनमें भक्ति और विश्वास है। मुझे आपका ध्यान एक तथ्य की ओर आकर्षित करना है। धैर्य और आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान की दृष्टि से तो अनेकों सम्मेलन होते हैं, अनेकों समुदायों और मत विशेष के लोगों के भी सम्मेलन होते रहते हैं। लेकिन ऐसे सम्मेलन होते हैं उन सम्प्रदायों के संस्थापकों या प्रणेताओं की मृत्यु के पश्चात् ही। यह पहला अवसर है जबकि अवतार स्वयं उस नाम और रूप सहित जो उसने अपने अवतार के उद्देश्य के लिए धारण किये हैं उपस्थित है और भक्तगण उनकी दिव्य उपस्थिति में विश्व सम्मेलन कर रहे हैं। मुझे यह तथ्य बताना पड़ता है क्योंकि यहाँ उपस्थित लोगों में से ९९ प्रतिशत मेरे सत्य को, मेरी वास्तविकता को नहीं समझते हैं। आप लोग विभिन्न आवश्यकताओं और उद्देश्यों से यहाँ खिचे चले आये हैं जैसे आध्यात्मिक आनन्द का रसास्वादन, उन सभा-संस्थाओं के विकास की उत्सुकता जिनसे आप सम्बन्धित हैं, स्नेह, प्रेम, प्रशंसा, सम्मान और आप लोगों के साथ अपने अनुभव और विचार-विमर्श के आदान-प्रदान करने का उत्साह।

वास्तविक रूप में तो आप मेरे सत्य स्वरूप को न तो आज समझ सकते हैं और न हजारों वर्ष के बाद ही, चाहे जितनी तपस्या और साधना क्यों न करें और आपके प्रयत्नों में सम्पूर्ण मानवता ही क्यों न साथ हो ले। किन्तु थोड़े से समय में ही जिस दैविक शक्ति ने स्वयं अपनी इच्छा से यह पावन देह और पावन नाम धारण किया है, उसके द्वारा की गयी आनन्द की वर्षा का अनुभव करोगे और जान जाओगे। यह आप लोगों का परम सौभाग्य है कि आपको यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है जो साधुओं, संतों, संन्यासियों, विरक्तों, योगियों, मुनियों और यहाँ तक कि देवों को भी दुर्लभ होता है।

चूंकि मैं आप लोगों के बीच एक मनुष्य की तरह ही चलता-फिरता, खाता-पीता और बातें करता हूं आप लोग माया के कारण भ्रम में पड़ जाते हैं और सर्वसाधारण लोगों की तरह सामान्य मनुष्य समझने लगते हैं। मैं आप लोगों को इसके लिए सचेत कर दूं। मैं भी आप लोगों को आप के साथ बातें करके, आपके साथ गाकर, आपके साथ अन्य कार्यों में सम्मिलित होकर मोहित कर देता हूं। किन्तु मेरी दिव्यता किसी भी क्षण आपके समक्ष प्रकट हो सकती है, मेरा देवत्व प्रकाशित हो सकता है, इसलिये आपको उस क्षण के लिए सदा तैयार रहना चाहिये। चूंकि देवत्व मानव रूप में छुपा है अतएव आपको उस माया को दूर हटाने का प्रयास करना चाहिये जिसने आपकी दृष्टि पर अपने आवरण डाल रखे हैं।

यह मानव देह वह आकार है जो सर्व दैवत्व-स्वरूपों को धारण किये हुये है। संदेह और भ्रम कहीं आपको भटका कर भुलावे में न डाल दे; यदि आप अपने हृदय की वेदिका पर मेरे दैवत्व में अपनी दृढ़ आस्था और विश्वास को स्थापित कर लोगे तो आप मेरी वास्तविकता की, सत्य की झाँकी पा सकते हो। किन्तु यदि घड़ी के पेंडुलम की तरह एक क्षण इधर और दूसरे क्षण उधर हिलते रहे, कभी भक्ति और विश्वास उत्पन्न हुआ तो कभी अविश्वास हो गया, संदेह और शंकाओं के शिकार कुछ और ही सोचने लगे तो आप सत्य का साक्षात्कार कर सकने में सफल नहीं हो सकोगे और आनन्द नहीं प्राप्त कर सकोगे। यह आप लोगों का परम सौभाग्य है कि आपको सर्वदैवत्व स्वरूपम् के दर्शन का आनन्द प्राप्त करने का इस जीवन में ही शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

एक और तथ्य की ओर भी मैं आपका ध्यान दिला दूं। इसके पूर्व भगवान ने जब कभी पृथ्वी पर अवतार लिया, उनके अवतार होने का संसार को ज्ञान उनके पार्थिव शरीर को त्याग देने के पश्चात ही हुआ, यद्यपि कि उनके अवतार होने के, दैवत्व के, परम अनुग्रह के अनेकों सबल उदाहरण उपस्थित थे। मनुष्यों में उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति उस समय उनके जीवन काल में थी वह उनकी अतिमानवीय शक्ति और कौशल अथवा राजकीय सत्ता और दण्डाधिकार के कारण उत्पन्न भय और सम्मान के कारण थी। किन्तु इस सत्य साई अवतार के संबंध में विचार करो; इस भौतिक और पदार्थवादी युग में जब अविश्वास, असम्मान संक्रामक रूप से व्याप्त हैं, क्या कारण है कि सत्य साई की ओर भक्ति, विश्वास और सम्मान के साथ संसार के कोने-कोने से लाखों लोग चले आते हैं? आप यह स्वीकार करेंगे कि इसका मूल कारण है इस मानव देह को धारण कर भगवान स्वयं इस संसार में आपके बीच उपस्थित है।

एक और भी दृष्टि से आप लोग सौभाग्यशाली हैं कि आप सम्पूर्ण संसार को भारत के प्रति श्रद्धापूर्वक सम्मान प्रकट करते हुये स्वयं देख रहे हैं। आप सत्य साई का नाम संसार में भक्ति भावना के साथ लिया जाता सुन रहे हैं जबकि वह सशरीर इस संसार में उपस्थित है, आपके सामने है और आपके बीच में है। आप यह भी शीघ्र ही देखेंगे कि वेदों में सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिये जो सत्य सनातन धर्म युगों पूर्व स्थापित किया गया था, उसका उसके मूल और वास्तविक रूप में पुनः स्थापन होगा वैदिक धर्म का पुनरुद्धार साई संकल्प है, लोगों को अपनी शक्ति और सामर्थ्य का परिचय देकर केवल अपनी ओर आकर्षित करना नहीं है। यह तथ्य सत्य रूप में स्थापित होगा, असत्य का समूल रूप से नाश होगा और उस विजय का आप लोग पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। यह संकल्प है। कुछ लोगों ने जिनमें कुछ ऐसे भी हैं जो नेतागीरी और अधिकार की कुछ स्थिति विशेष पर पहुंचे हुए हैं, वैदिक ज्ञान और भारतीय संस्कृति के सिद्धांतों का आर्थिक लाभ की दृष्टि से व्यापार शुरू

कर दिया है। वे उनकी बिक्री करते हैं और पाश्चात्य लोग उनको खरीदते हैं। ये सत्य, ये खोज कोई व्यापार की वस्तुयें नहीं हैं जिनका क्रय-विक्रय हो सके। अतएव मैं पाश्चात्य देशों में भी शीघ्र ही जाऊंगा और इनके वास्तविक मूल्यों से उन लोगों को अवगत करवा कर यह सौदेबाज़ी वन्द करवाऊंगा। संयुक्त राज्य अमेरिका के विश्वविद्यालयों के प्राधिकारियों तथा उन विश्वविद्यालयों के छात्र संगठनों के नेताओं ने मुझे अमेरिका आने के लिये आमन्त्रित किया है, कार्यक्रम बनाये हैं। मेरे अफ्रीका जाने के लिये कल ही पास्पोर्ट तैयार करवा कर लाया गया है और मुझसे प्रार्थना की गई है कि उन देशों की यात्रा करूं। मैं शीघ्र ही अगले माह तक अफ्रीका जा रहा हूं।

इसलिये मेरे साथ सम्पर्क का जो भी अवसर प्राप्त होता है उसका जहाँ तक संभव हो सके अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयास करो और जो भी कुछ निर्देश देता हूं, उपदेश और सलाह देता हूं, उनका जितने भी श्रेष्ठ रूप में संभव हो सकता है उतनी श्रेष्ठता और शीघ्रता के साथ पालन करो। मेरी आज्ञा और निर्देशों का पालन करना ही पर्याप्त है, इससे आप लोगों को वहुत लाभ पहुंचेगा; जो आप वर्षों की कठोर तपस्या के पश्चात् भी नहीं प्राप्त कर सकते। सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम मुझे प्रिय हैं, इनका दृढ़ता के साथ मन, वचन और कर्म से अपने जीवन में पालन करने का संकल्प करो। इसके द्वारा ही आप परम सत्य का साक्षात्कार, उस में ही लीन हो जाने की परम कल्याणकारी स्थिति, कर सकोगे।

विश्व सम्मेलन
भगवान श्री सत्य साई सेवा संगठन, बम्बई
१७-५-१९६८

४६. आधुनिक महाभारत

हिन्दुत्व में प्रतिपादित सनातन धर्म हिमालय के समान महान, श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान, सुख, शान्ति और सुरक्षा प्रदायक है; फिर समझ में नहीं आता कि लोग क्यों आग और धुआं उगलने वाले, मनुष्य में दुर्वासनायें उत्पन्न करने और उन्हें भ्रमित और पथभ्रष्ट करने वाले ज्वालामुखियों के पीछे दीवाने-से हुये फिरते हैं। सनातन धर्म गंगा के जल के समान पावन है जिसमें कोई विषाक्त कीटाणु जीवित नहीं रह सकता; फिर भला लोग क्यों समुद्र के खारे पानी के लिये दौड़ते हैं जिससे प्यास तक नहीं बुझ सकती ? इस देश के लोगों के लिये, जो हजारों वर्षों से एक समुन्नत संस्कृति के वातावरण में पल्लवित और पोषित होते चले आ रहे हैं, विदेशी संस्कृति कभी अनुकूल नहीं हो सकती। यह संस्कृति श्रेष्ठतम है, जीवन की सभी स्थितियों और संसार के सभी प्रदेशों के लोगों के लिये उपयुक्त है। यह देश और काल की सीमाओं से परे सार्वलौकिक और सार्वकालिक है इसलिए सत्य सनातन है।

जलवायु, पैदावार, भूमि और इतिहास सम्बन्धी क्षेत्रीय विशेषताओं और अन्तरों के कारण किसी स्थान के लोगों में अंशों से कुछ विशेष गुण हो सकते हैं, वे दूसरे लोगों से अधिक संयम नियमों के साथ रहते हों, किन्तु सभी देशों के संत-महात्माओं का उद्देश्य मनुष्य को पशुता के निम्न-स्तर की ओर फिसलने से बचा कर ईश्वर की ओर ऊंचे उठाने का रहा है। मनुष्य को अपने वास्तविक उत्थान के लिए चाहिए कि वह अपने में समत्व पैदा करे, सत्य और प्रेम में दृढ़ता के साथ स्थापित रहे। सत्य और प्रेममय जीवन से उसका हृदय भगवान को प्रतिबिम्बित करने लगेगा। किन्तु जब मनुष्य की प्रगति के इस मार्ग पर कोई चलता नहीं, उस पर कटीली झाड़ियां उग जाती हैं और मार्ग दिखायी देना भी बन्द हो जाता है, सच्चे जिज्ञासु भी भटकने लगते हैं तो भगवान स्वयं मनुष्य रूप धर कर इस धरा पर अवतरित होते हैं और मानवता के कल्याण के मार्ग का पुनर्निर्माण करते हैं।

धर्म स्थापना के इस कार्य में दो बातें हैं— असत्य का नाश और सत्य की स्थापना ! आज के इस युग में जिस एक साधन से ये दोनों बातें पूरी हो सकती हैं वह है नाम स्मरण। धर्म का पालन कर मनुष्य अपनी इहलौकिक और पारलौकिक सभी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। धर्म तो मनोवांछित सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनु है। भगवान के नाम की रस्सी से इसे अपनी जिह्वा की खूंटी से बांध दो, फिर सभी इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी। वह सदा तुम्हारे हृदय में ही वास करेगी। प्रारम्भिक स्थिति में सामूहिक रूप से नामस्मरण करना अच्छा रहता है, अकेले में विचार इधर-उधर भटका देते हैं, चित्त की चंचलता ध्यान एकाग्र नहीं

होने देती । घास के एक तिनके में कोई शक्ति नहीं होती किन्तु जब घास एकत्रित करके उसको बट कर एक मोटी रस्सी बना ली जाती है तो वह इतनी मजबूत हो जाती है कि उससे बलवान हाथी भी बाँधा जा सकता है। इसलिए चंचल मन को भी जो इधर-उधर भटकता है सत्संगत के प्रभाव से स्थिर किया जा सकता है और भगवान में लगाया जा सकता है ।

अर्जुन ने श्री कृष्ण से शिकायत की थी कि, "चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् । तस्याहं निग्रहं मन्यो वायोरिव सुदुष्करम्"। "हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन[1] (पीड़ा और कष्ट पहुंचाने वाले) स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान है इसलिए मैं उसको वश में करना वायु की भाँति अति दुष्कर समझता हूँ।" तो कृष्ण ने उसे समझाया था कि अभ्यास और वैराग्य से चंचल मन को वश में किया जा सकता है, उसे अवश्य ही वश में करना चाहिए । सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक भगवान के ध्यान में मन को लीन कर उसे नियन्त्रित किया जा सकता है, उसको निरोध स्थिति में लाया जा सकता है । उस स्थिति के प्राप्त हो जाने पर क्रोध, मोह, लोभ आदि फिर आपको सताना बन्द कर देंगे, 'मैं' और मेरा' के बन्धन भी टूट जायेंगे और आप को शान्ति प्राप्त होगी । जितनी बड़ी उपलब्धि आप चाहते हैं उसी के अनुपात में आप को तैयारियाँ करनी पड़ेंगी और प्रयत्न करने होंगे । यदि आप परमानंद की प्राप्ति चाहते हैं तो फिर क्यों सांसारिक तुच्छ सुख-सुविधाओं में फंसते हैं; जिनसे आपको कोई स्थायी सुख प्राप्त नहीं हो सकता बल्कि जिनके अन्त में परिणाम दुखदायी ही होते हैं। इसीलिए तो भटकते और कष्ट पाते हो, किन्तु स्थायी सुख की प्राप्ति के लिए वांछित मूल्य चुकाने के लिए तैयार नहीं होते ।

एक सुल्तान था । उसने महाभारत की कथा सुनी तो बड़ा प्रसन्न हुआ । उसे ज्ञात हुआ कि हिन्दू इसे पंचम वेद के रूप में मानते हैं । उसने अपने राज्य के एक प्रसिद्ध कवि को बुलाया और कहा कि एक महाभारत के काव्य की रचना करो जिसमें अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर लेने वाले महाभारत के मुख्य पात्र के रूप में मेरा चित्रण हो । उसने कवि को वह काव्य एक निर्धारित समय में पूरा करने के आदेश दे दिए और साथ में यह भी कह दिया कि नियत समय पर काव्य तैयार नहीं करके दिया गया तो उसके भयंकर परिणाम भुगतने के लिए उसे तैयार रहना चाहिए । कवि को काव्य रचना करने के लिए अपनी स्वीकृति देनी पड़ी और वैसे ही कह दिया कि उसने रचना प्रारम्भ कर दी है जिसमें सुल्तान को पाँच पांडवों में से सबसे बड़े भाई के रूप में तथा उसके चार वज़ीरों को उसके चार छोटे भाई अन्य पांडवों के रूप में चित्रित किया जा रहा है । सुल्तान के जो शत्रु थे उन्हें कौरवों के

---

१ मथना, बिलोना

रूप में लिया गया है। सुल्तान यह संक्षिप्त विवरण सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़ी उत्सुकता के साथ काव्य रचना के पूर्ण होने और उसके सुनने के लिए प्रतीक्षा करने लगा। किन्तु कवि की काव्य रचना पूरी नहीं हुई, समय की सीमा पार हो रही थी। सुल्तान ने कवि को बुलाकर जवाब-तलब किया तो उसने कहा, "जहाँपनाह! मैं आप से एक बात का खुलासा करना चाहता था। महाभारत की कथा में पांडवों के सबसे बड़े भाई की जो पत्नी है वह उसके दूसरे चार भाइयों की भी पत्नी है वह ही महारानी है। अब यह बात मेरे काव्य में आनी चाहिए। उसमें आपके वजीरों को आपके भाइयों के रूप में लिया गया है। महाभारत की मूल रचना के अनुसार तो फिर आपकी बेगम साहिबा मुख्य महारानी होंगी और उन्हें आपके भाई के रूप में चित्रित किये गये चारों वजीरों की पत्ना के रूप में दिखाना होगा। अब आप फरमायें कि क्या मैं आपकी बेगम साहिबा को भी आपके वजीरों की भी पत्नी के रूप में दिखाऊं या........." बस इतना सुनना था कि सुल्तान चीख कर बोला, "बन्द करो अपनी बकवास" और उसने वह सारी योजना उठा फेंकी।

यदि आप किसी लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो मार्ग में आने वाली सभी कठिनाइयों को पार करना होगा, कष्टों को सहन करना पड़ेगा—अन्यथा फिर आप वांछित फल नहीं प्राप्त कर सकेंगे। इस शरीर में पंच प्राण ही पंच पांडव हैं और पांचों मिल कर एक ही हैं तथा अग्नि से उत्पन्न द्रौपदी इस शरीर को चलाने वाली शक्ति है। जब इस आध्यात्मिक भाव की महाभारत में उपेक्षा कर दी जाती है तो वह राजाओं और रानियों की तथा राज्य के सम्बन्ध में उनके युद्धों की कहानी मात्र रह जाती है।

सत्य साई सेवा संगठनों के प्रत्येक सदस्य को एक साधक होना चाहिए और उसे लोभ, मोह और अहंकार, 'मैं' और 'मेरा' 'ममाकार' और अभिमान पर विजय पाने के लिए कठोर अनुशासनों का दृढ़ता के साथ पालन करने वाला होना चाहिए। अध्यक्षों, उपाध्यक्षों और मंत्रियों को तो सदस्यों से कहीं अधिक उत्सुक और प्रयत्न-शील रहने की आवश्यकता है इस सम्बन्ध में, जिससे कि वे दूसरों के समक्ष अपना आदर्श उपस्थित कर सकें। उन्हें अपने इन पदों को कोई अधिकार की स्थिति या भक्ति का पुरस्कार नहीं समझना चाहिए। इन पदों को तो सेवा और सौभाग्य का अवसर समझ कर सदस्यों और जनता के प्रति पूर्ण विनम्रता, सम्मान और प्रेम के साथ स्वीकार करना चाहिए।

अतएव सबको प्रेम करो, सबका सम्मान करो, सबकी सेवा करो। किन्तु यह मत सोचो कि सबके समान अधिकार, दायित्व और कर्त्तव्य हैं। आप यह नहीं कह सकते कि सभी गायें एक सी ही होती हैं इसलिये उन्हें दर्जन के हिसाब से खरीद लिया जाये। कुछ गायें दूध देने वाली होती हैं कुछ नहीं, कुछ दुबली-पतली होती हैं

कुछ लंगड़ी, कुछ सीधी-सादी होती हैं तो कुछ मरखनी; किसी में कुछ दोष होता है तो किसी में कुछ विशेषता। इसलिये आप को प्रत्येक के गुण-दोषों के आधार पर मूल्य का निर्धारण करना होता है। इसी प्रकार सभी मनुष्य समान नहीं होते। अतः प्रत्येक व्यक्ति का धर्म, कर्त्तव्य, कर्म भिन्न होता है क्योंकि उसका निर्णय आयु, व्यवसाय, स्थिति, अधिकार, विद्ववत्ता आदि विभिन्न बदलने वाली स्थितियों पर तथा इस बात पर होता है कि व्यक्ति पुरुष है या स्त्री, अध्यापक है या विद्यार्थी, मालिक है या नौकर, बालक है या युवक, पिता है या पुत्र, आश्रित है या स्वतंत्र। किन्तु फिर भी धर्म का मूल आधार है सत्य, अहिंसा, प्रेम और सहिष्णुता। धर्म के सम्बन्ध में अनेकों लिखित और अलिखित आचरण संहिताओं में इन्हीं मूल सिद्धान्तों को विस्तृत रूप में समझाया गया है।

आजकल वर्णाश्रम धर्म को लेकर बड़ी आलोचनायें होती है किन्तु वे रचनात्मक नहीं हैं क्योंकि आलोचकों को न तो उन शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान है जिनमें वर्णाश्रम धर्म का विधान है और न ही अपने जीवन में उन ग्रन्थों का, शास्त्रों का कोई व्यावहारिक रूप से ही अनुभव है। सनातन धर्म के ग्रन्थों और शास्त्रों की भाषा संस्कृत है, इसलिए सत्य साई सेवा संगठनों को बच्चों और बड़े लोगों को संस्कृत सिखाने की व्यवस्था करनी चाहिए। यह एक कार्य है जिसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सब से अधिक खेद की बात यह है कि वे पंडितजन भी जिन पर संस्कृति की विद्या के रक्षण-पोषण तथा प्रचार-प्रसार का नैतिक उत्तरदायित्व है, अपने बच्चों को संस्कृत नहीं पढ़ाते, यद्यपि कि वे अपनी विद्वत्ता, अपने ज्ञान का अत्यधिक सम्मान और मान्यता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इस आत्मघाती उपेक्षा के फलस्वरूप संस्कृत ज्ञान का ह्रास होता चला जा रहा है। वास्तव में पाखण्ड और द्वेष के कारण वातावरण अत्यन्त दूषित हो गया है। कोई साहस के साथ खड़ा हो कर अपनी मान्यताओं, अपने अन्तर की आवाज को सब के समक्ष न तो कहता ही है और न ही उसके अनुसार आचरण करता है। पंडितगण प्राचीन ग्रन्थों और शास्त्रों की प्रशंसा तो बहुत करते हैं उनके माहात्म्य का बखान करते हैं किन्तु इस बात के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते कि उनकी सुरक्षा और अध्ययन सतत् रूप से जारी रहें, यह क्रम कहीं टूट न जाये; इसकी किसी को कोई चिन्ता नहीं है। जनता के नेतागण जो सार्वजनिक मंचों से अपने भाषणों में अंग्रेजी की भर्त्सना करते हैं, अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई कराने वाले अंग्रेजी पब्लिक स्कूलों में पढ़ाने के लिए भेजते हैं। साई संगठनों के सदस्यों को अपनी कथनी और करनी में इस प्रकार के पाखंडपूर्ण व्यवहार से बचना चाहिए। जो कुछ कहते हैं उसका ईमानदारी के साथ पालन करना चाहिए। यही धर्म है।

चार प्रकार के लोग होते हैं। प्रथम श्रेणी के तो वे जो इतने अच्छे, इतने सज्जन होते हैं कि वे दूसरों में कोई दोष नहीं देखते हैं और सब को सज्जन समझते हैं, यदि

कोई बुराई देखते हैं तो अपने में न कि दूसरों में (बुरा जो देखन मैं गया बुरा न मिलिया कोय। जो घर देखा आपना, मुझ से बुरा न कोय ।।) दूसरी श्रेणी के वे लोग होते हैं जो भले को भला और बुरे को बुरा देखते हैं। तीसरी श्रेणी के वे लोग होते हैं जो भलों की उपेक्षा करते हैं और बुरों को अपनाते हैं। चौथी और निकृष्टतम श्रेणी के वे लोग होते हैं जिन्हें दुष्ट और असज्जन ही प्रिय हैं तथा भले और सज्जन उन्हें सह्य नहीं होते इसलिये उन्हें भी बलपूर्वक अपने जैसा बनाने के लिए प्रयत्न-शील रहते हैं क्योंकि उनके अनुसार उनके समान अन्य कोई श्रेष्ठ नहीं होता। अन्तिम दोनों श्रेणियों के लोगों से बचकर रहने की आवश्यकता है और अपने आप को दूसरी श्रेणी तथा अन्त में प्रथम श्रेणी के व्यक्ति बनने के प्रयत्न करने चाहिए और वैसा बनना चाहिए। इस सम्मेलन में आप लोगों की गतिविधियों और क्रिया-कलापों के लिए जो विधि-विधान तथा नियम-उपनियम बनाये गये हैं वे आप लोगों की आध्यात्मिक उन्नति और इस निमित्त अनुशासनपूर्ण प्रयत्नों की सफलता के लिए ही निर्धारित किये गये हैं। वे आप के हित के लिए हैं, न कि मेरे अधिकार को बढ़ाने के लिए। जहां तक मेरा सम्बन्ध है वहां आपको मुझसे केवल एक नियम बांधता है और वह नियम है प्रेम। वही प्रेम को प्रेरणा देगा, उपदेश करेगा, शान्ति और सुख प्रदान करेगा।

अखिल विश्व-सम्मेलन
भगवान श्री सत्य साई सेवा संगठन
बम्बई, १८-५-१९६८ (प्रातः)

४७. गाओ मधुर नाम

अथाह समुद्र में उत्ताल तरंगों, काले बादलों, घनघोर वर्षा और तूफान में फंसा नाविक कम्पास की सहायता से सही दिशा और मार्ग-दर्शन प्राप्त कर लेता है। उद्वेलित करने वाली और कभी न तृप्त होने वाली इच्छाओं के तूफानों में फंसे संकटों के काले बादलों और वर्षा में घिरे मनुष्य के लिए आध्यात्मिक अनुशासनों के परिपालन तथा प्रगति के कार्यों में समर्पण भावना के साथ सेवारत समाज ही मार्गदर्शी कम्पास का कार्य कर सकते हैं। जब तक मनुष्य वाह्य प्रकृति की ओर आकर्षित रहता है और उसे ही सब कुछ समझ बैठता है तब तक वह सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वन्दों के थपेड़ों से बच नहीं सकता। किन्तु यदि मनुष्य अपने भीतर तथा प्रकृति के भीतर छिपे ईश्वरीय ऐश्वर्य, गौरव और महानता की झलक पा जाये, उसकी ओर आकर्षित हो कर उसे पाने का प्रयास करे तो फिर वह समस्त द्वन्दों से ऊपर उठकर स्थायी सुख, शान्ति, सन्तोष और आनन्द प्राप्त कर सकता है। यह शरीर तो कार के समान है जिसमें भगवान स्वयं बिराजे हुए हैं, पूजा उत्सव के लिए शोभा यात्रा के हेतु। इस कार के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पहिए हैं। जिनकी प्राप्ति मनुष्य के जीवन का लक्ष्य होती है। अर्थ और काम का परिशोधन और नियन्त्रण धर्म और मोक्ष से ही होता है। यह कार तभी चल सकती है जबकि इसमें विज्ञान का ईंधन डाला जाये, उसके टायरों को विश्वास रूपी हवा भर कर खूब फुला कर सख्त कर लिया जाये। मुक्ति इसका लक्ष्य स्थान है। वहां पहुंच कर ईश्वर में लीन हो जाना है, उसके बाह्य और आन्तरिक तेज में समा जाना है।

इस लक्ष्य से परिचित होना और उसे प्राप्त करना मनुष्य के जीवन का मुख्य उद्देश्य है। जो इससे अनभिज्ञ रह जाता है वह अज्ञानी है, वह कितना भी उदभट[1] विद्वान अपने आपको क्यों न समझता हो; क्योंकि पूछने योग्य केवल इस एक प्रश्न का ही वह उत्तर नहीं जानता कि, "मैं कौन हूं?" चाहे वह चन्द्रलोक की यात्रा क्यों न कर लेता हो किन्तु वह अपने स्वयं के अन्तर के चन्द्रलोक, मन की पूरी खोज कर पाने में असफल रहा है। जब मनुष्य अपने मन को, उसकी रचना को, उसके व्यवहार को, उसकी विशेषताओं को भली प्रकार समझ लेता है और उस पर नियंत्रण पा लेता है तो वह सम्पूर्ण सृष्टि को भी समझ लेता है क्योंकि समस्त सृष्टि का स्रष्टा मन ही है। वैज्ञानिकों को विनम्र होना चाहिए और यह स्वीकार करना चाहिए कि उनके द्वारा की गयी खोजें इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी कि आन्तरिक सत्य

---

१ प्रकाण्ड विद्वान

के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय ऋषियों और मुनियों द्वारा की गयी खोजें थीं। वैज्ञानिकों के प्रति भी आप लोगों को कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने नये नये आविष्कार किए हैं, भौतिक शक्तियों और पदार्थों की खोज की है और उन्हें मानवीय उपयोग में व्यावहारिक बनाया है। किन्तु वैज्ञानिकों को उतना ही सम्मान और मान्यता प्रदान करो जितने के वे योग्य हैं, उससे अधिक नहीं, उन्हें ही सर्वस्व समझ बैठने की गलती मत करो। विज्ञान पदार्थों का विश्लेषण कर सकता है, भौतिक सुख-सुविधा दे सकता है, शारीरिक कष्टों को कम कर सकता है किन्तु आन्तरिक सुख, सन्तोष और शान्ति समत्व और स्थायी आनन्द नहीं दे सकता। वह गाड़ी में सुधार और विकास कर सकता है, उसे वह बना सकता है, पहिये की गति बढ़ा सकता है किन्तु वह घोड़े को आन्तरिक प्रेरणा नहीं दे सकता, उसका विकास नहीं कर सकता।

इन तीन दिनों तक आप लोग अनेकों आध्यात्मिक विषयों पर विचार-विमर्श करते हैं, उनके कुछ परिणाम निकलते हैं जिन्हें मैं आप लोगों के हित के लिए सारांशरूप में स्पष्ट करता हूं।

अहंकार के विनाश के उपाय:—इनमें से प्रमुख है भजन। अपने गांव में, क्षेत्र में जितने दिन भी आप कर सकते हैं उतने दिन भजन के कार्यक्रम रखो। इनका आयोजन ऐसे स्थानों पर करो जहाँ लोग आ सकें और उसमें भाग ले सकें, व्यक्तियों के घरों पर मत रखो क्योंकि वहाँ सब नहीं जा सकते। जितनी अधिक सादगी और सरलता हो सके बरतो, कोई दिखावा या प्रतिस्पर्धा नहीं होनी चाहिए। खर्चा कम से कम करो। भगवान आन्तरिक तड़प और पिपासा को देखते हैं न कि बाहरी दिखावे या भाग-दौड़ को।

जो कुछ थोड़ा सा अपरिहार्य[1] व्यय हो उसे समिति के कुछ सदस्यों को आपस में चुपचाप मिलकर पूरा कर लेना चाहिए यह नहीं कि उसके लिए चंदे या दान की सूची तैयार की जाये या कोई दान-पात्र रखा जाये। पारस्परिक सहयोग करने वाले को श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से बंधा होना चाहिए। भजन बृहस्पतिवार की सायं या रविवार को सायंकाल रखना श्रेष्ठ रहता है, किन्तु यह कोई ऐसा अपरिहार्य नियम नहीं है क्योंकि सप्ताह के किसी दिन विशेष का महत्व नहीं होता, महत्व तो होता है हृदय की भावना का। हृदय में उत्सुकता, प्रेम और लगन होनी चाहिए जो हर समय भगवान के नाम और यशोगान के आनन्द का पान करने के लिए तैयार रहें। वास्तव में भजन तो सतत् चलने वाला अभ्यास है जो उसी प्रकार से अनिवार्य बन जाना चाहिए जैसे श्वास प्रक्रिया जिसके बिना प्राणी जीवित ही नहीं रह सकता। स्थान

---

१ अटल, उचित

विशेष लोगों की सुविधा के अनुसार ही सामूहिक भजनके कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिएं। बहुत से लोग इस बात पर बल देते हैं कि केवल वे ही भजन गाये जाने चाहिएं जो प्रशान्ति निलयम् में गाये जाते हैं; किन्तु भगवान तो सर्वव्यापी हैं, सर्वदा, सर्वत्र उपस्थित, आपके हृदयवासी। सब नाम भगवान के नाम हैं इसलिये आप उन्हें किसी भी नाम से पुकारो जो आप को प्रिय हो, जिससे आपको आनन्द प्राप्त होता है। इसमें कोई रोक-टोक नहीं होनी चाहिए। सत्य साई संगठनों के सदस्यों को अन्य नामों का छिद्रान्वेषण[1] या निन्दा नहीं करनी चाहिए, अन्य नाम और रूपों के यश और गौरव के प्रति अंधा नहीं बनना चाहिए। जो अन्य नाम व रूपों से भगवान के अवतारों का भजन-पूजन करते हैं उनके साथ भी सहयोग करो, उनमें सम्मिलित होओ और यह प्रकट करो कि तुम्हारा दृष्टिकोण कितना व्यापक है और तुम मुझे सब नाम और रूपों में देखते हो और मानते हो कि साई सब नाम और रूपों में समान रूप से व्याप्त है। अपनी श्रद्धा, आस्था और विश्वास को बिना त्यागे सबके सुख और आनन्द में अपना सहयोग प्रदान करो।

फिर ध्यान की समस्या आती है। व्यक्तिगत रूप से जो ध्यान करते हो उसके अतिरिक्त आप लोगों को १०-१५ मिनिट तक उस स्थान पर सामूहिक रूप से उस नाम और रूप का ध्यान करना चाहिए जहां आप भगवान का उस नाम और रूप में भजन और पूजन करते हैं। ऊंकार के पश्चात आपको अपना ध्यान भगवान के उस रूप पर एकाग्र करके ध्यान करना चाहिए। अथवा आप अपना ध्यान पूजा के दीपक की लौ पर एकाग्र करके कर सकते हैं कि आप की सम्पूर्ण अन्तःचेतना प्रकाशित हो रही है, और सम्पूर्ण सृष्टि उस दिव्य प्रकाश से प्रकाशित होती चली जा रही है और आप उसमें लीन होते जा रहे हैं। ध्यान से सभी काम पवित्र हो जाते हैं और मन नियन्त्रण में आ जाता है, चित्त की वृत्तियों का निग्रह हो जाता है। उस प्रकाश की धार में आप भगवान के उस रूप को देख सकते हैं जिसका आपने भजन में यशगान और पूजन किया है। सामूहिक भजन के पश्चात इस प्रकार के सामूहिक ध्यान से घर पर व्यक्तिगत रूप से नित्य प्रति ध्यान करने की पृष्ठभूमि दृढ़ होगी, अधिक आनन्द आने लगेगा, ध्यान करने का समय बढ़ता जायेगा, आन्तरिक शान्ति गहरी होती चली जायेगी। सत्य साई संगठन के प्रत्येक सदस्य के लिए ध्यान एक अनिवार्य और अपरिहार्य साधना है जिस पर मैं बहुत बल देता हूं।

अब आइये अध्ययन केन्द्रों पर। मैं पुस्तकों के, बिना किसी सोच-विचार के, वैसे ही पढ़ते रहने के पक्ष में नहीं हूं, फिर कोई पुस्तक कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो। बहुत अधिक पढ़ने से मन में ऊहापोह होने लगती है, तर्क करने की शक्ति बढ़

---

१ गलती निकालना, दोष निकालना

जाती है और ज्ञानी होने का अभिमान हो जाता है। मैं तो इस बात पर बल देता हूं कि जो कुछ पढ़ा और समझा जाये उसे व्यवहार में लाना चाहिये चाहे वे एक या दो बातें ही हों। फिर आपको यह बात भी याद रखनी चाहिए कि पुस्तकें आपको संकेत देती हैं, मार्ग दिखाने के सूचना या संकेत-पट का कार्य करती हैं। पुस्तकें कुछ समझने और उसका जीवन में व्यवहार करने के लिए पढ़ी जानी चाहिएं न कि केवल पढ़ने के नाम पर ही पढ़ी जानी चाहिएं। जैसे किसी की अलमारी में दवाइयों और टानिकों के टिन, शीशियां, कैपस्यूल आदि हों तो वे व्यक्ति के रोगी होने का संकेत देते हैं। इसी प्रकार घर में अधिक पुस्तकों का होना बौद्धिक दृष्टि से रोगी या व्यसनी होने का संकेत होता है। पुस्तकें अथवा उनसे उद्धरण पढ़े जाना किन्हीं अन्य अवसरों के लिए उपयुक्त हो सकता है किन्तु भजन के पहले या बाद में यह ठीक नहीं रहता।

फिर आता है नगर संकीर्तन का कार्यक्रम। यह कोई नई बात नहीं है क्योंकि जयदेव, गौरांग, तुकाराम और कबीर व्यक्ति के आत्म विकास और सामूहिक आध्यात्मिक जागरण के लिए इस प्रकार के नगर संकीर्तन को एक अच्छा साधन मानते थे। प्रातः ४-३० या ५-०० बजे एक स्थान पर एकत्रित हो जाओ और भगवान के नाम और यश का सुमधुर स्वरों में गान करते हुए धीरे-धीरे गलियों में से होकर निकलो। मधुर नाम की धुन से उस वातावरण को पावन बना दो जो ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और प्रतिस्पर्धा के कारण दूषित हो जाता है। सोते हुए लोग प्रभु का पावन नाम सुनते हुए जग उठें। आपका, आपके नगर-मोहल्ले वालों के दिन का शुभारम्भ परमपिता परमात्मा, सर्वशक्तिमान और सर्वान्तर्यामी भगवान की, दीनबन्धु और दीनानाथ और करुणा सागर, प्रेममय प्रभु की याद के साथ हो जिससे आप उनकी दया के पात्र बन सकें। आप दूसरों की इससे अधिक अच्छी और क्या सेवा कर सकेंगे। जब आप अपने नगर-मोहल्ले के लोगों के सामने गलियों में घूमते हुए और गाते हुए निकलेंगे तो आपका अभिमान जाता रहेगा। आप में विनम्रता आयेगी। इस प्रकार नगर संकीर्तन एक बहुत बड़ी साधना है, एक अच्छी सामाजिक सेवा का कार्य है।

कल एक और प्रश्न आया था—प्रसाद के सम्बन्ध में। खाने की वस्तुओं के प्रसाद का वितरण, जहां तक सम्भव हो नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि नाम-स्मरण से बढ़ कर और कोई प्रसाद वितरण नहीं है। वही भगवान को श्रद्धा, प्रेम और शुद्ध हृदय के साथ अर्पित करो और उसी का सब में वितरण करो। आप विभूति का प्रसाद दे सकते हैं, यही पर्याप्त है, इससे बढ़ कर मूल्यवान और प्रभावकारी प्रसाद और कोई नहीं।

यह आपका पावन कर्तव्य है कि आप अपने सत्य साई सेवा संगठन का कार्य प्रभावकारी ढंग से चलाते हैं, आप स्वयं अपने कार्य और व्यवहार से अनुकरणीय

आदर्श उपस्थित करते हैं। अपने यहां देश के विभिन्न भागों तथा संसार के अन्य देशों से आये अपने सह-तीर्थयात्री बन्धुओं के साथ जो तीन दिन बिताये हैं उसके द्वारा आपको बहुत ही प्रेरणा, साहस, अनुभव और ज्ञान प्राप्त हुआ होगा। आप उसे संजोकर रखें और उसका सदुपयोग करें। बम्बई की सत्य साई सेवा समिति तथा प्रशान्ति विद्वान महासभा की महाराष्ट्र शाखा ने आप लोगों के ठहरने तथा भोजन आदि तथा सम्मेलन के अन्य कार्यक्रमों की बहुत ही अच्छी व्यवस्था की है। उन्होंने सम्मेलन के कार्यक्रमों की बहुत विस्तृत आधार पर योजना तैयार की और उसको पूर्ण सफलता के साथ पूरा किया जिससे कि इस सम्मेलन के आध्यात्मिक उद्देश्य का सबको पता लग सके और आप लोगों को मेरे दर्श, स्पर्श और संभाषण का सौभाग्य प्राप्त हो सके। आपको इसके लिए इनका कृतज्ञ होना चाहिए। मैं आप लोगों को आशीर्वाद देता हूं आप लोग अपने-अपने स्थानो पर लौट कर अपने प्रयत्नों से अपनी और संसार के सभी लोगों की आध्यात्मिक उन्नति कर सकें।

अखिल विश्व-सम्मेलन
भगवान श्री सत्य साई सेवा संगठन
बम्बई, १८-५-१९६८ (संध्या)

४८. मेरा संदेश

आपकी वास्तविकता है आत्मा, परमात्मा रूपी महासागर की ही एक लहर। मानव जीवन का लक्ष्य है कि वह अपनी इस वास्तविकता को जाने, आत्म-ज्ञान प्राप्त करे, सागर और लहर के सम्बन्ध को पहचाने। अन्य सब बातें इतनी महत्व-पूर्ण नहीं क्योंकि वे तो पशु-पक्षियों में भी होती हैं, केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसे यह अद्वितीय सौभाग्य प्राप्त है। और यह मानव देह बड़ी कठिनाइयों के बाद प्राप्त होती है, जीवन के विकास-क्रम में न जाने कितने जन्म और कितनी योनियां पार करके और यातनायें सह कर। यदि फिर भी मनुष्य जन्म से मृत्यु तक का अपना जीवन-काल केवल अपने भोजन, वस्त्र, मकान और अन्य शारीरिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति में ही बिता दे तो मनुष्य और पशु में कोई अधिक अन्तर नहीं रह जाता, वह अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ गंवाता है और जन्म-मरण के चक्र में फंसता है, अपने आप जीवन की कैद में पड़ता है।

मनुष्य में अन्य जीवों से जो दो सर्वश्रेष्ठ विशेषतायें हैं वे हैं विवेक और विज्ञान। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी इन विशेषताओं का सदुपयोग करते हुए अपने परम सत्य का पता लगाये तो उसे ज्ञात होगा कि दूसरों का भी वही सत्य है, पृथ्वी पर के सभी देश पृथ्वी से ही उत्पन्न हैं, उसी से पालित और पोषित हैं, एक ही सूर्य सबको प्रकाश और उष्णता प्रदान करता है। इसी प्रकार एक ही परमात्म-तत्व सभी पिण्डों को प्रेरित और स्पन्दित करता है, सब ही उस आन्तरिक नियंता[1] की सत्ता से शासित हैं। मनुष्य ने इस परम सत्य का पता लगाया है जिसके साक्षी हैं संसार के प्राचीनतम साहित्य कहे जाने वाले वेद जो कहते हैं कि ईश्वर ही सर्वभूतान्तरात्मा है, ईशावास्यमिदंसर्वम् (सब कुछ ईश्वर में ही समाया है) 'वासुदेवस्सर्वमिदम्' (यह सम्पूर्ण संसार वासुदेवमय है)। परमात्म-तत्व का यह दैविक सिद्धान्त उसी प्रकार है जिस प्रकार कि बल्ब किसी भी रंग के हों, कितनी भी शक्ति के हों, विद्युत-चालित कोई भी उपकरण या यन्त्र हो, ठंडा करने का या गर्म करने का, पंखा या हीटर एक ही विद्युत धारा से, बिजली के करेंट से प्रकाशित और चालित होते हैं। इसी प्रकार वह परमात्म-तत्व सब में व्याप्त है, सबको स्पंदित, प्रेरित और चालित करता है फिर चाहे वह किसी देश का हो, किसी भी जाति, धर्म, लिंग, रंग या रूप का हो। जो भेद करते हैं वे धोखे में पड़े हैं, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अभिमान के कारण उनकी दृष्टियां दूषित

---

१ नियन्त्रण करने वाला (ईश्वर)

हां गयी हैं, वे बेचारे ठीक से देख नहीं पाते। प्रेम के द्वारा मनुष्य सबको एक ही दैविक परिवार के घटक के रूप में देख और समझ सकता है।

यह आत्मा का सिद्धान्त मनुष्य में कैसे प्रकट होता है ? यह प्रकट होता है प्रेम के रूप में। प्रेम वह मूल स्वभाव है जिसके आधार पर प्राणी का अस्तित्व है, स्थिति है, प्रेम से ही वह शक्ति पाता है और आगे बढ़ता है, प्रगति करता है। प्रेम के बिना मनुष्य अन्धा है, संसार उसके लिए अंधकारपूर्ण भयावह जंगल है प्रेम ही वह प्रकाश है जो मनुष्य को संसार के जंगल में भटकने से बचाता है और सही मार्ग-दर्शन कराके उसको पार लगाता है। वेदों में मनुष्य-जीवन के चार लक्ष्य बताये गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। निर्देश है कि धर्म के मार्ग से अर्थ अर्जित करना चाहिए, किन्तु इस पर कोई ध्यान देता नहीं है, लोग तो जैसे भी हो, कुछ भी करना पड़े धन का संग्रह करते हैं। वेद का कथन है कि एक ही कामना या इच्छा होनी चाहिए और वह है मोक्ष की, किन्तु इसको भी कोई नहीं मानता, मनुष्य की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं, एक के बाद एक बलवती इच्छा उठती है जिसकी पूर्ति उसके सामर्थ्य के बाहर होती जाती है। किसी कैदी की सिवाय मुक्ति के भी क्या अन्य कोई इच्छा हो सकती है ? आज संसार में चारों ओर जो दुख, चिन्ता, भय और अशान्ति का वातावरण फैला हुआ है उसका मूल कारण यही है कि मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को नहीं समझता और गलत मार्ग पर चलता है।

यह मानव देह जो इतनी सुन्दर, अनेकों विशेषताओं से युक्त तथा महान साहस-पूर्ण कार्यों को कर सकने में समर्थ है आपको भगवान की देन है। आप इसका अशान्त संसार सागर को पार करने के लिए नाव के रूप में उपयोग करें जो जन्म-मरण के बीच फैला है, मुक्ति के मार्ग में बन्धनों का कारण है। जब आपकी शारीरिक और मानसिक शक्तियां सबल हों, विवेक बुद्धि क्रियाशील हो, तभी अपने इस प्राथमिक कर्त्तव्य की ओर सजग हो जाओ। अपनी इस यात्रा के अभियान में विलम्ब मत करो क्योंकि इस शरीर के अशक्त और निर्बल होते देर नहीं लगती, क्या जाने कोई रोग कब धर दबाये इस देह को और आपका सारा ध्यान इसकी ही देखभाल में लग जाये। तनिक सोचो तो इस संसार-सागर के पार, मुक्ति-धाम पहुंच जाने पर मोक्ष की प्राप्ति में कितना आनन्द है। इसलिए समय रहते चल पड़ो, इस शरीर रूपी नाव के सशक्त रहते ही। इस बात की चिन्ता मत करो कि संसार-सागर में तो बड़े तूफान उठ रहे हैं, क्या होगा ? भगवान पर भरोसा रखो, सारी चिन्तायें उन पर छोड़ दो, वे निश्चित रूप से आपका बेड़ा पार लगा देंगे, वही सब कुछ करने वाले हैं, आप तो केवल निमित्त मात्र हैं। केवल इन्द्रिय सुख-सुविधायें तुच्छ और क्षणिक है, सस्ते आकर्षण मात्र हैं इसलिए उनके पीछे भागने के स्थान पर मनुष्य को उच्च आदर्शों और महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। हमारे देश के ऋषि-मुनियों ने अपनी परिश्रमपूर्ण खोज द्वारा उन

अनुशासनों का निर्देशन पहले ही कर दिया है जिनका पालन करके आप लाभ-हानि, जय-पराजय आदि से अप्रभावित रहते हुए प्रगति कर सकते हैं। उन अनुशासनों को सीखो, उनका पालन करो और स्थायी शान्ति प्राप्त करो।

हर घर और हर स्कूल में माता-पिता और अध्यापकों को नवयुवकों के मन-मस्तिष्कों को इन आधारों पर प्रशिक्षित करने के लिए पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ प्रयत्न करने चाहिएं। इसके लिए उन्हें ध्यान और नामस्मरण के सतत् अभ्यास और साधना के द्वारा स्वयं को पूर्ण रूप से तैयार करना होगा। प्रत्येक घर में प्रातः और सायं कुछ समय निश्चित कर दिए जाने चाहिएं जब धार्मिक ग्रन्थों का पाठ और नामस्मरण निश्चित रूप से किए जायें। माता-पिता और बच्चों को सम्मिलित रूप से भजन करने चाहिएं। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति को अपना समय भगवान को समर्पित करना चाहिए। प्रारम्भ में वह कुछ मिनट ही भगवान का ध्यान करे या किसी भी रूप में भजन-पूजन करे। धीरे-धीरे जब इसमें रस आने लगे, मन लगने लगे तो आप अपना समय बढ़ाते जाओ और अधिक रस, आनन्द और संतोष प्राप्त करते जाओ। जीवन का उद्देश्य है ईश्वरमय जीवन जीना। प्रत्येक को यह अधिकार है कि वह अपने आपको पूर्ण संस्कारित करे, शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनाये, प्रभु के प्रति अपना समर्पण करे और पूर्णता को प्राप्त करे। आप स्वयं सत्य रूप हैं, अपने को पहचानें, विश्वास न खोवें और किसी भी प्रकार की निराशा या हीनता की भावना अपने में न आने दें। आप स्वयं देव रूप हैं किन्तु फिर भी अपने दैवत्व और मानवत्व को छोड़ कर पशुता ही नहीं किन्तु उससे भी निम्न धरातल पर नीचे लुढ़क जाते हैं।

अपने में प्रेम उत्पन्न करो, सबके साथ प्रेम का व्यवहार करो। आप किसी एक व्यक्ति को कुछ कम और दूसरे को कुछ अधिक कैसे दे सकते हैं। जब वे दोनों बराबर हैं और आप के समान ही हैं ? सब में आत्मा का दर्शन करो; प्रेम प्रस्फुटित होगा, शान्ति का अवतरण होगा, वह ओस कणों सी सर्वत्र व्याप्त होगी। आप प्रेम स्वरूप हैं। आप लोग कई घंटों से यहां खुले में बैठे हुए हैं, काफी तकलीफ भी उठा रहे हैं, इस प्रकार उत्सुकता से मेरी प्रतीक्षा करते हुए, मेरे दर्शन करने और भाषण सुनने के लिए। आप लोगों की इस उत्कट अभिलाषा की पूर्ति के लिए मैं इस मंच से आप लोगों को सम्बोधित कर रहा हूं। आपके हृदय में प्रेम की अनुभूति करता हूं, तो आप के हृदय के प्रेम को ग्रहण करता हूं और अपना प्रेम आपको देता हूं। प्रेम का यह पारस्परिक आदान-प्रदान, सब के हृदयों में एक साथ समान रूप से प्रेम की यह आनन्ददायी हिलोर, पारस्परिक सम्पर्क और संदेश का श्रेष्ठ माध्यम है, शब्दों की फिर कोई आवश्यकता नहीं होती।

आप लोगों के हृदयों में प्रेम की ज्योति जगाने के लिए ही मैं आया हूँ जिससे

कि वह दिन-प्रति-दिन बढ़ते और चमकते हुए प्रकाश के साथ प्रज्वलित होती रहे। मैं आप लोगों के समक्ष किसी धर्म—जैसे कि हिन्दू धर्म—की ओर से बोलने के लिए नहीं आया हूँ। न ही मैं किसी सम्प्रदाय, जाति या आन्दोलन के प्रचार-प्रसार के निमित्त आया हूं और न ही मेरा यहां आने का उद्देश्य किसी मत या सिद्धान्त विशेष के अनुयायी एकत्रित करना है, न अपने शिष्य व भक्त बनाना है। मैं तो आपको एक ही सार्वभौमिक सत्य, विश्वास और आत्मिक सिद्धान्त का संदेश देने आया हूं—प्रेम के पथ का, प्रेम के धर्म का, प्रेम के कर्त्तव्य का, प्रेम के प्रति उत्तरदायित्व का।

सभी धर्मों की एक ही मूल शिक्षा है कि अपने मन से अभिमान के कलुष को निकालो, क्षुद्र तृष्णाओं और वासनाओं की तृप्ति के लिए क्षणिक सुख-सुविधाओं के पीछे मत भागो! प्रत्येक धर्म शिक्षा देता है कि मनुष्य को मिथ्या आकर्षणों और भुलावों में न फंस कर भगवान की ओर अपना ध्यान लगाना चाहिए, उसकी महिमा को देख-सुन कर अपने को तृप्त और सन्तुष्ट करना चाहिए, जिससे कि मनुष्य में विवेक और वैराग्य उत्पन्न हो, मोह दूर हो और मनुष्य अपनी मुक्ति के महान उद्देश्य की ओर अभिमुख हो सके और उसे प्राप्त कर सके। विश्वास रखो कि केवल एक ही ईश्वर सबके हृदयों को स्पन्दित करता है, सब धर्म उस एक ही की महिमा गाते हैं। विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नामों से और विभिन्न रूपों में उस एक ही ईश्वर का वर्णन, यशोगान, भजन और पूजन सम्पूर्ण विश्व में होता है। विभिन्न नामों और रूपों के होते भी वह एक ही है और उसकी पूजा का सर्वश्रेष्ठ रूप है—प्रेम। यह एक भाव उत्पन्न करो, सभी जातियों, देशों और महाद्वीपों के मनुष्यों में। प्रेम का यही संदेश लेकर मैं आया हूं और मैं चाहता हूँ कि आप मेरे इस संदेश को हृदय से ग्रहण करें।

प्रेम का पोषण करो, प्रेम में स्थित रहो, प्रम का प्रसार करो; यह वह आध्यात्मिक साधना है जिससे आपको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। जब आप भगवान के यश, गौरव, महिमा, करुणा, दया आदि का स्मरण करते हुए उनके नाम का उच्चारण करेंगे तो आप के हृदय में प्रेम उत्पन्न होगा, उसकी जड़ें भीतर की ओर गहरी पैठती चली जायंगी, शाखायें फैलने लगेंगी और प्रेम एक विशाल वृक्ष के रूप में फैल जायेगा जिसकी छाया के नीचे बिना किसी भेद-भाव के शत्रु और मित्र, देशी या विदेशी सभी समान रूप से विश्राम पा सकेंगे। भगवान के सहस्रों नाम हैं, संतों और महात्माओं, ऋषियों और मुनियों ने भगवान के सहस्रों रूपों में दर्शन किए हैं, उन्होंने उन्हें अपनी खुली आंखों से देखा है और बन्द नेत्रों से भी। मनुष्य न जाने कितने समय से भगवान के गुणों का गान करता चला आया है किन्तु वह न कभी पूरा हुआ न हो सकेगा। इसलिए कोई भी एक नाम और एक रूप चुन लो जो तुम्हें प्रिय हो और उस नाम का प्रातः उठते ही उच्चारण करो, उस रूप का ध्यान करो। नाम और रूप को अपना चिर-मित्र, सखा और मार्गदर्शक बना लो और दिन भर

यह अनुभव करो कि वह आप के साथ है और जब रात को सोने लगो तो भगवान को धन्यवाद दो कि दिन भर आप पर कृपा रही, भगवान उस नाम और रूप में आपके साथ, आगे-पीछे रहे। यदि इस शिक्षा का पूर्ण अनुशासन के साथ पालन करोगे तो आप कभी असफल या विचलित नहीं होगे।

मैं आप को एक और सलाह देता हूं कि इस महाद्वीप में, जिस देश में आप रहते हैं; वहां सभी देशवासियों को सुखी बनाने में सदा प्रयत्नशील रहो, उनके सुख-दुःख में सदा साथ रहो। भारत देश को भारत इसलिए कहते हैं क्योंकि वहाँ के लोगों में भा (अर्थात् भगवान) के प्रति रति (अर्थात् प्रेम) है। उनकी भगवान में भक्ति है, वे पाप कर्मों से डरते हैं और ज्ञान प्राप्त करने के जिज्ञासु हैं।

अपने परम सत्य का साक्षात्कार प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करो। भगवान के नाम का सतत् स्मरण करते हुए अपने जीवन को, प्रेरणाप्रद बनाओ। अपने में प्रेम उत्पन्न करो और उस प्रेम के आनन्द का सबको भागीदार बनाओ।

मेरा आशीर्वाद ! आप अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयत्नों में सफल हों और उससे आनन्द प्राप्त करें।

नैरोबी (कीनिया)
पूर्वी अफ्रीका
४-७-१९६८

४६. ज्ञानियों का मार्ग

ईश्वर ही सम्पूर्ण प्रेम का स्रोत है इसीलिए ईश्वर को प्रेम करो। यह संसार तो ईश्वर द्वारा धारण किए गये वस्त्र के रूप में है इसलिए इसके प्रति प्रेम इसी रूप में होना चाहिए, न कि इससे कहीं अधिक या कम। प्रेम से ही आप प्रेम के सागर में लीन हो सकते हैं। प्रेम से क्षुद्रतायें मिट जाती हैं शोक और असंतोष, घृणा और द्वेष मिट जाते हैं। प्रेम में वह शक्ति है कि इससे मनुष्य के सभी बन्धन ढीले पड़ जाते हैं और वह जन्म-मरण के दुःखों से भी मुक्त हो सकता है। प्रेम सभी हृदयों को एक मुलायम रेशमी सूत्र में बांधकर एक कर देता है। प्रेम की दृष्टि से देखने पर सभी प्राणी, सम्पूर्ण सृष्टि सुन्दर दिखायी देती है, सभी कर्म शुभ और समर्पित लगते हैं, सभी विचार सुबोध लगते हैं, सम्पूर्ण संसार एक ही विशाल परिवार के रूप में भासित होने लगता है।

मनुष्य समाज में जन्म लेता है, समाज में ही उसका पालन-पोषण और विकास होता है, समाज के प्रभाव से ही उसको अच्छे या बुरे का रूप प्राप्त होता है। समाज के एक सदस्य के रूप में मनुष्य अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों को भी प्रभावित करता है। मनुष्य के जीवन में जो भी मोड़, फेर-बदल और घुमाव-फिराव आते हैं उनका कारण होता है उस समाज के मान-दंड, जीवन-मूल्य और व्यवहार के आदर्श, जिसमें वह अपने संचित कर्मों के परिणामों के आधार पर जन्म लेता है। इस प्रकार देह और देश का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य की आत्मा के लिए देह एक बन्धन है तो देश दूसरा। अपने उत्थान में समाज का उपयोग करो; समाज को ऐसा रूप देने का प्रयत्न करो कि वह व्यक्ति को उसके विकास और उत्थान में सहयोग प्रदान करे न कि वह उसे भगवान की ओर से विमुख करे।

प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षा, शान्ति और सुख चाहता है किन्तु अधिकतर लोग ऐसा समझते हैं कि यह सब कुछ उन्हें बाह्य प्रकृति से ही प्राप्त हो सकता है और इसके फलस्वरूप मनुष्य के बहुमूल्य समय का अधिक भाग खाने, पीने, क्रीड़ा, आमोद-प्रमोद, कमाने और खचंने में ही व्यर्थ निकल जाता है। मनुष्य के जन्म-मरण का क्रम चलता रहता है—वह जन्मता और मरता है—फिर जन्म लेता हैं और मरता है। मनुष्य को यह ज्ञात नहीं कि कब यह क्रम प्रारम्भ हुआ, न जाने कब इस चक्र में पड़ा, वह किस ओर बढ़ता जा रहा है, कहां से आया है, कहां जाना है। न जाने कितनी योनियों में यातनायें सहने के पश्चात यह मानव देह प्राप्त करने का उसे सौभाग्य प्राप्त होता है जिसमें उसे हृदय और मस्तिष्क, विवेक आदि की विशिष्ट शक्तियां प्राप्त होती हैं, किन्तु मनुष्य उनका लाभ उठाते हुए अपनी मुक्ति प्राप्त करने के स्थान

पर, अपनी मूर्खता के कारण उदासीनता और आलस्य में पड़ा अपनी विजय का अवसर खो देता है।

इस संसार के सुख-दुःख, लाभ-हानि की उत्ताल तरंगों को तैर कर पार करने का कौशल आप में होना चाहिए। आप को इस कला में पूर्ण निपुण होना चाहिए जिसके द्वारा इस शरीर, मन और इन्द्रियों को चाहे कुछ भी क्यों न हो आप पूर्ण शान्त, अविचलित और अप्रभावित बने रहें। मनुष्य की समस्त शक्तियों को क्रियाशील करने वाली तो आन्तरिक चेतना है। आत्म तत्व को जानो, वही परम सत्य है, बस उनको जान लिया तो सब कुछ पा जाओगे।

मनुष्य बीमार तो पड़ा है किन्तु ऐसी औषधियों का उपयोग कर रहा है जिससे उसका रोग दूर नहीं होता। आवश्यकता है कि अपने रोग का ठीक प्रकार से निदान करें, उसका मूल कारण क्या है यह जानें और फिर उसके लिए उपयुक्त औषधि ली जानी चाहिए। इसके लिए किसी योग्य अनुभवी डाक्टर की सलाह लेनी होगी और उसके निर्देशन में इलाज करवाना होगा। सस्ती दवाइयां वेचने वाले या नीम हकीमों के जाल में फंस कर अपना स्वास्थ्य और धन बरबाद मत करो। अपने हृदय की भूमि को समतल बना कर, उसकी घास-फूस निकाल कर उसमें प्रेम के बीज बोओ, श्रद्धा और विश्वास के जल से उनको सींच कर अंकुरित और पल्लवित करो, उनका पोषण और वर्द्धन करो, पूर्ण सहिष्णुता के साथ, तब आपको उसके फल के रूप में प्राप्त होगी शान्ति। यह कार्य है जो आपको करना है, पूर्ण निश्चय और प्रतिज्ञा के साथ करना है।

पूजा की नाना विधियां हैं, विभिन्न रूपों से उसकी पूजा-अर्चना होती है, आराधना के अनेकों तरीके हैं, किन्तु सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही पूर्णता की प्राप्ति की ओर है। शरीर के विभिन्न अंगों में एक रक्त की धारा प्रवाहित होती है। इसी प्रकार वही एक ईश्वरीय तत्व सब में समान रूप से व्याप्त है, समस्त सृष्टि को वही क्रियाशील किए हुए है। उस दिव्य परम स्रष्टा को, उस अज्ञात जीवन दाता को, पहचानो। इस एकान्त भाव की अनुभूति को ही 'ईश्वर के पितृत्व' और 'मनुष्य के वन्धुत्व' के नाम से पुकारते हैं। संसार के जीवन व्यापार में फंस कर ही मत रह जाओ, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के संघर्ष और उसमें सफलता प्राप्त करने के प्रयास में उस ईश्वर को मत भुला दो जिसने यह जीवन प्रदान किया है।

जीवन तो एक समाचार पत्र के समान है, जिसकी मोटे-मोटे अक्षरों में दी गयी खबरों और समाचारों पर दृष्टि घुमाई, कुछ मन को अच्छा लगा उसे थोड़ा पढ़ा और उसे एक ओर डाल दिया। इससे अधिक उसे महत्व भी नहीं दिया जाना चाहिए। कल वही रद्दी कागज हो जाएगा। इसी प्रकार जीवन भी केवल एक दृष्टि भर डाल

लेने योग्य है, उसका पुनः अवलोकन या परिशीलन करने के लिए एक ओर सहेज कर रखने की आवश्यकता नहीं है, एक जीवन ही पर्याप्त है, जो मृत्यु आने वाली है वह अन्तिम मृत्यु होनी चाहिए।

यदि आप व्यक्ति-परक-दृष्टि से देखेंगे तो भेद और अन्तर आप पर लदते जायेंगे, किन्तु यदि आपकी दृष्टि समष्टि-परक होगी तो फिर समानता के विन्दु स्पष्ट होते चले जायेंगे। यदि आप बाहरी लेवल ही देखेंगे जैसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, बौद्ध तो अहंकार, घृणा या द्वेष बढ़ते जायेंगे। किन्तु यदि आप समष्टिगत दृष्टि से मानवीय विकास के संघर्ष को देखेंगे कि मनुष्य किस प्रकार पशुत्व से मनुष्यत्व और फिर दैवत्व की ओर अग्रसर होता चला जा रहा है तो आप इन बाहरी लेबलों को व्यर्थ समझेंगे। फिर आप सब में समाहित एकता का अनुभव करेंगे, प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, प्रोत्साहन और प्रशंसा। बाहरी बातें तो देश, काल और समाज पर आधारित रहती हैं। आप में कुछ किसी विशेष मिठाई को पसंद करते हैं कोई दूसरी को, किसी को एक मिठाई प्रिय होती है तो दूसरे को वह अरुचिकर लगती है। किन्तु मिठाई कोई भी हो, एक तत्व सब में होता है और वह है मिठास (चीनी); इसी प्रकार कोई भी वस्तु हो या व्यक्ति हो सब में एक तत्व मिठाई की मिठास के समान व्याप्त रहता है।

जो ये प्रश्न करते हैं कि 'क्या ईश्वर है? यदि ईश्वर है तो वह कहाँ है? वह कैसा है?' वास्तव में उन्हें आध्यात्म विद्या की वर्णमाला का प्रथम अक्षर भी नहीं आता। जब पूरी वर्णमाला सीख लेते हैं तो शब्द पढ़ना आता है, उसके बाद वाक्य, छोटे-छोटे पाठ और फिर पुस्तक। यदि आप अपने आपको—अपने 'मैं' को; आत्म तत्व को नहीं जानते तो भला फिर आप सब को—सबके 'मैं' को कैसे जान सकते हैं? उस 'मैं' को-परमात्व तत्व को जो सब के 'मैं' को अपने 'मैं' की अनुभूति करवाता है। इसका कारण है वह अज्ञान का आवरण जो आपके 'मैं' को उस 'मैं' से छिपाये हुए है, ढके हुए है। हिन्दु-दर्शन में इसे माया कहते हैं। इसकी तुलना छल-कपट में दक्ष उस स्त्री से की जाती है जो अपने आकर्षणों, प्रलोभनों और नृत्य आदि से व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर उसकी बुद्धि को भ्रमित कर देती है और उसका सर्वस्व लूट लेती है। इस नर्तकी को आप भगवान के गौरव गान और कीर्तन द्वारा निष्क्रिय कर सकते हैं; याद रहे नर्तकी का उल्टा ही कीर्तन है, अज्ञान को जीत लेने पर ही ज्ञान प्राप्त होता है। कीर्तन से दृष्टि सुस्पष्ट होगी वह सदा सत्य, शिव और सुन्दर पर ही टिकेगी।

आप सब दैविक-प्रेम के पात्र हैं, इस प्रेम का सबको भागीदार बनाओ, इसको सबमें

---

१ बिना महत्व दिये पढ़ना या देखना

वितरित करो। इस प्रेम को सेवा-कार्यों के द्वारा, सहानुभूति पूर्ण शब्दों द्वारा, आदर पूर्ण विनम्र व्यवहार के द्वारा, करुणा और दया के द्वारा प्रकट करो। जब मनुष्य सो कर उठता है तो उसे लगता है कि जो कुछ उस स्वप्न में देखा था वह तो कुछ मिनटों की नींद में ही घट गया। यद्यपि कि स्वप्न की घटना का विस्तार अनेकों वर्षों का था। इसी प्रकार जब ज्ञान का उदय होता है तो सम्पूर्ण जीवन स्वप्नवत् क्षणिक लगता है—सोने से जागने तक की समय की अवधि के समान। सदा प्रसन्न रहो जिससे कि मृत्यु का बुलावा आते ही बिना किसी शोक या संताप के मुस्कराते हुए चल पड़ो। मेरा आशीर्वाद! आप अपने जीवन का निर्माण उस रूप में कर सकें जिस के द्वारा आप स्थायी आनन्द को प्राप्त करने में सफल हों।

कम्पाला

७-७-१९६८

५०. प्रेम का दीप जलाओ

मनुष्य का जीवन संसार-सागर की यात्रा है, वह सागर जो सुख-दुःख, हानि-लाभ और शोक-संताप की उत्ताल तरंगों, कामनाओं की तेज़ धाराओं, वासनाओं के भंवरों तथा लोभ-मोह और घृणा-द्वेष के आँधी और तूफानों से सदा अशान्त और उद्वेलित रहता है। ऐसे भयंकर सागर को पार करने के लिए जो एकमात्र विश्वसनीय साधन है वह है ईश्वर और मनुष्य के प्रति प्रेम परिपूरित हृदय। मनुष्य का जन्म बहुत ही उच्च उद्देश्य की प्राप्ति के निमित्त होता है और इसलिए जन्म से ही अपार शक्ति और अधिकार से सम्पन्न होता है। अतएव उसे अपनी उस शक्ति और सम्पन्नता का क्षुद्र स्वार्थी, मिथ्या और भ्रष्ट आकर्षणों और वासनाओं में ही नहीं गंवा देना चाहिए। जीवन का लक्ष्य परम सत्य की प्राप्ति करना, उसके लिए ही जीना और उसमें ही स्थित रहना है। सत्य से ही वह अभय, आनन्द, धैर्य, साहस और सहिष्णुता प्राप्त कर सकता है। यदि वह इस महान उद्देश्य से प्रेरित नहीं है तो फिर जीवन व्यर्थ है, सागर की लहरों पर थपेड़े खाते हुए इधर-उधर उछलते फिरना है क्योंकि जीवन का सागर कभी शान्त नहीं रहता।

मनुष्य अपने सुख और संतोष की प्राप्ति के लिए प्रकृति को अपनी कभी न स्थिर रहने वाली इच्छाओं के वशीभूत करने के प्रयत्न करता है; किन्तु प्रकृति को अपने अधिकार में करने या उसको पूर्णरूप से अपनी दासता में लेकर उसे अपनी सुख-सुविधा और उन्नति के साधन के रूप में प्रयुक्त करने के उसके प्रयत्न कभी पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकते और उसका मनुष्य पर उल्टा ही भयंकर घातक प्रभाव पड़ेगा। भारत में रामायण की कथा बड़ी प्रसिद्ध है। उसमें रावण ने सीता-हरण किया और उसे अपने वश में करके अपनी रानी बनाना चाहा। सीता पृथ्वी पुत्री थी अतएव वह प्रकृति की प्रतिनिधि थी। रावण ने प्रकृति-पति भगवान राम के प्रति पूर्ण उपेक्षा बरती और उनसे बैर किया। इस प्रकार प्रकृति (सीता) का अपने अधीन करने और प्रकृति के स्वामी (राम) से शत्रुता करने का उसे फल भोगना पड़ा, और इस मूर्खता के कारण उसका विनाश हो गया। जिस महान साम्राज्य का उसने बड़े परिश्रम के साथ निर्माण किया था, बड़ा वैभव और ऐश्वर्य जुटाया था सब नष्ट हो गया। उसके एक से एक महाबलशाली, दिग्गज और रण-चतुर सेनापतियों, भाई-बन्धुओं, पुत्रों की लाशों के बीच उसकी भी लाश रण प्रांगण में पड़ी हुई थी। रावण स्वयं महान, विद्वान था, उसने महान तपस्या करके अनेकों अतिमानवीय शक्तियां और सिद्धियाँ प्राप्त की थीं किन्तु वह प्रकृति के स्वामी— भगवान राम के आगे कभी झुका नहीं और उसका सदा-सर्वदा के लिए महाविनाश हो गया।

मनुष्य जब ईश्वराभिमुख होकर चलता है तो उसे कोई भय नहीं सताता, वह अभय रहता है; किन्तु इसके विपरीत दिशा में चलने पर हर मोड़ पर भय उसका पीछा करता है, वह भयभीत रहता है। भगवान सच्चिदानन्द हैं, परमानन्ददाता हैं। किन्तु मनुष्य मूल आनन्द को प्राप्त करने से पूर्व ही इन्द्रियों को लुभाने वाले मिथ्या सुखों की ओर आकर्षित होकर उनमें ही खो जाता है। कोई यह नहीं जानता कि प्रकृति तो भगवान का आवरण है, वह तो माया का पर्दा है जिसने जीव को ब्रह्म से ओझल कर रखा है। सत्य तो केवल एक ब्रह्म है, अन्य सब कुछ तो मिथ्या है। जब प्रातः सूर्योदय होता है और आप पश्चिम की ओर मुंह करके चलते हैं तो आपकी छाया आपसे कहीं लम्बी होती है और आपके सामने चलती है। किन्तु वह छाया तो आपकी वास्तविकता नहीं। इसी प्रकार माया भी छाया ही है, वह ही भ्रम और संदेह उत्पन्न करती है, वह ही अज्ञान का कारण है, इसी के कारण सत्य, झूठ के आवरण में ढका रहता है और भ्रम से असत्य, सत्य भासित होता है। इस माया से बचने का, इसके निराकरण का एक ही उपाय है और वह है ईश्वराभिमुख होकर उसके परम तेज युक्त प्रकाश में चलना। फिर माया उसी प्रकार नहीं टिक पाएगी जिस प्रकार सूर्य की ओर मुख करके चलने पर छाया आपके सामने नहीं रहती बल्कि आपके पीछे-पीछे आती है। जब सूर्य का तेज प्रखर होता जाता है और सूर्य बिलकुल सिर पर होता है तो छाया जो पीछे-पीछे चलती है वह भी नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जब आप सत्य ज्ञान के सूर्य के प्रखर तेज और प्रकाश के बिलकुल नीचे आ जाते हैं तो फिर माया भी नहीं रहती, वह छाया की तरह केवल आपके चरणों में समा जाती है।

वैदिक प्रार्थना—गायत्री जिसका लाखों लोग दिन में तीन बार जाप करते हैं, सविता रूप भगवान के वरण करने योग्य तेज का ध्यान करते हुए उस प्रज्ञा बुद्धि के लिए प्रार्थना है जिसके प्रकाश में संदेह का कुहासा नष्ट हो जाता है, भ्रम-जाल हट जाता है, माया का आवरण नहीं रहता और ज्ञान की प्राप्ति होती है, परम सत्य का साक्षात्कार होता है। यह भी एक योग साधना है, मन को वश में करने की, चित्त की वृत्तियों के निरोध की जो पातञ्जलि ने हजारों वर्ष पूर्व बतायी थी, "योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।" भक्ति भी योग है मन को वशीभूत कर ईश्वर-साक्षात्कार करने का साधन। किन्तु भक्ति को तो आजकल लोगों ने बड़ा सस्ता और सरल साधन बना दिया है और माला के सहारे नाम जप, कुछ घण्टे भगवान की मूर्ति के सामने बैठना, धूप, दीप, पत्र, पुष्प, फल और नैवेद्य समर्पित करना, आरती करना और घंटी बजाना, या तीर्थाटन करना, प्रसिद्ध पावन नदियों और सरोवरों में स्नान करना, मन्दिरों में दर्शन करना, पर्वत शिखरों पर चढ़ कर वहां स्थित देव मन्दिरों में दर्शन करना मात्र ही भक्ति समझ ली जाती है। यह बात अवश्य है कि इन साधनों के द्वारा मन को शान्त और ईश्वराभिमुख करने में सहायता मिलती है, क्योंकि मन के कुछ उद्वेग इनके द्वारा वश में होते हैं, चाहे उन्हें आप न जान पायें।

किन्तु इसी से भक्ति पूर्ण नहीं होती। भक्ति कोई पोशाक नहीं है कि किसी अवसर विशेष पर तो उसे पहन कर काम चला लिया और फिर बाद में उसे उतार कर एक ओर रख दिया, जैसा कि पुलिस वाले करते हैं कि जब अपनी ड्यूटी पर आये तो अपनी यूनीफार्म पहन ली, अपने बैज-बिल्ले और पेटी लगा ली और ड्यूटी करके घर पहुंचे तो उन्हें उतार कर एक ओर रख दिया। भक्ति ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि उसे आप कुछ नियत समय पर धारण कर लें और फिर उसे एक ओर रख दें। भक्ति तो मन की सदा-सर्वदा और सर्वत्र, सतत् रूप में बने रहने वाली वह स्वेच्छा से अपनायी गयी दृष्टि व स्थिति है जिसका दृढ़ता से पालन करना होता है, यह वह मार्ग है जिस पर सतत् रूप से अबाध गति से चलते रहना होता है। आजकल मनुष्य प्रातःकाल तो योग करते हैं, दिन में भोग में रत रहते हैं और फिर रात्रि रोग में काटते हैं। भक्ति के साथ यह बात नहीं चल सकती, वह तो एक जीवन दर्शन है, जीवन पद्धति है, मन की एक प्रवृत्ति है जिसमें मन को सतत् रूप से लीन रहना होता है। वह सदा एक ही प्रकार से व्यवहार करता है, उसी प्रकार सोचता विचारता और उसी प्रकार से कार्य करता है। उसकी मनसा-वाचा-कर्मणा एक-रूपता सदा बनी रहती है फिर कैसी भी स्थिति या परिस्थिति क्यों न आवे, मान-अपमान, सुख-दुःख, हानि-लाभ, यश-अपयश, ऐश्वर्य-दारिद्रय कुछ भी क्यों न हो, इन सबसे अप्रभावित रहते भक्त तो सदा उसी प्रकार समत्व की स्थिति में बना रहता है, अपना कर्त्तव्य करता रहता है।

एक सच्चा भक्त सांसारिक उपलब्धियों की क्षणभंगुरता[1] से भली भांति परिचित होता है। वह यह अच्छी तरह से जानता है कि मृत्यु ही अंतिम निर्णायक है, ईश्वर ही एकमात्र निस्तारक[2] है, इसलिए वह सदा शान्त, गंभीर और दृढ़ बना रहता है फिर चाहे कोई आंधी-तूफान आये या शान्ति हो। वह यह भी जानता है कि जिस भगवान की वह भक्ति करता है वह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है, वह पृथ्वी पर उगने वाली घास की पत्ती में भी है और आकाश में दूर चमकते तारे में भी। वह सब की प्रार्थनायें सुनता है, वह किसी भी भाषा में मुखरित हुई हो या मूक हो। भक्त को न क्रोध होता है और न चिन्तायें। आपको भी अपने आपको क्रोध और चिन्ताओं से मुक्त रखना चाहिये। यदि कभी दांतों के नीचे जीभ आ जाती है तो क्या आप दांतों पर क्रोध करते हैं ? क्या दांतों को तोड़ते हैं ? नहीं ! क्योंकि दांत और जीभ दोनों आपके ही अंग हैं। इसी प्रकार यदि कोई अन्य आपको मारता है तो वह और आप दोनों एक ही देही-परमात्मा के अंग हैं, इसलिए आपस में झगड़ा कैसा ? इस एकात्मकता का अनुभव करो, इसे अपनाओ और किसी से भी घृणा मत करो। भगवान इसी आंतरिक दृष्टि को देखता रहता है। जिसका हृदय इतना

---

१ क्षण भर में नष्ट होने वाला २ तारने वाला, मोक्ष देने वाला

विशाल होता है कि वे उसमें ईश्वर की सभी सन्तानों को अपने में समा लेते हैं, ईश्वर का अनुग्रह पाते हैं। यदि आप इतने स्वार्थी और संकुचित विचारों के हैं कि जब कोई भगवान का बन्दा आपके द्वार पर आता है, आप उसे तिरस्कार के साथ भगा देते हैं तो फिर भला भगवान आप से कैसे प्रसन्न रह सकते हैं।

सर्व प्रथम आपके सामने आपका लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए; आप को उसके स्वभाव और प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए कि उसकी परोपकारिता और दयालुता, उसकी दिव्यता और महानता उसका तेज, प्रताप और ऐश्वर्य क्या है, फिर आप उसे चाहे किसी भी नाम से पुकारते हों—भगवान, ईश्वर या सच्चाई या सार्वभौमिक परम तत्व। वह ज्ञान स्वयं ही आपको प्रेरित और प्रोत्साहित करेगा, लक्ष्य की ओर बढ़ायेगा। जिस समष्टिगत परम चैतन्य के आप अंश हैं वह अविकारी, अविनाशी, परम-पवित्र, अहंकार रहित, सत्य और शाश्वत है। आप उसका ध्यान करें और आप का भी वही मूलभूत अहंकार रहित, सत्य, शाश्वत, परम शुद्ध, अविकारी और अविनाशी स्वरूप दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक प्रकट होता जायेगा।

आप ने कितनी भी धन-दौलत, विद्वत्ता, स्वास्थ्य और शक्ति अर्जित करली हो किन्तु यदि उस परम पिता परमात्मा के दर्शन नहीं किए, उस दर्शन के आनन्द में नहीं पगे तो जो कुछ अर्जित और संचित किया, सब वृथा है। भारतवर्ष में एक बहुत ही प्रसिद्ध महाकाव्य है महाभारत जिसमें कौरवों और पाण्डवों के बीच हुए महाभारत के युद्ध का विवरण दिया गया है। कौरव आर्थिक और सैनिक साधनों में पाण्डवों की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ और सम्पन्न थे। कौरव और पाण्डव दोनों ही श्रीकृष्ण के पास महाभारत युद्ध के आरम्भ होने से पूर्व सहायता के लिए पहुंचे। श्रीकृष्ण ने दोनों को सहायता देना स्वीकार किया, किन्तु उनके प्रस्ताव थे कि एक पक्ष तो उनकी सेना ले सकता है और दूसरा पक्ष उनको स्वयं को; किन्तु वे स्वयं कोई शस्त्र हाथ में नहीं लेंगे। कौरवों ने शस्त्र सज्जित विशाल सेना लेना पसन्द किया तो पाण्डवों ने केवल श्रीकृष्ण की अपने बीच उपस्थिति मात्र ही अपनी विजय के लिए पर्याप्त समझी। श्रीकृष्ण ने यह स्वीकार किया और वे युद्ध में अर्जुन के रथ के सारथी बने। और यह श्रीकृष्ण की पांडवों के बीच निःशस्त्र रूप से केवल उपस्थित रहने मात्र का ही परिणाम था कि उनकी कृपा से पांडव विजयी हुए, और कौरव पराजित, पाण्डवों को अनन्त कीर्ति और यश प्राप्त हुआ।

यदि भगवान आपके पक्ष में हों तो संसार आप की मुट्ठी में होगा। श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को जो उपदेश दिया था वह सारे ही भारतीय सद्ग्रन्थों का निचोड़ है। श्रीकृष्ण ने आश्वासन दिया था—

> "सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,
> अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।"

"सर्व धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा।"

मनुष्य को किन्हीं भी अन्य वस्तुओं से, जिस की सबसे अधिक आवश्यकता है वह है स्वतन्त्रता और प्रकाश। ये उसको श्वास से भी अधिक आवश्यक हैं। इसलिये जब वह बंधन और अंधकार में होता है तो सबसे अधिक दुःखी होता है। जिस प्रकार मछली चाहे वह किसी स्वर्ण के रत्न-जड़ित कटोरे में क्यों न रखी हो बिना पानी के तड़पती है और पानी में जाने के लिए छटपटाती है, इसी प्रकार मनुष्य भी ईश्वर में लीन हो जाने के लिए छटपटाता है क्योंकि वही उसका मूल स्थान है, वह आनन्द प्राप्त करना चाहता है क्योंकि वही उसका मूल स्वभाव है। वह भगवान को या आनन्द को जो ईश्वर का ही पर्याय है, पृथ्वी पर, उसके ऊपर अन्तरिक्ष में या उसके नीचे पाताल में, एकान्त में या भीड़ में, शान्ति में या कोलाहल में खोजता फिरता है। किन्तु उस आनन्द का स्रोत तो उसके हृदय में छिपा है। वह उस आनन्द को अपने अन्तर से भी प्राप्त कर सकता है यदि उसे गहन ध्यान के द्वारा समाधि की स्थिति में पहुंचकर उसे प्राप्त करने की साधना आती हो।

बहुत से लोग आध्यात्मिक अनुशासनों का पालन और साधना करना वृद्धावस्था के लिए उठा रखते हैं। यह ठीक नहीं है। यह बहुमूल्य पुरस्कार तो आपको उसी समय प्राप्त कर लेना चाहिए जब यौवनावस्था में शक्ति और सामर्थ्य रहते हैं। साधना कितनी भी कम उम्र में प्रारम्भ की जाये जल्दी नहीं कहलाती, क्योंकि सभी इन्द्रियों, मन और बुद्धि को बाल्यावस्था से ही इस प्रकार शिक्षित और संस्कारित किया जाना चाहिये कि मनुष्य कभी गलत मार्ग की ओर न बढ़े और सदा बुराई से बचकर श्रेय मार्ग पर ही आगे चले। इस प्रकार इन्द्रिय संयम, निर्मल मन और विशुद्ध बुद्धि के साथ रहने वाले पर प्रभु स्वयं ही कृपा करते हैं। यदि किसी कारण इन्द्रियाँ उत्तेजित होकर आपको किसी बुराई का ओर प्रवृत्त करें तो उनके संवेग में मत बहो, विवेक के सहारे दृढ़ता के साथ अविचलित रहो। जब व्यक्ति स्वयं इस प्रकार दृढ़ और सशक्त होता है तो परिवार भी प्रगति करता है और उसी क्रम में ग्राम, नगर और राष्ट्र में भी प्रगति होती है, सुख और समृद्धि बढ़ती है, शक्ति और सुरक्षा उत्पन्न होती है। इसी से फिर विश्व भर में सुख, शान्ति, न्याय, सम्मान, विनम्रता, सहानुभूति और सहयोग बढ़ते हैं।

मधुर स्वर में सामूहिक रूप से ईश्वर का यशोगान गाओ और सम्पूर्ण वातावरण को उसकी विमल कीर्ति और दिव्य भक्ति से ऐसा ओतप्रोत कर दो कि जब बादलों से वर्षा हो तो जल के साथ वही पवित्रता सारे खेतों को सिंचित कर दे। पवित्र जल से सिंचित खेतों से उत्पन्न अन्न भी पवित्र हो, जिसको खाने वाले भी पवित्र हो जायें और उनमें सदा सद्प्रेरणायें, दिव्य भावनायें उत्पन्न हों, श्रद्धा और विश्वास सुदृढ़

श्रौर सवल हों। यह है प्रगति की श्रृंखला। इसी कारण मैं सदा सामूहिक भजन श्रौर नाम स्मरण पर वल देता हूं।

मनुष्य ईश्वर का अश है, वह अपने को पवित्र श्रौर पावन बनाकर पूर्ण दैवत्व तक विकसित कर सकता है। इसके लिए साधना करनी होगी। दृढ़ विश्वास और लगन के साथ ध्यान करना आरम्भ करो। सद्-पुरुषों का सत्संग श्रौर मार्ग-दर्शन प्राप्त करते रहो। ध्यान की अनेकों लोग अनेकों प्रक्रियायें वताते हैं; किन्तु मैं आप लोगों को अभी अत्यन्त प्रभावकारी श्रौर अति सार्वलौकिक ध्यान की पद्धति बताता हूं।

सर्वप्रथम प्रतिदिन के लिए निर्धारित समय पर कुछ मिनट का समय निश्चित कर लो। जैसे-जैसे शान्ति श्रौर आनन्द का अनुभव बढ़ने लगेगा, इसी समय में आप स्वयं ही धीरे-धीरे वृद्धि करते जायेंगे। प्रातः सूर्योदय से पूर्व तड़के भोर का समय इसके लिए सर्वश्रेष्ठ रहता है क्योंकि यह समय होता है जब कि शरीर रात भर निद्रा के पश्चात् पूर्ण विश्राम कर चुका होता है, मन श्रौर इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला दिन का कोलाहलपूर्ण क्रिया-कलाप प्रारम्भ नहीं हुआ होता। एक दीपक जलाओ जिसकी लौ चमकती, सीधी, स्थिर रूप से प्रज्वलित रहे अथवा एक मोमवत्ती जला लो। दीपक की लौ से कितने भी दूसरे दीपक जला लो किन्तु उसकी ज्योति श्रौर चमक कम नहीं होती। इसलिये दीप-शिखा आत्मा का अति उपयुक्त प्रतीक है। उस दीपशिखा के सम्मुख आसन बिछाकर पद्मासन अथवा सुखासन लगा कर बैठ जाओ। शान्त श्रौर स्थिर होकर दीपक की लौ पर अपनी दृष्टि जमाओ श्रौर धीरे-धीरे अपने नेत्र मूंदते जाओ, हल्के से पल्कें बन्द हों, नेत्र मूंदने में कोई दवाव न पड़े। यह अनुभव करो कि दीपक की लौ दोनों नेत्रों के बीच तुम्हारी भृकुटि में प्रदीप्त हो रही है। वहां से धीरे-धीरे उसे अपने हृदय कमल पर उतर आने दो, सारे पथ को आलोकित करते हुए। जब हृदय स्थल पर पहुंचे तो अनुभव करो कि उसके प्रकाश में हृदय कमल की पंखुड़ियां एक-एक करके खिल रही हैं, अंधकार दूर हो रहा है, प्रकाश फैलता जा रहा है, आप के विचार, भाव, संवेग सभी आलोकित हो रहे हैं, आप स्वयं पूर्ण आलोकमय हो गये हैं।

अब अंधकार को प्रश्रय पाने के लिए कोई स्थान शेष नहीं रहा है। अनुभव करो कि प्रकाश बढ़ता जा रहा है, अंग-अंग में समा रहा है, कोई अंग अब किसी अज्ञानता पूर्ण दुष्ट और हेय कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता, वे प्रेम और प्रकाश के उपकरण वन गये हैं। प्रकाश जिह्वा पर पहुंचता है और झूठ, निन्दा, बुराई, चुगली, चाटु-कारिता आदि सभी बुराइयां उससे दूर भाग गयी हैं। जब यह ज्ञान का प्रकाश नेत्रों श्रौर कानों पर पहुंचता है तो अज्ञान अंधकार के कारण उत्पन्न होने वाली दुष्ट महत्वाकांक्षायें श्रौर कामनायें, नष्ट हो जाती हैं, कान भी निन्दा श्रौर

बुराई सुनने से मुक्त हो जाते हैं। प्रकाश को मस्तिष्क में पहुंचने दो, सारे विचार और चिन्तन निर्मल हो जायेंगे, प्रज्ञा बुद्धि जागृत होगी। उस प्रकाश को अपने अंग-प्रत्यंग में घनीभूत होने दो। आप का अन्तर और बाह्य इस प्रकाश से प्रकाशित और आप अपने आपको भीतर-बाहर चारों ओर से प्रकाश में परिवेष्टित अनुभव करो और फिर उस प्रकाश का क्षेत्र बढ़ता और विस्तृत होता चला जाये और सीमातीत हो जाये, उसके आलोक क्षेत्र में भाई-बन्धु, नाते-रिश्तेदार. मित्र-परिचित ही नहीं आ जायें किन्तु शत्रु और विरोधी, असज्जन और दुष्ट, अज्ञानी और अनजान भी आ जायें, जड़, चेतन सब आ जायें, सम्पूर्ण सृष्टि इसी में समा जाये।

यह आपका प्रतिदिन का नियमित अभ्यास बन जाना चाहिये, बिना किसी नागा के और आप विधिपूर्वक पूर्ण गहनता के साथ सतत् रूप से इसे किये चले जायें। यह निश्चित समझो कि इस अभ्यास के द्वारा एक दिन आप उस स्थिति को प्राप्त कर लेंगे जब आपको कोई भी बुरी बात या विचार अच्छा नहीं लगेगा, न आप कोई बुराई देखना पसन्द करेंगे, न सुनना, न आप में कोई बुरी भावना उठेगी और न ही कोई महत्वाकांक्षा। आपके खाने, पीने, रहने, उठने, बैठने आदि सभी व्यवहारों और आचरणों में सात्विकता आती चली जायेगी जिसका आपको पता भी नहीं चलेगा। आपका रूपान्तरण हो जायेगा, आप दैविक आनन्द और शान्ति के साम्राज्य में पहुंच जायेंगे जिसका शब्दों में वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है।

विचार और ध्यान का यही क्रम बनाये रखो, सब ओर प्रकाश ही प्रकाश। स्वयं प्रकाशमय हो जाना और सब को प्रकाशमय देखना। यदि भगवान के किसी रूप विशेष की पूजा करते हो तो भगवान का वह रूप उस प्रकाश में देखो। ईश्वर प्रकाश है। और प्रकाश ईश्वर है जब प्रकाश से प्रकाश मिलता है तो सब प्रकाश ही ही होता है। आपके और ईश्वर के प्रकाश में कोई अन्तर नहीं है। वे दोनों ही मिल जाते हैं और पूर्ण हो जाते हैं।

जिस अशान्ति ने सारे संसार को उद्वेलित[1] कर रखा है उसमें ही आपको प्रशान्ति प्राप्त करनी है और उस प्रशान्ति में प्राप्त करनी है प्रकान्ति[2]। उस प्रकान्ति में ही उस परम ज्योति का साक्षात्कार होता है जिसे परमात्मा कहते हैं। जब व्यक्ति समष्टि में लीन होता है तो समष्टि का रूप धारण कर लेता है, आत्मा परमात्मा में लीन होकर वही रूप धारण कर लेती है। मैं और मैं मिल कर हम हो जाते हैं तथा हम और वह मिलकर भी हम ही रहते हैं। प्रतिदिन नियमित रूप से

---

१ उथल-पुथल २ कान्ति, तेज

यह ध्यान करो । अन्य समय भगवान के नाम का जो भी आप को प्रिय हो जाप करते रहो और सदा उसके गौरव, उसकी महिमा, उसकी दयालुता, प्रेम और करुणा की याद रखो ।

मैं चाहता हूं कि कम्पाला में जो लोग आध्यात्मिक प्रगति करना चाहते हैं उन्हें नियमित रूप से सामूहिक भजन-पूजन करना चाहिए । केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि जब कभी आपके शहर में कोई महात्मा या संत आये तब तो हजारों की संख्या में एकत्रित हो गये और फिर सब लुप्त । कम से कम सप्ताह में एक बार तो एक स्थान पर एकत्रित हों और जब हो सके तो एक से अधिक बार भी भजन करें, ध्यान करें, सद्-ग्रन्थों का पाठ करें जिससे प्रेरणा प्राप्त हो, उत्साह के साथ अपने घर जायें, आध्यात्मिक शक्ति ग्रहण करके । अपने छोटे से दीपक को उत्साह के तेल से भर लो जो आप को सत्संग से प्राप्त होता है । जब कभी भी सम्भव हो तो प्रातः काल भगवान के नाम का सामूहिक रूप से गान करते हुए, नगर की गलियों से निकलो । इसे भारत में नगर संकीर्तन कहते हैं । इसमें जो भाग लेते हैं और जो सुनते हैं उन सभी में यह चेतना आती है कि हम ईश्वर की गोद में सुरक्षित हैं । यह नगर संकीर्तन सूर्योदय से पूर्व, प्रभात बेला में जब पूर्व में लालिमा छाई होती है निकाला जाता है । इस प्रकार दिन का उदय उस प्रभु की महिमा के जय गान के साथ होता है जिसने हमें जीवन, शक्ति, साधना, शान्ति सब ही कुछ देने की कृपा की है ।

हे प्रेम स्वरूपों ! अपने में शुद्ध, सात्विक, निर्मल प्रेम उत्पन्न करो । उस प्रेम में अपने भाई-बहिनों, सखा-मित्रों को जाति, रंग और वेश के बिना किसी भेद-भाव के सब को सम्मिलित करो, सबको उसका भागीदार बनाओ । जब आप का पड़ोसी भगवान से प्रार्थना कर रहा हो तो क्या आप उसके साथ एकात्म भाव अनुभव नहीं करते ? क्या वह दुःखी या पीड़ित होकर उस एक ही दाता से वही कुछ नहीं मांगता जो आप मांगते हैं ? हो सकता है उसकी भाषा भिन्न हो, प्रार्थना करने का ढंग भिन्न हो—उसके मत या धर्म के अनुसार; किन्तु इससे क्या अन्तर पड़ता है । उसकी भूख और प्यास तो वैसी ही है जैसी कि आप की। उसका सुख और दुःख, आनन्द और शोक तो वैसे ही हैं जैसे आपके । उसके आनन्द के साथी और भागीदार बनो, उससे दोनों का आनन्द बढ़ेगा । उसके शोक और दुःख के साथी और भागीदार बनो, इससे दोनों का शोक और दुःख कम होगा । अपने हृदय के प्रेम को दूसरों के हृदय में प्रवाहित होने दो । एक स्थान पर रुका हुआ पानी सड़ने लगता है, किन्तु बहता पानी सदा स्वच्छ और शीतल होता है । प्रेम आनन्द है, प्रेम शक्ति है, प्रेम प्रकाश है, प्रेम भगवान है ।

मैं आप लोगों के बीच फिर आऊंगा। आपका प्रेम स्वीकार करने के लिए उस समय अधिक समय तक ठहरूंगा। मुझे उस समय बड़ी प्रसन्नता होगी जब आप में से प्रत्येक प्रेम का दीप बन जायेगा और चारों ओर सद्गुण और पवित्रता का प्रकाश फैलायेगा।

कम्पाला
(उगांडा—पूर्व अफ्रीका)
८-७-१९६८

५१. उत्साह का उदय

भारतीय संस्कृति का विश्व में, उसके द्वारा मानवीय कल्याण में दिए गए रचनात्मक योगदान के लिए बड़ा सम्मान है; किन्तु उस संस्कृति के वैध उत्तराधिकारी ही इसकी उपेक्षा कर रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप वे स्वयं ही उससे प्राप्त होने वाले सुख और शान्ति से वंचित हो रहे हैं। यह संस्कृति एक विशाल वृक्ष के समान है जिसकी शाखायें सारे विश्व में फैली हुयी हैं और लोगों को छाया तथा संरक्षण प्रदान कर रही है। इस संस्कृति द्वारा सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिए जो मूल आधार खोज कर दिए गये हैं उनको विज्ञान असत्य सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि विज्ञान तो केवल भौतिक पदार्थों की ही उथल-पुथल कर सकता है और उनकी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया, व्यवहार, गठन और संरचना का अध्ययन कर सकता है। विज्ञान आज कुछ सिद्धान्त स्थापित करता है किन्तु वे ही कल कुछ नये तथ्यों का पता लगाने पर अमान्य ठहराये जा सकते हैं। भारतीय मनीषियों, ऋषियों और मुनियों ने जो आध्यात्मिक तथ्य खोज निकाले थे और नियम निर्धारित किये थे वे सनातन सत्य हैं। उन पर और आगे अनुसंधान, अन्वेषण और खोज की जाये तो उनकी पुष्टि ही होगी जिस प्रकार से कि हीरे को तराशने पर उसकी चमक वढ़ती है। भारत ने विश्व को सत्य का अमूल्य रत्न दिया है, "ईश्वर सर्वभूतानाम् ह्रद्देशे अर्जुन, तिष्ठति" ईश्वर सब जीवों का प्रणेता है। जव तक व्यक्ति इस सत्य की अनुभूति नहीं कर लेता तब तक उसमें काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, घृणा, अहंकार वने रहेंगे क्योंकि वह उस समय तक दूसरों को भिन्न समझता रहेगा।

कर्ण कुन्ती का पांडवों से भी पहले उत्पन्न, सर्वप्रथम पुत्र था किन्तु न तो यह उसे ज्ञात था कि वह पांडवों का ही भाई है और न इस तथ्य का पांडवों को ही वोध था। इस अज्ञान के कारण ही महाभारत में कर्ण पांचों पांडवों के प्रति घोर घृणा भाव से भरा रहता था, और सदा उनका नाश करने की ही सोचता था तथा उसने उनके साथ युद्ध करने की पूरी तैयारी कर रखी थी। और दूसरी ओर पांचों पांडवों ने भी उसका नाश करने की पूर्ण योजना बना ली थी जो अन्त में सफल हुयी। पांचों पांडवों में से सबसे बड़े भाई धर्मराज को जब कर्ण की मृत्यु के वाद इस तथ्य का पता लगा कि कर्ण उनका ही सहोदर था तो उनके दुख और शोक का पारावार नहीं रहा। यदि उन्हें यह पहले से ज्ञात होता तो इतना खेद नहीं होता। इसी प्रकार जब तक आप यह नहीं जानते हैं कि आप सव वेदिकाओं के समान हैं जिन पर एक ही भगवान संस्थापित है, सब उस एक ही ईश्वर की कृपा से अनुप्राणित और अनुप्रेरित हैं तव तक तो आप अहकार, घृणा और द्वष से ग्रसित रहेंगे किन्तु एक बार जब इस तथ्य का पता लग जाये और उसकी अनुभूति हो जाये तो फिर आप सब के

प्रति प्रेम और सम्मान से परिपूरित हो जायेंगे। जब मनुष्य की अन्तरतम कोर में इस मूल भूत मातृत्व की एकात्मकता की अनुभूति हो जायेगी तो फिर समस्याओं के समाधान के लिए लड़ी जाने वाली विनाशकारी लड़ाइयां नहीं लड़ी जायेंगी।

सभी देशों के सभी मनुष्य तीर्थ यात्री ही हैं और ईश्वर के मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। उस यात्रा में प्रत्येक की प्रगति इस बात पर निर्भर रहती है कि वह क्या अनुशासन अपनाता है, उसके चरित्र का निर्माण क्या है, उसके समक्ष क्या लक्ष्य है, किस के नेतृत्व का अनुसरण कर रहा है और उसके आस्था और विश्वास क्या हैं और उनमें कितनी दृढ़ता और लगन है। जिस प्रकार पेड़-पौधे, पशु-पक्षी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में एक दूसरे से थोड़े बहुत रूप में भिन्न होते हैं उसी प्रकार एक जाति या समाज के रीति-रिवाजों, मान्यताओं, अनुशासन और लक्ष्यों में दूसरों से भिन्नता होना स्वाभाविक ही है और वह उस समाज या जाति के लिए उस देश और वहां के वातावरण और विकास की स्थितियों के अनुसार उनके लिए उपयुक्त होते हैं। आप एक प्रदेश विशेष के पेड़-पौधों को उखाड़ कर दूसरे प्रदेश में नहीं लगा सकते इसी प्रकार एक मानव समाज की विशेषताओं को दूसरे समाज में नहीं आरोपित कर सकते। जिस वातावरण में आप उत्पन्न और परिवर्धित हुये हैं वही आपके लिये उपयुक्त है।

ईश्वर में सबकी एकता के ज्ञान और अनुभव पर आधारित इस प्रेम के सिद्धान्त की ही मैं पूर्वी अफ्रीका में पौध लगा कर आया हूं। अपने नैरोबी, कम्पाला के संभाषणों में मैंने सर्वव्यापी आत्म-तत्व के आधार पर सब की एकता की घोषणा की। जिस समय मैंने नैरोबी की भमि पर पग रखा उस समय वहां जो उत्साह का उदय देखने में आया उसका वर्णन कर सकना सम्भव नहीं। लोगों में आनन्द का पारावार नहीं था, मैं चाहे कहीं विशेष वायुयान द्वारा बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक भी पहुंचा, वहां पर भी लोग बहुत संख्या में प्रसन्न-चित्त तथा आनन्द और प्रेम से प्रदीप्त नेत्रों के साथ एकत्रित हो जाते थे।

आप भौतिक दृष्टि से देशों को अलग-अलग देखते हैं; किन्तु सब देश तो एक ही शरीर के विभिन्न अंगों के समान हैं; सब शरीर एक ही मूल आधार से स्पन्दित हैं। यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर के लिए एक भवन के समान है और विभिन्न छोटे बड़े कमरे और हाल हैं। यदि मैं एक कमरे से दूसरे कमरे में आता जाता हूं तो आप लोगों में इतनी चहल-पहल क्यों? उत्सव और समारोह मानने की क्या बात? मुझे कुछ ऐसा नहीं लगता कि मैं कहीं दूसरे मकान में या किसी अन्य स्थान पर गया था, मेरे लिए तो सब कुछ अपना पूर्व परिचित था, आप लोगों को इसे कोई विशेष महत्व देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि भगवान के लिए तो सब बराबर हैं। कम्पाला में पहले दिन तो भारतीय एक ओर एकत्रित होते थे और अफ्रीकी दूसरी ओर किन्तु

दूसरे ही दिन से मेरे कहने पर सब आपस में मिल कर एक दूसरे के साथ बैठे और सबने मिल कर साथ-साथ भजन गाये। और जब मैं लौटा तो जुदाई के दुःख में अफ्रीकी और भारतीय सब ही समान रूप से आंसू बहा रहे थे। यहाँ तक कि ड्यूटी पर तैनात पुलिस वाले भी उस विदाई के शोक में चिल्ला उठते, "माई लार्ड !"

अभी मुंशी जी ने बम्बई को नष्ट विश्वासों का नगर बताया था, यहां के लोग धर्म से अधिक धन को महत्व देते हैं। किन्तु मैं जानता हूं कि बम्बई के नागरिकों में सत्य, नैतिकता और आध्यात्मिक उन्नति के लिए तड़प है अतएव उनका धर्म में विश्वास है और वे उसे प्राप्त करने के लिए लगन से प्रयत्नशील हैं। उन्हें केवल वह मार्ग, वह अनुशासन ज्ञात नहीं जिसका अनुपालन कर उसे प्राप्त कर सकते हैं, वह जीवन-पद्धति, रहन-सहन और व्यवहार का ज्ञान नहीं जिसके द्वारा इसका प्राप्त किया जा सकना सुनिश्चित होता है।

कम्पाला और नैरोबी में अपार जनसमूह को संभालने और नियंत्रित रखने का कार्य जिन नवयुवक स्वयंसेवकों ने किया वे सभी स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थीगण थे और उन्हें इतनी भीड़ का अनुभव नहीं था; प्रत्येक मेरे तक पहुंच कर दर्शन और प्रणाम करना चाहता था। फिर भी उन स्वयंसेवकों ने बहुत ही सराहनीय सेवा-कार्य किया। उन लोगों को भारतीय स्वागत समारोह और उत्सवों के सम्बन्ध में तनिक भी ज्ञान नहीं था; किन्तु फिर भी उन लोगों ने सम्पूर्ण कार्य बहुत ही प्रशंसनीय ढंग से किया। आप लोग बम्बई में अनेकों बार मेरे भाषण सुन चुके हैं और आप लोगों को यह ज्ञात है कि मैं किस प्रकार का अनुशासन और व्यवस्था चाहता हू किन्तु अफ्रीका में मैंने वहां के लोगों को कहीं अधिक अच्छा पाया। मैं उनके विशाल जन समूहों में कितनी ही दूर तक चला जाता और उनके बीच घूमता किन्तु वे न तो खड़े ही होते थे और न ही तब तक चरण स्पर्श के लिए प्रयत्न करते थे जब तक कि मैं स्वयं उन्हें इसके लिए संकेत नहीं दे देता था। वे अपने हृदय में ही वन्दना और अभिनन्दन कर लेते थे। भक्ति जब संयम की सीमाओं को लांघ जाती है तो नियन्त्रण से बाहर होकर उद्वेग और उन्माद पूर्ण हो जाती है।

अब पश्चिम के राष्ट्र मेरा संदेश सुनने के लिए आतुर हो रहे हैं और प्रेम का पाठ पढ़ना चाहते हैं क्योंकि वे अन्तर की गुप्त शान्ति खो बैठे हैं। पूर्वी अफ्रीका में वहां के मंत्रीगण, मुख्य सेनापति, नगर प्रमुख से लेकर सामान्य से सामान्य मजदूर और किसान तक ने यह घोषित किया कि उन्होंने अपने जीवन में इतने आनन्द का अनुभव नहीं किया जो उन्होंने वहाँ मेरी उपस्थिति में अनुभव किया। कम्पाला के नगर-प्रमुख ने जब मैं आ रहा था तो कहा था, "हम आपको विदाई नहीं दे सकते क्योंकि आपका तो सदा स्वागत है।" अब इसके बाद आप देखेंगे कि धर्म का प्रकाश एक देश से दूसरे देश को प्रकाशित करता चला जाएगा। यह नितान्त रूप से आवश्यक

है कि प्रत्येक देश जिन सिद्धान्तों और आदर्शों की बात करता है उनका वह व्यावहारिक रूप से पालन करे और प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन में मानव मात्र के प्रति भ्रातृ भावना और भगवान के प्रति भक्ति समान रूप से बढ़ती हुयी एक रूप हो जाये। भारत में भी देश की सन्तानों को अपने आपको दूसरों के समक्ष प्रेरणादायक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कि लोग जान सकें कि आध्यात्मिक साधना से व्यक्ति क्या उपलब्ध कर सकता है, कितनी शान्ति, कितना प्रेम प्राप्त कर सकता है। अच्छे हिन्दू बनो अर्थात् हिन्दू शब्द के अनुरूप। हिन्दू का अर्थ होता है हिंसा—दूरम् अर्थात् जो हिंसा से दूर है। शुद्ध प्रेम में लीन रहोगे तो हिंसा से सदा दूर रहोगे। फिर आप शान्ति में स्थित रहेंगे और अन्य लोग भी आप से शान्ति प्राप्त करेंगे।

धर्मक्षेत्र, बम्बई
१४-७-१९६८

५२. पांच मातायें

आज का दिवस केवल अनन्तपुर या इस जिले या इस प्रदेश के लिए ही महत्व-पूर्ण नहीं है बल्कि सभी प्रदेशों के लिए भी इसका महत्व है। चार वर्ष पूर्व १९६४ में लड़कियों के हाई स्कूल दिवस के अवसर पर ही मैंने यह घोषणा की थी कि इस नगर में अलग से एक महिला कालेज की आवश्यकता है। वह संकल्प आज साकार हो गया है। शीघ्र ही यह पूर्ण रूप से सज्जित और सम्पन्न एक महत्वपूर्ण शिक्षा संस्थान बन जाएगा जिसकी अपनी एक विशेष स्थिति होगी। इस कालेज के निर्माण के पीछे न तो नाम या यश प्राप्ति की कोई भावना है और न ही कोई आर्थिक लाभ प्राप्त करने की योजना है। मैं यह जानता हूं कि नाम, यश, बड़ाई तो सब चंचल और अस्थिर, मिथ्या कल्पना के समान काफ़ूर हो जाने वाले होते हैं, और सारा लाभ जब आर्थिक माप दण्डों से नापा जाता है तो दूषित हो जाता है। इस कालेज के निर्माण के लिए मैंने अनुमति इसलिए दी कि यह कालेज विद्यार्थियों के मन और मस्तिष्क में सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम के प्राचीन आदर्शों को संस्थापित करेगा। ये वे आदर्श हैं जिनका वेदों में चित्रण है, शास्त्रों में वर्णन है, महाकाव्यों में स्पष्टी-करण है, और इस देश के असंख्य नर-नारी इन आदर्शों को अपने जीवन में व्याव-हारिक रूप से अपनाते हुए चले आ रहे हैं तथा इस प्रकार इनकी श्रेष्ठता, महत्व और उपादेयता व्यक्ति और समष्टिगत जीवन के अभ्युत्थान के लिए, ऋषियों, मुनियों और संतों के लिए, विधि-निर्माताओं और नेताओं के लिए युग-युगों से स्थापित होती चली आ रही है।

इस देश में जन्मा और पोषित होकर बड़ा हुआ प्रत्येक विद्यार्थी इस अमूल्य धरो-हर का उत्तराधिकारी है और उसका यह नैतिक दायित्व और अधिकार है कि वह इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उससे लाभान्वित हो। ऋषि शरीर को बनाये रखने के लिए है किन्तु मनः-संस्कृति जीवन के लिए है। कला-कौशल भौतिक पदार्थों को वह रूप देने के लिए है जिससे कि वे मनुष्य को अधिक सुविधायें प्रदान कर सकें और अध्ययन होता है मनुष्य की प्रवृत्तियों, विचारों, इच्छाओं, संवेगों और प्रेरणाओं को वह स्वरूप और मोड़ देने के लिए, सुसंस्कारित और परिष्कृत करने के लिये जिससे कि वे मनुष्य को अधिक शान्ति, अधिक संतोष, अधिक आनन्द और अधिक साहस तथा सहन-शक्ति प्रदान कर सकें।

प्रह्लाद ने अपने पिता से कहा था कि वही पिता, पिता के रूप में सम्मान पाने के अधिकारी हैं जो अपनी सन्तान को ईश्वर की ओर आगे बढ़ाते हैं। जो पिता अपनी सन्तानों को एन्द्रिक सुख-भोग के चक्रवात, भौतिक लालसाओं के ज़्वालामुखी,

अभिमान और आडम्बर के दल-दल में फंसाने के लिए अगुआई करते हैं वे बेचारे यह नहीं जानते कि उनके क्या कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व हैं । इसी प्रकार जो शिक्षा-संस्थान बच्चों को ईश्वर से विमुख रखते हैं जो कि एक मात्र सबका जनक, पालन-पोषणकर्ता, आश्रयदाता, माता-पिता, बन्धु-सखा और सहायक है, वह तो वास्तव में एक अन्धाश्रम है, जहाँ की व्यवस्था में सब अंधे ही काम संभाले हुए हैं, जो भी उनके पास आते और उन पर भरोसा करते हैं उन्हें भी वे अंधा ही बना देते हैं । भारत ने अपनी वास्तविक शक्ति के स्रोत को भुला दिया है और अब वह शक्ति के लिए उन क्षीण साधनों की ओर दौड़ रहा है जो सुख-सुविधाओं के नाम पर कलंक के विनाशक कीट हैं । यह कालेज भारत की मूल संस्कृति की जड़ों को सिंचित करेगा क्योंकि भारतवासियों को केवल उसके द्वारा ही पुनर्जागृत किया जा सकता है और सशक्त बनाया जा सकता है और फिर उनके माध्यम से सम्पूर्ण विश्व को । पूर्वी अफ्रीका की मेरी इस यात्रा से स्पष्ट हुआ है कि वहां के लोग भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के सम्बन्ध में अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं और उसके द्वारा सुख और शान्ति को प्राप्त करने के गुप्त रहस्य जानना चाहते हैं ।

भारतीय नारियां, जो शताब्दियों से भारतीय संस्कृति की सशक्त संरक्षिका रही हैं, आध्यात्मिक निधि की प्रहरी रही हैं, अब दम्भ और पाखंडपूर्ण संस्कृति के छलावे में छली जा रही हैं, क्षुद्र आकर्षणों का शिकार बन रही हैं जो कि बहुत सी शिक्षित और सुसंस्कृत कही जाने वाली अनेकों महिलाओं के व्यवहारों और आचरणों से स्पष्ट है । यह सब कृत्रिम और खोखली शिक्षा पद्धति, सस्ते दूषित साहित्य तथा निकम्मे और भ्रष्ट चल-चित्रों के कुप्रभाव के कारण है । महिलायें ही तो भावी पीढ़ी की जननी हैं, उनकी पोषक और संरक्षिका है, क्योंकि बालक के जीवन के प्रथम पाँच वर्षों का तो सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन पर ही होता है । पंच माताओं में जन्मदायनी मां सर्वप्रथम होती है और वह देह माता कहलाती है और फिर उसके बाद आती है गौ-माता जो दूध देती है, भू-माता जिस पर उत्पन्न अन्न को खा कर देह का पालन होता है, देश-माता जो रक्षा, संभाल, प्रेम प्रदान करती है तथा जहां व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण विकास का अवसर प्राप्त होता है और वेद-माता; वेद आध्यात्मिक ज्ञान का अक्षुण्ण भंडार है और मानव जीवन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं और मानव को एक-एक पग आगे बढ़ाते हुए आत्म-साक्षात्कार के परम लक्ष्य तक पहुँचाते हैं । यह देह-माता का कर्त्तव्य है कि वह बालक को अन्य चारों माताओं के महत्व को स्पष्ट करे और समझावे । इसलिए देह-माता का उत्तरदायित्व बहुत अधिक और महत्वपूर्ण है । अतः यह निश्चित किया गया है कि प्रत्येक प्रदेश में एक महिला कालेज खोला जाये और धर्म की पुनःस्थापना और उन्नति की जा सके, जिस कार्य के लिए मैं आया हूं ।

केवल आत्म-विद्या ही मन को धर्म में स्थिर कर सकती है । यहाँ विद्यार्थियों को

आत्म-विद्या का बोध करवाया जाएगा, उनमें आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न की जायेगी जिससे कि वे इस ज्ञान के बल पर जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना कर सकें और उन पर विजय प्राप्त कर सकें । कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध केवल अठारह दिनों तक चला था । अनेकों युद्ध हुए हैं और वे उससे कहीं अधिक समय तक वर्षों तक—सात वर्ष, तीस वर्ष या एक सौ वर्ष तक—चलते रहे हैं । वे कितने ही समय तक भी चले हों उनका किसी न किसी समय अन्त हुआ । किन्तु जीव और माया का युद्ध सतत् रूप से चल रहा है, इस धारा पर प्रथम मानव ने यह युद्ध प्रारम्भ किया था और पृथ्वी पर अन्तिम मानव के रहने तक यह युद्ध जारी रहेगा । व्यक्ति इस युद्ध में तभी विजय प्राप्त कर सकता है जबकि वह अर्जुन की तरह भगवान को अपना सारथी बना ले और युद्ध में अपने रथ की बागडोर उनके हाथों में सौंप दे, उनको अपना पूर्ण आत्म-समर्पण कर दे और स्वयं निमित्त मात्र रह जाये—जो भगवान करवाना चाहें वैसा ही किए जायें । माया से तो तभी जीता जा सकता है जबकि आप मायापति माधव से अपना गठबंधन कर लें, उनके बन जायें । यह वह पाठ है जो आत्म-विद्या सिखाती है । भारत की संतानों को इस पाठ को हृदयंगम करने की आवश्यकता है; भारत की ही संतान क्यों, सम्पूर्ण मानव संतति इससे अपार लाभ प्राप्त कर सकती है ।

श्री सत्य साई
आर्टस एण्ड साइंस कॉलेज फार वुमन,
अनन्तपुर
२२-७-१९६८

५३. प्रभु के चरण चिन्ह

आज जन्माष्टमी है जिस दिन भगवान श्रीकृष्ण ने इस धरा को स्वर्ग में परिवर्तित कर देने और मनुष्यों को देव बनाने के लिए मानव रूप में अवतार लिया था। सैकड़ों और हजारों वर्षों से यह दिवस मनाया जाता आ रहा है किन्तु क्या मनुष्य उन रत्नों से अपने को आभूषित और प्रकाशित कर पाया है जो भगवान श्रीकृष्ण ने उसको दिये थे ? क्या उन के उपदेशों का मनुष्य ने अपने हृदय में बीज-रूप में बोया है या पौध रूप में लगाया है तथा उच्चतर जीवन और प्रेरणाओं में उसे पल्लवित, पुष्पित और फलित होने दिया है ? नहीं ! इसका कारण उस मिथ्या दम्भ और पाखंड में छिपा है जो मनुष्य भक्ति के नाम पर करता है और अपने आपको और दूसरों को धोखा देता है, कहता कुछ है, करता कुछ है और सोचता कुछ है।

मनुष्य यह भूल जाता है कि उसके जीवन के दिन निर्धारित हैं और सूर्योदय से सूर्यास्त के साथ उसके जीवन का एक दिन कम हो जाता है। वह तो बस प्रसूति-गृह से श्मशान घाट तक इधर-उधर भटकता और चक्करदार रास्ते से चलता हुआ जीवन बिताता जाता है। भौतिक पदार्थों के अन्धकारपूर्ण मार्गहीन जंगल में भटकते हुए वह आत्मिक प्रकाश का सहारा नहीं लेता। यदि वह उस प्रकाश को ग्रहण करे तो वह आत्मा, जो उसमें स्वयं में है, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणी में है, प्रकट हो जायेगी; यह ही उसे दैवत्व प्रदान करेगी और परमात्मा के साथ उसका एकीकार कर देगी।

कृष्ण, जिनका जन्म महोत्सव आप सब को मनाना चाहिये, केवल वह ग्वाला नहीं है जो अपनी वंशी को मधुर धुन से ग्वाल-बालों, गोप-गोपियों और ग्राम्यजनों को मोहित किया करता था बल्कि वह तो वह श्रीकृष्ण है जो वर्णनातीत, अथाह और अगम्य, परम पुरुषोत्तम ब्रह्म तत्व है जो दैविक शक्ति (देवकी) से देह की नाभि (मथुरा) में उत्पन्न होता है और मुख (गोकुल) में आकर जिह्वा (यशोदा) द्वारा पोषित होकर उसके आनन्द और माधुर्य का स्रोत बनता है। कृष्ण तो आत्म-दर्शन है, जो उनके नाम स्मरण से प्राप्त होता है जैसे कि यशोदा को प्राप्त हुआ था। उस कृष्ण को अपनी जिह्वा पर पोषित करो, जब वह इस पर नृत्य करने लगेंगे तो जिह्वा का समस्त विष नष्ट हो जायेगा और आप को कोई हानि भी नहीं होगी जिस प्रकार कि श्रीकृष्ण ने अपने बाल्यकाल में कालिय नाग के फनों पर नर्तन किया था।

कृष्ण दही के भरे बर्तन, जिनमें मां यशोदा दही बिलो रही थी, फोड़कर भागे

ग्रौर छिप गये । यशोदा उनके चरण-चिन्हों का देखती हुई उन्हें खोजने में सफल हुई। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है कि किस प्रकार भगवान व्यक्ति के देहाभिमान और देह भ्रान्ति को भंग कर उसे ग्रपनी ग्रोर ग्राकर्षित करते हैं ग्रौर चारों ग्रोर छोड़े ग्रपने संकेत चिन्हों के सहारे ग्रपना पता देते हैं जिनको देखते हुए चलकर उन तक पहुंचा जा सकता है। ये संकेत प्रकृति में हमारे सबके चारों ग्रोर व्याप्त हैं, ग्रावश्यकता उनको देखने-पहचानने की है। ग्राप वे संकेत देखें सूर्योदय के सौन्दर्य में, इन्द्रधनुष के ग्रानन्द में, पक्षियों के मधुर कलरव में, कमल पुष्प ग्राच्छादित वन-वाटिका-तड़ागों, में, हिमाच्छादित पर्वत शिखरों में। वास्तव में भगवान के लिए कहा गया, "रसो वै सः सत्यं विज्ञानमानंदं ब्रह्म" वह रस है, विज्ञान है, वह माधुर्य है, वह ग्रानन्द है। इसलिए सम्पूर्ण प्रकृति जो भगवान का क्रियागत स्वरूप है उनके रस, मधुरता ग्रौर ग्रानन्द से पूर्ण है। उसे साकार रूप में मानो या निराकार में, वह ग्रानन्द है। भगवान का राम रूप में हृदय में स्वागत करो क्योंकि राम सुन्दर, प्रिय, मनोहर, ग्रानन्दप्रद और हर्षदायक हैं। या उनको कृष्ण के रूप में हृदय में धारण करो जो ग्रानन्द देते हैं ग्रौर आपको ग्रपनी ग्रोर ग्राकर्षित करते हैं ग्रौर फिर उनके ही ध्यान, पूजा और जप में सदा लीन रहो, कोई क्षण खाली न जाये। बस उसी से ज्ञान ग्रौर मुक्ति के द्वार खुलेंगे। वहाँ तक पहुँचने के ये मार्ग-संकेत, बुद्धिमान ग्रौर समझदार लोगों के लिए हैं; किन्तु इसके विपरीत तो फिर लोग इधर-उधर अंधकार में भटकते फिरते हैं ग्रौर ग्रर्थहीन संघर्षों, व्यर्थ के परिश्रमों ग्रौर ग्रनर्गल प्रलापों में ही ग्रपना समय नष्ट करते हैं।

हरिश्चन्द्र जब एक रात श्मशान घाट पर चौकीदारी ग्रौर वहाँ शव-दाह करने वालों से कफन की वसूली का कार्य कर रहे थे तो उन्होंने वहां एक शव की दाह क्रिया होते देख कर ग्रपने ग्राप से प्रश्न किया, "मैं किसके लिये शोक-विलाप करूं ?" एक समय था जब वह एक चक्रवर्ती सम्राट् थे, उन्होंने सत्य के परम आदर्श का पालन किया, जो कुछ वचन दिया उसे सदा पूरा किया। एक बार उन्होंने ग्रपना सम्पूर्ण विशाल कोषागार ऋषि विश्वामित्र को उनकी याचना पर, दान में दे डाला। ऋषि यह धन ग्रावश्यकता पड़ने पर बाद में ले जाने के लिए कह कर चले गये। इसी बीच में घोर ग्रकाल पड़ा, सूखा महामारी, ग्रग्निकांड ग्रादि नाना विपत्तियों से बड़ा विनाश हुग्रा। महाराज हरिश्चन्द्र का कोष खाली हो चला था। उसी समय विश्वामित्र आ गये ग्रौर उन्होंने ग्रपना सम्पूर्ण धन मांगा। हरिश्चन्द्र ने ग्रपना सब कुछ बेच कर उन्हें दे दिया यहां तक कि अपनी स्त्री ग्रौर ग्रपने पुत्र को भी बेच डाला; किन्तु फिर भी पूरा न पड़ा तो ग्रपने ग्रापको भी एक डोम के हाथ बेच दिया ग्रौर इस प्रकार पूरा धन जुटा कर ऋषि को चुकता कर दिया। इसीलिए हरिश्चन्द्र ने कहा था, "क्या मैं राज्य के लिए विलाप करूं ? स्त्री ग्रौर पुत्र के भाग्य के लिए रोऊं ? क्या मैं ग्रपने हीन कर्म के लिए विलाप करूं जो मुझे इस समय करना पड़ रहा है ? नहीं ! मैं विलाप नहीं करूंगा। मेरा तो केवल ग्रब यह रुदन है कि मैंने भगवान का साक्षात्कार नहीं किया,

उनको अभी तक नहीं पहचाना" और विलाप कर कहने लगे, "हे प्रभु मैं ! तुम्हारे लिए हूं, तुम्हारा हूं। तुम मेरे लिये हो, मेरे हो"—इसी की तो प्रत्येक को आवश्यकता है, यही प्रार्थना तो सबको करने की आवश्यकता है।

यही तो इस देश के ऋषियों और मुनियों ने हजारों वर्ष की घोर तपस्या के बाद खोज निकाला है और मानवता को इसकी शिक्षा दी है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने समस्त ऋणों से उऋण हो, मुक्त हो, किन्तु इसके लिए उसे उनके द्वारा निर्धारित सत्य के मार्ग पर चलना होगा चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न आयें, जो कुछ मर्यादायें निश्चित की गयी हैं उनका पालन करना होगा जिससे कि यात्रा में अन्त में सफलता प्राप्त हो।

श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा था कि इस शरीर को ही सब कुछ समझना, इसे ही 'मैं' समझना सबसे बड़ी मूर्खता है। जब यह मूर्खता दूर हो जाती है, तो मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। भारत के पास मोक्ष के साधन का गुप्त रहस्य उपलब्ध है। किन्तु फिर भी भारतवासी पश्चिम की भौतिक चमक-दमक, ऐन्द्रिक-आकर्षणों, हर प्रकार की स्पर्धापूर्ण सफलताओं के पीछे आसक्त हुए जाते हैं। वे नहीं जानते कि पश्चिम के लोग कितने भय, चिन्ता और निराशा में संतप्त हैं और छटपटा रहे हैं।

एक कथा है कि एक बार लक्ष्मी ने विष्णु से प्रश्न किया कि आपने मनुष्यों को सुख-सुविधा के सभी साधन जुटा दिए हैं तो क्या कभी वे ईश्वराभिमुख होंगे ? विष्णु ने उत्तर दिया, "मैंने मनुष्यों को दो विशेषताओं से सम्पन्न किया है जिनके कारण वे मेरी ओर आयेंगे, वे विशेषतायें हैं लोभ और असन्तोष।" जब मनुष्य संसार से विरक्त होकर ईश्वराभिमुख होता है तो उसे लोभ और असंतोष नहीं व्याप्ते।"

'सर्व देव नमस्कारम्' ईश्वर प्राप्ति के लिए पर्याप्त कहा जाता है; किन्तु यह प्रक्रिया अधूरी ही है, इसका दूसरा पक्ष भी है जो बिलकुल विपरीत है, 'सर्व जीव तिरस्कारम्' सब प्राणियों से अनासक्ति। ईश्वर के प्रति लगाव और संसार से विरक्ति, इन दो तटों के बीच जीवन की धारा अबाध गति के साथ ईश्वरीय अनुग्रह के महासागर की ओर बही चली जायेगी। अपने में दैवत्व देखो, दूसरों में दैवत्व देखो, इसके अतिरिक्त जो कुछ अपने में और दूसरों में है उससे विरक्त हो जाओ, त्याग दो। यही साधना का सार है।

एक बार नारद ने विष्णु से प्रश्न किया, "प्रभु ! यह क्या बात है कि ऐसे महान ऋषि और मुनि जन, जिन्होंने विशुद्ध ज्ञान प्राप्त किया, समष्टिगत आत्म तत्व को जाना, आपका अनुग्रह नहीं प्राप्त कर सके; किन्तु गोकुल की अशिक्षित ग्रामीण गोपियाँ जो केवल आपके सौंदर्य, आपकी क्रीड़ाओं, आपके संगीत, आपके माधुर्य,

आपके अगम्य कौतुक पर ही मोहित थीं, आपका अनुग्रह प्राप्त करने में सफल हुईं। यह कैसे हुआ ?" किन्तु बाद में नारद को स्वयं ही पता चल गया कि गोपियों के लिए तो कृष्ण उनके श्वास-उच्छ्वास बन गये थे; उनके नेत्रों की दृष्टि, उनके कानों के शब्द, उनकी रसना के स्वाद, उनकी त्वचा के स्पर्श कृष्ण ही हो गये थे। चाहे वे अपने गाय, बछड़ों को संभाल रही हों, पति या पुत्र की सेवा कर रही हों अथवा गृहस्थी के हजारों कार्यों में किसी भी काम में व्यस्त हों, वे कृष्ण में ही लीन रहती थीं, कृष्ण सदा उनके साथ रहते, कृष्ण के सहारे ही सब कुछ करती थीं। 'सर्वदा सर्व कालेषु सर्वत्र हरि चिन्तनम्'—फिर भला भगवान उन पर अपना अनुग्रह कैसे नहीं करते।

एक बार जब नारद गोकुल गये और गोपियों को अपने पास बुलाकर उन्हें ज्ञान का उपदेश देने लगे तो गोपियों ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया बल्कि कहने लगीं, "भगवान का नाम लेते रहने के लिए रात और दिन का जितना समय है वह भी हमारे लिए कम है फिर भला और सोचने और करने का समय कहाँ ? हमें आपकी केवल ये मौखिक बातें कि भगवान सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हैं नहीं चाहिएं, हम तो जो जानती हैं वही विचारती हैं और सोचती हैं, और वही आनन्द प्रतिपल-प्रतिक्षण अनुभव करती हैं।" जब नारद को भक्ति की श्रेष्ठता और प्रधानता प्रकट हुई तो उन्होंने उस महान भक्ति सूत्र की रचना की जो जिज्ञासुओं और साधकों के लिए मार्ग-दर्शक दीप बन गया है। विशुद्ध हृदय की गुहा में अपनी नाद शक्ति की अव्यक्त और अप्रकट प्रतिध्वनि के द्वारा ही वेद रक्षा करते हैं। श्रीकृष्ण गोपियों को आकर्षित करने के लिए जो वंशी बजाते थे उसका मधुर संगीत दूसरे रूप में विशुद्ध हृदय में प्रतिध्वनित वेदनाद ही था। राम आनन्द प्रदान करके हृदय को आकर्षित करते थे। कृष्ण हृदय को आकर्षित कर दैविक आनन्द प्रदान कर, स्वयं उसमें अपने को स्थापित कर देते थे। राम और कृष्ण एक ही अहेतु की दया के दो भिन्न स्वरूप हैं। दया के सागर के एक निकास स्रोत से आप राम रूप में और उसी दया के सागर के दूसरे स्रोत से कृष्ण रूप में एक ही आनन्द, एक ही शक्ति प्राप्त करेंगे। यह तो बिना किसी भेद के केवल श्रेष्ठता और विशेषता है।

इसी कारण मैं नाम-संकीर्तन और नगर-संकीर्तन पर अधिक बल देता हूं। आजकल आध्यात्मिक उपदेश और आध्यात्मिक अर्थ लगाने में वाक् कौशल का अधिक प्रयोग होता है और ऐसा करने वाले होते हैं वे लोग जो स्वयं न तो उन सिद्धान्तों और अनुशासनों में विश्वास करते हैं और न ही उनका पालन करते हैं, यद्यपि कि उनके ऊपर उपदेश और प्रवचन बड़ी वक्तृता के साथ करते हैं। मंच पर तो वे सत्य के पालन के लिए सबको हरिश्चन्द्र बन जाने का उपदेश करेंगे; किन्तु व्यावहारिक जीवन में आप उन्हें पायेंगे कि कितने छल, कपट और षड्यन्त्र के साथ ये लोग रहते हैं। इसलिए जो कुछ आप कहते हैं उसका आप जीवन में पालन नहीं करते तो आप

केवल 'नाटक भक्त' हैं। आज भारतवर्ष की यह दशा नहीं हुई होती यदि इस देश की सब सन्तानों ने दूसरों के और भगवान के प्रति अपने-अपने कर्त्तव्यों और उत्तर-दायित्वों के कुछ अंश मात्र का भी पूरी तरह से निर्वाह किया होता। नदी सतत् रूप से शान्ति और धैर्य के साथ बहती रहती है, फिर समुद्र चाहे जितनी दूर क्यों न हो और यात्रा कितनी भी विषम क्यों न हो। इसी प्रकार मनुष्य को भी ईश्वर को सदा अपने लक्ष्य में रखते हुए सतत् रूप से, अबाध गति से उनको ओर आगे बढ़ते रहना चाहिए, उनके अधिक निकट पहुंचते रहना चाहिए जब तक कि उनमें ही न समा जाये।

भगवान को धर्म अतिशय[1] प्रिय है क्योंकि धर्म के संरक्षण, उसको उसकी प्राचीन शुद्धता और स्पष्टता के साथ पुनः स्थापित, पोषित और प्रसारित करने के लिए ही भगवान स्वयं मानवरूप में अवतार लेते हैं और मनुष्यों के बीच इसी प्रकार चलते-फिरते हैं मानो उनमें से ही एक हैं। इसलिए यदि आप भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं तो आपके विचार, कार्य, शब्द और व्यवहार सब धर्म से प्रेरित होने चाहिए। इस परम सत्य का आपको ज्ञान होना चाहिए और अनुभूति हो जानी चाहिए कि सब ईश्वर के ही स्वरूप हैं, और इस सत्य से आपको सबके प्रति प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और सम्मान के लिये प्रेरणा प्राप्त हो। धर्मपूरित कर्म से ही आप भक्ति की ओर प्रगति करते हैं जो सब में, दैवत्व की चेतना से पूर्ण होती है। उस भक्ति से ही आपको ज्ञान उपलब्ध होता है और समष्टिगत परमात्मा के साथ अपने तादात्म्य[2] की अनुभूति करते हैं। कर्म, भक्ति, ज्ञान—कच्चा फल, अधपका फल और पूर्ण पका रसपूर्ण फल, यही प्रत्येक साधक की आध्यात्मिक प्रगति का क्रम है। जब फल पूर्ण पक कर रस युक्त हो जाता है तो स्वतः ही डाल से टूट कर गिर जाता है। यही पूर्णता है।

नारद ने एक बार श्रीकृष्ण से प्रश्न किया "आप की वंशी का वृन्दावन के गोप-गोपियों पर प्रभाव का क्या रहस्य है? क्या आप उनके पास दौड़ कर जाते हैं?" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "हमारे बीच 'मैं', 'वह' और 'वे' का भेद ही नहीं है। किसी वस्त्र पर बनाया गया चित्र वस्त्र से अलग कैसे हो सकता है? मैं तो उनके हृदयों में चित्रित हूं, न वहाँ से हटाया जा सकता हूँ न ही अलग किया जा सकता हूं।" अपने हृदय-पटलों पर भी भगवान को इसी प्रकार स्थायी रूप में चित्रित कर लो और स्वयं भी उनमें ऐसे रम जाओ कि उनसे विलग न हो सको—बस यही है मेरा आपको आज का संदेश।

प्रशान्ति निलयम्
१६-८-१९६८

---

१ आवश्यकता से अधिक २ एक-रूपता

५४. मुझे सारथी[1] के रूप में ग्रहण करो

आज संसार असम्मान और अत्याचारों में अधिक से अधिक गहरा डूबा जा रहा है। सदाचार के आदर्शों और नियमों की उपेक्षा हो रही है और उनकी हंसी उड़ायी जाती है। नैतिकता और आध्यात्मिकता की ओर कोई आंख उठाकर नहीं देखता और सभी भौतिकता के आकर्षणों से खिचे उस ओर ही बढ़े जा रहे हैं। सत्य, न्याय, भलाई और ईमानदारी के प्रति आस्था और विश्वास नहीं रह गया है, सफलता के लिए इनकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। भले और बुरे के भेद को तो मानो भुला ही दिया गया है। राम जब बालक ही थे तो जब कभी उस स्थान पर पहुंचते जहां उनकी माता कौशल्या, पिता दशरथ और आचार्य वशिष्ट बैठे होते तो पहले वे माता के, फिर पिता के और अन्त में गुरु के चरण स्पर्श करते थे और इस प्रकार वैदिक अनुशासन का पालन करते थे जिसमें कहा गया हैं, "मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव ।......" अर्थात् माता को देवरूप समझो। जिसमें माता, पिता और गुरु के प्रति ऐसा सम्मान भाव नहीं है वे पशु के समान हैं क्योंकि केवल पशु ही जैसे ही स्तनपान करना छोड़ते हैं या मातृ आश्रम से मुक्त होते हैं अपने माता, पिता की उपेक्षा कर देते हैं और स्वच्छन्द हो जाते हैं। माता, पिता और आचार्य के प्रति कृतज्ञ बने रहना और उन्हें सदा स्मरण करना मानवीय विशेश्ता है, मनुष्यता का लक्षण है।

यह संसार तो एक महान विशाल नाटक हैं जिसका अभिकल्पन[2] और निर्देशन[3] भगवान ने किया है जिससे कि मनुष्य में श्रद्धा मिश्रित भय, सम्मान उत्पन्न हो सके और वह सौन्दर्य, आकर्षण और रहस्य से खिचा हुआ इस सम्पूर्ण रहस्य, कौतुक, आनन्द और सौन्दर्य के स्रोत को देख सके। जब मीरा छोटी बालिका थी तो उसने अपनी माता से पूछा, "माँ, हम एक खेल खेल रही हैं जिसमें सब लड़कियों ने जिस से शादी करेंगी उस व्यक्ति का नाम बता दिया है अब आप बताओ कि मैं किस व्यक्ति का नाम लूं जिससे मुझे शादी करनी है।" मीरा अपनी माँ को जब इस तरह कुछ देर तक परेशान करती रही तो उसने झुंझलाकर कहा, "इस मंदिर में जो गिरधर बिराजे हैं न यही तेरे पति हैं। जा भाग!" मीरा ने उसी समय से गिरधर (श्रीकृष्ण) को अपना पति स्वीकार कर लिया और उनके प्रति अपना पूर्ण समर्पण कर दिया तथा सर्वदा और सर्वत्र उनका ही रूप, उनकी ही दया और करुणा दृष्टिगोचर होने लगी। प्रत्येक जीवन में इस शरीर और जीव का सम्बन्ध है वह वैवाहिक सम्बन्ध के समान दुल्हा-दुल्हिन का है। जैसे ही शरीर जीव को अपने आलिंगन, सुरक्षा और

---

१ रथ चलाने वाला (यहाँ जीवन रूपी रथ चलाने वाले ईश्वर से है) २ योजना बनाना अथवा कल्पना करना ३ योजनानुसार कार्य पूरा करना या कराना

पोषण में ग्रहण करता है भगवान प्राण को मनुष्य में स्थापित रखते हैं जिससे कि वह उनका साक्षात्कार कर सके।

भगवान तो सदा दया सागर, कृपा सिन्धु हैं। कुरुक्षेत्र में कौरवों और पांडवों के बीच हुए महाभारत युद्ध में दोनों पक्षों के पितामह, भीष्म ने कौरव सेना का आठ दिनों तक नेतृत्व किया किन्तु फिर भी विजय कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। अतएव दुर्योधन भीष्म पितामह के पास पहुंचे और उनसे निवेदन किया कि वे अपने सेनापतित्व में ऐसा भयंकर युद्ध करें कि शत्रु का नाश हो जाये। भीष्म ने उत्तर दिया कि कल या तो विजय प्राप्त करेंगे अथवा फिर मृत्यु। श्रीकृष्ण को यह ज्ञात होते ही उन्होंने पांडवों की रानी द्रौपदी से जिसकी श्रीकृष्ण के प्रति अपार भक्ति थी, अर्द्धरात्री में भीष्म के शिविर[1] में चलने के लिए कहा। संकटकी उस घड़ी में द्रौपदी के लिए प्रार्थना ही से सम्बल और शक्ति प्राप्त होती थी तथा उसकी प्रार्थना श्रीकृष्ण को द्रवीभूत कर देती थी। अपने मुख को घूंघट से ढक द्रौपदी भीष्म के शिविर में भीतर गयी। उसने श्रीकृष्ण के निर्देश के अनुसार अपनी पादुकायें (चप्पलें) बाहर ही खोल दीं जिससे कि उनकी आवाज से शान्ति भंग न हो, रक्षक गण चौकन्ने न हो जायें। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की पादुकायें उठाकर एक रेशमी रूमाल में लपेटीं और अपनी बगल में दबा कर दरवाजे पर खड़े हो गये।

द्रौपदी ने भीतर पहुंचते ही भीष्म पितामह के चरणों में झुक कर प्रणाम किया और उन्होंने स्वाभाविक रूप से उसे दीर्घ सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दिया। द्रौपदी ने अपना घूंघट हटा दिया और वह भीष्म से प्रार्थना करने लगी, कि आशीर्वाद के वचन के अनुसार उसके सौभाग्य को बनाये रखने के लिये उसके पांचों पांडव पतियों की उनके बाणों से रक्षा होनी चाहिए। भीष्म तत्काल भांप गये कि इस रण-कौशल की चाल के पीछे श्रीकृष्ण की ही बुद्धि हो सकती है। भीष्म यह जानते थे कि अब उनका मरण निश्चित है। उन्होंने कहा, "हम सब तो भगवान के हाथ में कठपुतलियों के समान हैं, जैसे वे नचाते हैं; नाचते हैं।" जब भीष्म बाहर आये तो उन्होंने देखा द्वार पर श्रीकृष्ण स्वयं हैं और बगल में कपड़े में लिपटा हुआ कुछ दबाये हैं। तनिक अनुमान लगाओ उस विस्मय का जो भीष्म को हुआ होगा जब उन्हें ज्ञात हुआ कि भगवान अपने भक्त की पादुकायें बगल में दबाये द्वार पर खड़े थे। भगवान में आस्था और विश्वास रखो, वह आपको कभी छोड़ने वाले नहीं हैं वह आपकी उस समय तक रक्षा करेंगे जब तक विजय प्राप्त नहीं हो जाती; अडिग श्रद्धा और विश्वास से भगवान का अनुग्रह[2] निश्चित रूप से प्राप्त होता है।

द्रौपदी में अटूट श्रद्धा और विश्वास था और उसने भगवान को अपना पूर्ण

---

१ डेरे, तम्बू या कैम्प (जिसमें लोग निवास करते हैं) २ कृपा

समर्पण कर रखा था और उसी समर्पण भावना के साथ उसने अपना भक्ति पूर्ण जीवन बिताया, महान संकट पार किए। पांच पांडव जो उसके पति थे पंच प्राण हैं जिनसे इस शरीर का क्रिया-कलाप चलता है। द्रौपदी वह शक्ति है जो पंच प्राणों को अपनी सतत् सतर्क सावधानी के साथ सदा धारण किये रहती है।

वह सहज और दृढ़ विश्वास प्राप्त करने के लिए आपको अवतारों जैसे राम या कृष्ण के आन्तरिक[1] रहस्य की गहराई में गहरा गोता लगाना होगा, यह नहीं कि बाहरी घटनाओं के उधेड़-बुन में लगे रहो, भावनाओं और संवेगों के संघर्ष में ही खो जाओ, बाह्य साहसिक कार्यों और अन्य गतिविधियों में ही अपने को भुला दो। राम के केवल भाई, पुत्र, पति के रूपों को ही मत देखो जो अनेकों व्यक्तिगत संकटों से भरा है, राज्य मिलने के स्थान पर बनवास हुआ, जंगलों में भटकते रहे, पत्नी का राक्षसों ने हरण किया और अन्त में उनको मार कर विजय प्राप्त की और उसे मुक्त करवाया। अवतार के आन्तरिक रहस्य की शान्त गहराइयों में जब गहरी पैठ होगी तभी आप भक्ति पा सकते हैं। रहस्यपूर्ण शान्त गहराइयों में गोता लगाने की प्रक्रिया विशेष रूप से भारतीय ऋषियों और मुनियों की देन है जिसके आधार पर भारत जगत गुरु कहलाया। सदा विनम्रता, आग्रह पूर्ण सम्मान, भगवान और उनकी महिमा का सतत् ध्यान और चिन्तन ये ही आपके लिए समर्पण का मार्ग है—रक्षा प्राप्त करने के लिए दीक्षा।

भारत का कार्य रहा है मानवता को इस दीक्षा की याद दिलाना जिससे कि वह अपनी विनाश से रक्षा कर सके। लेकिन कुछ समय से देश अपने इस उत्तरदायित्व को भूल रहा है और लोग अपने और मानवता के लिए स्थायी सुख और शान्ति प्राप्त करने के स्थान पर क्षणिक सुख-सुविधाओं के पीछे दौड़ रहे हैं जिसे वे बिना किसी परिश्रम, त्याग और तपस्या के तत्काल प्राप्त कर सकें। मनुस्मृति[2] को जिसकी रचना मनु ने मानवता के कल्याण के लिए की थी और जो मनुष्य के दैनिक जीवन का नियमन करती है और प्रत्येक क्षण का परिशोधन करती और उसे पवित्र बनाती है, आज पुरानी-पोथी समझ कर दूर फेंक दी जाती है और उसमें दी गयी आचरण संहिता आज के जीवन के लिए बिलकुल अनुपयुक्त और कालबाधित[3] मानी जाती है क्योंकि आधुनिक मनुष्य तो बिना किसी बाधा के स्वेच्छाचारिता के साथ सदा सुख भोग में लीन रहना चाहता है। इस लिए मनुष्य एक निराशा से दूसरी निराशा की ओर भागता है, सदा आनन्द की खोज में भटकता है जो उसे भौतिक पदार्थों में मिलता नहीं फिर भी उसे खोजता उन्हीं में है।

सुख तो एक धोखे का जाल है, दुख ही सच्चा मार्ग दर्शक और उपदेशक है; जो

---

१ अन्दरूनी २ धर्म और आचार के नियमों की पुस्तक ३ समय के विरुद्ध

सावधान और सचेत रहने, परिस्थितियों का सूक्ष्म प्रेक्षण करने, विवेकी और विरक्त बनने, मोह त्यागने की शिक्षा देता है। लोग मृत्यु को निर्दयी शत्रु समझते हैं किन्तु वास्तव में वह तो मित्र और साथी है, शिक्षक और दयालु बन्धु है जो आपको अपने आलिंगन में लेकर स्मृति के प्रभामण्डल में आलिप्त कर लेता है। मनुष्य के हृदय को सुदृढ़ और सबल बनाना चाहिए न कि कठोर और निर्मम, उसे मृदु बनाना चाहिए न कि भीरु, यह हानि, दुःख, शोक और संकटों के थपेड़ों और आघातों से ही सम्भव हो सकता है। यह तो ईश्वरीय ढंग है मनुष्य को दैविक रूप में ढालने का। लेकिन मनुष्य अंधा हो जाता है और प्रभु की इस कृपा को नहीं समझ पाता और उसे उल्टे अर्थों में समझता है। मूर्तिकार के हथौड़े का प्रथम आघात पड़ते ही वह घबड़ा उठता है और भाग उठता है; भगवान के उस रूप को छोड़ कर दूसरे रूप की ओर और अपनी श्रद्धा और विश्वास उस दूसरे रूप को समर्पित करता है और समझता है वहां से उसे अधिक सुख और लाभ प्राप्त होंगे। आप साई बाबा का एक चित्र लाते हैं और अपने घर के मन्दिर में स्थापित करते हैं और उस पर पुष्प चढ़ाते हैं, धूप दीप करते हैं। कुछ दिनों बाद आप की गाय जितना दूध देती थी उससे कम दूध देने लगती है तो आप सोचने लगते हैं कि यह या तो नये देव ने घर में स्थापना के बाद उपद्रव पैदा किया है अथवा नये देव के स्थापित किये जाने के कारण पुराने देव ने नाराज हो कर यह किया है। इन तुच्छ स्वार्थों के लिए न तो किसी देवता की अपने घर में स्थापना ही करो न ही ऐसे क्षुद्र स्वार्थों और लाभों के लिए पूजा ही। भगवान के सान्निध्य के परम सौभाग्य को अपनी महत्वहीन छोटी-मोटी हानि-लाभ की मनोकामनाओं और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के निमित्त मत खोओ। भगवान का आदेश है, "अनित्य असुखं लोकं इमाम् प्रप्य भजस्व माम्"—इस अनित्य और दुःखों से भरे संसार में आकर यदि तू त्राण[1] चाहता है तो मेरा भजन कर। शरीर व्याधि, रोग और मृत्यु से कैसे बच सकता है? मन चिन्ता और उद्वेग[2] से कैसे बच सकता है?

हाँ आप व्याधि, रोग और मृत्यु पर विजय पा सकते हैं, उद्वेग और चिन्ता से छुटकारा पा सकते हैं यदि आप निर्धारित औषधि और उपचार करें, बताये गये निर्देशों और संयम का पालन करें। भगवान का यशोगान करो—कैसे भी शोक या संकट में क्यों न पड़े हो, उन्हीं का नाम स्मरण करो क्योंकि वह ही एक ऐसा समय होता है जब आप को उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। जब ज्वर तीव्र होता है तो दवा की गोलियां अधिक मात्रा में और थोड़े-थोड़े समय के अन्तर पर लेनी होती हैं। पांडव विजय प्राप्त करने के इस रहस्य को भली प्रकार समझते थे, इसलिए जब भी कभी वे किसी षड्यंत्र में फंस जाते, परिस्थितियाँ विकट होतीं, वे

---

१ छुटकारा, २ व्याकुलता

भगवान को पुकारने लगते थे। सामान्य लोग ऐसे अवसरों पर केवल विलाप करने लगते हैं, रोते और पछताते हैं, "अरे मेरी सारी पूजा व्यर्थ गयी, कितनी लगन और भावना के साथ मैं पूजा करता था सब व्यर्थ गयी, कोई लाभ नहीं हुआ, उल्टा कैसे संकट में फंस गया।" दूसरे लोग भी उन भक्तों के दुर्भाग्य पर हंसते हैं और उन्हें ईश्वर में विश्वास से विमुख करते और अविश्वास के शुष्क रेगिस्तान में घसीट ले जाते हैं। ऐसे दुष्ट लोगों की बातें नहीं सुननी चाहिए, अपने विश्वास में दृढ़ रहना चाहिए और उसकी जड़ें प्रार्थना और पश्चाताप से, आत्म विवेचन से सींचते हुए सबल बनाते रहना चाहिए। जो दूसरों को प्रभावित करने, कमाने और निहित स्वार्थों के कारण पूजा-भक्ति करते हैं वे ही भाग्य के पलटा खाने पर त्याग देते हैं किन्तु जो सच्चे भक्त हैं, वे सदा अडिग रहते हैं उनका विश्वास नहीं हिलता, फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो, भला हो या बुरा, यश मिले या अपयश, सुख हो या दुःख, उनमें कोई द्वन्द नहीं रहता; दैविक कृपा के विभिन्न पहलुओं के रूप में वे उन्हें ग्रहण करते हैं और प्रभु का सदा गुणगान करते हैं।

साईं भक्त का सही लक्षण है कि वह दृढ़ रहता है, वह सोच विचार कर अपनाये गये अपने इस मार्ग से, लोगों की निन्दा, द्वेष या अन्य विलासिता पूर्ण सुख-सुविधा के दिखावों और आकर्षणों से प्रभावित होकर विचलित नहीं होता। वह तो आध्यात्मिक साधना का व्यावहारिक रूप में पालन करता है क्योंकि वह जानता है कि उससे कितना लाभ प्राप्त होता है।

आज का दिन श्रीकृष्ण के जन्म दिवस के रूप में मनाया जाता है। आप लोग यह विश्वास करते हैं कि आज का दिन एक पावन उत्सव का दिन है, किन्तु क्या आप में वह श्रद्धा और विश्वास भी है जो भगवान श्रीकृष्ण के उपदेशों का पालन करने के लिए आपको प्रेरित करता है, उनकी ओर आपको आकर्षित करता है ? केवल आज के दिन तैयार किये गये विभिन्न रसों से युक्त व्यंजनों और मिष्टान्नों का रसास्वादन करते हुए पेट भर कर ही आनन्दित मत हो लो बल्कि अपने हृदय, मन और बुद्धि को श्रीकृष्ण के उपदेशों से परिपूरित करके अपने विचारों, भावनाओं, संवेगों, प्रेरणाओं, रुचियों और गतिविधियों को भी उन्हीं के अनुरूप बनाओ। आजकल सामान्य रूप से आप लोगों ने देखा होगा कि जो लोग अपने को राम, कृष्ण या साईं बाबा का भक्त कहते हैं, एक मन्दिर बनाने की योजना बनाते हैं। एक नये मन्दिर का निर्माण होता है, पुराना ढह जाता है। न जाने क्यों ये लोग इसके लिये अपीलें निकालते, दान दाताओं की सूचियां तैयार करते हैं और दान और चंदे इकट्ठे करने के लिए भाग-दौड़ में लगे रहते हैं। प्रत्येक अपने अहं से प्रेरित मन्दिर बनाने के लिए कार्य करता है, भगवान के लिये नहीं बल्कि अपने लिये। इस मन्दिर बनाने के पागलपन के पीछे एक मिथ्या और व्यर्थ की भावना काम करती है, "मैं मेरे भगवान के लिए एक घर बनाऊंगा

क्योंकि उनके सिर ढकने तक के लिए अभी कोई स्थान नहीं है।" जिन लोगों के पास दान के लिए पहुंचा जाता है वे बड़प्पन और गर्व का अनुभव करते हैं, जो आदमी उनसे दान के लिये याचना करते हैं वे अपने भगवान, अपने विश्वास की कमी ही प्रकट करते हैं। लोग सोचते हैं मन्दिर एक नये भगवान के लिये है जो पुराने देवों के नाम और रूपों के साथ प्रतिस्पर्धा[1] में उनका सहयोग और संरक्षण पाना चाहता है। किसी भक्त के लिये ऐसा कार्य क्या अनुचित और अवांछनीय नहीं ? ऐसे साधनों के द्वारा मेरे निकट आने का प्रयास मत करो। मेरे पास भक्त का यह कोई भेद नहीं है कि वह भगवान की किस रूप या नाम से भक्ति करता है। मेरे पास वे सब आ सकते हैं, जिन्हें प्रकाश और उष्णता पाने की तड़प है। इस प्रताप और गरिमा की उष्णता से सारी ठण्ड, भोग लिप्सा भाग जायेगी, इस प्रकाश से युग-युगों का अंधकार भाग जाएगा। अपने में सब के प्रति प्रेम और सम्मान पैदा करो, यही मार्ग है सानिन्ध्य[2] प्राप्त करने का। मैं किलोमीटर और मीलों में दूरी नहीं नापता, प्रेम के परिसर से ही मेरे लिए निकटता या दूरी का निर्धारण होता है।

एक और विषय है। आप लोग प्रार्थना करते हैं कि मैं आप लोगों के घरों पर आऊं और जब मैं नहीं आता तो आप दुःखी होते हैं, अपने आपको कोसते हैं कि आप गरीब हैं या कि आप आध्यात्मिक दृष्टि से ऐसी स्थिति नहीं प्राप्त कर सके तथा अन्य इसी प्रकार की बातें सोचते हैं। यह सब व्यर्थ है, असंगत है। मेरे हृदय में इस प्रकार के भेद-भाव और अन्तर के लिए कोई स्थान नहीं है। आप चाहे इस पर विश्वास करें या न करें। किन्तु मैं आपको अपने हृदय की बात स्पष्ट कर दूं। मुझ में न तो किसी के घर जाने के प्रति कोई उत्साह है और न ही किसी के घर जाने के लिये कोई दुराग्रह। जिन ईंट-पत्थर, चूने और सीमेंट के मकानों में आप रहते हैं उनके प्रति न मेरा कोई लगाव है न परवाह, मैं तो आप लोगों के हृदय में निवास करना चाहता हूं, वहाँ आना चाहता हूँ। यह प्रशान्ति निलयम् मेरा निवास-स्थल नहीं है, आप लोगों के हृदय जब प्रशान्ति निलयम् में परिवर्तित हो जाते हैं तो वे मेरे निवास-स्थल बन जाते हैं। जब आप मुझे अपने गाँव या नगर में आने के लिये प्रार्थना करते हैं तो मैं अपनी सुविधाओं की बात नहीं सोचता हूँ क्योंकि मुझे तो केवल अपने खड़े रहने मात्र के लिये स्थान चाहिये जिससे कि वे हजारों और लाखों लोग जो मेरे दर्शन के लिए आते हैं दर्शन कर सकें। किन्तु वे स्त्रियां और बच्चे, रोगी और वृद्ध, असहाय और असमर्थ, अंधे और अपंग जो सन्तोष और आश्वासन, आरोग्य और उत्साह पाने के लिए दूर-दूर से आते हैं उनके तनिक से भी कष्ट और सुविधायें मुझसे नहीं सही जातीं।

मैं आप लोगों को एक और महत्वपूर्ण बात बता दूं। आप लोगों को तनिक भी

---

१ होड़ २ निकटता, नजदीक होना

विलम्ब नहीं करना चाहिये, इस अभूतपूर्व अवसर को हाथ से मत जाने दो जितना जल्दी हो सके उसे पकड़ लो। अपनी मुक्ति के लिये आपको क्या साधना अपनानी चाहिये यह मुझसे पूछो और आज से ही उसकी साधना आरम्भ कर दो। बाद में आपकी मेरे तक पहुंच कठिन हो जायेगी और आप मुझसे नहीं पूछ सकेंगे। क्योंकि कभी समाप्त न होने वाली सतत् धारा के रूप में लोग मेरी ओर चले आ रहे हैं और वह समय आ जायेगा जबकि मीलों दूर से दर्शन करने होंगे। इस अवतार का विश्व वृक्ष के रूप में बढ़ना अवश्यम्भावी है जिसके नीचे सम्पूर्ण संरक्षण पा सकें। इसी उद्देश्य से यह अवतार हुआ है, रुकने का काम नहीं, कोई संकोच नहीं। मेरा नाम है 'सत्य', मेरा उपदेश है 'सत्य', मेरा मार्ग है, 'सत्य', मैं हूं 'सत्य'।

हर युग में भगवान ने अवतार लिया है, किसी न किसी कार्य विशेष के लिए। इस दृष्टि से यह अन्य अवतारों से भिन्न है क्योंकि इस अवतार में उस संकट से निबटना है जो विश्व व्यापी है और जिसने सम्पूर्ण संसार को हिला रखा है। तथाकथित बुद्धिवादी कहे जाने वालों की धृष्टता मूर्खता की श्रेणी तक जा पहुँची है जो पूछते हैं "भगवान क्या है और कहाँ है ?" अनैतिकता ने नैतिकता का चोला धारण कर लिया है और लोगों को पाप के गर्त में घसीटे लिये जा रही है। सत्य की प्रपंच कह कर, उपेक्षा होती है, न्याय की खिल्ली उड़ाई जाती है, सन्तों को समाज के शत्रु की संज्ञा दी जाती है और यातनायें देकर सताया जाता है। इसलिए यह अवतार सत्य की विजय और असत्य के पराभव के लिये हुआ है। मैं आप लोगों की तरह ही व्यवहार करता हूँ, चलता फिरता हूं, गाता हूं, हंसता हूं, यात्रायें करता हूं, लेकिन मेरे उस प्रहार को देखो जो अचानक करता हूं लोगों को शुद्ध करने के लिये, निर्मल बनाने के लिए, उन्हें चेतावनी देने और सावधान करने के लिए। जो गल्ती करेगा उसको दण्ड भी दूंगा और जो सदाचार और धर्म का पालन करेगा उसे पुरस्कृत भी करूंगा। सबके साथ न्याय होगा।

साधना के द्वारा मोह त्यागो, व्यक्तिवाद को छोड़ो, इन्द्रिय सुख के पीछे मत भागो, विवेक और वैराग्य उत्पन्न करो, साधना के द्वारा अपने हृदय को विशाल बनाओ, समष्टि में लीन कर दो। अपने मन में क्षुद्र इच्छाओं और तृष्णाओं के बादल मत उठने दो। महत्वाकांक्षा हो तो फिर यह कि आत्म-लोक का वह परम पद प्राप्त हो कि आपको कोई प्रश्न करने वाला ही न रहे और आप एकछत्र विश्व-साम्राज्य के अधिपति बन जायें और उसके साथ एकरूप हो जायें, आत्म-स्वरूप परमात्मस्वरूप हो जायें। अपनी इस विजय के लिये अपने अन्तर के शत्रुओं का नाश करो जो आपके विजय-अभियान में बाधायें उपस्थित करते हैं। अपने रथ का मुझे सारथी बनालो; अपने रथ के घोड़ों की लगाम मेरे हाथ में सौंप दो मैं तुम्हें सारे संघर्षों में विजय दिलाता हुआ उस लक्ष्य तक पहुँचा कर पूर्णता प्रदान कर दूंगा। अपनी निष्ठा, भक्ति, लगन, सरलता और सतत् साधना के द्वारा वह अनुग्रह प्राप्त

करो जो सदा सफलता प्रदायक है। भिक्षुओं, संन्यासियों को आदेश होता है कि वे अपने सिर घुटवा कर रखें जिससे कि उन्हें उनके पुराने मित्र पहचान न पावें और वे सब जगह जा सकें; किन्तु अब तो यह देखा जाता है कि भिक्षु और संन्यासी यह चाहते हैं कि लोग उन्हें पहचानें, उनके पास आवें, उनकी प्रशंसा और पूजा करें। ये सब चीजें ऐसी हैं जिनसे अहंकार का नाश करना चाहिये। वास्तव में देखा जाये तो जैसी कि एक लोकोक्ति है 'एक भिक्षु या संन्यासी को एक कुत्ते के समान खाना चाहिये और एक लोमड़ी के समान सोना चाहिये।' जो कुछ खाने को मिल जाये वही खाकर तृप्त और संतुष्ट रहना चाहिये और जहाँ कहीं भी स्थान मिल जाये वहीं सो रहे; संन्यासी को न तो अगले दिन के लिये खाने के लिये बचा कर रखना चाहिये और न ही घर बना कर रहना चाहिये। इन्द्रियों के जाल और अहंकार के अंकुश से बचना चाहिये और उल्टे उन्हें अंकुश में रखना चाहिये जिससे वे सिर न उठा पावें और पथभ्रष्ट न कर सकें।

ध्यान, पूजा या जप में एकाग्र चित्त होकर ऐसे लीन हो जाओ कि जब आप उठें तो आपका मुख चेतना से दीप्त हो। घर में दरवाजा इसीलिए लगाते हैं कि घर में केवल वे ही प्रवेश कर सकें, जिन्हें आप आने देना चाहते हैं, कोई अवांछित[1] न घुस पावे। दरवाजे पर निगाह रखो कि कही कोई कुत्ता, बिल्ली या कोई अन्य पशु अथवा धूल, मिट्टी और सूखी पत्तियां आदि घर में न आवें। ये इन्द्रियां और मन द्वार हैं जिनके द्वारा, यदि आप सचेत और सावधान नहीं रहे तो आपके अन्तर में चेतना के स्तर तक वे दुष्प्रभाव पहुंच जायेंगे और वहाँ अपना ऐसा अड्डा जमा लेंगे कि उनका निकाल पाना दुष्कर होगा।

अपने सारे कर्म भगवान की पूजा समझ कर करो। कर्त्तव्य भगवान है, कर्म पूजा है। फिर जो कुछ होता है उनको बिना किसी चिन्ता के स्वीकार करो उसकी ही कृपा समझ कर। तुकाराम सदा इसी भाव में रहते थे। जब कभी उन्हें कुछ भोजन करने को नहीं प्राप्त होता तो भी वे भगवान को धन्यवाद देते कि आज उपवास रखने का सौभाग्य प्रदान किया इसके लिए हे भगवान मैं आपका आभारी हूँ। यदि भोजन प्राप्त हो जाता तो धन्यवाद देते कि भगवान आपने इस रूप में आकर मुझ पर कृपा की और मुझमें वह शक्ति भरी कि मैं आपका यशोगान गा सकूं। भगवान की दया, उनकी करुणा, उनकी महिमा अपार और अनन्त है, वह किसी भी रूप में प्रकट हो सकती है, यह तो सब उनकी इच्छा पर ही निर्भर है।

आप उनके औचित्य, मूल्य और महत्व के सम्बन्ध में अपना निर्णय देने वाले कौन होते हैं? मैं ऐसे भजन पसन्द नहीं करता जहां प्रतिस्पर्धा या शत्रुता या अहंकार उत्पन्न होता हो या बढ़ता हो या असहिष्णुता[2] के कारण जिनका आयोजन

---

१ अनावश्यक २ सहन न करना

होता हो। जब आप मेरा चित्र अपने हृदय में अंकित करना चाहते हैं तो उसके लेंस[1] मेरी ही ओर होने चाहिएं न ? इसलिए अपने भाव, विचार, संवेग, प्रेरणा, क्रिया-कलाप और गति-विधियां सब मेरी ओर केन्द्रित कर दो तो फिर इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरा चित्र आपके हृदय में अंकित हो जायेगा। किन्तु यदि आपके ये लेंस संसार की ओर लगे रहे तो फिर मेरा चित्र हृदय पर कैसे अंकित हो सकता है !

मेरे इस उपदेश का क्या लाभ यदि आप इसे अपने हृदय में ग्रहण नहीं करते हैं और उसके अनुसार आचरण नहीं करते हैं। मैं देख रहा हूं कि इतने वर्षों से आप लोगों को आपके कर्त्तव्यों के प्रति सचेत और सावधान करने तथा जगाने के प्रयत्न करते रहने पर भी उसके सुपरिणाम आप लोगों में दिखाई नहीं देते हैं और लगता है आप समुद्र के किनारों की चट्टानों के समान हो गये हैं जिन पर समुद्र की लहरों की चपेटों और आघातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। चट्टान हिलती नहीं है और लहरें भी रुकती नहीं हैं। यह स्थिति समाप्त होनी चाहिये। जागो, उठो, और इस अद्वितीय और महान अवसर का लाभ उठाओ उसे यों ही मत खोओ।

प्रशान्ति निलयम्
१८-८-१९६८

---

१ चक्षु ताल

५५. भगवान की बांसुरी बन जाओ

श्रीकृष्ण का अवतार धर्म का उद्धार करके उसका प्रसार करने के लिए हुआ था जिससे कि लोग धर्म के आधार पर अपने जीवन को पावन बना सकें और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें, तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे जो कर्म करें शान्ति और संतोष के साथ, पूर्ण कौशल के साथ करें। कृष्ण का दैविक तत्व[1] सब की नाभि में जन्म लेता है और उसे वहाँ से जिह्वा पर स्थानान्तरित करना होता है। वहीं उसका पालन-पोषण किया जाता है, जिस प्रकार यशोदा ने किया था, पूर्ण मातृभाव से, वात्सल्य प्रेम से। नाम स्मरण से मुक्ति की प्राप्ति का यही रहस्य है। मानवता की रक्षा के लिए भगवान को अत्यन्त सुन्दर और मनोहर रूप में अवतार लेना पड़ा जिससे कि वे मनुष्य का हृदय प्रेम के द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर सकें। "रसो वै सः"—वह स्वयं रस ही है। इसलिए श्रीकृष्ण कठोर से कठोरतम व्यक्तियों के हृदय में आसानी से और चुपके से पहुंच जाते हैं, उनके लिए तभी तो कहते हैं, "बड़ा चित चोर मन मोहन।" फिर तो हृदय उनके ही रूप, उनकी ही वाणी, उनकी ही बांसुरी की मधुर ध्वनि, उनकी मुस्कान, उनकी क्रीड़ाओं और उनकी लीलाओं तथा महिमाओं के लिए तड़पने लगता है जिसका फल उनकी कृपा, उनके अनुग्रह के द्वारा मिलता है। वह तड़प, वह अभिलाषा इतनी गहन और तीव्र होती है कि शरीर की सारी सुध-बुध और चेतना जाती रहती है, इन्द्रियां निष्क्रिय हो जाती हैं, सारे द्वन्दों का लोप हो जाता है। व्यक्ति हर पग पर आनन्द ही आनन्द पाता है जो उसे प्रभु में लीन होने के परमानन्द की ओर ऊपर लिए जाता है।

इस परमानन्द[2] की प्राप्ति का मार्ग भारतीय संस्कृति ने निर्धारित किया है। यह सभी रसों, सभी सुखों और सभी उच्चतम आशाओं और इच्छाओं की तृप्ति और पूर्णता की चरम स्थिति है। किन्तु फिर भी मनुष्य छोटी-छोटी वस्तुओं के पीछे भागता है, क्षणिक सुखों और क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिये दीवाना है। जब भगवान को प्राप्त करने के लिए निकलो तो फिर इधर-उधर के संकीर्ण मार्गों में मत भटको तथा मृगतृष्णा[3] के धोखे में मत फंसो। स्वर्ण प्राप्ति के इच्छुक को पीतल अथवा अन्य उसी रंग की चमकीली किसी अन्य धातु या वस्तु को नहीं पकड़ना चाहिए, उन्हें छोड़ देना चाहिए, अन्यथा पथ भ्रष्ट हो जाएगा और वांछित वस्तु नहीं पा सकेगा। नदी के समान सतत् प्रवाहवान रहो जो पहाड़ों की चट्टानों को उछलती हुयी पार करती, झाड़-झंकड़ों के बीच में से सरकती हुयी, पहाड़ियों का चक्कर लगाती, कहीं

---

१ आध्यात्मिक सार २ सबसे उत्तम आनन्द ३ छलावा

रेतीले मैदानों को तो कहीं घाटियों को पार करती अपने लक्ष्य—समुद्र तक पहुंचती है और उसमें लीन हो जाती है। मनुष्य को भी इसी प्रकार सतत् और अथक परिश्रम के साथ आगे बढ़ते हुयें ईश्वर-मिलन के लिए अपनी यात्रा जारी रखनी चाहिए।

बेचैनी और बदहजमी से तो तभी छुटकारा मिल सकता है जब कि खाया हुआ अवांछित पदार्थ पच जाये या बाहर निकल जाये। इसी प्रकार व्यक्ति को शोक और संतापों से मुक्ति तभी मिल सकती है जब मोह, घृणा, द्वेष आदि के अवांछित संवेग मन से निकाल कर बाहर कर दिए जायें। इसके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। श्रीकृष्ण की यह घोषणा है कि वह उनके ही योग-क्षेम[1] का वहन करते हैं जो उनको अनन्य भाव से भजते हैं, अन्य कोई विचार उनके मन में नहीं रहता। आप में से बहुत से लोग बड़े निराश होते हैं कि वर्षों हो गये कृष्ण-कृष्ण रटते-रटते; किन्तु सिर के बोझ हल्के नहीं हुए, परन्तु आप यह भूल जाते हैं कि कोई वस्तु प्राप्त करने के लिए पहले उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। आप यह जानते हैं कि श्रीकृष्ण ने धर्म संस्थापन[2] के लिए अवतार लिया था। इसलिए आपको चाहिए कि आप धर्म के मार्ग पर चलें बस वही मूल्य उन्हें स्वीकार्य है। श्रीकृष्ण को अपनी बांसुरी बहुत प्रिय है। इसलिए आप उनकी बाँसुरी बन जाएं—सीधी और पोली बांस की नली के समान अर्थात् सम्पूर्ण वक्रता, टेढ़ापन त्याग कर सीधे बनो और सारी इच्छाओं और कामनाओं से अपने आपको रिक्त करके पोले हो जाओ जिससे कि उनके स्वर ही आप में गूंजें, फिर वे आपको स्वीकार कर लेंगे। तनिक सोचो कैसा विनम्र मधुर प्रेम था, वह जो श्रीकृष्ण ने अपने समकालीन लोगों के हृदय में जागृत किया था, कितने सौभाग्यशाली थे वे लोग! उनमें से प्रत्येक चाहे वह एक गरीब और अशिक्षित ग्वाला था या महान पंडित विद्वान, ऋषि या सम्राट् उनके प्रेम के चुम्बन से खिचा चला आता था उनकी ओर पूर्ण भक्ति और प्रेम के साथ। कितनी कठिनाइयां, दुःख और कष्ट उनको क्यों न उठाने पड़े किन्तु उनकी भगवान के चरण कमलों के प्रति लगन कभी कम नहीं हुई, वे सदा पूर्ण दृढ़ता के साथ उन्हीं में अपना ध्यान लगाये रहते, प्रभु की चरण-शरण नहीं त्यागी। जब आप सड़क पर चलते हैं तो आप की छाया भी आपके साथ-साथ चलती है और वह कभी गंदगी में, कभी गड्ढे में तो कभी ऊंचे पर तो कभी झाड़ी पर, कभी गंदी नाली में इस प्रकार सभी जगह पड़ती है। किन्तु फिर भी छाया का आपके पैरों के साथ आपके कदमों के साथ कैसा सम्पर्क रहता है कि उनसे विलग नहीं होती। इसी प्रकार जब तक मूल (भगवान) के साथ छाया (मनुष्य) का सदा अविच्छिन्न[3] रूप से सम्पर्क बना हुआ है उसे कोई कष्ट नहीं होगा, वह सभी परिस्थितियों से अप्रभावित रहेगा। भगवान से ऐसा ही सतत् अविच्छिन्न अविरल[4] सम्पर्क बनाये रखो, यही सुख और शान्ति का मर्म है।

---

१ कुशल क्षेम, सम्पूर्ण उत्तरदायित्व २ धर्म की स्थापना ३ लगातार ४ लगातार

अज्ञानी और द्वेष-बुद्धि से पूर्ण लोग श्रीकृष्ण पर मिथ्या लांछन लगाते हैं कि वे तो 'जार'[1] और 'चोर' थे किन्तु उनके भक्त, ज्ञानी और मुनिजन सभी उन्हें इन्हीं उपाधियों से विभूषित करते हुए गौरव का अनुभव करते हैं। वह लोगों के हृदय चुराते थे और वे उससे प्रसन्न होते थे। वे जिनके हृदय चुराते थे उन्हें अपने दिव्य प्रेम से प्रकाशित और जागृत कर देते थे और अत्यन्त आनन्दित और पुलकित[2] तथा सम्पन्न बना देते थे। वह तो इन्द्रिय-सुख भोग की समस्त लालसायें समाप्त कर अपने भक्तों को दैविक भावनाओं और विचारों से परिपूरित कर देते थे। ऐसे दिव्य प्रेम के प्रणेता को क्षुद्रार्थक[3] रूप में 'जार' और 'चोर' कहना महा दुर्बुद्धि का द्योतक है। जब अंधा अंधे को रास्ता दिखता है तो दोनों ही गड्ढे में गिरते हैं।

भक्तजन भगवान को जिस रूप में चाहते हैं वह तो उसी रूप में अवतार लेते हैं अन्यथा वह तो सब नाम और रूपों से परे हैं। जब बच्चे मिठाई की दुकान पर जाते हैं तो मिठाई के बने खिलौने पसंद करते हैं और वे भी अपनी रुचि के अनुसार—कोई कुत्ता चाहता है तो कोई मोर, कोई हाथी तो कोई घोड़ा चाहता है। किन्तु जो मूल रूप में उनकी चाह है वह तो मिठाई की वह मिठास है। यह कहना कि भगवान का केवल एक रूप विशेष या नाम विशेष ही आनन्द और माधुर्य प्रदान कर सकता है ठीक नहीं। सच्चे जिज्ञासू की जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिये भगवान सदा तत्पर रहते हैं। विष्णु का वाहन गरुड़ पक्षी है। यह मनुष्य के हृदय का प्रतीक है क्योंकि मनुष्य का हृदय पक्षी के समान है, जिसमें तड़प उठती है और यह भगवान के विचार के साथ उड़ान भरता है वह जहाँ भगवान है वहां उड़कर पहुंच जाता है। यदि आपका पुत्र अमेरिका में हो तो आपका हृदय तत्काल वहीं पहुंच जाता है, मनुष्य सभी समय और सभी स्थानों पर भगवान की ओर अवश्य मुड़ता है क्योंकि मनुष्य तत्व रूप में 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी है'।

किसी ने मुझ से इण्टरव्यू के समय पूछा "स्वामी! क्या मैं आप से एक प्रश्न पूछ सकता हूं?" मैंने कहा कि मैं तो प्रश्न का स्वागत करता हूं क्योंकि अपने संदेहों के निवारण के लिये मेरी सहायता लेना कोई ग़लत बात नहीं है। तो फिर उन्होंने मुझ से प्रश्न किया, "स्वामी! क्या आप मुझे यह बताने की कृपा करेंगे कि आप कौन हैं?" मेरा उन्हें उत्तर था, "किन्तु पहले आप यह तो जान लें कि आप मैं, मैं, मैं कहते हैं तो आपका क्या अभिप्राय होता है। वह मैं ही यह मैं है। वही मैं इसमें है। जो अन्तर है वह है प्रकाश के प्राकट्य की श्रेणी में; बल्बों की शक्ति की कोटि में। भगवान तो सदा आपके निकटतम हैं; वही माता, पिता, गुरु, बन्धु, सहायक, स्वामी और सखा हैं। उन्हें पुकारो तो वह तत्काल उत्तर देंगे। प्रातः जागने से रात्रि में सोने तक सारा दिन और उसका प्रत्येक क्षण उनके साथ ही बिताओ।

---

१ उपपति २ प्रसन्न ३ छोटा

इसीलिये मैंने निर्देश दिये हैं कि सभी सत्य साई संगठनों को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में नगर संकीर्तन करना चाहिए। यह तो प्रेम का कार्य है जिसका सभी स्वागत करेंगे। यह सामाजिक सेवा का महान कार्य है कि लोगों को ईश्वर के नाम और उनके गुणगान सुनते हुये उठने का अवसर प्रदान करें। नगर संकीर्तन तो पावनकारी तीर्थ-यात्रा है. जिसके कारण वातावरण को दूषित करने वाले घृणा द्वेष, और अभिमान मिटते हैं और उसके स्थान पर व्याप्त होता है प्रेमपूर्ण भगवान का नाम! उषा काल के शान्त किन्तु स्फूर्ति प्रदायक वातावरण में उत्साह और आनन्द के साथ हृदय स्पर्शी मधुर और उच्च स्वर में भगवान के नाम और यश का गान करते हुये निकलना और अपने नगर-मोहल्ले के निवासियों के हृदय भी भर देना, स्वयं में एक श्रेष्ठ साधना है जिसके साथ आप अपना नया दिवस आरम्भ कर सकते हैं। मेरे इन निर्देशों का बम्बई, केरल, मद्रास तथा अन्य नगरों और प्रान्तों में और पूर्वी अफ्रीका के कुछ प्रदेशों में भी, जहाँ मैं गत वर्ष गया था, पालन हो रहा है। आज के इस पावन दिन आप यह प्रतिज्ञा करें कि आप अपने दिन भगवान के साथ ही वितायेंगे। और अपने दिन भगवानमय बनायेंगे।

प्रशान्ति निलयम्
१९-८-१९६८

५६. लता और वृक्ष

श्री सामन्त और श्री मुकुन्द प्रभु ने अभी आपके सामने स्वयंसेवकों के कर्त्तव्यों का वर्णन किया है। इन पर विचार करते हुये आप में से प्रत्येक को चार प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने चाहिएं। मुझे स्वयंसेवक के रूप में क्यों चुना गया है? मुझे क्या करना है? किस तात्कालिक उद्देश्य के लिये? अंतिम लक्ष्य क्या है? इन पर भली प्रकार विचार किया जाना चाहिए।

स्वयंसेवक के अर्थ हैं कि आपने अपने आपको स्वयं ही सेवा के लिये चुना है। किसके सेवक? स्वयं के ही सेवक। आप दूसरों की सेवा करके अपने स्वयं के हितों की ही तो सर्वश्रेष्ठ सेवा करते हैं। इसी प्रकार यदि आप किसी को क्षति पहुँचाते हैं तो आप स्वयं अपनी क्षति करते हैं क्योंकि कोई दूसरा नहीं है, वह और आप तो दोनों ही एक ही सागर में उठने वाली दो लहरें हैं। वही ईश्वर जो आप में है उसमें भी है।

आप लोगों में एक उत्कट इच्छा यह जानने की रहती है कि यह या वह व्यक्ति कौन है? आप उनके नाम, पद, निवास का पता, स्थिति तथा अन्य दशायें जानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। किन्तु आप यह सब कुछ पता लगाने के लिये तो नहीं आये हैं, यह सब कुछ जानने की आपको आवश्यकता भी नहीं है आपको तो दो प्रश्नों के उत्तर ही ज्ञात करने चाहिएं—बाबा कौन है? मैं कौन हूं? मैं बाबा का ही प्रतिबिम्ब हूं; बाबा मूल है और मैं उनका प्रतिबिम्ब! यह है वास्तविक नाता; यह है बन्धन, चाहे अन्य इसे जानते हों या नहीं; प्रतिछाया[1] विकृत हो या सही। आप प्रातः और सायं ध्यान करते हैं, जाप करते है, आप सर्व नाम कीर्तन करते हैं, स्मरण, पाद-सेवा, वन्दना, दास्यम्, अर्चनम्, साख्यम् तथा आत्मनिवेदनम् करते हैं—यह अनुभूति प्राप्त करने के लिये कि आप केवल प्रभु के प्रतिबिम्ब मात्र ही हैं, आप उनका स्वच्छ, पवित्र और स्पष्ट स्वरूप बन जायें इतने पावन और परिशुद्ध हो जायें कि आप उनमें ही समा जायें।

सेवा तो भगवान की उनके विश्व-विराट् स्वरूप की पूजा और भक्ति है। वेदों में उनका वर्णन है कि भगवान सहस्रों नेत्रों वाले, सहस्रों पाद वाले हैं। यहां जो सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र, सहस्रों हस्त और सहस्रों पाद आये हुये हैं सब भगवान

---

१ अपनी छाया

के ही हैं, उनकी पूजा करो, आपकी सेवा का यही उद्देश्य है। और भगवान आप से भिन्न अन्य दूसरा कोई नहीं है। किसी व्यक्ति को केवल व्यक्ति मात्र मत समझो, उसमें भी वही ईश्वर विद्यमान है, वही उसका वास्तविक सत्य है। इस तथ्य से सदा अवगत रहो।

मैं अनेकों वर्षों से आप लोगों को सेवा के सम्बन्ध में समझाता रहा हूं, सलाह और निर्देश देता रहा हूं किन्तु जिस सीमा तक आपने उन बातों का व्यावहारिक रूप में पालन किया है उससे मैं संतुष्ट नहीं हूं। आप लोगों का लक्ष्य होना चाहिए मुझे संतुष्ट करना, मुझे प्रसन्न करना, मेरे निदेशों का पालन करना। मैं जिस उद्देश्य को लेकर आया हूं उसके लिये मुझे कार्य करने हैं। मुझे भी कुछ वचन पूरे करने हैं। उनका भगवद्गीता में वर्णन है; मुझे धर्म की सर्वोपरिता[1] और सर्वोच्चता स्थापित करनी है। जो अनन्य भाव से सदा मेरा ध्यान करते हैं मेरे विचारों में ही लीन रहते हैं और मुझ पर आश्रित हैं उनके योग-क्षेम[2] का, उनके कल्याण का भार मैं ही उठाता हूं। इसलिये मुझे प्रसन्न करने का सबसे श्रेष्ठ उपाय यही है कि आप प्राणि-मात्र में मेरे दर्शन करें और उनकी उसी रूप में सेवा करें जिस रूप में मेरी सेवा करना पसन्द करते हैं। यही पूजा का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है जो मेरे तक पहुंचेगा। भगवान को दो या दो सौ वचन पूरे करने हो सकते हैं, यह इच्छा उनकी इच्छा है किन्तु भक्त की तो एक ही प्रतिज्ञा होनी चाहिए—पूर्ण समर्पण की, शरणागति प्राप्त करने की। यदि आपका ईश्वर की उपस्थिति में पूर्ण विश्वास है तो पूर्ण समर्पण की वृत्ति स्वतः ही आप में स्थापित होती चली जाएगी और आप उसमें सफल होंगे। उन्हें नर मत समझो, किन्तु सब नर रूप में नारायण हैं, स्वयं भगवान हैं। सेवा करके आप दूसरे का कष्ट दूर नहीं करते हैं बल्कि आप तो भगवान की ही सेवा करते हैं जो उस शरीर में उस रूप में हैं।

जो आज आपको यहां देख रहे हैं वे कल यह प्रश्न भी कर सकते हैं कि जब निर्देशों का कठोरता के साथ पालन ही नहीं होता है और सेवा के साथ वह विनम्रता और भक्ति की भावना नहीं है तो इन्हें हर वर्ष बैज क्यों दिये जाते हैं? जब आप किसी गीत की पंक्तियां रोज गुन गुनाते और गाने का प्रयत्न करते रहते हैं तो एक दिन ऐसा भी आएगा कि आप उसे ठीक प्रकार गाने में समर्थ हो सकें। इसी आशा के साथ कि आप लोग सब बातों को धीरे-धीरे अच्छी प्रकार समझते जायेंगे और समय के साथ अनुभव और ज्ञान बढ़ता जाएगा और पूर्णता प्राप्त होती जाएगी, मैं आप लोगों को अवसर प्रदान करता हूं और प्रोत्साहन देता हूं कि आप अनुभव के साथ अधिक ज्ञान प्राप्त करें और दक्षता अर्जित करें। मैं आप लोगों को छोड़ता नहीं हूं। यही मेरे अनुग्रह का प्रतीक है।

---

१ सबसे उच्च होना २ सम्पूर्ण उत्तरदायित्व, कुशल क्षेम

आज्ञा सबसे महत्वपूर्ण है। जब मैं आप लोगों से कोई काम करने के लिए कहता हूं तो उसे तत्काल पूर्ण प्रसन्नता के साथ करना चाहिए। उस समय ध्यान या जप नहीं हो पाता है तो कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आज्ञा पालन का फल कहीं अधिक मूल्यवान होता है। उदाहरण के लिए समझो कि आप ध्यान कर रहे हैं और आप के पास ही कोई पीड़ा में कराह रहा है। आप उसका कराहना सुनते हैं, आपका ध्यान भंग होता है और आपको इस पर स्वतः ही क्रोध आता है। यह अधिक आवश्यक है कि आप में क्रोध और घृणा उत्पन्न न हो। आपको उस समय चाहिए कि उठ खड़े हों और पीड़ा में कराह रहे उस व्यक्ति की सहायता करें। उसे ऐसे स्थान पर ले जायें जहां उसे चिकित्सा मिल सकती हो और उसे कुछ शान्ति प्राप्त हो सकती हो। इसके द्वारा आपको जो लाभ होगा वह ध्यान और जप से प्राप्त होने वाले लाभ से कहीं अधिक होगा।

पद्मपाद जो शंकराचार्य के प्रिय शिष्य थे, यह कहते थे कि गुरु सेवा ही उसके लिए पर्याप्त विद्या है। प्रह्लाद कहते थे कि नारायण नाम ही उनके लिए जीवन में प्रगति और शोक-संताप से मुक्ति के लिए पर्याप्त है। यदि मानसिक स्थिरता और समत्व नहीं है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं है तो विश्वविद्यालय से उपाधियां और डिगरियां प्राप्त करना तो एक बोझ है; यदि कोई उस भार से हल्का होना चाहता है और स्वतन्त्र और प्रसन्न रहना चाहता है तो उसे उतार देने की आवश्यकता है। यदि आप अपनी क्षुद्र इच्छाओं की पूर्ति चाहते हैं तो यहां क्यों आते हैं ? यहां तो आइये यदि आप अनुग्रह अर्जित करना चाहते हैं। अस्पताल में डाक्टर के पास तो तभी जाना चाहिए जब आपको तकलीफ हो और आप वहां के डाक्टर द्वारा बतायी गयी औषधि और उपचार, पथ्य और अन्य सभी निर्देश पालन करने के लिए तैयार हों। इसलिए मैं जो निर्देश देता हूं उनका पालन करो, दूसरे लोग क्या कहते हैं इसकी चिन्ता मत करो, कार्य कितना भी कठिन लगता हो इसकी भी चिन्ता मत करो। आप प्रशान्ति निलयम् में दूसरों को प्रसन्न करने नहीं आये हैं, मुझे प्रसन्न करने आये हैं और मुझसे प्रसन्नता और आनन्द प्राप्त करने आये हैं।

भक्ति के बाहरी प्रतीकों को दूर से ही स्वीकार किया जाना मैं पसन्द नहीं करता। मैं सदा अन्तर की स्वीकृति पर, हृदय से सच्ची श्रद्धा और भक्ति पर बल देता हूँ जिन नियमों को पालन करने के लिए आप अन्य लोगों से कहते हैं उनका आप स्वयं पालन करें। यदि आप स्वयं विनम्रता और मधुरता से बात नहीं करेंगे तो अन्यों से आप इसके लिए कैसे कह सकते हैं ? प्रतिक्रिया तो क्रिया पर ही अवलम्बित रहती है। आप स्वयंसेवक का बैज लगा कर स्वयं ही धूम्रपान करने लगें तो यह आप स्वयं अपना और बैज का अपमान करेंगे। यह तो अपने आपको धोखा देना हुआ, आत्म प्रवंचना[1] हुई जिसके कारण आप दूसरों की नजरों में भी

---

१ अपने आपको धोखा देना

गिर जाते हैं। जिस अनुशासन का पालन करना है, संयम का पालन करना है उसका पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ पालन करो क्योंकि 'श्रद्धावान लभ्यते ज्ञानम्'—जिनमें श्रद्धा होती है उन्हें ही ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। भक्ति की बेल तो श्रद्धा के वृक्ष के सहारे ही आगे बढ़ती है और फैलती है।

अपने बिस्तर और बक्सों को ही फैला कर जगह घेर कर मत रखो जिससे कि बाद में आने वालों को जगह ही न रहे। कोई भी यहां आराम करने के लिए नहीं आता है। सभी आपके भाई-बन्धु हैं ऐसा समझ कर सबके साथ मिल-जुल कर स्थान ग्रहण करो। दूसरों की सेवा करते हुए यदि भीगते हो तो अपनी चिन्ता मत करो। सेवा करते हुए यदि मौत भी आती हो तो इसकी चिन्ता मत करो और सेवा रत रहो, भागो मत, यदि निश्चय दृढ़ होगा तो भगवान उसे आपके पास पहुंचने ही नहीं देंगे। आप लोग शिकायत करते हैं, "स्वामी मेरे प्रति झुके नहीं, विनम्र नहीं हुए।" तो फिर उनका हृदय पिघलाओ। आप में तड़प होनी चाहिए, व्याकुलता होनी चाहिए, यह प्रकट होना चाहिए कि आपके स्वाभाविक कार्य और व्यवहार से कि आप में कितनी लगन है, आप में कितनी सहानुभूति है लोगों के दुख-दर्द के प्रति और कितना प्रयत्न करते हैं आप उसे दूर करने के लिए यह समझते हुए कि वह आप की ही पीड़ा है। अपने विवेक और वैराग्य से मोह और माया, भौतिक पदार्थों और भोग-लिप्साओं से विरक्ति होनी चाहिए। इससे चित्त शुद्धि होती है। जब चित्त शुद्ध और स्थिर होता है तो फिर उसमें भगवान के दर्शन किए जा सकते हैं, वे स्वयं ही वहां स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं, सत्य प्रत्यक्ष भासित हो जाता है, और इसी से प्राप्त होती है वह शान्ति और समत्व की अवस्था जिसमें परम आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रशान्ति निलयम् सम्पूर्ण विश्व के लिए आध्यात्मिक अभ्युत्थान[1] का केन्द्र है। यहां संसार भर के भक्त लोग आये हुये हैं। यदि किसी ने कोई तनिक सी भी गलती की या कोई अपराध किया तो वह सारे विश्व भर में चर्चा का विषय बन जायेगा। आप लोगों का कार्य और व्यवहार आदर्श होने चाहिए जिनसे संसार के विभिन्न देशों के लोग प्रेरणा ग्रहण कर सकें और कुछ सीख सकें। नीव मजबूत होनी चाहिए इसलिए आपको शक्ति, स्फूर्ति, श्रद्धा, लगन और प्रामाणिकता से ओतप्रोत रहना चाहिए। आपको इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि लोगों पर अधिकार जताने के लिए आपको चुना गया है। यहाँ आने वाले लोग विभिन्न आयु के हैं, सामाजिक, आर्थिक दृष्टियों से विभिन्न वर्गों के लोग हैं, स्वास्थ्य की दृष्टि से, ज्ञान और विद्वत्ता

---

१ उन्नति, विकास

की दृष्टि से स्वभाव आदि से अनेकों स्थितियों के लोग हैं । यह प्रशान्ति निलयम् ऐसा स्थल है जहां ऐसे लोग भी आते हैं जिन्हें और कहीं कोई आश्रय प्राप्त नहीं होता । किन्तु किसी के साथ ऐसा व्यवहार मत करो कि वह बाहरी व्यक्ति है । यह याद रखो कि सब मुझे अपना संरक्षक और आलम्बन मानते हैं और इसी आशा के साथ आते हैं । न तो किसी के प्रति और न ही किसी के सामने अपना क्रोध, द्वेष घृणा या अहंकार प्रकट करो । सदा मृदु भाषी और विनम्र रहो, मानव कल्याण में, मानवीय अच्छाई में, श्रेष्ठता में, विश्वास रखो ।

यह आप लोगों के लिए एक बहुत ही उत्तम पाठशाला है, यहां से जाने से पूर्व ही सब कुछ सफलता के साथ सीख लो । इस स्कूल में एक ही अध्यापक है वह मैं स्वयं ही हूं । मेरा कोई प्रबन्धक, मंत्री, अध्यक्ष या सभापति नहीं है । मैं ही सब कुछ हूं, मैं ही आदर्श हूँ, नेता हूं, मार्ग-दर्शक हूं । न तो कोई मुझे बाध्य करने वाला है, न ही कोई मुझे लाभ है, किन्तु फिर भी मैं लोगों को शिक्षित करने, उनका मार्ग दर्शन करने के लिए कार्य करता हूं । यदि मैं स्वयं ही कर्म नहीं करूंगा तो संसार की गाड़ी के पहिये कैसे घूमेंगे ? मैं तो यहाँ की व्यवस्थाओं की छोटी से छोटी बातें भी देखता हूं—मंच, उसकी सज्जा, तिरपाल, शैड, पानी की टंकियाँ, पम्प और प्रत्येक वस्तु । मैं अपना सारा कार्य अपने आप करता हूं । इसलिए मुझे तो आप की सेवा की कोई आवश्यकता है नहीं । यदि यहां आने वाले लोगों की आप सेवा करते हैं तो उससे मुझे आनन्द प्राप्त होता है । मुझे इस आनन्द के अतिरिक्त अन्य किसी योजना की आवश्यकता नहीं है ।

मैं आनन्द स्वरूप हूं, आनन्द ही मेरा स्वभाव है, आनन्द ही मेरा प्रतीक है । जो आज्ञा, जो आदेश, जो अनुशासन और जो साधन भागवत, रामायण, भगवद् गीता, महाभारत में दिए गये हैं उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता है यद्यपि कि सैंकड़ों-हजारों वर्षों से उनका पाठ होता चला आ रहा है । अब वह निराकार स्वयं, मानव रूप में साकार आप के बीच में उपस्थित है, अतएव आप लोगों को जो आदेश दिए जा रहे हैं आप लोगों की मुक्ति के लिए ही है, उनका पूर्ण प्रामाणिकता और निष्ठा के साथ पालन करो । अनुग्रह का अमृत जो आप लोगों को दिया जा रहा है उसे यों ही मत फेंक दो । हनुमान को सीता का पता लगाने के लिए आदेश दिए गये थे जिनका उन्होंने तत्काल पालन किया और उसमें सफल हुए । उन्होंने उस यात्रा में आने वाली कठिनाइयों के विषय में सोचा ही नहीं और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए निकल पड़े । उन्हें इस बात का कोई अभिमान नहीं था कि उन्हें ही इस महान कार्य के लिए चुना गया था । हनुमान ने तो केवल आदेश सुने, समझे और उनका पालन किया तथा विजय प्राप्त की । इस प्रकार उन्होंने रामदूत की जो उपाधि अर्जित की उससे हनुमान अमर हो गये । आप को भी साईं राम दूत का नाम अर्जित करना चाहिए । साहस और सहनशक्ति, संयम और अनुशासन का पालन, मृदु और

विनम्र वाणी, अपने प्रत्येक विचार, व्यवहार और कार्य को इस कसौटी पर कस कर परखो—क्या स्वामी इसको अपनी स्वीकृति देंगे ? यह प्रश्न आपको अपने आप से ही करना चाहिए। यह तपस्या है जिसकी आपको दीक्षा दी जा रही है। यह तो आजीवन तपस्या है न कि दशहरा उत्सव के केवल दस दिनों के लिए ही। जब आप अपने घर, गाँव, नगर को लौटें तो आपको इन सभी अनुशासनों का पालन करते रहना चाहिए जिससे आपका स्वयं का कल्याण होगा और इसके प्रकाश से दूसरों को भी मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। मैं आप लोगों में दो बातें बहुत पसंद करता हूँ प्रथम—शान्ति। शान्ति की गहनता में ही ईश्वर की वाणी, अन्तर आत्मा की आवाज सुनी जा सकती है। जहाँ तक सम्भव हो सके कम बोलो, धीरे बोलो, मधुर बोलो, विनम्रता से बोलो। आपस में काना-फूसी मत करो, क्योंकि वह तो तभी होती है जब आप किसी की पीठ पीछे निन्दा करते हैं। जोर से न बोलो, आप मुझ से चाहे जितनी दूर हों, क्योंकि दूरी के नाम से मेरे लिए कोई सीमा नहीं है। द्वितीय—नाम स्मरण। सदा नाम स्मरण करते रहो, आप कहीं भी हों, और कुछ भी कर रहे हों। आप की समस्त गति-विधियों और क्रिया-कलापों की पृष्ठ-भूमि में नाम-स्मरण स्थायी रूप से चलता रहना चाहिए।

प्रशान्ति निलयम्
२२-६-१९६८

५७. एक नया मरण दिवस

सत्य साई अस्पताल का आज बारहवां वार्षिक दिवस समारोह है। आज के इस उत्सव की अध्यक्षता कर रहे हैं मैडिकल कालेज, गोवा के प्रिन्सिपल साहब और भारत के विभिन्न भागों से आये भक्तगण इस समय यहां उपस्थित हैं। जैसी कि परम्परा है मैडिकल आफीसर वर्ष भर की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं कि कितने रोगियों को अस्पताल में भर्ती करके और कितनों का बाह्य रोगियों के रूप में इलाज किया गया तथा अन्य आंकड़े और विवरण प्रस्तुत करते हैं और बताते हैं कि अस्पताल ने क्या प्रगति की है। किन्तु वास्तव में देखा जाये तो रिपोर्ट मूल प्रश्न से सम्बन्धित नहीं रहती : स्वास्थ्य किसलिए अच्छा रखा जाये? स्वस्थ शरीर की क्या आवश्यकता है? शरीर का सर्वश्रेष्ठ उपयोग क्या है? शरीर तो अपने समस्त अवयवों, इन्द्रियों, मन, बुद्धि आदि सहित एक उपकरण है, साधन है, वाहन है जिसका आप किसी लक्ष्य तक पहुंचने के लिए उपयोग करते हैं। वाहन से अधिक महत्वपूर्ण होता है वाहन का मालिक, जिसके लिए वाहन को अच्छी दशा में रखना होता है, उसकी देखभाल और मरम्मत करके सदा दक्ष और कुशल सेवा के लिए तैयार रखना पड़ता है। जीवन का नियन्त्रण तो उसके हाथों में है जो जीवन देने वाला है, जो सब को पैदा करने वाला है। जीवन इस पर अवलम्बित[1] नहीं रहता कि कोई कितनी किलोरीज भोजन में लेता है या कितनी औषधियां खाता है और न ही इस बात पर कि उसका इलाज करने वाले डाक्टर कैसे हैं, उनकी क्या डिग्रियां हैं, क्या योग्यतायें हैं और किस रोग के विशेषज्ञ हैं। अस्वस्थता और मृत्यु के मुख्य कारण होते हैं भय और विश्वास का न रहना। यदि कोई अपने चित्त को आत्मा पर जो अपरिवर्तनीय, अभेद्य[2] अछेद्य[3] है, जिस पर किसी का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, तथा जो अमर और अविनाशी है, एकाग्र करे तो वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। इसलिए सबसे शक्तिशाली और प्रभावकारी इन्जेक्शन है आत्म विद्या।

मृत्यु तो चुपके-चुपके अपने शिकार का पूर्ण निर्दयता और निश्चय के साथ हर जगह और हर समय पीछा करती रहती है चाहे कोई अस्पताल में हो या किसी पहाड़ी स्वास्थ्य वर्द्धक स्थान पर, आकाश में वायुयान में उड़ रहा हो या किसी पनडुब्बी में बैठा समुद्रतल में हो। वास्तव में मौत से कोई बच नहीं सकता, उसकी पकड़ से कोई छूट कर कहीं शरण नहीं पा सकता। ईश्वर ही केवल जीवन दाता

---

१ आधारित २ जो भेदा न जा सके ३ जो छेदा न जा सके

है, उसका पालन करने वाला संरक्षक है और वही जीवन का लक्ष्य है। इसलिए मृत्यु का विचार मत करो, वह तो सतत् जीवन यात्रा की एक घटना मात्र है, ध्यान करो ईश्वर का जो सम्पूर्ण जीवन का स्वामी है और वही ईश्वर उस भौतिक देह में वास करने वाला देही (आत्मा) है। उसको पहचानो, सम्पूर्ण जीवन की गति-विधियों, कार्यकलापों, श्वास, वार्तालाप, घूमना, फिरना, कमाना, खर्चना सब कुछ उसके निमित्त ही करो क्योंकि वही सब कुछ करवाने वाला है और उसी के द्वारा सब कुछ होता है, आप तो केवल निमित्त मात्र हैं, उपकरण मात्र हैं। बीमार पड़ना और डाक्टर को बुलाना तो अप्राकृतिक है, कोई अच्छी बात नहीं है। एक बार यदि आपने अपने आपको ईश्वर के प्रति समर्पित कर दिया है तो आप को स्वस्थ ही रहना चाहिए, कोई बीमारी कोई रोग नहीं होना चाहिए।

अपनी खाने की आदतों का नियमन करो। जिह्वा के स्वाद पर नियन्त्रण रखो। केवल सात्विक भोजन करो, सात्विक आचार, विचार और व्यवहार रखो। तब आप शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता से दूर रहेंगे। कोई निन्दा, हानि, अपराजय, निराशा हो उसे साहस और समत्वभाव से सहन करो, फिर आपको मानसिक खेद और शक्तिहीनता नहीं सतायेंगे। मैं आप को यह बता दूं कि जब आप लोगों में से कोई कष्ट में होता है तो मैं प्रसन्न होता हूं क्योंकि वह समय होता है जब आपको अपनी बुद्धि, अपने ज्ञान, अपनी चेतना के मूल्य-मान प्रकट करने का अवसर प्राप्त होता है। महाराज हरिश्चन्द्र ने सत्य के पालन के लिये एक के बाद एक कितने महान कष्ट सहे—गरीबी, वनवास, रानी और पुत्र को दासी के रूप में बेचना, देनदारी चुकाने के लिये अपने आपको भी डोम के हाथ बेच देना और बनारस के श्मशानघाट पर मृतकों पर कर वसूल करने का नीच कर्म करना। किन्तु वह अपने सत्पथ से तनिक भी नहीं डिगे; सदा सत्य के मार्ग का, सत्य का दृढ़ता के साथ पालन करते रहे।

ईश्वर का नाम सबसे अधिक प्रभावकारी शक्तिवर्द्धक औषधि—टॉनिक है, वह सभी रोगों को दूर रखता है। नाम स्मरण को केवल मनोरंजन का साधन, समय काटने का सहारा या फैशन या जबरदस्ती से दिखावे के लिये ओढ़ा हुआ बोझ, जिसको जैसे-तैसे पूरा करना ही है, नहीं समझना चाहिए। उसे तो साधना के रूप में अपने कल्याण के लिये अनिवार्य समझ कर पूर्ण गम्भीरता के साथ ग्रहण करो जिससे कि आपका मोह दूर हो, विवेक और वैराग्य उत्पन्न हो, आत्म शुद्धि हो तथा वह शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त हो जिससे आप आवागमन, जन्म और मृत्यु के चक्र से छूट कर मुक्त हो जायें। अपने आपको देश, काल और परिवर्तनों के बन्धनों से मुक्त करने के लिये इस साधना को पूर्ण दृढ़ता के साथ अपना लो। इतनी महान

भयंकर व्याधि के लिये यद्यपि कि यह प्रचार बड़ा ही क्षीण लगता है किन्तु वास्तव में यह है एक सर्वरोगहर औषधि, त्रिलोक्य चिन्तामणि।

अपने इस आवश्यक कर्त्तव्य से बचकर भागने का सामान्य रूप से एक बहाना बनाया जाता है कि आजकल मनुष्य अपने कार्य में इतना व्यस्त रहता है कि उसे नामस्मरण के लिये समय ही नहीं मिलता है यदि सैकड़ों ऐसे कार्य जिनसे आप बच नहीं सकते और बोझ समझते हुये भी उन्हें करने के लिये विवश हैं तो उनमें नामस्मरण का एक अतिरिक्त अवांछित मद और बढ़ा लेने से क्या अन्तर होगा। जहाँ सौ कार्य करते हैं, इतना भार सहते हैं तो उनमें यह एक और सही। फिर यह तो सतत् चलने वाला मूलभूत कार्य है न कि किसी कार्य-सूची का एक अंग। यह तो इतना ही स्वाभाविक और सतत् हो जाना चाहिये जैसे कि श्वास लेना। उतना ही आवश्यक हो जाना चाहिये जैसे कि सुखद जीवन के लिये भोजन, निद्रा, जल आदि। यदि नामस्मरण का सतत् क्रम बनाये रखते हुये अन्य सभी सौ कार्य करोगे तो उन सबका भी भार कम हो जायेगा, वे भी सुगम, सरल और रोचक बन जायेंगे। प्रात: उठो, जो मन में भगवान का विचार हो, उनका रूप सन्मुख हो, जिह्वा पर उनका नाम हो, सारा दिन उनके नामस्मरण और ध्यान में बिताओ और अपने अन्य कार्य भी करते रहो, रात्रि को जब सोने जाओ तो भी ईश्वर का नामस्मरण करते हुये और उनके ध्यान में निमग्न ही सो जाओ।

आप किसी दिन विशेष के समय विशेष पर सोते हैं किन्तु जब प्रात: उठते हैं तो पाते हैं कि न वह दिन रहा है न वह समय और न ही वह तारीख, सब बदल गये हैं। आप की आयु एक दिन और बढ़ गयी है, मृत्यु एक पग आपकी ओर आगे बढ़ आयी है, पुल के नीचे होकर नदी का पर्याप्त जल बह गया है। इसी प्रकार जब गहरी नींद में होते हैं (जो मृत्यु की स्थिति है) महान परिवर्तन हो जाते हैं; आप नये दिन नयी तारीख और नये समय पर जागते हैं किन्तु इन नयी स्थितियों को भी पुरानी प्रवृत्तियाँ और लक्षण प्रभावित करते दिखायी देते हैं। जीवन तो एक लम्बी कठिन अग्नि-परीक्षा है। वस्तुयें कितनी भी आनन्दमयी क्यों न लगें इसे तो उसी समय भली प्रकार समझ लेना चाहिए। न जाने किस क्षण पक्की सड़क का मार्ग दलदली हो जाये, साफ आसमान में तूफान उठ खड़ा हो और अंधकार छा जाये, भाग्य पल्टा खा जाये। माया के पर्दे को काटने के लिये ज्ञान की तलवार प्राप्त करो। सत्य और असत्य के भेद को समझो, अपनी विवेक-शक्ति बढ़ाओ। यह जितना जल्दी हो सकता है उतना जल्दी करो क्योंकि लक्ष्य तक पहुंचने के लिये आपको लम्बी यात्रा तय करनी है। यदि आप हर वस्तु में ईश्वर का दर्शन कर उससे अनन्त आनन्द की प्राप्ति नहीं कर सकते हो तो इससे अच्छा होगा आप अन्धे ही बने रहें। यदि आपके कान आपको गंदे गाने और श्रुति कटुत्व

की ओर आकर्षित करते हैं तो इससे भला है कि आप बहरे रहें। इन्द्रियां आपको विषयासक्त[1] न बनायें बल्कि वे आपकी हित साधक बनें, आपकी इच्छाओं को शुद्ध और निर्मल बनायें और श्रेय मार्ग की ओर अभिमुख करें। स्वास्थ्य और सुख प्राप्त करने का केवल यही एक मार्ग है।

प्रशान्ति निलयम्
२३-९-१९६८

---

१ विषय-वासना में लीन

५८. प्रति क्षण रूपान्तरण

मानव के परम कल्याण का आध्यात्मिक मार्ग अत्यन्त सरल और सुमधुर ढंग से भारतीय प्राचीन धर्म ग्रन्थों में दिया गया। उनमें उदाहरणों और उपदेशों के द्वारा ईश्वर के समष्टिगत सर्वव्यापी सिद्धान्त को भली प्रकार समझाया गया है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य ईश्वर के कार्य को, उसकी अगम्य[1] लीला को विस्मय, आदर और विश्वास के साथ देख सके। ये ग्रन्थ मनुष्य को त्याग और वैराग्य के ईश्वरीय मार्ग पर चलने और संतों का सत्संग करने के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं, जिससे कि शरीर का अन्त होने से पूर्व ही, उस सत्य-सनातन का साक्षात्कार हो सके और मनुष्य उसे सदा-सर्वदा के लिए अपने हृदय मंदिर में स्थापित कर सके।

इन ग्रन्थों में जो विवरण और आख्यान[2] दिए हुए हैं उनके अध्ययन, मनन और अनुपालन[3] से मनुष्य की गुप्त और अप्रत्यक्ष इच्छा-शक्ति भी शुद्ध हो जाती है, क्रिया शक्ति पवित्र हो जाती है और अन्त में ज्ञानशक्ति अनुप्राणित[4] होकर निर्मल और स्पष्ट हो जाती है। इस प्रक्रिया से मनुष्य को चित्त शुद्धि प्राप्त होती है। जब चित्त शुद्ध और निर्मल होता है तभी उस पर आत्मा प्रतिबिम्बित होती है, मनुष्य आत्मदर्शन कर पाता है और समझ पाता है। इसलिए प्रत्येक धर्म में अपनी-अपनी पद्धतियों और विधियों द्वारा चित्त शुद्धि का विधान है। प्रत्येक धर्म के अपने पावन धर्म-ग्रन्थों में यही लक्ष्य निर्धारित हैं।

महाभारत, उदाहरण के लिए, मूलरूप से मनुष्य पंच महाप्राणों की ऊर्ध्वगामी[5] प्रगति में बाधक सैकड़ों अवरोधों पर विजय की कथा है। पांचों पांडवों में सबसे बड़े हैं धर्मराज जो धर्म और नैतिकता के प्रतिनिधि हैं, दूसरे भीष्म दैविक सेवा और भक्ति से युक्त शारीरिक शक्ति के प्रतिनिधि, तीसरे अर्जुन भगवान में विशुद्ध और दृढ़ श्रद्धा के प्रतीक हैं तथा चौथे नकुल और पांचवें सहदेव साहस, सहिष्णुता और समत्व के प्रतीक हैं। जब इन पांचों को बनवास हो जाता है तो हस्तिनापुर (शरीर) में अधर्म और अनैतिकता व्याप्त हो जाती है। महाभारत में सदा धर्मपालन की आवश्यकता का मनुष्य को क्लेशदायक एक के बाद एक आने वाली संकटपूर्ण और क्रांतिक[6] स्थितियों और जटिल समस्याओं के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

उपनिषद् मनुष्य को उपदेश करते हैं, "सत्यम् वद्" 'धर्मम् चर" अर्थात् सत्य

---

१ जहां जाया न जा सके २ कथानक ३ पालन करना ४ जीवन देना
५ ऊपर की ओर जाने वाला ६ क्रांति

बोलो और धर्म का आचरण करो। किन्तु मनुष्य करता उल्टा है, वह सत्य का वध करता है और धर्म की केवल बातें करता है आचरण नहीं। किन्तु केवल बातें करना और उनका पालन बिलकुल ही न करना निरा पाखंड है जिससे चरित्र भ्रष्ट होता है और व्यक्तित्व का पतन। एक बार जंगल में हिरनों ने एक सभा की और प्रस्ताव पास किया कि शिकारी कुत्तों का डट कर मुकाबला किया जाना चाहिए और उन्हें सींगों से मार कर भगा दिया जाना चाहिए। किन्तु जिस समय वे यह प्रस्ताव पास कर रहे थे शिकारी कुत्तों ने उन पर आक्रमण कर दिया और वे भाग खड़े हुए और भागने में उनका स्थान पहले था जिन्होंने प्रस्ताव रखा था, अनुमोदन किया था और जिसके समर्थन में बढ़-बढ़ कर भाषण किये थे। जिस स्थान पर सभा हो रही थी वहां कोई भी नहीं रुका था।

भेड़ "मैं, मैं, मैं" करके मिमियाती है। इस मैं—मेरा के स्वार्थपूर्ण मोह का फल उन्हें भुगतना पड़ता है। यह सब माया के कारण उत्पन्न भ्रम है जो सत्य पर ऐसा पर्दा डाल देती है कि असत्य सत्य भासित होने लगता है, जो अस्थायी और नाशवान है, स्थायी और सदा रहने वाले लगते हैं, जो अन्त में परम कष्टदायक होते हैं वे अति रुचिकर और सुखदायक लगते हैं। हरिद्वार के पास एक साधू था। कई वर्ष पूर्व उसने अपना घर-बार त्याग दिया था और केवल भिक्षा पर रहता था। गंगा के किनारे एक चट्टान थी जहाँ वह भिक्षा में प्राप्त भोजन एकत्रित कर देता था और वहीं बैठ कर खाता था। एक दिन जब वह उस चट्टान पर पहुंचा तो उसने देखा कि कोई अन्य भिक्षुक वहां बैठा भोजन कर रहा है। वह उस पर क्रोधित हुआ और कहने लगा कि तुमने मेरे स्थान पर कैसे कब्जा जमा लिया? उस नये भिक्षुक ने कहा, "बड़े खेद की बात है, आप तो सब कुछ त्याग कर संन्यासी हो गये हैं, अपने सिर को मुंडवा लिया है जिससे कि आपको कोई अपना पूर्व परिचित कहीं पहचान न ले, आप सभी बन्धनों से मुक्त होना चाहते हैं किन्तु आपने अपने आप को इस चट्टान से बांध रखा है। अब बताइये कि आप इस चट्टान को बांध कर संसार सागर को कैसे पार कर सकते हैं? आप का यह जीवन फिर पाखंडपूर्ण रहा!" इतना सुन कर उस संन्यासी की आंखें खुल गयीं और उसे अपनी भूल का पता लग गया।

गोपीचंद को उसकी मां ने 'आत्म साक्षात्कार' के लिए सर्वप्रथम त्याग, वैराग्य, साहस और सहिष्णुता का मार्ग अपनाने का उपदेश दिया। अपने पुत्र की परीक्षा लेने के लिए वह एक दिन पुरुष वेश धारण करके महाराज भर्तृहरी के आश्रम में जा पहुंची, जहाँ गोपीचंद को साधना करते हुए कुछ वर्ष हो चुके थे, और रात्रि में उसी स्थान पर जा लेटी जहां गोपीचंद सोता था। गोपीचंद बड़बड़ाने लगा, "यह तो मेरा स्थान है, आप किसी अन्य स्थान सोयें।" वह वहां से उठ गयी और भर्तृहरि के स्थान पर पहुंच गयी किन्तु भर्तृहरि ने उनसे कुछ नहीं कहा और स्वयं ही दूसरे स्थान पर पहुंच गये। इस प्रकार उसे ज्ञात हो गया कि उसके पुत्र को अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिये बहुत लम्बी यात्रा करनी है।

ज्ञानी पुरुष अपने हृदय में लोभ, मोह और अधिकार की भावनाओं को कोई प्रश्रय[1] नहीं देते हैं। वे यह जानते हैं कि इस क्षेत्र (शरीर) को चलाने वाला, क्षेत्रज्ञ (आत्मा) है, वही इस क्षेत्र का ज्ञाता और स्वामी है। व्यास ने वेदों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया था, ब्रह्मसूत्र की रचना की थी जिसमें ब्रह्म तत्व का निरूपण[2] है तथा महाभारत जैसे महाकाव्य की रचना की थी जिसे पंचम वेद कहा जाता है। किन्तु फिर भी उन्हें मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हुई। वे रचनायें तो बौद्धिक चमत्कार था, काव्य और दर्शन की ऊंची उड़ानें थीं, विशुद्ध आत्म अनुभव के सुविकसित[3] और सुवासित[4] पुष्प नहीं। अन्त में नारद के परामर्श पर जो भक्ति मार्ग के पथिक और उपदेशक थे, वेद व्यास ने भगवान के यश, गौरव और प्रताप का वर्णन करना प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप भागवत् की रचना हुई और उन्हें मानसिक शान्ति प्राप्त हुई।

भागवत् के व्याख्याकार भागवतार कहलाते हैं किन्तु वे उस आनन्द और स्फूर्ति का तनिक भी अनुभव नहीं कर पाते जिसका नारद और व्यास ने किया था क्योंकि वे भागवत् की जो व्याख्या करते हैं वह उनके अनुभव पर आधारित नहीं होती। वे अपने व्याख्यानों में यह कहते तो हैं कि ईश्वर सब जीवों में निवास करता है और सबका प्रेरक और संचालक है, किन्तु दूसरी ओर अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए योजनायें बनाते और प्रपंच रचते रहते हैं। थोड़ा रुको और अपनी स्वयं की गतिविधियों और क्रियाकलापों पर एक दृष्टि तो डालो निष्पक्ष भाव से और नैतिकता, सदाचार, सत्य, प्रेम, साहस और सहिष्णुता की कसौटी पर कस कर उसका मूल्यांकन तो करो। ऐसी सारी ही आदतों और आचरणों को त्याग दो जो नीचे की ओर, बुराइयों की ओर खींचते हैं। उन सारे आचार-विचार और व्यवहारों को दृढ़ता के साथ अपनाओ जो आपका अभ्युदय और उत्थान करते हैं।

एक बार सत्य के मार्ग को अपना लो, उस पर दृढ़ता के साथ चल पड़ो, चिन्ता मत करो कि कठिनाइयां सामने आती हैं, किसी प्रकार की निराशा मत आने दो, परिणामों की चिन्ता मत करो और आगे की ओर बढ़ते चले जाओ।

कल रात को आपने वेदशास्त्र पाठशाला के छोटे-छोटे विद्यार्थियों द्वारा अभिनीत नाटक ध्रुव देखा था जिसमें ध्रुव भगवान का आशीर्वाद और वरदान प्राप्त करता है। ध्रुव की सौतेली माता के वचनों से जो आघात लगा उसके कारण बालक ध्रुव अपने पिता का प्रेम प्राप्त करने के लिए घर से निकल गया। किन्तु जब भगवान स्वयं उसके समक्ष उपस्थित हुए तो तपस्या के फलस्वरूप उसमें कोई इच्छा शेष ही नहीं

---

१ सहारा, आसरा २ वर्णन ३ विकास हुआ, भलि प्रकार फला-फूला.
४ अच्छी गन्ध वाला

रह गयी थी, इसलिए जिन मनोकामनाओं को लेकर वह तपस्या के लिए निकला था उनकी पूर्ति के स्थान पर उसने भगवान से प्रार्थना की भगवान में ही समा जाने की, परमानन्द प्राप्ति करने के लिए। अपनी माता से बदला लेने की, प्रतिशोध की और विजय प्राप्त करने की राजसिक व क्षत्रिय भावना, तपस्या के फलस्वरूप परम सात्विक बन गयी थी, फिर भला पश्चाताप, प्रतिकार और प्रतिशोध उसमें कहां टिक पाता। किन्तु भगवान ने उसे उसके उस प्रण की याद दिलायी जिसको लेकर वह घर से निकला था और इस से पूर्व कि वह गगन मंडल में ध्रुव तारे के रूप में अमर स्थान ग्रहण करे उसे अपने राज्य में लौटकर अपनी माता को प्रसन्न करने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए निर्देशित किया। ध्रुव यद्यपि कि एक बालक ही था किन्तु उसने अपनी साधना के बल पर भगवान को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उनका अनुग्रह प्राप्त कर ध्रुव पद पाया।

आदर्श सदा अत्यन्त उच्च और महान होने चाहिएं। इच्छायें सदा निस्वार्थ और पवित्र होनी चाहिएं। लोभ और मोह को अधिक निर्मल और विशुद्ध भावनाओं में परिवर्तित कर दो जिससे की वे आपको श्रेयस्कर मार्ग पर आगे और ऊपर की ओर बढ़ने में, लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हों। कोई भी कहानी तभी अधिक रोचक हो सकती है जब उसकी कथावस्तु पाठक की जिज्ञासा बनाये रखे, उसके घटनाक्रम में ऐसा उत्तरोत्तर विकास होता रहे कि उसके साथ उत्सुकता बढ़ती ही जाये। इसलिए जब कोई सुख और दुख, हर्ष और शोक के द्वन्दों की घड़ियों में तप कर और गलकर बाहर निकलता है तो अनुभव की दृष्टि से अधिक सशक्त और निर्मल बनकर निकलता है। जब किसी बच्चे का विकास रुक जाता है, तो माता-पिता चिन्तित होते हैं; किन्तु जब वह बढ़ता रहता है तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। यदि बालक के बढ़ने की गति असामान्य रूप से अधिक हो तो भी उन्हें चिन्ता होने लगती है। जीवन अधिक रोचक तभी होता है जब वह घड़ी के पेंडुलम की तरह इधर से उधर एक गति और एक क्रम से हिलता हुआ आगे बढ़े। जीवन तो एक व्यायामशाला है, एक पाठशाला है।

नाटक के मंच पर जो भूमिका निभा रहे हो, जो अभिनय कर रहे हो उसे, जब तक मंच पर हो, अपनी पूर्ण दक्षता, कुशलता और लगन से पूर्ण करो और नाटक के निर्देशक के अनुदेशों और निर्देशों का ऐसा पालन करो कि उसके और दर्शकों की प्रशंसा के पात्र बन जाओ तथा सदा इस बात के प्रति सजग और सतर्क रहो कि कहीं मंच पर रहते हुए कोई चूक न हो जाये, कुछ भूल न जाये, शब्द के उच्चारण में हिचक न हो जाये, वांछित प्रवाह बने रहें और सभी प्रभावित रहें।

कछुए के समान बनो, जो पानी के भीतर भी रह सकता है और पानी के बाहर जमीन पर भी। अभिप्राय यह है कि अपने में ऐसी दक्षता उत्पन्न करो कि आप

मनुष्यों के बीच में हों, भीड़ में हों या एकान्त में सदा भगवान के ध्यान में लीन रहें। एकान्त वही है जहाँ आप भीड़ में घिरे हुए भी अपने में ऐसे लीन हो जाते हैं कि भीड़ का अस्तित्व ही आपके लिए न रहे। यह एकान्त आप स्वयं अपनी मानसिक स्थिति के आधार पर ही प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यहां कोई भी एक दूसरे को किसी प्रकार का विघ्न नहीं पहुंचाता, अतएव आप सभी पूर्ण एकान्त में हैं।

मैं आप को इसी साधना की शिक्षा देना चाहता हूं। दूसरी साधना है नगर संकीर्तन की। नगर संकीर्तन के इतने लाभ हैं कि उन्हें सविस्तार आप को समझाने के लिए मेरे पास समय नहीं है किन्तु आपको इतना ही समझ लेना चाहिए कि यह संक्षेप में भागवत् का व्यावहारिक रूप है। रात्रि में विश्राम के पश्चात् ऊषा वेला में जब सभी इन्द्रियां शान्त होती हैं, आप प्रातः के शान्त वातावरण में अपने नगर या ग्राम के शान्त मार्गों और गलियों में भगवान के नाम का सुमधुर स्वर में उच्चारण करते, उनका यशोगान करते हुए निकलते हैं तो आप अपना मन और हृदय तो पावन बनाते ही हैं, सुनने वालों का भी हृदय पावन बनता है, वातावरण निर्मल होता है और उसका निश्चित रूप से शुभ प्रभाव होता है। यह आपके लिए ही नहीं, अन्यों के लिए भी शरीर, मन और बुद्धि को निर्मल बनाने वाली शक्तिवर्द्धक औषधि के रूप में है। प्रत्येक भजन आलस्य और तन्द्रा की गाँठों को काटने वाली तलवार के समान है। यह जन सेवा का श्रेष्ठ साधन है जो सबको उस भगवान के प्रति उनके कर्त्तव्य के लिए सजग करता है और जिसने उन्हें अपने अनुग्रह के रूप में एक नया दिन दिया है।

आलस्य तो आधुनिक संस्कृति का विनाशकारी विष है। लोग सदा यही शिकायत करते हैं कि उन्होंने बहुत अधिक कार्य किया है, वे थक गये हैं। मैं तो स्वयं अपने उदाहरण द्वारा आपके समक्ष यह स्पष्ट कर रहा हूँ कि आपको अपना प्रत्येक क्षण किस प्रकार उपयोगी बनाना चाहिए और उसे हितकर कार्यों में लगाना चाहिए। आप यह कहते हैं, "स्वामी इस समय विश्राम कर रहे हैं, यह स्वामी के आराम का समय है।" किन्तु मैंने कभी एक मिनट के लिए भी आराम या नींद या विश्राम की आवश्यकता नहीं समझी और न कभी इसकी इच्छा की। मैं आप को बताऊं कि मुझे कब अधिक चैन, आराम, विश्राम और संतोष का अनुभव होता है—वह तभी होता है जब मुझे यह ज्ञात होता है कि आप लोग आध्यात्मिक अनुशासन और साधना, विवेक और वैराग्य के द्वारा परम आनन्द अर्जित कर रहे हैं। मैं तो सदा आप लोगों के लिए हितकर किसी न किसी कार्य में लगा रहता हूं। जो कार्य मैं स्वयं करवा सकता हूं मैं दूसरों से करने के लिए नहीं कहता, मैं स्वयं कर डालता हूं जिससे कि लोगों में स्वयं अपने कार्य करने का आत्म-विश्वास जागृत हो और वे अनुभव प्राप्त कर सकें। आप लोगों की प्रगति, आप लोगों की सुख-सुविधाओं का मुझे सदा ख्याल रहता है। यह आप स्वयं मेरे छोटे से छोटे कार्य से अनुभव कर सकते हैं। जैसा अभी कहा, मैं

अपने कार्य अपने आप करता हूं। जितने पत्र मेरे नाम आते हैं उन्हें मैं स्वयं खोलता हूं। आप मुझे कुर्सी से उठकर मंच के पीछे की ओर जाते देखते हैं और यह अवसर होता रहता है। उसका कारण भी मैं आप लोगों को स्पष्ट कर दूं कि मैं यह इसलिए नहीं करता कि मुझे विद्वानों और सम्माननीय व्यक्तियों के भाषण सुनने में कोई रुचि नहीं है या थक गया होऊं अथवा जल पीने के लिए उठना पड़ता हो। यह केवल इसलिए कि आप लोगों को अवसर प्राप्त हो जाये और आप अपने हाथ पैर हिला सकें, अपना आसन बदल सकें और आगे एक दो घंटे और अच्छी तरह बैठकर सुन सकें। मैं यह जानता हूं कि जब मैं आप लोगों के समक्ष होता हूं आप में बहुत से लोग ऐसे हैं जो तनिक भी नहीं हिलते-डुलते और एक टक उसी प्रकार बैठे रहते हैं, और उनका मुझे ख्याल रखना पड़ता है क्योंकि आप कितने अधिक समय से इतनी अधिक भीड़ में एक दूसरे से सटे हुये इस प्रकार बैठे हैं।

यदि मैं कोई कार्य नहीं करूं तो कोई मुझे पूछने वाला नहीं है, मेरा कुछ बिगड़ता नहीं, मुझे कोई हानि नहीं होती। और न ही मुझे कार्य करने की कोई तीव्र इच्छा उठती है। किन्तु फिर भी आप मुझे सदा कार्यरत देखते हैं। कारण यह है कि मैं सदा आप लोगों के लिए ही कोई न कोई कार्य करता रहता हूँ जिससे कि आप लोगों को प्रेरणा मिले, शिक्षण मिले, उत्साह और प्रोत्साहन मिले। जो दूसरों को नेतृत्व प्रदान करते हैं उन्हें भी किसी का अनुपालन करना चाहिए, जो दूसरों को आदेश देते हैं उन्हें भी उन कार्यों को आदर्श रूप में करना चाहिए। मैं कार्य करता हूं जिससे कि आप भी अपना प्रत्येक क्षण उस स्वर्ण अवसर में रूपान्तरित[1] कर दें जिससे कि आप अपना अभ्युत्थान करते हुए परम पद को प्राप्त कर सकें।

प्रशान्ति निलयम्
२४-६-१६६८

---

१ अन्य रूप में बदला हुआ

५६. पारस-मणि

मनुष्य अनेकों विद्याओं से सम्पन्न होता है, उसे अनेकों जीवन प्राप्त होते हैं, उसके सम्मुख अनेकों मार्ग होते हैं। सभी सौभाग्यपूर्ण स्थितियां प्रदान करके भगवान मनुष्य को आत्म विकास के समर्पण के और सुख-दुःख आदि द्वन्दों से मुक्त होने के अवसर प्रदान करता है। जब मनुष्य समष्टि में भगवान के विराट् रूप के दर्शन कर लेता है तो उसके सारे द्वन्दों का, उसके सारे संदेहों का नाश हो जाता है, उसे सत्य का साक्षात्कार हो जाता है, वह शान्त हो जाता है। ईश्वर एक ही है और केवल वही है—"एकम् एव अद्वितियम् ब्रह्म।" इसलिए मनुष्य को चाहिए उस एकमेव परम सत्य को जानने का प्रयत्न करे। किसी सैनिक का घर लौटने पर तभी सम्मान होता है जब रणक्षेत्र से विजय प्राप्त करके लौटता है न कि उस समय जबकि वह हार कर लौटता है या डर कर भाग कर आ जाता है या आत्म-समर्पण करके आता है। सैनिक की वर्दी या उसके मैडिल या तमगों का सम्मान नहीं होता बल्कि सम्मान होता है उसके वीर हृदय का, साहसपूर्ण भावनाओं का, त्याग और बलिदान का। जो वीर इस प्रकार विजय प्राप्त करता है उसके नेत्रों की चमक उसके गौरव का परिचय देती है। प्रत्येक मनुष्य एक सैनिक ही है जो उसके भीतर छिपे कपटी शत्रुओं के साथ युद्धरत है। कोई व्यक्ति भला कैसे सिर उठा कर गर्व के साथ चल सकता है जब उसके आन्तरिक शत्रु उसके अन्तर में ही अपनी विजय मना रहे हों। यह तो बहुत ही बड़ी अपमानजनक स्थिति है। ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, घृणा, लोभ, मोह आदि शत्रु दल हृदय में छिपे अपनी विजय मनाते रहते हैं जबकि मनुष्य उनसे हार कर भी अपना सम्मान चाहता है अपने आपको विजेता समझना चाहता है।

आन्तरिक शत्रुओं का विनाश ज्ञान के प्रकाश के द्वारा ही किया जा सकता है। ज्ञान का वह प्रकाश प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को निष्पक्षता, सततता[1] और दृढ़ता के साथ सुदृढ़ वैदिक आधार पर, जिसमें मनुष्य और ईश्वर के स्वभाव और प्रकृति तथा दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों के रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, साधना रत रहना और अपनी जिज्ञासायें पूर्ण करनी चाहिए। वेद हमें यह ज्ञान प्रदान करते हैं इसलिए उनका पूर्ण श्रद्धा और सम्मान के साथ अध्ययन करना चाहिए। वेद तो वह पारस-मणि है जो सभी प्रकार के धातुओं को केवल अपने सम्पर्क मात्र से स्वर्ण में परिवर्तित कर देती है, इसी प्रकार वेद का विद्यार्थी साधक बन जाता है और फिर साधक सन्त और सिद्ध बन जाता है। वेदों के वास्तविक मूल्य को न समझ

---

१ सदैव, सब समय

कर जो पण्डित वेदों को रट कर कण्ठस्थ कर लेते हैं और उसे अपनी आजीविका का साधन बना लेते हैं, वे वेद को केवल निरर्थक वाद-विवाद और तर्क के लिए सार्थक साधन बना कर अपने स्वार्थों की सिद्धि करते हैं। उनके इन वाद-विवादों, झगड़े-झंझटों, प्रतियोगिता[1] और प्रतिद्वन्दिता[2] पूर्ण व्याख्यानों और भाषणों के कारण ही लोगों में अश्रद्धा और अविश्वास उत्पन्न हो गये हैं। जब श्रीराम अपना अवतार कार्य पूर्ण कर लेने के पश्चात् शरीर त्यागने के लिये जल प्लावित[3] सरयू नदी में प्रवेश करने जा रहे थे तो एक कुत्ता भी भीड़ में उनके पीछे हो लिया। जब इससे पूछा गया कि वह उनके पीछे क्यों हो लिया है तो उसने कहा, "मैं भी आप लोगों के साथ स्वर्ग में जाना चाहता हूं। मैं अपने पूर्व जन्म में एक पूर्वा योगी था, किन्तु आत्म-संयम[4] के मार्ग से फिसल कर मैं पथभ्रष्ट हो गया था; मैं छल का शिकार बन गया था। मैं उन दिनों अपनी मनमर्जी के अनुसार अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये वेदों की व्याख्या किया करता था और लोग मेरे वाक्-चातुर्य[5] से आकर्षित होकर मेरी वाह-वाह और प्रशंसा करते थे और उनके प्रोत्साहन से मैं और भी अधिक स्वेच्छा-चारी होने लगा था। इसी के फलस्वरूप मैंने यह पशु योनि पायी है और वे मेरे प्रशंसक और चापलूस मक्खी-मच्छर और पिस्सू बने हैं और मेरे शरीर पर चेंटे रहते हैं तथा मेरा रक्त पीते हैं। हे भगवान! आप मेरी रक्षा करें, मुझे उस अपमान-कारक स्थिति से पार लगायें, मैंने अपने कर्मों का फल पा लिया है और दण्ड भुगत लिया है, अब आप मेरी रक्षा करें, मेरा उद्धार करें।" वेदों के प्रति असम्मान का यही फल होता है, वेदों का पूर्ण आदर, सम्मान और श्रद्धा के साथ अध्ययन करो। वेदाध्ययन के पश्चात् उनके आदेशों और शिक्षा का पालन न करना वेदों की उपेक्षा और अपमान हैं जिसका फल भोगना पड़ता है।

यदि कोई वेदों के सम्बन्ध में वेदान्त के विषय में पूर्ण श्रद्धा, विश्वास, आस्था और प्रामाणिकता के साथ कुछ कहता है तो वह वक्ता कोई भी क्यों न हो और कुछ भी कहता हो, उसे दत्तचित्त होकर अवश्य सुनना चाहिए। मैं आप लोगों में एक दोष देखता हूँ कि जब मैं बोलता हूं तो आप लोग बड़ा ध्यान लगा कर दत्तचित्त होकर मेरा एक-एक शब्द सुनते हैं तथा बड़ी उत्सुकता और उत्साह प्रदर्शित करते हैं। किन्तु जब पंडितजन तथा अन्य लोग आपके समक्ष भाषण देने खड़े होते हैं और आपके लिए ही अति हितकर और मूल्यवान विषयों पर अपनी साधना, अध्ययन और अनुभव के आधार पर अपने विचार आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं तो यह देखा जाता है कि आप बैठे तो शान्ति के साथ रहते हैं किन्तु वांछित उत्सुकता और उत्साह आप

---

१ प्रथम आने की होड़ (स्पर्धा) २ एक दूसरे को पराजित करने की भावना
३ डूबा हुआ, भरा हुआ ४ अपने आप पर लगाया गया अंकुश जो चरित्र को ऊंचा करे ५ वाणी की चतुरता

लोगों में दिखाई नहीं देता। यह ठीक नहीं है। वर्षा का जल तो वर्षा का जल है चाहे वह किसी मोरी से गिरे या छत की खपरैल की ओर से, नाले से बहे या नहर से। वे जो कुछ कहते हैं वह भी साधिकारिक[1] है और हितकर है। आपको जो कुछ याद रखना और सम्भाल कर तिजोरी में रखना चाहिए वह है 'औषधि की आरोग्य-दायक विशेषतायें और गुण धर्म' न कि उस औषधि की शीशी पर चिपका कागज और न ही उस औषधि के निर्माता या व्यापारी का नाम और स्थिति।

औषधि का लाभ उठाओ, उसका उपयोग करके अपने रोग का निवारण कर स्वस्थ बनो, अपने अन्तर के अन्धकार को मिटाओ, ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित और प्रदीप्त[2] हो जाओ, आत्म-सत्य[3] का साक्षात्कार करो।

प्रशान्ति निलयम्
२७-९-१९६८

---

१ अधिकारपूर्वक २ चमकता हुआ, जलता हुआ ३ अंतरात्मा का सत्य

६०. भिक्षा वृत्ति का अभिप्राय

इस विशाल प्रकृति की पृष्ठ भूमि में जहां पर्वत-मालायें सूर्य के प्रखर[1] ताप, वर्षा के प्रचंड प्रहार और हिम[2] के शीत से अप्रभावित खड़ी रहती हैं, जहां आकाश बादलों से और समुद्र तूफानों से अविचलित और अप्रभावित है वहाँ केवल मनुष्य ही क्यों इतना चिन्तातुर और भयभीत रहता है। इस धरा पर जहाँ उसके साथ ही रहने वाले पशु और पक्षी दूसरे दिन के लिए कोई भोजन एकत्रित करके नहीं रखते और पूर्णरूपेण भगवान पर ही आश्रित रहते हैं, वहां मनुष्य सदा इसी उधेड़-बुन में लगा रहता है कि कल क्या होगा, और एकत्रित करने में लग जाता है। उस की सारी गतिविधियाँ कल की चिन्ता और भय से प्रेरित हैं; कितना विचित्र लगता है यह। कोई पक्षी अपने लिए अन्न उपजाने के लिए बीज नहीं बोता, कोई पशु हल नहीं चलाता और खेतों के बाड़ नहीं लगाता और यह नहीं कहता कि यह मेरा है और वह मेरा है और यह तेरा है और यह मेरे बाल-बच्चों के लिए है और यह नाती-पोतों के लिए है। ईश्वर की सन्तान के लिए, अमृत-पुत्रों के लिए तो निष्काम कर्म[3] उनकी स्वाभाविक प्रकृति है, मूल-भूत स्वभाव है। वे नाचते हैं, गाते हैं, हँसते हैं, बोलते हैं, घूमते हैं, दौड़ते हैं, खेलते हैं, खाते हैं, पीते हैं, सुख-दुख पाते हैं, क्योंकि उनके लिए यह सब आवश्यक है, स्वाभाविक है। वे यह नहीं जानते कि कल क्या होगा इसलिये इसकी उन्हें चिन्ता भी नहीं है कि कल क्या होगा, वे किसी परिणाम की परवाह भी नहीं करते। वे तो अपने में ही समाये और खोये रहते हैं चाहें कुछ भी करें। यह तो उनका जन्मजात स्वभाव है, नैसर्गिक[4] प्रकृति है, सहज-लक्षण है।

आपका जन्म केवल इसलिए नहीं हुआ है कि आप अपनी भूख मिटाने के लिए दांत चलाते रहें और इसके लिए भोजन जुटाने हेतु ही आप काम करते रहें। भूख तो इसलिये है कि इस शरीर को पालित, पोषित और विकसित करके आप वह ज्ञान अर्जित कर सकें जिसके सहारे जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचा जा सके। शिक्षा जीवन के लिए है न कि रहने के लिए और यह जीवन तो केवल एक अवसर है जिसमें आप अपने आपको, अपने प्रारम्भ और अन्त को देख सकते हैं। प्रत्येक घड़ी का कोई न कोई निर्माता होता है और कोई न कोई चाबी देने वाला होता है तभी वह नियमित रूप से समय दे सकती है। आपके जीवन की घड़ी में एक चाबी देने वाला है।

---

१ तेज २ बर्फ ३ वे कार्य जो कर्तव्य समझकर निःस्वार्थ रूप से किये जायें
४ प्राकृतिक

उसी का पता लगाओ । घड़ी तो सदा समय बताती है और जिन्हें आवश्यकता होती है वही उसका लाभ उठाते हैं । उसे इसके प्रतिफल में किसी पुरस्कार की कोई आशा नहीं रहती है । उसे तो यह भी चिन्ता नहीं कि आप उसमें किस उद्देश्य से समय देखते हैं अथवा आप उसमें समय क्यों नहीं देखते हैं । वह तो बिना रुके टिक-टिक करते हुए सदा चलती ही रहती है चाहे रात हो या दिन हो, मौसम सुहाना हो या खुश्क या खराब हो । उस घड़ी की तरह बनो ।

आप तो मंच पर अभिनय करने वाले पात्रों के समान हैं । सूत्रधार[1] या निर्देशक तो पर्दे के पीछे रहता है, यद्यपि कि वही आपकी भूमिका नियत करता है, वही आपको संकेत-सूत्र प्रदान करता है, वही आपको मंच पर बुलाता है और आप से अभिनय कराता है । आप तो उसके हाथ में कठपुतली मात्र हैं, आपको नियन्त्रित करने वाला धागा तो उसके हाथ में है । यदि वह आपको दिखाई देगा तो आप पायेंगे कि वह तो आपका सखा है या बन्धु है । यदि दर्शक बनकर उसको देखना चाहेंगे तो आप उसे नहीं देख पायेंगे और न ही उसकी पावन संगति का लाभ उठा सकेंगे । उसके साथ वह सखाभाव या बन्धुत्वभाव उत्पन्न करो जो प्रेम और समर्पणभाव के साथ सेवा से प्राप्त होता है । यदि आप किसी राजा की नौकरी अपनी स्त्री और बच्चों के लिए करते हैं तो वह आपकी अपनी स्त्री और बच्चों के प्रति भक्ति रही न कि राज-भक्ति, फिर चाहे आप कितनी भी मेहनत करते हों । इसी प्रकार यदि आप अपने स्वार्थों की पूर्ति, लाभ की प्राप्ति के लिए विधि-विधानपूर्वक पूजन करते हैं जिससे कि आपका परिवार सुखी रहे तो आप उनकी भक्ति करते हैं । पूर्ण समर्पण, निश्छल भाव से विशुद्ध आत्म-समर्पण और उत्सर्ग[2], यही है वह कठोर परीक्षा जो भगवान स्वीकार करते हैं ।

आप एक उदाहरण से यह बात समझें । एक व्यक्ति के मान लीजिए तीन पत्नियाँ हैं । जब उसकी मृत्यु हो जाती है तो तीनों विधवा हो जाती हैं और सबको अपने बनाव-शृंगार त्याग कर विधवा के वेष में रहना पड़ता है जैसी कि प्रथा है । किन्तु यदि कोई स्त्री उस समय गर्भवती हो तो उस पर यह प्रथा तब तक लागू नहीं होती जब तक उसके बच्चा नहीं हो जाता । बच्चा हो जाने के पश्चात् ही वह विधवा कहलाती है । यद्यपि कि वह स्वयं तो जानती है कि वह विधवा है किन्तु अन्य लोग उसको देखकर यह नहीं कह सकते कि वह विधवा है । यही दशा ज्ञानी की होती है । वह जानता है कि यह संसार तो नश्वर[3] है, अनित्य और नाशवान है, केवल ईश्वर ही सत्य और सर्वस्व है । केवल ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाने, उन्हें ही समर्पण के साथ कर्म करने से उन परिणामों से मुक्त हुआ जा सकता है जो बन्धन

---

१ नाटक का चलाने वाला २ बलिदान, न्यौछावर ३ नाश होने वाला

के कारण हैं। किन्तु संसार के लोग सोचते हैं कि वह भी उनके ही समान एक मनुष्य है। किन्तु वह तो वास्तव में कमल के विकसित पुष्प के समान है जिसकी जड़ दल-दल में और नाल पानी में डूबी रहती है, किन्तु वह सदा उनसे अप्रभावित जल के ऊपर रहता है।

ज्ञान परमात्मा की कोई उपाधि या विशेषता नहीं है बल्कि वह तो स्वयं परमात्मा है। उपनिषद् कहते हैं "सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म" ज्ञान तो पूर्णावस्था है, लक्ष्य है, संसिद्धि[1] है। यदि मनुष्य में ज्ञान नहीं हो तो वह इतना ही कुरूप हो जायेगा जितना मुख पर नाक न होने पर वह कुरूप लगता है फिर चाहे वह कितना बनाव श्रृंगार क्यों न करे, वह अन्य कुछ भी प्राप्त क्यों न करले। परमात्मा को जानने की, उसकी महिमा, उसकी शक्ति और उसके गौरव से परिचित हो जाने की जो तड़प, जो वेदना रहती है उसे अमूल्य रत्न कहा जा सकता है और उस पर गर्व किया जा सकता है। वह चेतना, वह अनुभूति जिससे यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि अन्तरवासी आत्मा और परमात्मा एक ही है, हम जो कुछ सोचते, विचारते और करते हैं संसार में जो भी कुछ दृश्य और अदृश्य है और होता है उसका प्रणेता[2] और करने वाला वही है और जिससे उसके प्रति पूर्ण समर्पण और उत्सर्ग की प्रेरणा और शक्ति प्राप्त होती है, उसके हाथ का एक उपकरण मात्र बन जाने की अंतःप्रेरणा उठती है, वही ज्ञान है।

एक राजा था। उसने अपनी शक्तिशाली सेना के साथ अपने राज्य की सीमा की हिमाच्छादित[3] चोटियों के पार पड़ोसी राज्य पर अपना अधिकार करने के लिए चढ़ाई कर दी। जब वह बर्फ से ढकी घाटी पार कर रहा था तो उसे वहां एक संन्यासी मिला जो एक चट्टान पर बैठा हुआ था। उसके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था और वह ठंड से बचने के लिए अपना शरीर अपने दोनों घुटनों के बीच दबाये और दोनों हाथ बांधे बैठा था। राजा को उस पर दया आयी और वह उस योगी के पास पहुंचा और उसे अपना गर्म दुशाला और कोट देने लगा किन्तु उस योगी ने उन्हें लेना अस्वीकार कर दिया और कहा, "मुझे भगवान ने सर्दी और गर्मी से बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र दिए हैं, वह मैं जो कुछ चाहता हूं वही मुझे देता है। आप ये सब कुछ उसे ही देने की कृपा करें जो गरीब हो और जिसे उनकी कोई आवश्यकता हो।" राजा यह शब्द सुनकर आश्चर्य चकित रह गया। राजा ने योगी से प्रश्न किया, "आपके वस्त्र कहां हैं?" योगी ने उत्तर दिया, "पहने तो हूँ। भगवान ने स्वयं ही ये वस्त्र बुनकर और सीकर मुझे दिए हैं और जन्म से ही इन्हें धारण किये हूं और मृत्यु पर्यन्त धारण किए रहूंगा। यह देखो मेरी त्वचा। आप अपने ये वस्त्र किसी

---

१ सिद्धि, सफलता २ चलाने वाला, ले जाने वाला ३ बर्फ से ढकी

गरीब भिखारी को दे दें।" राजा मुस्कराया और सोचने लगा कि इससे गरीब और कौन हो सकता है। अतएव उसने फिर प्रश्न किया, "यहां और कौन गरीब मुझे मिलेगा?" योगी ने राजा से पूछा कि वह कहां जा रहा है और क्यों? तो उसने बताया, "मैं अपने पड़ोसी शत्रु के देश पर आक्रमण करने जा रहा हूं जिससे कि उसे हराकर उसका राज्य अपने राज्य में मिला लूं।" अब योगी उसकी बात सुनकर मुस्कराते हुये कहने लगा, "यदि आप अपने राज्य के क्षेत्र से सन्तुष्ट नहीं हैं और अपने राज्य में कुछ सौ मील क्षेत्र और मिलाने के लिए अपना और इन सैकड़ों सैनिकों का जीवन देने के लिए इस दुर्गम मार्ग पर कष्ट सहते हुये जा रहे हैं तो मुझसे तो आप गरीब हुये ही इसलिये आप स्वयं ही अपना यह दुशाला और कोट स्वीकार कर लें। आप को इनकी मुझ से कहीं अधिक आवश्यकता है।" राजा बड़ा लज्जित हुआ। उसमें तत्काल आत्मबोध[1] जागृत हुआ, नाम, यश और भौतिक उपाधियों की क्षण भंगुरता[2] का ज्ञान हो गया। योगी को उसने नमस्कार किया और उसके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुये राजा उसी क्षण अपनी राजधानी को लौट पड़ा। उसने यह अनुभव किया सन्तोष से बढ़कर और कोई निधि नहीं है। (गो धन, गज[3] धन, बाजि[4] धन, सब रतनन धन खान। जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥) महान पुरुष अपने एक शब्द और एक-एक कार्य से ज्ञान का प्रकाश फैलाकर संसार को आलोकित करते हैं। उनके वचन महा मोह रूपी घने अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य किरणों के समूह के समान होते हैं। (माह मोह तम[5] पुंज[6], जासु वचन रवि कर निकर)।

वास्तव में सत्य और आलस्य का पता लगाने के लिए प्रत्येक को अपने विवेक का, अपनी उच्च तर्क बुद्धि का उपयोग करना चाहिये। एक शहर में एक व्यापारी था जो उस नगर में होने वाले सभी धार्मिक उत्सव और व्याख्यानों में जाता था और विशेष रूप से उनमें तो निश्चित रूप से जिनमें संगीत भी होता था। तीस वर्ष तक उसका यह क्रम रहा और वह ऐसे किसी भी एक कार्यक्रम में अनुपस्थित नहीं रहा। एक दिन वह अपने साथ अपने सोलह वर्ष के पुत्र को भी ले गया। उसी दिन पंडित जी ने अपने व्याख्यान में गौ माता के सम्बन्ध में बताया और कहा कि गो, वेद माता, भूमाता, जन्मदात्री माता के पश्चात् चौथी माता होती है। पंडित जी ने श्रोताओं को समझाया कि गाय का अपनी माता के समान ही आदर करना चाहिये और किसी भी स्थिति में, कितनी भी उत्तेजना होने पर उसके साथ तनिक सा भी दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिये। दूसरे ही दिन उस व्यापारी को किसी आवश्यक कार्यवश दूसरे नगर जाना पड़ा और वह अपने पुत्र को अपनी दुकान का कार्य सुपुर्द कर गया।

---

१ ईश्वर का ज्ञान २ क्षण भर में ही समाप्त होने वाला ३ हाथी ४ घोड़ा
५ अंधेरा ६ ढेर, प्रकाश

दोपहर को ही एक गाय आयी और उसकी दुकान में घुस गयी और उसकी दुकान में रखे अनाज, गुड़ आदि सभी वस्तुयें जो खुले कट्टों में सजाकर वहां रखी हुई थीं जहां कि वह लड़का दुकान में बैठा हुआ था। वह लड़का अपने स्थान से एक अंगुल भी नहीं हटा क्योंकि उसने रात ही यह उपदेश सुना था कि गौ माता होती है और उसका मां के समान सम्मान करना चाहिये। शाम को उसका पिता लौटकर आया और उसने वह सारा नुकसान हुआ देखा तो अपने लड़के पर बिगड़ पड़ा और भला-बुरा कहने लगा। "अरे ऐसे उपदेश तो केवल सुनने के लिए होते हैं, कोई इस तरह पालन करने के लिए थोड़े ही होते हैं। उन्हें तो जब वहां से उठकर आते समय अपने वस्त्रों की धूल झाड़कर आते हैं तो उसी धूल के साथ वहीं झाड़कर चले आना चाहिये न कि इस तरह गांठ बांध के ले आओ और स्वयं को वैसा ही बना लो। यदि इन तीस वर्षों तक मैंने ऐसा नहीं किया होता तो अब तक मैं, तुम और सारा परिवार भूखे मर गये होते।"

वैराग्य एक ऐसा पौधा है जिसका विकास बहुत ही मन्द गति से होता है। यदि आप उसको पौधे की अवस्था में ही उसमें कली देखना चाहेंगे तो आपको निराशा होगी। इस प्रकार लम्बी अवधि तक सतत् साधना से ही प्रभु की वह कृपा होती है जिससे शान्ति प्राप्त होती है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि अनुग्रह तो समर्पण से ही प्राप्त हो सकता है।

यद्यपि कि गीता आपसे सर्वधर्म परित्याग की बात कहती है किन्तु वह आप से सर्व कर्म परित्याग की बात नहीं कहती। कर्म तो आपको फिर करना ही पड़ता है और जब आप सम्पूर्ण कर्म ईश्वर को समर्पित करके करते हैं, भगवान के लिए ही कर्म करते हैं, उनके ही माध्यम से करते हैं और भगवान के द्वारा ही करते हैं तो उस स्थिति में धर्म की कोई बात नहीं रहती, वह कर्म तो मान्य और स्वीकार्य होता ही है और उसके द्वारा आप निश्चित रूप से लाभान्वित होते हैं। गीता का कथन अकर्मण्यता या आलस्य या निष्क्रियता का निमन्त्रण नहीं है, वह तो सम्पूर्ण के लिए आह्वान है, मनुष्य में जो कुछ सर्वोच्च है उसके प्रति, अर्थात् भगवान के प्रति। एक दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति ने गीता के इस कथन की अपनी ही दृष्टि से व्याख्या की और कहा कि गीता के इस निर्देश के अनुसार भले-बुरे में, सत्य-असत्य में कोई भेद करने की आवश्यकता नहीं रहती है। यह व्याख्याता शायद वही व्यक्ति था जिसने कहा था, "भगवान गीता में कहते हैं कि वे तो पत्र, पुष्प, फल और थोड़ा-सा जल ही स्वीकार करके संतुष्ट हो जाते हैं; अतएव यह हुक्का जिसमें ये चारों चीजें हैं, तम्बाकू की पत्ती है, चिलम में रखे गये जलते हुए लाल कोयले लाल पुष्प हैं, नारियल का खोल फल है और जल तो उसमें भरा हुआ है, भगवान के प्रति सबसे अच्छी भेंट हैं इसलिए खूब हुक्का पीना चाहिए।"

इस प्रकार की धृष्टता[1] और असंगत बातों से भगवान के प्रति असम्मान उनकी दृष्टि से बच नहीं सकता है।

भगवान विद्वत्ता पूर्ण व्याख्याओं से प्रसन्न नहीं होते, वे तो प्रसन्न होते हैं वास्तविक आचरण से, सद् प्रयत्नों से, निष्ठापूर्ण प्रयत्नों से, प्राथमिकता के साथ किए गये कार्यों से, मन की शुद्धि के लिए किये गए परिश्रम और तपस्या से तथा साधना से। हृदय में एक तड़प और लगन होनी चाहिए, सजग, सतर्क और कर्मरत रहना चाहिए जब तक कि लक्ष्य पर नहीं पहुंच जायें। किसी ने रमण महर्षि से प्रश्न किया, "कितने समय तक ध्यान करूं ?" महर्षि ने उत्तर दिया, "तब तक ध्यान करो जब तक तुम्हारी यह चेतना भी न खो जाय कि तुम ध्यान कर रहे हो।" ध्रुव नाटक में जो इन बालकों ने खेला था, जिस बालक ने ध्रुव का अभिनय किया था इतना खिंचा, तना और सीधा ध्यान मग्न बैठा था कि आप सभी यही समझे थे कि वह ध्यान में खोया हुआ है, किन्तु वह तो अभिनय था, इस प्रकार की नाटकीयता विचारणीय नहीं है। वास्तविक ध्यान में आप यह शीघ्र ही भूल जाते हैं कि आप ध्यान कर रहे हैं। वास्तव में जीवन का प्रत्येक क्षण ध्यान में बिताया जाना चाहिए। यही जीवन का सर्वश्रेष्ठ तरीका है। जब आप अपने घर की सफाई कर रहे हों तो अपने आप से कहो कि अपने मन की सफाई उतनी ही आवश्यक है। जब आप सब्जी काटें तो आप यह विचार करें कि आप को अपनी तृष्णाओं के लोभ, मोह, क्रोध और द्वेष आदि दोषों को भी इसी प्रकार टुकड़े-टुकड़े कर देने हैं; जब आप रोटी बेलें और उसे अधिक सुन्दर और बड़ी बनाने का प्रयास करें तो यह विचार करें कि आपका प्रेम भी इसी प्रकार बढ़ने और पोषण करने वाला हो और उसका क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाये कि शत्रु-मित्र सभी उसमें आ जायें।

इस प्रकार आप अपने घर को एक आश्रम में परिवर्तित कर सकते हैं और जीवन का दैनिक क्रम मुक्ति के लिए साधना के क्रम में बदल सकते हैं।

प्रशान्ति निलयम्
२९-९-१९६८

---

१ गुस्ताखी

६१. तृतीय शक्ति

इस देश के ऋषियों, मुनियों, चिन्तकों और विचारकों की शिक्षायें और उपदेश, दैनिक साधना, कार्य और व्यवहार में संयम और अनुशासन पारिवारिक और सामाजिक उत्तरदायित्व और प्रवृत्तियां और प्रेरणायें, सेवा और सहानुभूति आदि जीवन की पद्धति के चारों ओर ही केन्द्रित रहे हैं। उनमें वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। वास्तव में कोई और अलग वेदान्त है भी नहीं। इसका तो उद्देश्य ही मन को निर्मल करना है, चित्त को शुद्ध करना है, बुद्धि को कुशाग्र करना, भावों और मनोवेगों को पावन करना, विचार और चिन्तन शक्ति को बढ़ाना, जिससे कि सत्य की पूर्णरूप से अनुभूति हो सके, आत्मसाक्षात्कार हो सके। सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि के द्वन्दों से मुक्ति तो उस परम सत्य के साक्षात्कार के बाद ही हो सकते हैं। किसी झील के जल के ऊपर छाई काई की मोटी पर्त हट जाने पर ही उस के शीतल निर्मल जल को आप देख सकते हैं। शीशे के ऊपर पड़ी धूल की पर्त साफ हो जाने पर ही शीशे में आप अपनी सूरत देख सकते हैं। मनुष्य जब शीशे में अपना प्रतिविम्ब देखता है तो वह उसका एक आंशिक रूप ही दिखायी देता है क्योंकि वह तो उसका प्रतिबिम्ब मात्र ही है वह स्वयं नहीं है, उसका व्यक्ति जो कि वास्तविक है, प्रतिविम्ब नहीं है। विम्ब को जानना चाहिए कि वह विम्ब है, मैं को जानना चाहिए कि मैं कौन हूं। इस सत्य का ज्ञान ही आत्म-साक्षात्कार है। नेत्र उन तारों को देख सकते है जो हमसे करोड़ों प्रकाश वर्ष दूर हैं किन्तु वह अपने आप को नहीं देख सकते। नेत्रों को अपने आपको देखना चाहिए जिससे कि वे कह सकें कि उन्होंने आत्म-साक्षात्कार किया है कि वे यह भली प्रकार जानते हैं कि वे क्या हैं।

आप जब तक अपने आप को नहीं जानेंगे यह नहीं जान सकते कि मैं कौन हूं। जब आकाश में कोई जहाज उड़ता हुआ देखते हैं तो आप यह जानते हैं कि इसमें उसका चालक अवश्य होगा किन्तु आप उसे देखना चाहें तो आपको उस वायुयान के भीतर जाना होगा तभी उसे देख सकते हैं। इसके लिए आपको उस वायुयान में प्रवेश के लिए आवश्यक टिकट और अधिकार पत्र प्राप्त करना होगा। वांछित योग्यता अर्जित करो, और साक्षात्कार प्राप्त करो। विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि कोई भी अविवेकी उनके कार्य और उद्देश्य को नहीं समझ सकता है। मैडिकल कालेज के विद्यार्थी शरीर रचना और तंत्र को समझने के लिए शवों की चीर-फाड़ करते हैं। संसार का अध्ययन और विश्लेषण करके प्राप्त किया गया ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान भी लगभग इसी श्रेणी में आता है। जब तक डाक्टर एक रोगी को अपनी चिकित्सा में लेता है और उसका उपचार करता है तथा रोगी भी अपने आपको पूर्णरूप से डाक्टर के सुपुर्द कर देता है तो दोनों को यह ज्ञात नहीं रहता कि उनके बीच में एक तीसरी शक्ति

भी है जो अधिक योग्य और अधिक निर्णायक है। जब आप किसी अज्ञात स्थान में एक नदी के तट पर पहुंचते हैं तो आप किसी अंधे या लंगड़े आदमी से सलाह नहीं कर लेते कि आप को नदी किस स्थान पर पार करनी चाहिए। आप उस आदमी के पीछे हो लेते हैं जो यह कहता है कि वह सदा उस नदी को पार करता रहता है और जो न तो अंधा हैं और न ही लंगड़ा। जो देख सकता है वही व्यक्ति विद्वान है, जो चल सकता है वही अनुभवी है। जो चल भी सकता है देख भी सकता है, ऐसा व्यक्ति अच्छा मार्ग-दर्शक हो सकता है। न कि वे लोग जो पुस्तकों से तोता रटंत करते कोरा प्रलाप करते रहते हैं या निर्धारित और जाने-माने सूत्र बताते या गुरु मंत्र देते रहते हैं बिना यह सोचे समझे कि उनको ग्रहण करने वाले की क्या स्थिति और मनोदशा है। अथवा वे इस खोज में घूमा करते हैं कि ऐसे लोग उनके चंगुल में फंसें जिनसे रुपया पैसा ऐंठा जा सकता हो।

कोई भी गुरु जो आपकी बुद्धि को कुंठित[1] और वृथा[2] कर देता हो, आपको मूर्ख बनाता हो, आप अपने विवेक का उपयोग नहीं कर पाते हों जब कि चाहिए यह कि वह आप में विवेक बुद्धि जागृत करे, आप को किसी बात पर विश्वास करने से पूर्व उसको परखने, जांचने और अनुभव करने के लिए प्रेरित करे, तो वह गुरु कहलाने के योग्य नहीं है बल्कि वह तो मानवता का शत्रु है। क्योंकि बुद्धि ही ज्ञान प्राप्ति का, आत्म-साक्षात्कार का एक मात्र साधन है। इसीलिए तो वैदिक प्रार्थना— गायत्री मंत्र में भगवान से बुद्धि को प्रचोदित[3] करने के लिए प्रार्थना की गयी है जिससे कि ज्ञान के आलोक में सद्-मार्ग तक चलते हुए लक्ष्य तक पहुंचा जा सके। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है "......बुद्धि बुंद्धिमतास्यस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।"— मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज "मैं" हूं। अर्जुन को गुडाकेश कहा गया है जिसका अर्थ होता है जिसने निद्रा और आलस्य को जीत लिया है। अर्जुन का नाम ही उसके गुणों और विशेषताओं का द्योतक है, वह एक महान योद्धा था। इसलिए भगवान को स्वयं ही उसे गीता के ज्ञान को व्यावहारिक रूप में जीवन में उतारने के लिए तैयार करना पड़ा। अर्जुन के समान बनो। जो त्याग और वैराग्य की भावना अर्जुन ने प्रदर्शित की, उसी का अपने में विकास करो। जिस एकाग्रता के साथ अर्जुन ने भगवान का उपदेश सुना था उसी चित्त की एकाग्रता के साथ भगवान का उपदेश सुनो और उस पर व्यवहार करो। आप को भी भगवान से गीता का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, आपके रथ में ही बैठे हुये क्योंकि भगवान ही तो आपके सारथी है—सनातन सारथी किन्तु आपको अर्जुन समान भगवान के समक्ष समर्पण कर देना होगा "...शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्"—मैं आपका शिष्य हूं आपकी शरण हूं, मेरे को शिक्षा दीजिये।"

प्रशान्ति निलयम्
२९-९-१९६८

---

१ धार मोटी हो जाना २ अनुपयोगी, बेकार ३ तेज की हुई

६२. कागज पर स्याही फैलाना

जब आप से कोई प्रश्न करता है, "आप कौन हैं ?" तो आप अपना नाम बता देते हैं जो आपके माता-पिता ने आपके जन्म के बाद रखा था या अपने वर्षों पूर्व कोई नाम अपना लिया था। लेकिन आप अपना वास्तविक नाम नहीं बताते जो कि आपके अनेकों जन्मों से आपके साथ है, न जाने कितने जन्म और कितनी मृत्यु हुई हैं आपकी जिनका आपको आज तनिक भी ज्ञान नहीं है और अपने वास्तविक नाम 'आत्मा' को जो कि वस्तुतः आप हैं भूल गये हैं। यह आत्मा तीन पर्तों से ढकी है—वे हैं मल, विक्षेप और आवरण। मल का अर्थ है मैल, गन्दगी, अपवित्रता, धूल, नैतिक दोष। विक्षेप अज्ञान का वह पर्दा है जो सत्य को ढक लेता है और असत्य को अधिक आकर्षक और रुचिकर बना देता है। आवरण है सत्य-सनातन पर असत्य और अनित्य का अध्यारोपण[1] समष्टि पर व्यक्ति की सीमाओं का आच्छादन[2]। अब मनुष्य मैल की इन तीन पर्तों को कैसे दूर करे कि वह अपने सत्य सनातन वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर सके। मैल को साफ करने के लिए तो साबुन और पानी ही सबसे उत्तम साधन हैं। इसलिए उसे परिताप[3] के साबुन तथा परिशोक[4] और पश्चाताप के जल से सम्पूर्ण मल और दाग-धब्बे साफ हो सकेंगे। अविचलित और भटकता हुआ मन, जो इन्द्रियों की वासनाओं की तृप्ति में सुख खोजता है, सांसारिक भौतिक पदार्थों और सम्मति के संयम और आधिपत्य के द्वारा शक्ति, सन्तोष और आनन्द चाहता है, तभी वास्तविक शान्ति, सन्तोष और आनन्द पा सकता हैं जब वह उपासना का मार्ग अपनायेगा, अपने आप को पूर्ण रूपान्तरित करके सतत् साधनों में रत हो जाएगा और सृष्टि के स्रोत और आलम्बन से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लेगा। अज्ञान आवरण तो ज्ञान की तलवार से ही काटकर दूर किया जा सकता है और फिर मनुष्य का वास्तविक सत्य, आत्मा जो कि सम्पूर्ण सृष्टि की आत्मिक एकता ही है, प्रकट हो जाता है। इस प्रकार मल को कर्म से, विक्षेप को भक्ति से और आवरण को ज्ञान से दूर किया जा सकता है। इसलिए भारत के ऋषियों और मुनियों ने जिज्ञासुओं और साधकों के लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म के तीन मार्ग बताये हैं।

किसी भी दिव्य और महान उपलब्धि के लिए कोई ऐसा उपाय या मार्ग नहीं है जो बिना किसी परिश्रम के तत्काल उसकी प्राप्ति करवा दे। जो वस्तुयें बिना किसी परिश्रम और प्रयास के शीघ्रता से प्राप्त हो जाती हैं वे वास्तविक रूप में आनन्दप्रदायक

---

१ किसी के कार्य को दोष युक्त बतलाना। २ ढकना। ३ दुख। ४ मानसिक दुख, शोक।

नहीं होतीं। अष्टांग योग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारना और ध्यान का मार्ग बड़ा कठोर है; किन्तु उसकी अन्तिम स्थिति है निर्विकल्प समाधि—परम स्थिति, जब बुद्धि और पुरुष दोनों की सम भाव से शुद्धि हो जाती है (सत्व पुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्) वह स्थिति जिसमें पुरुष के लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता, गुण अपने कारण में विलीन हो जाते है, द्रष्टा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। भौतिक सुख-साधनों की प्राप्ति और उनके भोग में मनुष्य को पहले सुख प्राप्त होता है; किन्तु परिणाम उसके लिए दुखदायी सिद्ध होता है—"अग्रे अमृतोपयम् परिणामे विषम्" किन्तु समभाव की स्थिति की प्राप्ति अत्यन्त कष्ट सहकर होती है और परिणाम में परमानन्द की उपलब्धि होती है, "अग्रे विषम् परिणामे अमृतोपमम्"।

एक बार एक जिज्ञासु ने अपने बड़े भाई से आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश के लिए दीक्षा देने के लिए प्रार्थना कीं तो उसके भाई ने उत्तर दिया, "भई, अपने सगे-सम्बन्धियों और विशेष रूप में अपने स्वयं के भाई को शिक्षा देना, दीक्षित करना और मन्त्र देना बहुत ही कठिन है। तुम दक्षिणामूर्ति के पास चले जाओ, वे तो स्वयं शिव ही है जो उस रूप में शिक्षा-दीक्षा देने के निमित्त ही आये हैं।" उसके भाई ने प्रश्न किया कि उन गुरु महाराज को कहाँ पाया जा सकता है, तो उसे केवल यही संकेत दिया गया कि "जो सभी व्यक्तियों और सभी वस्तुओं को समान समझता है वही गुरु है—बस यही उनके लिए संकेत है।" सो वह नवयुवक गुरु की खोज में घर से निकल पड़ा। उसने अपने हाथ में अगूंठी पहन रखी थी। वह एक आश्रम में पहुंचा और वहाँ के निवासियों से पूछा कि उसकी अंगूठी किस धातु की बनी है। किसी ने कहा स्वर्ण की, किसी ने कहा पीतल की तो किसी ने कहा पीतल और सोना दोनों मिले हुए है। इसी प्रकार अपनी तलाश जारी रखता हुआ जब वह एक युवक संन्यासी के पास पहुंचा और उससे प्रश्न किया कि क्या यह अंगूठी सोने की है तो उसने उत्तर दिया, "हाँ" फिर उसने प्रश्न किया, "क्या यह पीतल की है?" उसे उत्तर मिला, "हाँ यह पीतल की है।" इस प्रकार जिस धातु की उस अंगूठी को बताते हुए उसने प्रश्न किये उन सब का उत्तर उस योगी ने हाँ में ही दिया। वह युवक इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह योगी और कोई नहीं बल्कि दक्षिणामूर्ति ही है। यह समत्व की स्थिति एकात्मकता की अनुभूति से आती है तथा सदा उसमें स्थित रहने से आती है, अन्यथा नहीं। जब सनत कुमार घोर तपस्या में लीन था भगवान उसके समक्ष प्रकट हुये। भगवान ने उससे कहा कि बोलो क्या चाहते हो, तो उसने उत्तर दिया था, "इस समय आप मेरे अतिथि हैं। आप मेरे स्थान पर आये हैं जहाँ मैं कुछ समय से रह रहा हूं। आतिथेय के नाते यह तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करूं अतएव मेरा आपसे निवेदन है कि आप यह बताने की कृपा करें कि मैं आपकी क्या सेवा करूं।" ब्रह्म को जानकर वह स्वयं ब्रह्म हो गया था इसीलिए उस समत्व की स्थिति में भगवान के साथ समान आधार पर ही बात कर सका। सनत कुमार

उस स्थिति पर पहुंच गया था जहाँ "मैं तुम हूं"—"तुम मैं हूं" मैं ग्रौर तुम का द्वैत समाप्त हो जाता है। इसीलिए जिस प्रकार उसने भगवान से वार्तालाप किया उसमें कोई विस्मय नहीं। ईश्वर तो सदा सर्वत्र उपस्थित है; जब जीव ईश्वर से अलग होता है तो 'मैं' उत्पन्न होता है। इसीलिए प्राणी के जन्म के साथ ही देव या ईश्वर का विचार भी मन में साथ में ही उत्पन्न होना चाहिए। बस यही सुरक्षा ग्रौर सफलता की पहिचान है। ग्रपने हृदय के ग्रन्तरतम[1] में शिव का ग्रालिंगन करो, ग्रमरत्व पा जाओगे। शव का, जो केवल बिना शिव (आत्मा) के शरीर ही है, ग्रालिंगन करोगे तो नाशवान बन जाग्रोगे।

ग्राध्यात्मिक शिक्षक ग्रर्थात् गुरु को इस मूल भूत पाठ की शिक्षा पर बल देना चाहिए। उसे स्कूल के ग्रध्यापकों में जिस प्रकार 'ड्रिल मास्टर' होता है वैसा बनना चाहिए। ग्रन्य ग्रध्यापक तो कक्षा में ग्राते हैं, मौखिक शिक्षा देते हैं ग्रौर चले जाते हैं। इसी प्रकार इतिहास, भूगोल ग्रादि विषयों के ग्रध्यापक करते हैं; किन्तु ड्रिल-मास्टर को स्वयं ही सब विद्यार्थियों के सामने मैदान में खड़े होकर ड्रिल-व्यायाम करके दिखाना पड़ता है कि कैसे हाथ पैर हिलाने, उठाने ग्रौर घुमाने चाहिए जिससे कि सब विद्यार्थी ठीक तरह से एक साथ ड्रिल-व्यायाम कर सकें। वह जिस फुर्ती और गति से ग्रपने शिष्यों से अपने अंग संचालन की ग्राशा रखता है उसको प्रत्यक्ष उनके सामने ग्रनेकों बार करके दिखाता है। इसलिए ग्राध्यात्मिक गुरु को ब्रह्म होना चाहिए जिससे कि वह ग्रपने शिष्यों को ब्रह्म ज्ञान प्रदान कर सके। उसे केवल नाम ही ज्ञात नहीं होना चाहिए वल्कि उस नामधारी से भी पूर्ण परिचित होना चाहिए।

ग्राजकल यह जीवन स्तर को ऊपर उठाने की होड़ एक ऐसी तृष्णा है जो कभी शान्त नहीं होती है। एक इच्छा की पूर्ति होते ही दूसरी इच्छा ग्रौर भी प्रबल वेग से उठ खड़ी होती है ग्रौर इस क्रम का कोई ग्रन्त नहीं होता, उत्तरोत्तर अधिक चिन्ता, ग्रधिक ग्रशान्ति पैदा होती रहती है। धन-वैभव की प्राप्ति की लालसा ग्रौर भी ग्रधिक विनाशकारी ग्राकर्षण है। लोभी के मन में धन प्राप्ति की लालसा को किसी भी कठोरता से नहीं दबाया जा सकता। एक बार लक्ष्मी ग्रौर नारायण में यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि मनुष्यों में दोनों में से किस के लिए ग्रधिक सम्मान जनक स्थान है। दोनों ने इसका परीक्षण द्वारा निर्णय करने का विचार किया। लक्ष्मी मनुष्यों के बीच एक गुरु के वेश में ग्रायी। जब लोग उनके चरण पखारते ग्रौर उनकी पूजा करते तो जो बर्तन वे लोग पूजा में लाते थे वे सोने के हो जाते थे। इसलिए उनका सब ही जगह बड़ा स्वागत होने लगा और उनकी पूजा के लिए भक्तों की ग्रपार भीड़ एकत्रित होने लगी। बाजारों में ग्रौर घरों में पीतल, तांबे ग्रौर एल्यूमिनियम

---

[1] सबसे गहरा, हृदय में

के बर्तन दिखाई देने लगे। उसी समय नारायण भी पृथ्वी पर मनुष्यों की बीच में गुरु रूप में आ गये और लोगों को धर्म का उपदेश देते, वेद-शास्त्र की शिक्षा प्रदान करते और सच्चे सुख-शान्ति का मार्ग बताते थे। उनका उपदेश सुनने के लिए भी अपार भीड़ एकत्रित होती थी। किन्तु लोगों को जैसे जैसे यह ज्ञात होने लगा कि एक गुरु ऐसे हैं जिनकी पूजा करने पर पूजा के पात्र स्वर्ण के हो जाते हैं तो लोग उस ओर मुड़ पड़े और नारायण का उपदेश सुनने आने वालों की संख्या कम होती गयी। जिस नगर में नारायण होते यदि वहाँ लक्ष्मी पहुंच जातीं तो लोग नारायण से वहाँ से चले जाने के लिए ही कह देते और उन्हें वह नगर छोड़ना पड़ता था।

जिन लोगों में भगवान के प्रति आस्था और विश्वास नहीं है उनकी बातें आपको नहीं सुननी चाहिएं वे चाहे जितने लुभावने और आकर्षक भाषण क्यों न करते हों। वे आपके समक्ष तत्काल धन कमाने के अनेकों प्रलोभन-पूर्ण कुटिल साधन प्रस्तुत करते हैं किन्तु वे आपको यह नहीं कहते कि धन सम्पत्ति दुःख का मूल है, इससे उस सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती जो स्थायी रूप से टिकता हो, स्थायी संतोष और शान्ति प्रदान करता हो। उनके तर्क बड़े लम्बे-चौड़े होते हैं, चतुराई से भरे, धूर्तता से पूर्ण जिनमें वे सत्य और सनातन की हंसी उड़ाते हैं। वेंकेटगिरि में एक ब्राह्मण था जो नित्यप्रति नियमित रूप से संध्या करता था। संध्या करते समय उसे अनेकों बार थोड़े थोड़े जल से आचमन करना पड़ता था। उसका पुत्र एक दिन उससे कहने लगा, "आप इतना थोड़ा-थोड़ा सा जल बार-बार क्यों पीते हैं, एक बार में ही सारा जल क्यों नहीं पी जाते? सारा कार्य सरलता और शीघ्रता से पूरा हो जायेगा।" उसके पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़े समय के पश्चात जबकि उस ब्राह्मण का वह पुत्र अपना स्कूल से दिया हुआ कार्य कर रहा था तो उसे अपनी कापी में लिखने के लिए कलम बार-बार स्याही की दवात में डुबोनी पड़ती थी। अब ब्राह्मण के हंसने की बारी थी। वह हंसता हुआ उससे बोला, "क्यों दवात में बार-बार अपनी कलम डुबोते हो और धीरे-धीरे कागज पर स्याही फैलाते हो? अपनी कापी पर यह स्याही की दवात क्यों नहीं फैला लेते? क्यों इस परेशानी में पड़े हो?" प्रत्येक रीति-रिवाज का, विधि-विधान का, कार्य-विधि का अपना महत्व है, विशेष अर्थ है और उपयोग है जिसे वही समझ सकता है जो उसे करता है तथा उसमें दक्षता और विशेषज्ञता प्राप्त होती है।

अपनी रक्षा करने के लिए केवल तीन ही मार्ग हैं—प्रवृत्ति, निवृत्ति और प्रपत्ति[1]। प्रवृत्ति (सक्रिय सांसारिक जीवन) है, सहज व मूल प्रवृत्ति अर्थात् रुचि व आचरण के, अन्तः प्रेरणा के तथा आवेगों के शोधन व उदात्तीकरण[2] का

---

१ शरणागति। २ उन्नति की ओर, दबी भावनायें लाना

मार्ग। निवृत्ति (वैराग्य, सांसारिक कार्यों से उपराम, शान्ति) है, इन्द्रियों की तृष्णा और अहम् के दमन का मार्ग। प्रपत्ति (शरणागति) इन्द्रियों, सहज व मूल प्रवृत्तियों, अन्तः प्रेरणाओं, आवेगों, बुद्धि आदि सभी का सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्व-निदेशक भगवान के गुण-गान में उनकी भक्ति और उपासना में लगा देने का मार्ग है। कर्म समर्पण के लिए, कार्य पूजा के लिए, योजना शरणागति के लिए, परिणाम की इच्छा त्याग कर, फल की बिना कोई चिन्ता किए। यही है आध्यात्मिक सफलता का गुप्त रहस्य।

प्रशान्ति निलयम्
३०-९-१९६९

६३. अन्तः प्रेरणाओं से प्रेरित होओ

मैं धर्म की पुनः स्थापना के लिए आया हूं इसलिए मैं सदा लोगों को जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म का पालन करने के लिए आग्रह करता हूँ। धर्म ईश्वर की आन्तरिक वाणी है। यह तो शताब्दियों दर शताब्दियों के अनुभव तथा युग-युगों के वैराग्य और तपस्या के परिणाम स्वरूप चेतना द्वारा ग्रहण किया गया स्वरूप है; इतिहास साक्षी है कि इसके आदेशों का उल्लंघन करने के क्या परिणाम होते हैं। मैंने आप लोगों को यहां आँध्र प्रदेश के सम्बन्ध में विशेष रूप से वहां की साई समितियों के संगठन के विषय में कुछ बताने के लिए बुलाया हैं। समितियों का गठन करने और उनको चलाने से पूर्व, उनके कब और कहां सम्बन्धी प्रश्नों की बजाय आपको उनके क्यों और किसलिए सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर का सही ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। देश में सैंकड़ों-हजारों संस्थायें हैं जो अपने सदस्यों और देशवासियों के जीवन को ऊंचा उठाने के लिए उनके कल्याण के लिए उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की शिक्षा और उपदेश देती हैं, प्रशिक्षित करती हैं। ऐसी संस्थायें बनती हैं, कुछ समय तक कार्य करती हैं कुछ अच्छी तरह, कुछ जैसे-तैसे, कुछ भले-बुरे और अन्त में धीरे-धीरे उनका पतन होता जाता है और वे समाप्त हो जाती हैं। ऐसी संस्थाओं की शैशवावस्था में ही समाप्ति हो जाती है क्योंकि उनको स्थापित करने के लिए तो लोगों में बड़ा उत्साह रहता है किन्तु इसके स्थापित होते ही सारा उत्साह समाप्त हो जाता है और उनको चलाने के लिए कोई उत्साह शेष नहीं रहता और उनका शीघ्र अन्त हो जाता है।

सत्य साई सेवा समितियों का मुख्य उद्देश्य और लक्ष्य, जिस पर वे जीवित और स्पंदित[1] हैं, वह एकात्मक चेतना है, जो समान रूप से सबमें व्याप्त है, वह परम एकता है जो सबको एक सूत्र-बद्ध किए हुए है। किन्तु विभाजन की राजनीति इन समितियों में भी घुस आयी है और दस सदस्यों से ग्यारह समितियां बन जाती हैं। राजनीति के समान भी इन समितियों में दलबन्दी, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्दिता, शक्ति और अधिकार के लिए शिकवे-शिकायतें और रोना-चिल्लाना, पद और सम्मान का मोह सिर उठाते हैं। पार्टीबाजी, चुनाव आदि राजनीति के रोगों से इन समितियों को भी ग्रसित कर देने से लोग नहीं चूकते। आध्यात्मिक एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से साधकों और जिज्ञासुओं[2] से संगठन में इस प्रकार की नीतियां और प्रवृत्तियां नहीं निभ सकतीं, इनसे बचना होगा।

---

१ भाव की अधिकता से कम्पन २ जानने की इच्छा रखने वाला

सत्य साई सेवा समितियां प्रेम पर निर्मित हैं। वे प्रेम से पोषित और स्पन्दित हैं, वे प्रेम का प्रचार-प्रसार करती हैं। यहां और किसी मनोवेग या प्रवृत्ति को कोई स्थान नहीं है। ईश्वरत्व चुम्बक है, मनुष्यत्व लौह तथा प्रेम वह बल और शक्ति है जो दोनों को मिलाता है। नर लौह है तो नारायण चुम्बक तथा भक्ति और प्रेम वह बल और शक्ति है जो दोनों को मिलाते हैं। जिस अशान्ति के कारण मनुष्य दुःखी है उसका निराकरण होना चाहिए और उसके स्थान पर मनुष्य को प्राप्त करनी चाहिए प्रशान्ति। मेरे द्वारा स्थापित संस्थाओं और समितियों का उद्देश्य यही है। मेरी सेवा करो, अपनी सेवा करो—स्वयं सेवा करो, सत्य और प्रेम के द्वारा, कर्म के द्वारा; और इन सब का निष्पादन[1] इस कुशलता, दक्षता और प्रामाणिकता के साथ हो कि आप सत्य, प्रेम और सेवा के प्रतीक बन जाओ, उदाहरण बन जाओ। लोग शिकायत करते हैं कि साई सेवा समितियों का विकास बहुत धीरे-धीरे हो रहा है, नई समितियां बहुत कम बनती हैं। किन्तु बच्चे का विकास भी तो धीरे-धीरे ही होता है और उसे पूर्ण मनुष्य बनने में अनेकों वर्ष लगते हैं, एक निश्चित उम्र प्राप्त कर लेने पर ही वह पूर्णता प्राप्त करता है। एक पुष्प को पूर्ण परिपक्व और रस पूर्ण फल की स्थिति तक पहुंचने में एक निश्चित अवधि पूर्ण करनी ही पड़ती है। इसलिए किसी के विकास के लिए धैर्य और दृढ़ विश्वास रखना चाहिए। दिखावे और नारेबाजी के साथ शुरूआत करके विरोध, पक्षपात आदि के कारण अपमान और घृणा का अनुभव करके मत बैठ जाओ। दूसरी सभा संस्थाओं या व्यक्तियों की नकल मत करो और न ही इस बात के लिए कोई प्रतिस्पर्धा करो कि जो कुछ उन्होंने किया है यही या उससे भी कुछ अच्छा करके आप दिखायेंगे। प्रेरणायें और उनको प्राप्त करने के स्रोत और माध्यम बाहर से नहीं होने चाहिए; किन्तु अपने अन्तर से ही होने चाहिए। नकल करके मीरा बनना एक असम्भव कार्य है। नकल नहीं अकल से काम लो। अन्त: प्रेरणा से प्रेरित होओ। मद्रास में लोगों ने एक मील लम्बा नगर संकीर्तन जलूस निकाला, किराये की बसें भक्तों से भरी हुयी थीं, वे भजन गा रहे थे और इस प्रकार उस जलूस ने पैंतीस मील की यात्रा की। अब भला ऐसा नगर संकीर्तन आप के नगर में कैसे निकाला जा सकता है? आप अपने यहां इसे किसी दूसरे रूप में कर सकते हैं आप इसके लिए प्रार्थना करें, अनुदेश[2] प्राप्त करें आपको अवश्य मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। आप भी प्रेम और शान्ति के साथ कोई न कोई कार्यक्रम कर सकते हैं।

मैं आध्यात्मिक प्रयत्नों के सम्बन्ध में यह देखता हूं कि प्रयास कैसे हैं न कि यह कि कितने हैं? संख्या नहीं गिनता, उसकी उत्कृष्टता[3] देखता हूं। मैं तो हृदय

---

१ कोई कार्य पूर्ण करना, २ आदेश, ३ श्रेष्ठता

में प्रवेश करता हूँ और उस उद्देश्य की परीक्षा करता हूं जिससे प्रेरित होकर कार्य किया गया, उस भाव और विचार को जांचता हूँ जिससे कार्य के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई। यदि किसी परिवार के लोग भगवान के भजन गाते हैं, उनका गुणगान करते हैं और कुछ घरों के आस-पास गली में ही संकीर्तन करते हुए घूमते हैं तो उनका कार्य प्रशंसनीय है। मैं बाहरी दिखावे और आडम्बर से सादगी, निष्ठा और लगन से किया गया कार्य अधिक पसंद करता हूं। मैं आप के सिर पर नगर संकीर्तन को एक ऐसे अनिवार्य उत्तरदायित्व के रूप में नहीं डालता जिससे आप कभी बच ही न सकें। आप अपने स्थान और परिस्थितियों को देखते हुए, यदि सम्भव हो सके और जहां तक सम्भव हो सके वहां तक, इसका आयोजन करें। नगर संकीर्तन कार्यक्रम से आपको और आपके नगर वासियों को स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त होगा, आप अपना तथा अपने आस-पास के वातावरण का शुद्धिकरण कर सकेंगे। प्रात: काल के शान्त वातावरण में मधुर स्वर में प्रभु के नाम संकीर्तन से अन्तर से आनन्द की एक ऐसी लहर उठती है कि आप अपने में नयी चेतना और आनन्द का अनुभव करते हैं और सात्विक आचरण और जीवन के लिए प्रेरित होते हैं, अपने स्वार्थों को भूलने लगते हैं। इस प्रकार दूसरों की सेवा के स्थान पर अपनी स्वयं की सेवा करते हैं। यह सर्वोच्च प्रकार की स्वयं-सेवा है, यह सेवा आपको ईश्वराभिमुख करके उन तक पहुंचने के लिए आगे बढ़ायेगी। आप अन्य लोगों के लिए भी अपना उदाहरण प्रस्तुत कर सकेंगे और वे आप से प्रेरणा ग्रहण कर सकेंगे।

यदि आप अपनी परिस्थितियों के कारण नगर संकीर्तन में भाग लेने में असमर्थ हों तो अपने घर में ही बैठो और अकेले ही अपनी हृदय की शान्त गुहा[1] में भजन गाओ। इसके लिए यह कोई आवश्यक नहीं है कि एक बार में कितने समय तक और कितने भजन गाये जायें। हृदय संख्या की गणना नहीं करता। यह तो सन्तोष पसंद करता है जिसका कोई माप नहीं है, जो केवल श्रद्धा और विश्वास से ही उत्पन्न होता है। जब मन विचलित और अशान्त होता है तो भक्ति एक ओर बैठ जाती है, प्रेम का लोप हो जाता है, विरोध और पक्षपात प्रारम्भ हो जाते हैं। ऐसा रोग केवल आंध्र प्रदेश में ही हो ऐसी बात नहीं है, सभी प्रदेशों में है। भगवान के एक रूप, एक नाम के पुजारियों और भक्तों को एक दूसरे के सम्पर्क में आकर आनन्दित होना चाहिए, एक दूसरे के कार्यक्रमों में सहयोग प्रदान करना चाहिए और उनमें भाग लेना चाहिए। किसी में न तो कोई हीन भावना होनी चाहिए न ही कोई श्रेष्ठता की भावना। लोगों में केवल रीतियों और विधियों तथा दलबन्दी के कारण आपसी फूट पड़ जाती है और भक्ति और प्रेम की समस्त अपीलों की उपेक्षा कर वे नई समितियों का निर्माण कर लेते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि उन

---

१ गुफा, घर

सब लोगों के प्रयास भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के निमित्त हैं और उन्हें अपने अहं के स्थान पर भगवान को स्थापित करना है। जब मैं एक भक्त और दूसरे भक्त के बीच कोई भेद नहीं करता हूं तो फिर आप लोग आपस में क्यों लड़ते हैं? यह तो अपनी क्षुद्र हठधर्मी का परिचय देना है। मैं देखता हूं कि जहां समितियों में बड़े कहे जाने वाले लोग घुस गये हैं वहां इस प्रकार की आध्यात्मिकता विरोधी बातें होती हैं। जहां 'छोटे' कहे जाने वाले लोग हैं कार्य शान्ति, प्रेम और विनम्रता के साथ चल रहा है।

कुछ स्थानों पर पूजा ऐसे लोगों द्वारा करवायी जाती है जिन्हें इस कार्य के लिए पैसे दिए जाते हैं। ऐसा कई घरों में भी होता है। अब भला यह बताइए कि पूजा करवाने के लिए कुछ रुपये दे देने मात्र से ही किसी में भक्ति कैसे आ सकती है? मैं विस्तार पूर्वक मन्त्रोच्चारण या जटिल विधि-विधान के साथ पूजा के लिए नहीं कहता हूं। इतना ही पर्याप्त है कि आप अपने हृदय में ही भगवान की पूजा करें या अपने सम्पूर्ण हृदय से उन्हें एक बार पुकारें, प्रार्थना करें। खर्चा तो सविस्तार शास्त्रोक्त विधि-पद्धति और उसके साथ आडम्बर खड़े करने पर होता है, और धन का प्रश्न आने पर समितियां लोभ, घृणा, द्वेष के चक्र में फंस जाती हैं। सूअर को लोग उसके लालची पन के कारण और कुत्ते को लोग उसके क्रोध के कारण नहीं पसन्द करते हैं। इसीलिए इन दोषों और विकारों के शिकार मत बनो। मनु ने कहा, है कि किसी भूखे को अपने भोजन में सम्मिलित करना एक महान यज्ञ है। आप मेरी पूजा करते हैं, धूप-दीप पुष्प-फल अर्पित करते हैं, हजार नामों का उच्चारण करते हैं और हजारों पुष्प अर्पित करते हैं लक्षार्चना[1] करते हैं। किन्तु जिस समय भोजन करने बैठते हैं और आपके सामने कोई भूखा आ जाता है, यदि उसे भगा देते हैं और कुछ नहीं देते तो आपकी सारी पूजा और लक्षार्चना व्यर्थ गई। भगवान पर अर्पित की गयी कमल पुष्पों की पंखुड़ियां उन पर फेंके गये पत्थर बन जाती हैं, यदि आपका हृदय भूख की पीड़ा को देख कर द्रवित नहीं होता।

एक साधक श्रीकृष्ण को उनके अनेकों नाम और गुणों का सम्बोधन करते हुए प्रार्थना करने लगा, "हे प्रभु! आप गोपाल हैं, गायों को संभाल रहे हैं। तनिक मेरे पास भी आइये और मेरी प्यास बुझाइये।" वह एक पेड़ के नीचे बैठा दुखी हुआ आंसू बहा रहा था। उसी समय वहां एक फकीर आया। उस साधक ने उस फकीर से ऐसा आशीर्वाद देने के लिए प्रार्थना की जिससे कि उसकी इच्छा पूर्ण हो जाये। फकीर ने उससे कहा, "ईश्वर सब रूपों से परे है; उसे आप किसी रूप विशेष में सीमित नहीं कर सकते। वह यह सब कुछ भी है और उससे कहीं अधिक है। वह

---

1 लक्ष्य की पूजा या एक लाख बार अर्चना करना

उस रूप में आपके सामने कैसे प्रकट हो सकता है जिसके लिए तुम तड़प रहे हो ?" इससे तो उस साधक के हृदय में दर्शन की अभिलाषा और तड़प और भी अधिक वेदनामय हो गयी और वह अधिक व्याकुलता के साथ भगवान के दर्शन के लिए विलाप करने लगा। कौन भला यह कह सकता है कि भगवान यही है और वह नहीं है ? भगवान की स्वतंत्रता को कौन प्रतिबन्धित और सीमित कर सकता है । क्या भगवान उस सीमा में बंधा है जो कुछ फकीर भगवान के लिए सोचता है ? भगवान ने उस साधक के हृदय की निर्मलता और सच्ची लगन और तड़प से आकर्षित होकर उस पर कृपा की और उसे वांछित रूप में प्रकट होकर दर्शन दिए तथा उसकी प्यास बुझा कर परमानन्द प्रदान किया। जब कभी आप किसी पर उसकी भगवान के नाम और रूप विशेष में श्रद्धा और विश्वास के सम्बन्ध में कोई आक्षेप या विरोध करते हुए अपना कोई विचार और मान्यता प्रकट करना चाहें तो इस उदाहरण को सदा ध्यान में रखो।

एक पंडित जी थे जो एक विद्यार्थी को सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम के चार महान सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए उद्यत[1] हुए। उन्होंने पहले दिन सत्य की व्याख्या की और अन्त में कहा, " मैं कल आपको धर्म की शिक्षा दूंगा।" दूसरे दिन पंडित जी पहुंचे तो विद्यार्थी नहीं आया था। पंडित जी विद्यार्थी को खोजने निकले और एक स्थान पर जब वह विद्यार्थी उन्हें मिला तो पंडित जी के प्रश्न करने पर उसने कहा, "मैं सत्य का अभ्यास कर रहा हूं, जब पहले पाठ में मैं पारंगत हो जाऊंगा तो दूसरा पाठ पढूंगा।" वास्तव में वह विद्यार्थी सच्चा भक्त था। गहराई में गोता लगाओगे तभी मोती हाथ लगेंगे। जो गोता नहीं लगाते उन्हें तो केवल फेन[2] ही मिलते हैं; जो गहरा गोता लगाते हैं और खोजते हैं उन्हें ही सत्य की उपलब्धि होती है। गोता लगाओ, ज्ञान प्राप्त करो और अनुभव करो; तभी आप को किसी को उपदेश देने और मार्ग दर्शन करने का अधिकार प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं।

प्रशान्ति निलयम्
१-१०-१९६८

---

१ तैयार, प्रस्तुत, २ झाग

६४. विष दंत

आप लोग दस दिनों से अत्यन्त पोषक आध्यात्मिक भोजन पाते रहे हैं तथा शक्ति और सामर्थ्य से आपूर्त[1] हो गये हैं। अतएव आज मैं आप से इस विषय में बात करूंगा कि उस शक्ति और सामर्थ्य को आप को किस प्रकार जीवन में उच्चतम और श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाना चाहिए क्योंकि जब आप को मार्ग का ज्ञान हो जायेगा तो किये गये प्रयत्न अधिक प्रभावकारी होंगे। इधर-उधर का भटकना बन्द हो जायेगा, जीवन सार्थक और उपयोगी बन जायेगा। जब कैकयी ने महाराज दशरथ से भरत को राजगद्दी देने तथा राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास में भेजने के दो वचन ले लिए तो राम के भाई लक्ष्मण ने उसे चुपचाप स्वीकार नहीं किया था। उसका तर्क था कि मनुष्य को छोटी से छोटी परिस्थिति या संकट का साहस और आत्म-विश्वास के साथ डट कर मुकाबला करना चाहिए और षड़यंत्र के कुचक्र के सामने डरपोक और कातर बन कर आत्म-समर्पण नहीं कर देना चाहिए। लक्ष्मण ने तो गर्व के साथ यहां तक कहा कि उसका बाण किसी भी संकटपूर्ण स्थिति को पलट सकने में समर्थ है। किन्तु बाण तो एक तुच्छ अस्त्र है और जब प्रेम के प्रभाव और शक्ति के साथ उसकी तुलना की जाये तो वह बिलकुल ही नगण्य हो जाता है। राम ने लक्ष्मण की बातें बड़ी शान्ति के साथ सुनीं और उसे उतावलेपन में कोई कार्य करने के लिए मना किया। राम ने लक्ष्मण को समझाया, "धर्म, को कर्म का मार्ग-दर्शक होना चाहिए।" तभी कर्म प्रशंसनीय और सफल हो सकता है। राम की माता कौशल्या ने परिस्थितियों ने जैसे ही पल्टा खाया और घटना क्रम उल्टा, अपने आप को सम्भाल लिया और संयत हो गयीं। राम जब वन में जाने लगे तो कौशल्या ने अपना आशीर्वाद देते हुए यही कहा, "जब माता और पिता दोनों की ही आज्ञा है तो तुम अवश्य वन जाओ। जिस धर्म का पालन करने के लिए तुम जा रहे हो वही तुम्हारी रक्षा करेगा।" प्रेम भी धर्म का रूप है, मानव, देव, दानव, पशु-पक्षी और हर जीव और जड़ के प्रति प्रेम।

नारियल के वृक्ष समुद्र के किनारे ही अधिक अच्छे होते हैं, बाह्य तत्व के वृक्ष की प्रेम की भूमि पर ही श्रेष्ठ वृद्धि होती है। हृदय क्षेत्र को प्रेम और करुणा के क्षेत्र के रूप में परिवर्तित करने की आवश्यकता है। मनुष्य की तत्वतः[2] मूल प्रवृत्ति प्रेम ही है; उसका स्वभाव प्रेम है, उसका श्वास और प्राण भी प्रेम ही है। इच्छा और कामनाओं का कोहरा प्रेम को आच्छादित कर धूमिल कर देता है। मनुष्य अपने

---

१ पूर्ण २ भीतरी तत्व

आपको नहीं पहचानता है और अपने ही प्रतिबिम्ब (दूसरे मनुष्यों) को अपना प्रतिद्वन्दी शत्रु समझ बैठता है जैसे कि कोई कुत्ता जो एक नाला पार करते समय उसमें अपनी छाया को देख कर भौंकने लगता है और उससे लड़ाई करनी चाहता है और अपने मुंह की रोटी भी खो देता है। सभी मनुष्य, सभी प्राणी उसी प्रकार एक ही ब्रह्म के नाना प्रतिबिम्ब हैं। जिस प्रकार कि आप स्वयं हैं। क्या कोई अपनी ही छाया को अपने से अलग कर सकता है? ऐसा समझना या करना तो अपना अज्ञान प्रकट करना होगा। भेद पर नहीं अभेद पर, एकता पर अपनी दृष्टि और ध्यान को स्थिर करो। यही शान्ति का मार्ग है।

जहां तक आपकी प्रज्ञा बुद्धि आपको ले जा सके वहां तक सत्य का अन्वेषण करो, आप सत्य के सिद्धांत पर ही पहुंचेंगे। जनक ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि सम्पूर्ण कर्म का आधार क्या है तो उन्होंने उत्तर दिया, "प्रकाश"। जब सूर्यास्त हो जाता है तो चन्द्रमा प्रकाश देता है। जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही नहीं होते श्रोत्र (कान) मार्ग-दर्शन करते हैं; श्रोत्र के पीछे मन होता है और मन के पीछे आत्मा जो परमात्मा की, ईश्वर की एक चिनगारी मात्र ही है। अभी आपने यज्ञ में जो अन्तिम आहुति देखी उसे पूर्णाहुति कहते हैं अर्थात् सब कुछ यज्ञाग्नि में समर्पित कर देना, कुछ भी शेष रखना नहीं। इस प्रकार जब यज्ञाग्नि तीव्र होकर उसकी लौ ऊपर उठती है तो सम्पूर्ण अन्धकार का नाश हो जाता है। जो कुछ आपके पास है, जिसे आप सबसे अधिक मूल्यवान समझते हैं वह सभी कुछ यज्ञ की पावन अग्नि में होम दो, उसे अपने सामने ही भस्म होते हुए और राख बनते हुए देखो, अपना मोह और लगाव समाप्त कर दो, निर्लिप्त होकर जैसा कि जनक ने मिथिला के जलने पर किया था। यह आह्वान है, अपने सर्वस्व का, उस सबके सहित जिसे आप मूल्यवान समझते हैं, ईश्वरीय उद्देश्य के लिए उत्सर्ग कर दो। यज्ञ तो लौकिक और पारलौकिक सभी इच्छाओं और आकांक्षाओं के त्याग और बलिदान का एक प्रतीकात्मक[1] रूप है। यह उत्सर्ग, यह त्याग, यह बलिदान, यह सर्वस्व का होम सर्वश्रेष्ठ और मूल्यवान कर्म है। लोग केवल बाहरी विधियों और प्रक्रियाओं को देखते हैं उनके आन्तरिक अर्थ को समझने का प्रयास नहीं करते, इसलिए वे केवल बाहरी सज-धज और प्रदर्शन को ही देखते हैं और उसकी ही स्पर्धा में बाहरी दिखावा, तड़क-भड़क, सज-धज और प्रदर्शन पर ही अपने प्रयत्न केन्द्रित रखते हैं।

यज्ञ के अवसर पर आपको अपने मन को केन्द्रित करने की आवश्यकता है अर्थात् त्राण के प्रतीक (त्र) पर आपको ध्यान करने (मनन) की आवश्यकता है। कवि को मंत्र-द्रष्टा कहा गया है अर्थात् जो अपनी आन्तरिक दिव्य दृष्टि से मन्त्र को देख

---

१ किसी वस्तु को अन्य वस्तु के स्थान पर प्रतीक मान लिया जाता है

सकता है, आन्तरिक शान्ति की रहस्यमय कुंजी को खोज कर पा सकता है। यज्ञ में मन्त्रोच्चारण का सम्पूर्ण विश्व पर प्रभाव होता है अतएव यह लोककल्याणकारक है। इससे विश्व का शुभ होता है, शान्ति, सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। अच्छे विचारों से सदा शुद्धि होती है, पवित्रता आती है और सद्गुण, सदाचार, प्रेम और शान्ति की जड़ें पोषित और दृढ़ होती हैं; भगवान को समर्पित कार्यों के सम्बन्ध में निर्णय करना तो केवल भगवान के लिए ही सम्भव है। मुझे यज्ञ प्रिय है; इसलिए मैं यज्ञ के लिए निदेश करता हूं। आपको निर्णय देने का कोई अधिकार नहीं क्योंकि आपको इस सम्बन्ध में ज्ञान नहीं, आप मन्त्र और यज्ञ विज्ञान नहीं जानते।

सब ब्रह्म है; यज्ञ-मंत्र ब्रह्म का अनेकों रूपों में, विविध प्रकार से चित्रण करते हैं, सम्पूर्ण सृष्टि को ब्रह्म घोषित करते हैं, यह कोई अलग या भिन्न बात नहीं है। आपको प्रकृति का ब्रह्म के रूप में ही आदर करना चाहिए क्योंकि, 'सर्व ब्रह्म मयम्', यह सर्वस्व (सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति) ब्रह्म से पूर्ण है—ब्रह्म ही है। उस दृष्टि दोष, व विचार को, जिसके कारण आप प्रकृति को ब्रह्म के रूप में न देख कर, 'अब्रह्म' के रूप में देखते हैं, ठीक करने के लिए यज्ञ का विधान है। आप यज्ञ की अग्नि में एक सीमित दृष्टि से देखते हैं और मन्त्रों के द्वारा आप को उसके बदले में अधिक विस्तृत और व्यापक वृहद दृष्टि प्राप्त होती है। यज्ञ, त्याग और समर्पण और बलिदान की आध्यात्मिक साधना है।

मनुष्य के लिए जो निर्धारित कर्म है वह है मनुष्यत्व को देवत्व में रूपान्तरित करने का; इसके लिए मनुष्य को तीन उपकरण प्राप्त हैं, मन, वचन और कर्म; तथा अवतरित साधना से देवत्व प्राप्त हो सकती है। मंदिर में पुजारी को बायें हाथ से घण्टी बजानी पड़ती है और दायें हाथ से कपूर की आरती उतारनी पड़ती है और यह दोनों हाथों का एक साथ सहयोगपूर्ण संचालन अभ्यास से ही आता है। नया पुजारी एक साथ न तो घंटी अच्छी तरह बजा पायेगा और न कपूर-आरती ही घुमा पाएगा, कभी एक हाथ रुकेगा तो कभी दूसरा, दोनों का समन्वय तो अभ्यास के बाद ही हो सकेगा। वेमन ने कहा है कि सर्प के दाँतों में और बिच्छू की पूंछ में विष होता है किन्तु मनुष्य तो जीभ, आँख, हाथ और मन सभी से विष दंश कर सकता है। उसे अपनी इस प्रवृत्ति पर विजय पानी है और यह सदा याद रखना है कि वह अमृत-पुत्र है, जीवनदायी मधुर अमृत देने वाला न कि मृत्युकारक विष देने वाला।

साधना से यह पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। यह विश्वास रखो कि तुम पावन पवित्र अविनाशी आत्मा हो। फिर हानि या लाभ का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। मान या अपमान का भाव आपको विचलित नहीं कर पायेगा। केवल दुर्बल आधार वाले व्यक्ति ही दुःख, हानि, अपमान आदि से भयभीत रहते हैं। किन्तु सुदृढ़

ग्रौर सबल ग्राधार वाला व्यक्ति इन सब से बिना किसी पीड़ा या कष्ट के छुटकारा पा लेता है। सब इन्द्रियां प्रबल होती हैं तो समत्व की स्थिति स्वप्न बन जाती है, किन्तु जब इन्द्रियां पूर्ण नियंत्रण में होती हैं तो समत्व सरलता से प्राप्त होता है। इसलिए इन्द्रियों के स्वामी बनो ग्राप स्वयं ही ग्रपने स्वामी ग्रौर स्वतन्त्र हो जायेंगे, सभी परिस्थितियों में ग्रविचलित और अप्रभावित।

प्रशान्ति निलयम्
२-१०-१९६८

६५. जो पाओ सो यों ही न गंवाओ

आज का यह दिवस आप लोगों के परम सौभाग्य का दिवस है क्योंकि इसके लिए आप अनेकों वर्षों से तीव्र उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे और वह अभिलाषा आज पूर्ण हुयी है। आज भी आपको अपने हृदय के इष्ट देव के दर्शन पाने के लिए बहुत अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी है, और यहाँ आने तथा दर्शन प्राप्त करने के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है और कष्ट उठाने पड़े हैं। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप मेरे उपदेश ध्यान पूर्वक सुनें और उन्हें अपने जीवन में व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित करके अधिकतम आनन्द प्राप्त करें। आप इन उपदेशों के अमूल्य रत्नों को अपने हृदय की तिजोरी में बन्द करके रखें और इनके मूल्य और महत्व को समझें। आज इन हजारों उत्कंठ जिज्ञासुओं, साधकों और भक्तों के साथ मिल कर जिन में स्त्री और पुरुष, वृद्ध, नवयुवक और वालक सभी हैं आप अपने अन्तःकरण की शुद्धि, भक्ति और विश्वास की प्राप्ति और अपने अभ्युदय और उत्थान के लिए और मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपने अन्तर में विराजे भगवान को प्राप्त करने तथा अपने जीवन का प्रत्येक क्षण उनके ध्यान में बिताने का दृढ़ संकल्प करें। इस एक जीवन के अनुभव से ही आपको यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि बिना दुःख के कोई सुख नहीं है और सुख-दुःख दोनों ही अस्थाई और क्षणिक हैं तथा वे मन की स्थिति और उनके नियन्त्रण पर आश्रित होते हैं। इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए आपको अनेकों जन्मों की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। यह संसार आपको बंधन में बांधे हुए है, यह तो कारागार है—जेल है जहां से आपको मुक्त होना है और ऐसा मुक्त होना है कि आप इस बन्धन में फिर न फंसें।

इस स्थायी मुक्ति का मार्ग है साधना, सत्कर्म, भक्ति ,उपासना। इनमें सब आपके द्वारा आपको अपनी इच्छाओं को कम करने, कामनाओं का शमन करने, भोग-वासनाओं से विमुख होकर विवेक और वैराग्य उत्पन्न करने में सहायता प्राप्त होती है। ये सब जंजीरें हैं जिनसे आप शरीर, इन्द्रियों, घृणा, द्वेष, मोह, क्रोध, लिप्साओं आदि से बंध जाते हैं। इनसे छुटकारा पाओ और स्थायी शान्ति प्राप्त करो। आंखों का आकार मुश्किल से दो इंच होगा लेकिन वे अंतरिक्ष में लाखों मील के विस्तार को देख सकती है किन्तु स्वयं अपने आपको देख सकने में असमर्थ होती हैं। मनुष्य की भी स्थिति अपने नेत्रों जैसी ही है, चतुर और निपुण, किन्तु कमजोर भी, वह दूसरों के उद्देश्य और अर्थों को दोष और गुणों को, शक्ति और सामर्थ्य को देख, परख और विश्लेषण कर सकता है किन्तु वह अपने भाव, विचार और संवेगों को न देख पाता है और न ही उनका विश्लेषण कर पाता है—इस सम्बन्ध में विलकुल शक्तिहीन बन जाता है। वह अपने दोषों को ढूंढने में असमर्थ है। वह अपने भीतर छिपी

अनन्त दिव्य शक्ति और अपने आन्तरिक मूल सत्य को भी नहीं जानता, न जानने की उसमें शक्ति है। यह शक्ति उसमें सच्चे साधकों और संतों के सत्संग से प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं। अंग से संग होता है अर्थात्, आप अपने शरीर, इन्द्रियों और मन के साथ भगवान के भक्तों और सन्तों के बीच में पहुंचते हैं और उनके साथ रहते हैं तो आपको सत्संग प्राप्त होता है उसके प्रभाव ने आप जंगम की स्थिति में पहुंचते हैं अर्थात् विरक्ति की स्थिति, मोह से रहित, श्रमशील भिक्षु की सी दशा जो कहीं एक स्थान पर नहीं टिकता; जंगम का अर्थ ही है जो अचल है, हिलता-डुलता नहीं है। पद, मान, स्थिति, भाई, वन्धु, स्त्री, सन्तान, परिवार सब के मोह से मुक्ति और निर्लिप्त अवस्था की प्राप्ति। इस जंगम की स्थिति के प्राप्त हो जाने के बाद लिंगम (भगवान) को प्राप्त कर सकते हैं। त्याग और वैराग्य पूर्ण जीवन से आप वह आध्यात्मिक प्रगति कर सकते हैं कि आप निर्गुण, निराकार, पूर्ण परब्रह्म की, जिसका कि लिंग प्रतीक है, अनुभूति कर सकते हैं और साक्षात्कार पा सकते हैं। आप मंदिरों में जाते हैं, धूप, दीप जलाते हैं जिससे कि सुगन्धित वातावरण में अधिक स्पष्ट रूप से आप देव दर्शन कर सकें। अपने हृदय मंदिर में दीप जलाओ, वहां का अंधकार दूर करो और वहां विराजे भगवान के दर्शन करो, सब के हृदयों में विराजमान भगवान के दर्शन करो। अपने स्वयं के हृदय में और दूसरों के हृदय में आपको भगवान के दर्शन नहीं हो पाते इसका कारण है अज्ञान और अहंकार का मोटा-गहरा आवरण। गाय का दूध कितना शक्ति और बल बर्द्धक होता है; किन्तु गाय स्वयं उससे वंचित रहती है, स्वयं उसकी उपेक्षा करती है और चावलों का पानी—माँड पीने को व्याकुल हो जाती है। पहाड़ का एक पत्थर जिसकी मूर्ति गढ़ी गई, मूर्ति से कहता है, "तत् त्वम् असि" (तू और मैं एक ही हैं) वह और यह एक ही तत्व है, हां एक ही तत्व है—किन्तु अन्तर क्या है ? छेनी और हथौड़े से वह पत्थर सुन्दर मूर्ति बन गया; सदा आनन्द प्रदायक, जीवन को सुन्दर और आनन्दमय बनाने की प्रेरणा देने वाली मनोहर मूर्ति। आप भी अपने जीवन को छेनी और हथौड़े के सुपुर्द कर दो, आत्म संयम और अनुशासन के साथ साधनामय जीवन बिताते हुये, सुख-दुःख, मान-अपमान के आघातों को समान रूप से सहते हुए अपना देवत्व में रूपान्तरण कर सकते हो।

आज संसार में असन्तोष और अन्धकारमयी स्थिति का कोई सबसे बड़ा एक कारण है तो वह है ईर्ष्या और स्पर्धा। जब किसी एक को कोई सुख-शान्ति के साथ रहता हुआ देखता है तो उससे ईर्ष्या और द्वेष करने लगता है और यह प्रयत्न करने लगता है कि उसकी मन की शान्ति कैसे भंग की जाये, उसे कैसे नीचे खींचा जाये, यदि कोई बड़ा या महान कहलाने लगता है तो लोग यह देख-सुन कर दुःखी होने लगते हैं और उसको बदनाम करने, उस पर मिथ्या लांछन और आरोप लगाने के षड्-यन्त्र रचते हैं। यह सब दुर्भाग्यपूर्ण है तथा अज्ञान और स्वार्थ के कारण होता है। मनुष्य का स्वार्थ ही उसे गलत मार्ग पर धकेल देता है और फिर मनुष्य संकट में फंस

कर पछताता रहता है। बल्ब निकाल लेने पर भी यदि असावधानी के कारण आपका होल्डर के कनेक्शन से सम्पर्क हो जाता है तो बिजली का झटका लग जाता है। सही मार्ग चुनो और उस पर चल कर स्वयं सुखी रहो और दूसरों को भी सुख पहुंचाओ। शरीर के समाप्त हो जाने पर भी यदि कोई शुभ कर्म करके जाता है तो अपना नाम और यश छोड़ जाता है और वह इतिहास में बना रहता है तथा प्रेरणादायक सिद्ध होता है। विद्यार्थियों को अच्छी तरह से परिश्रमपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और अपने सद्-प्रयत्नों से अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना चाहिए। अपने अध्यापकों को भय दिखाने और उनसे 'कृपा-अंक' प्राप्त कर अगली कक्षा में चढ़ा देने के आग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी के सामने हाथ फैला कर माँगना बहुत ही लज्जा की बात है और किसी भी स्वाभिमानी को ऐसा नहीं करना चाहिए।

एक और बात पर मैं बल देना चाहता हूं। गत पाँच छः दिनों से मैं कर्नाटक प्रदेश में भ्रमण कर रहा हूं। हजारों लोग सामूहिक सभाओं में आते हैं और हजारों लोग मार्ग में खड़े हुए मिलते हैं। सबके हृदय में भगवान के प्रति भक्ति और श्रद्धा के भाव भरे हैं। किन्तु भक्ति को प्रभावकारी बनाने के लिये आत्म-संयम और अनुशासन के पालन की अत्यन्त आवश्यकता है। उसे अनियन्त्रित और बिना किसी संभाल के यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए। आप मेरे चरण स्पर्श करने या साष्टांग प्रणाम करने के लिए भाग कर सामने आते हैं और इसके लिए बच्चों की, वृद्धों और रोगियों की उपेक्षा करते हैं और उनके ऊपर गिरते, पड़ते उन्हें पीछे धकेलते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। इस साई के पास आने के लिए उस साई को मत भूलो जो उनके हृदय में विराजमान है। इस साई के दर्शन के लिए जो कष्ट आपने उठाया है वह सब व्यर्थ हो जाता है जब आप उस साई को कष्ट पहुंचाते हैं जो इन लोगों के हृदय में बैठा है। 'जो पाओ सो यों ही न गंवाओ' नहीं तो परिणाम शून्य रहेगा; इसलिये जो कुछ प्राप्त करो उसे संजो कर रखो। अपनी श्रद्धा और भक्ति के उत्साह और आतुरता में उनको मत भूल जाओ जो घंटों से आपके आगे प्रतीक्षा में खड़े हुए हैं। उन्हें भी दर्शन का अवसर प्रदान करो, यह नहीं कि आप आगे बढ़ते ऐसे सुविधाजनक स्थान पर पहुंच जायें जहां आप चरण स्पर्श कर सकें किन्तु दूसरे दर्शनों के सौभाग्य से भी वंचित हो जायें।

यह उत्साह, यह आतुरता, श्रद्धा और सम्मान प्रकट करने के लिए किसी भक्त में होना स्वाभाविक है; किन्तु जो बात ध्यान देने की है और जिसका रोका जाना आवश्यक है वह है दूसरों की इसी प्रकार की भावनाओं का निरादर। अपने में प्रेम, सहिष्णुता, सम्मान पैदा करो और दूसरों की भावनाओं और अधिकार का आदर करना सीखो। मंच पर मैं अकेला ही हूं; मेरे सामने आप हजारों हैं। आप सब यहाँ दूर-दूर से अपने घरों से किस लिए आये हैं। इसीलिए न कि आपका मेरे प्रति प्रेम और मेरा आपके प्रति प्रेम आपको यहाँ खींच लाया है। आप की यहां उपस्थिति

कोई भौतिक लाभ की प्राप्ति के कारण नहीं है। आप लोगों के प्रति मेरे प्रेम के कारण जो बातें मैंने आपको बताई हैं उन पर विचार और मनन करो, अपनी गलतियों और दोषों के लिए पश्चाताप के द्वारा अपने मन की शुद्धि करो तथा अपने जीवन को नया रूप, नयी दिशा देने के लिए दृढ़ निश्चय और संकल्प करो जिससे कि आप अपने परम सत्य का साक्षात्कार कर सकें, जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँच कर उसे सार्थक बना सकें।

बेलगांव
२४-१०-१९६८

६६. भगवान का खुला भंडार

बड़े हर्ष की बात है कि आंध्र प्रदेश सत्य साई सेवा संगठनों के पदाधिकारीगण फिर इस वर्ष यहां सम्मिलित हुए हैं। यह वर्ष कीलक वर्ष कहलाता है (हिन्दू काल चक्र के साठ वर्षों के क्रम का वर्ष)। जहां तक इस सेवा का सम्बन्ध है यह वर्ष आपके महान भविष्य का सूचक है। 'कीलकम्' का अर्थ होता है खूंटी, खम्भा, धुरे की कीली। इन दिनों जो भी आप प्रस्ताव पास कर संकल्प करेंगे उनके आधार पर किये गये कार्य अधिक शक्तिशाली और स्थायी होंगे। यह मार्ग-शिर का माह है। सिर या बुद्धि ही मार्ग दिखाती है यही इसका अर्थ है। शिव तक पहुंचने के लिए शिर ही मार्ग है अर्थात् भगवान को प्राप्त करने के लिए, वहां तक पहुंचने के लिए विवेक बुद्धि से सत्य और असत्य, नित्य और अनित्य, अविनाशी और विनाशी के बीच भेद और उसको भली प्रकार समझना, ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी लिए बालकों को छोटी अवस्था से ही गायत्री पढ़ायी जाती है क्योंकि उसमें भगवान के सविता रूप से प्रज्ञा बुद्धि प्रेरित करने के लिए प्रार्थना की गई है जिससे कि बालकों का ज्ञान-दीप प्रदीप्त रहे और उसके प्रकाश में वे सत्य के मार्ग पर चलते हुए अपनी प्रज्ञा बुद्धि का सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने में उपयोग कर सकें और अन्त में अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। आज शुक्ल पक्ष का शुभारम्भ है जब कृष्ण पक्ष की अमावस्या की अंधेरी रात्रि के वाद चन्द्रमा की प्रथम किरण पृथ्वी पर अपना प्रकाश फैला रही है।

इस सम्मेलन में मैं आप लोगों के समक्ष चार विषय विचार-विमर्श के लिए रख रहा हूं जिससे कि आप अपना ध्यान मुख्य समस्याओं की ओर एकाग्र कर सकें और उन पर विचार के लिए अपना समय लगा सकें। मैं चाहता हूं कि इस बैठक के तुरन्त बाद आप लोग जिलों के अनुसार आपस में मिलें और इन विषयों पर अपनी एक रिपोर्ट तैयार करें और दोपहर से पहले ही वह मुझे दे दें। प्रथम विषय है कि संगठनों के अध्यक्षों या सभापतियों के क्या उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य होने चाहिएं। दूसरा—जिला अध्यक्षों के क्या उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य होने चाहिएं। तीसरा—धन एकत्रित करने की समस्या और चौथा—अगला अखिल भारतीय सत्य साई सेवा संगठनों के सम्मेलन तथा अखिल विश्व सत्य साई सेवा संगठनों के सम्मेलन के लिए स्थानों का निर्णय।

मैं सोचता हूं कि प्रत्येक इकाई के अध्यक्ष जो आप को नेतृत्व प्रदान करते हैं, और प्रत्येक जिला समिति के अध्यक्ष जो आपको मार्ग-दर्शन और प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, जब अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों से भली प्रकार परिचित हो जायेंगे

और उन पर चलने लगेंगे तो समस्याओं का समाधान हो जाएगा, आप लोगों की समितियां और संगठन भली प्रकार कार्य करने लगेंगे।

मैं आप को स्पष्ट रूप से बता दूं कि आप लोगों में से लगभग ९९ प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो यह भली प्रकार नहीं समझ पाये हैं कि किस उद्देश्य के लिए मैंने आप लोगों को इन समितियों और संगठनों के गठन करने की अनुमति दी है। ये इसलिए नहीं हैं कि कुछ लोगों को पद या अधिकार प्राप्त होंगे नाम और यश मिलेगा, या आप लोग मेरे नाम और कार्य का प्रचार-प्रसार करेंगे। इनका उद्देश्य है संसार के मनुष्य-मात्र में एक पारिवारिक भावना का, एकता की भावना का, एकात्मकता का दृढ़ आधार पर निर्माण कि ईश्वर हम सब का पिता है और मानव-मात्र उसकी संतान और आपस में सब भाई-बन्धु हैं। यह सब को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इन संगठनों के द्वारा आप लोग समाज सेवा के कार्य में नहीं लगे हैं आप स्वयं अपनी ही सेवा कर रहे हैं। सभी कर्मों का उद्देश्य यही है कि आपका दृष्टिकोण, हृदय, विचार, कार्य और व्यवहार विस्तृत हों, विशाल हों, पावन और पवित्र हों। इस देश के ऋषियों और मुनियों, शास्त्रों और सद्ग्रन्थों का सदा से यही उपदेश रहा है, यही पुकार रही है।

नदी के प्रवाह को नियन्त्रित करने के लिए उसके दोनों किनारों पर मजबूत तट-बंध बांधे जाते हैं जिससे कि नदी का जल नगर में न घुस आये और अपने प्रवाह के वेग में नगर को ही न बहा ले जाये। किसी कार को चलाने के लिए कुशल और प्रशिक्षित चालक—ड्राइवर की आवश्यकता होती है जो सुरक्षा के साथ नियमों का पालन करते हुए तेजी के साथ गाड़ी चला सके। स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाने, अहंकार को दबाने तथा आत्म-संयम और विनम्रता को अपनाने के लिए ही नियम बनाये जाते हैं। जब आप पदाधिकारियों का चुनाव करें तो उनकी कार्य के लिए उपयुक्तता और योग्यता के सम्बन्ध में खूब अच्छी तरह विचार कर लें। जब एक बार उन्हें आप चुन लें तो फिर छिद्रान्वेषण, दोषारोपण और आलोचना न करें। विरोध में कार्य न करें। उनके साथ पूर्ण हृदय से सहयोग करें और उन्हें उनकी सम्पूर्ण शक्ति, सामर्थ्य और योग्यता के साथ कार्य करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करें। संगठन के कार्यों को आगे बढ़ावें। इस देश में सभी ओर, सभा, संस्थाओं और संगठनों में एक ही विनाशकारी विष समान रूप से व्याप्त है कि जिन्हें लोग उत्तरदायित्व-पूर्ण पदों पर आसीन करते हैं शीघ्र ही उनके प्रति अविश्वास प्रकट करने लगते हैं और उन्हें उनके स्थान से नीचे गिराने का, पदच्युत् करने का प्रयत्न करने लगते हैं। शक्ति और अधिकार तो व्यक्ति में उस कार्य से आते हैं न कि केवल शब्द से या किसी व्यवसाय या पद पर होने से। भगवान को भी उनके कार्यों से ही जाना जाता है और उसी कारण उनकी पूजा होती है।

यह स्मरण रखो कि व्यक्ति में शक्ति के लिए तीन स्रोत हैं । एक तो व्यक्ति के रूप में, एक भगवान के बालक के रूप में अथवा उसके ही अंग के रूप में और मन्दिर के रूप में जहाँ आत्मा प्रतिष्ठित है । आप ने पढ़ा होगा कि एक बार हनुमान ने राम से कहा था, "जब मैं यह सोचता हूं कि मैं यह शरीर हूं तो आप मेरे स्वामी, मेरे भगवान होते हैं; जब मैं यह अनुभव करता हूं कि मैं एक जीव हूं तो मैं जानता हूं कि मैं एक प्रतिबिम्ब हूँ जिसका आप मूल हूँ; जब मुझे यह ज्ञान हो जाता है कि मैं आत्मा हूं तो फिर मैं—आप हो जाता हूं और आप—मैं हो जाते हैं कोई द्वैतभाव नहीं रहता । सदा इसी भाव, इसी चेतना में रहो कि आप ईश्वर के प्रतिबिम्ब-मात्र हैं, फिर आपकी कोई हानि नहीं होगी । भगवान सदा सत्य के पथ पर चलते हैं; उनकी छाया जो उनके चरणों को पकड़े रहती है, सभी स्थानों पर गिरती है चाहे पहाड़ी हो या घाटी, गड्ढा हो या धूल-मिट्टी अथवा गर्द, किन्तु वह सदा अप्रभावित रहती है । इसलिए सदा प्रभु के चरण को पकड़े रहोगे तो जीवन के उतार चढ़ावों का, ऊंच-नीच का आप पर उसी प्रकार कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जिस प्रकार कि छाया पर । एक ही पथ के पथिक साधकों का एक ही संगठन में मिलन, सत्संग के रूप में, त्याग और वैराग्य की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए है न कि पारस्परिक मतभेद, ईर्ष्या, द्वेष और स्पर्धा को प्रोत्साहित करने के लिए । ये संगठन तो इन सभी दोषों, और विकारों को मिटाने के लिए हैं । आप इन संगठनों के माध्यम से मेरे पास शान्ति, सन्तोष और आनन्द प्राप्त करने के लिए आये हैं और सबको उसमें भागीदार बनायें । मेरे पास इसका अपार भंडार है और ये ही सब को देने के लिए मैं आया हूं । मेरा तो खुला भंडार है ।

•

प्रशान्ति निलयम्
२१-११-१९६८

६७. संगठन का हृदय

प्रत्येक जिले के प्रतिनिधियों के विचार करने के फलस्वरूप जिला अध्यक्षों ने जो विवरण, रिपोर्ट और सिफारशें मेरे सामने प्रस्तुत की हैं उनसे मुझे पता लगता है कि आपने उनमें अपनी वे आशायें, आकांक्षायें और वे विचार व्यक्त किये हैं जो आप लोगों को रुचिकर हैं। जिन गतिविधियों में इस समय आप लगे हैं और जो कार्य आपको भविष्य में करने हैं, उन सब का मुख्य उद्देश्य मैं आपको पुनः स्पष्ट कर दूं, मन को शुद्ध और निर्मल बनाना है। आप जब धोबी को कपड़े देते हैं तो उनकी गिनती करते हैं कितनी पेंट, कमीज, धोती, कुर्ते, पाजामें, आदि; किन्तु उद्देश्य होता है उन कपड़ों की धुलाई-सफाई करवाना। अब आप ध्यान को प्रोत्साहन देते हैं या प्रवचन और उपदेश करवाते हैं, भजन या संकीर्तन के कार्यक्रम करते हैं, दरिद्र-नारायण भोज करते हैं, वस्त्र बांटते हैं, पूजा-अर्चना करते हैं सब का उद्देश्य मन की शुद्धि करना है, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, घृणा, क्रोध, मोह, लोभ आदि विकारों को मन से निकाल कर उसको शुद्ध और निर्मल बनाना है। इन सबके द्वारा आपको जो प्राप्त करना है वह है केवल पारस्परिक प्रेम, शुद्ध प्रेम। यह साई भक्त की पहचान, भगवान के सभी रूपों के भक्तों की पहचान है।

मनुष्य जन्म लेता है और मरता है। इस जन्म और मरण के बीच की अवधि में वे बढ़ते, विकसित होते हैं और अन्त में मुरझा जाते हैं। किन्तु वास्तविक विकास की पहचान तो है यह पारस्परिक प्रेम जो सेवा के माध्यम से प्रकट होता है। जो अमीर हैं और जो उच्च पदों पर आसीन हैं उनकी सेवा करने वाले तो बहुत मिल जाते हैं, आप लोगों को उनकी सेवा करनी चाहिए जिनकी सेवा करने के लिए कोई नहीं और जो उपेक्षित और अभावों में ग्रस्त अपना जीवन बिता रहे हैं। हजारों ऐसी संस्थायें हैं जो इस प्रकार के उद्देश्य अपने सामने रख कर कार्य रही हैं फिर मेरे नाम से ये समितियां और संगठन खड़े करने की क्या विशेष आवश्यकता है? आपको मेरी अनुभूति[1] सब में होनी चाहिए और सब की उसी भावना से सेवा करनी चाहिए जिस भावना के साथ आप पूजा करते हैं। समुद्र की लहरों पर एक पत्ता तैर रहा था और उस पर एक चींटी चेंटी हुई थी, अपनी प्राण रक्षा के लिये। एक पक्षी ऊपर से उड़ता हुआ जा रहा था। उसने उसे देखा और गोता मार कर उस पत्ते को अपनी चोंच में उठा ले गया और किनारे पर पृथ्वी पर एक सूखे स्थान पर डाल दिया। चींटी बच गयी। चींटी भी अपने उस लघु रूप में भगवान का एक अंश है, एक रूप

---

१ अनुभव

है। भगवान की दृष्टि में वह भी अपने स्थान पर इतनी ही महत्वपूर्ण और उनकी कृपा और करुणा की अधिकारिणी है जितना कि जंगल या समुद्र का अन्य कोई महान और विशाल दैत्याकार जीव। भगवान तो प्रेम देखते हैं और आपको सेवा करने या रक्षा करने के लिए प्रेरित कर देते हैं। यह उनकी करुणा है, दया है। सत्य साई सेवा संगठनों को, सेवा को साधना के रूप में अपनाना चाहिए, मुझे 'सर्वान्तिर्यामी' समझ कर सेवा पूजा के रूप में करनी चाहिए।

संगठन की सभी इकाइयों के अध्यक्षों को, जिला अध्यक्षों को साधना करनी चाहिए। उनका ईश्वर में पूर्ण विश्वास होना चाहिए। उनका वह विश्वास उनके कार्यों से, व्यवहार से, वाणी से और विचारों से प्रकट होना चाहिए। ईश्वर के प्रति उनके समर्पण का प्रमाण उनके कार्यों से स्पष्ट दिखाई देना चाहिए। उन्हें ऐसे कार्य प्रारम्भ करने चाहिएं जिनसे सदस्यों को प्रोत्साहन प्राप्त हो और वे उत्साह के साथ कार्य करें। उन्हें नाम और रूप में पूर्ण आस्था और विश्वास होना चाहिए। एक बार श्रीकृष्ण ने गरुड़ को हनुमान को द्वारका लाने के लिए भेजा किन्तु हनुमान नहीं आये और दोनों में झगड़ा हो गया। श्रीकृष्ण ने गरुड़ को समझा कर भेजा कि हनुमान से निवेदन करो कि आपको राम (न कि श्री कृष्ण) मिलने के लिए बुला रहे हैं तो वे आवेंगे।

दूसरों पर अधिकार जताने का अवसर मत ढूंढो, बल्कि उन अवसरों की खोज करो, जब आप दूसरों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। जब कोई अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करता है तो अधिकार की स्थिति उसके लिए सिर-दर्द बन जाती है। सेवक बनो—भगवान के सेवक—फिर सब शक्ति और आनन्द आपको प्राप्त होगा। स्वामी बनोगे, अधिकार प्रदर्शित करोगे तो आपके चारों ओर लोगों में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, स्पर्धा, क्रोध उत्पन्न होगा। सदा यह अनुभव करो कि आप तो केवल एक निमित्त मात्र हैं, प्रभु के हाथ के एक उपकरण हैं, वह जैसा चाहे आपका उपयोग करे, वह ही श्रेष्ठ ज्ञाता और निर्णायक है। मेरे देखने में आया है कि जबसे समितियों का निर्माण हुआ है कहीं-कहीं वह पारस्परिक सहयोग और सामान्जस्य, जो पहले था वह नहीं रहा है। थोड़ी सी भी बिचारों में भिन्नता हो जाती है तो उसे तिल का ताड़ बना देते हैं, खींच-तान शुरु हो जाती है, मतभेद बढ़ने लगते हैं। जहां एकता थी वहां विगठन प्रारम्भ हो जाते हैं। 'तत्' और 'त्वम्' वह और यह, एक ही हैं इस सत्य का साक्षात्कार करने के लिए जिस संगठन का निर्माण हो वहां विगठन, मतभेद और दलबन्दी होना तो विडम्बना[1] है, उद्देश्य से विमुख होना है। इसके लिए आवश्यक है कि आप अपनी इच्छाओं के वशीभूत न रहें। इन्द्रियों की कामनाओं की पूर्ति की ओर बढ़े तो

---

1 धोखा, गलत कार्य

आत्मा से दूर हो जाओगे और इसके विपरीत आत्मा की ओर बढ़ना है तो कामनाओं को दूर रखना होगा। जब अपेक्षा रहती है तो मोह होता है, लोभ होता है, कुछ प्राप्ति की इच्छा होती है जिसका परिणाम होता है बन्धन। इसके विपरीत, कामनाओं से छुटकारा पाओ, उपेक्षावृत्ति रखो, फल की इच्छा त्यागो, बन्धनों से मुक्त हो जाओगे। केवल उपेक्षा के द्वारा ही, बन्धनों में पड़ने से बचा जा सकता है और परम सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। मनुष्य को पशु या राक्षस नहीं बनना चाहिए। उसे तो देवत्व, ईश्वरत्व प्राप्त करना है। यही उसका लक्ष्य है; जिस प्रकार एक प्रस्तर खंड को एक मूर्तिकार अपनी कलापूर्ण दृष्टि और कौशल से हथौड़े और छेनी की सहायता से अधरों पर बंशी धारण किए श्री कृष्ण की आकर्षक और मनोहर मूर्ति बना देता है इसी प्रकार मनुष्य को भाग्य की प्रत्येक चोट को कलाकार के हथौड़े की चोट के रूप में ग्रहण करते हुए अपने आपको भगवान के रूप में रूपान्तरित करना चाहिए।

जो विषय मैंने आप लोगों को दिए थे उन पर जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी है उसका मैंने अवलोकन किया है। धन एकत्रित करने के विषय में आप लोगों ने जो सुझाव रखे हैं वे सभी अनुपयुक्त[1] हैं ठीक नहीं हैं। इस सम्बन्ध में लगभग सभी के एक से ही विचार हैं जिनसे मुझे सन्तोष नहीं है। धन का मूल रजोगुण है जिसमें खतरे और हानि का डर सदा समाया रहता है। जैसे मधुमक्खियां अपने भविष्य के भोजन के लिए मधु एकत्रित करके संचित करती हैं इसी प्रकार मनुष्य धन एकत्रित करता है। किन्तु जिस प्रकार मनुष्य धुंआ करके मधुमक्खियों को भगा कर उस शहद को स्वयं चुरा लेता है इसी प्रकार उस के धन के पीछे भी लोग लगे रहते हैं और उसके किसी भी समय चुरा लिये जाने का खतरा बना रहता है। इसलिए मैं आपके ऐसे किसी भी विचार से सहमत नहीं जहां धन एकत्रित करके जमा रखने की योजना या प्रस्ताव हो। मुझे यह बिलकुल पसन्द नहीं कि आप धन एकत्रित करने के लिए चन्दा करें, दान लें या सूचियां बना कर घर-घर फिरें। मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि यदि आप सत्य, निष्ठा और लगन के साथ अच्छा कार्य करें और उसकी पूर्ति के लिए प्रार्थना करें तो आवश्यक धन आपको प्राप्त हो ही जाएगा। अपने अन्तर में यह दृढ़ विश्वास रखो, फिर देखोगे कि धन तो बहा चला आयगा आपके पास। प्राचीन काल में ऋषि गण अनेकों यज्ञ करते थे। उनके पास कोई साधन नहीं होते थे सिवा भगवान में दृढ़ आस्था और विश्वास के और उनके बल पर ही उनके सभी कार्य पूर्ण हो जाते थे। आजकल आप लोग उद्देश्य की महानता से प्रेरित न होकर अपने नाम, यश, प्रभाव के लिए कार्य करना चाहते हैं और चलते हैं विश्वास के अभाव के साथ। इसी लिए आप मेरे सुझाव को नहीं स्वीकार करते जिसके अनुसार सदस्यों को बन्द बक्स में बिना किसी को बताये गुप्त रूप से अपनी यथाशक्ति अपना योगदान करना चाहिए।

---

१ उचित नहीं

फिर अनेकों कार्य ऐसे हैं जिनके लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं होती। भजन और नगर संकीर्तन में केवल इतना ही आवश्यक है हृदय में भाव हो और जिह्वा पर नाम हो। गोपियां जब प्रातः दही बिलोती थीं और मक्खन निकालती थीं तो भजन गाया करती थीं। दही बिलोते उनकी चूड़ियों और कंगनों की ध्वनि और दही के मटके में रई के घुमाने से उत्पन्न नाद उनके भजन को ताल-लय और संगीत प्रदान करता था और प्रभात बेला में बहती मन्द बयार उनके मधुर गीतों की स्वर लहरियां आस पास के वातावरण में फैल कर पड़ोसियों के मन और विचारों को उनके समान ही दिव्य भावों और विचारों से ओतप्रोत कर देती थी। आप लोगों को ऐसी भीड़ एकत्रित करने की आवश्यकता नहीं जिसे देख कर दूसरे प्रभावित हों, अधिक खर्चीली साज-सजावट करने की आवश्यकता नहीं, सब व्यर्थ का आडम्बर और फिजूल खर्ची है। भाषण करने वालों पर उपदेशकों पर अधिक व्यय मत करो। जो आर्थिक पुरस्कार या अधिक प्रदर्शनकारी स्वागत सत्कार की मांग करते हों उनसे दूर रहो। एक कुर्सी और मेज बहुत है। लाउडस्पीकर भी एक व्यर्थ का व्यय होता है, क्योंकि जहां आवश्यकता नहीं होती वहां भी इसकी अनावश्यक रूप से व्यवस्था की जाती है। आप लोगों को तो अन्य सभा-संस्थाओं के समक्ष उदाहरण बन जाना चाहिए कि किस प्रकार सादगी के साथ, व्यर्थ के खर्चों से बचते हुये अल्प साधनों से ही अधिक अच्छा और प्रभावोत्पादक[1] और प्रेरणादायक कार्य करने में आप सफल होते हैं। जितने लोगों को आपको बुलाना अनिवार्य है और आप बुला सकते हैं उतने लोगों को ही आप बुलायें यह नहीं कि सबको बुलाना चाहिए ऐसा सोच कर सब को ही अपनी मीटिंग में बुलायें। किसी भी कार्यक्रम के लिए समिति के जितने भी सदस्य हैं चाहे पन्द्रह अथवा बीस उन सब को ही आपस में मिल कर बिना किसी तर्क अथवा झगड़े-झंझट के वांछित धन एकत्रित कर लेना चाहिए। केवल धन लेने के लिए किसी को समिति का सदस्य मत बनाओ। पैसे से गुण अधिक मूल्यवान होते हैं। किसी विशेष उत्सव मानने की कोई आवश्यकता नहीं, सिवा उस अवसर के जब मैं आऊं। आप उन लोगों की निन्दा करते हैं जो अनुचित साधनों से विशाल जन सभाओं के लिए धन एकत्रित करते हैं और फिर उसका अपव्यय और दुरुपयोग करते हैं। इसलिए आप लोगों को वैसी ही गलतियां नहीं करनी चाहिए।

जिस विशेष स्थिति में होने का आप को सौभाग्य प्राप्त है उसे अपने आत्म सम्मान द्वारा उच्च बनाये रखो। आपका स्वामी किसी से कुछ नहीं मांगता है उसे प्रचुर मात्रा में देता है। मैं प्रेम का संदेश लेकर विदेशों में अपरिचित और विचित्र प्रदेशों में विदेशी और अपरिचित लोगों के बीच जाता हूँ। उपेक्षा ही मेरी शक्ति है। मेरे लिए मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं है, वह कहीं का हो, किसी वर्ण या जाति का

---

१ प्रभाव उत्पन्न करने वाली

हो । इसलिए सभी मुझे समान रूप से प्रेम करते हैं । धन सब झगड़ों की, मतभेदों और अविश्वासों की जड़ है । धन को गौण समझो, बिलकुल पीछे रखो, अधिक महत्व मत दो । प्रेम, विनम्रता, वैराग्य और सेवा को ही अपनी, निधि अपना कोष समझो।

प्रेम का एक गुप्त प्रवाह है, एक गुप्त सम्बन्ध है जो आँखों और पैरों को सम्बन्धित रखता है । जब आंखें कोई कांटा मार्ग में पड़ा देखती हैं या कोई अवरोध देखती हैं तो पैर तत्काल उससे बच कर निकल जाते है और शरीर की सुरक्षा हो जाती है । इसी प्रकार जिले के अध्यक्षों को और प्रत्येक इकाई के अध्यक्षों को नेत्रों के समान सजग हो कर कार्य करना चाहिए और समितियों और संगठनों को कांटों, खाई और गड्ढों से बचाना और उनसे उनकी रक्षा करनी चाहिए ।

अखिल विश्व सम्मेलन का जहां तक प्रश्न है वह तीन वर्ष में एक बार होना चाहिए । अखिल भारतीय सम्मेलन के लिए तो संगठन के हृदय स्थल प्रशान्ति निलयम् से श्रेष्ठ और कौन सा स्थान हो सकता है ।

प्रशान्ति निलयम्
२१-११-१९६८

६८. दाता को भेंट

यह पात्र; यह छप्पर; यह घर; ये दीवार; यह जंगल; यह पहाड़; यह मैदान; यह झील; यह अग्नि; यह वायु; यह आकाश; यह दिनकर; यह चन्द्र; ये तारे; ये ग्रह; ये जड़; ये चेतन; ये सब मुझ से अलग हैं; यह भौतिक जगत मुझ से भिन्न है—जैसे एक साक्षी। मैं इस सब को जानता हूं और बिना किसी अनुशासनात्मक प्रक्रिया की सहायता के प्रत्येक को जीवन तत्व प्रदान करता हूं, क्योंकि मैं इस सब से ऊपर और परे हूं।

यह भारत के इतिहास में एक शुभ समय है जब आपको इस देश के प्राचीन सद् ग्रन्थों और शास्त्रों में सुरक्षित सत्यों को समझने का महान अवसर प्राप्त है, उन आदर्शों को समझने का अवसर है जो इन ग्रन्थों में निबद्ध जीवन की आचरण-संहिताओं[1] में घोषित हैं। आप जीवन के एक मात्र, लक्ष्य अर्थात् ईश्वर साक्षात्कार को प्राप्त कर सकें, स्वयं उसमें तद्रूप[2] हो सकें। इसीलिये वह निराकार ही साकार रूप धर कर आप लोगों के बीच आपके कल्याण के लिए उपस्थित है। अब वह उन आदर्शों को आपके सामने पुनः प्रकट और स्पष्ट करेंगे, और सभी मनुष्यों में उन्हें पुनः प्रतिष्ठित करेंगे। वास्तव में जो शास्त्रों से परिचित नहीं हैं वे इस अवतार के रहस्य को नहीं समझ सकते हैं।

फिर भी मैं आपको यह बता दूं कि पंच-तत्व—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी सभी ईश्वर की इच्छामात्र से उत्पन्न हैं। आपको चाहिये कि उनमें से प्रत्येक को आप सम्मान पूर्ण सावधानी और पूर्ण-विवेक के साथ उपयोग में लायें। उनका असावधानी पूर्वक या धृष्टता के साथ, उपयोग आप पर उल्टी प्रतिक्रिया करेगा और उससे आपको कहीं अधिक हानि होगी। बाह्य प्रकृति का बहुत ही सावधानी के साथ उपयोग करना चाहिये।

इसी प्रकार आपको आन्तरिक प्रकृति का भी, अपने भीतरी अंगों का, इन्द्रियों का बहुत ही सावधानी और विवेक के साथ उपयोग करना चाहिये। इनमें दो तो बहुत ही भयंकर रूप से आपको हानि पहुंचाने और संकट में डाल देने की क्षमता रखती हैं। वाक् और काम शक्ति। काम शक्ति आप जो कुछ खाते हैं और पीते हैं उसके अनुसार ही उत्तेजित होती है, अतएव रसना[3] पर पूर्ण नियन्त्रण रखने की

---

१ व्यवहार के नियमों का ग्रन्थ मनुस्मृति आदि २ जिसमें कोई वस्तु अपनी समीपवर्ती अन्य वस्तु का रूप ग्रहण करती हो ३ जिह्वा

आवश्यकता है। आंख, नाक और कान तो प्रकृति के गुण विशेष की जानकारी करवाने में सहायक उपकरण का कार्य करते हैं किन्तु जिह्वा दोहरा कार्य करती है यह स्वाद भी लेती है और वाक् शक्ति से शब्द द्वारा संकेत भी करती है, संचार और सम्पर्क का माध्यम बनती है। इसलिये इस पर, दोहरी निगरानी और नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है क्योंकि इसकी भार-शक्ति दोहरी है।

बिना इन्द्रिय निग्रह के, चित्त वृत्तियों के निरोध के, साधना का कोई प्रभाव नहीं, वह उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार किसी रिसने वाले पात्र में पानी भरने का प्रयास। पातञ्जलि ने कहा है कि जिह्वा पर पूर्ण नियन्त्रण पा लेने पर आपकी विजय निश्चित है। जब रसना किसी स्वाद के लिए ललचाये तो उसकी माँग की पूर्ति मत करो। देश के अनेकों साधु-संन्यासी और मठाधीश एवं आचार्य रसना के दास बन गये हैं। और उसकी चपलता को नियन्त्रण में रख सकने में असमर्थ हैं। वे धारण तो गेरुआ वस्त्र करते हैं किन्तु खाने के लिए उन्हें स्वादिष्ट व्यंजन चाहियें और इसके लिए सदा उनकी मांग रहती है। अपने इस व्यवहार से वे संन्यास आश्रम को ही बदनाम करते हैं। यदि आप कुछ समय तक सादा-सात्विक भोजन करते रहें जो न गरम हो न खट्टा किन्तु पोषक अवश्य हो तो कुछ दिन तो जिह्वा इठलाएगी किन्तु फिर उसका विद्रोह समाप्त हो जाएगा और वह उसी में रस लेने लगेगी। इस प्रकार उसे अपने नियन्त्रण और अधिकार में कर लेने में सफल हो जायेंगे और उसके दास बने रहने के कारण उत्पन्न होने वाले भयंकर परिणामों से बच जायेंगे। जिह्वा निन्दा, भलाई और बुराई, कामुकता भरी बातों में बड़ा रस लेती है, इसकी इस वृत्ति को भी आपको बदलना होगा। कम बोलो, धीरे बोलो, मधुर बोलो, केवल उसी समय बोलो जब बोलना अनिवार्य हो, क्रोधित और उत्तेजित होकर चिल्लाओ मत। इस प्रकार जिह्वा पर नियन्त्रण कर लेने पर शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य में सुधार और विकास होगा। इससे अच्छे सामाजिक सम्बन्ध निर्मित और स्थापित होंगे, आपसी सम्बन्धों में कोइ संघर्ष नहीं होगा। आपकी लोग हँसी उड़ा सकते हैं और आप पर नीरस और शुष्क होने के आरोप लगा सकते है; किन्तु इसके दूसरी ओर आपको बहुत अधिक लाभ भी तो हैं। आपके समय और शक्ति का अपव्यय नहीं होगा, आप अपनी आन्तरिक शक्ति का अधिक अच्छा उपयोग कर सकेंगे। मेरे जन्म-दिवस का विशेष सन्देश ग्रहण करो—अपनी रसना पर नियन्त्रण रखो, अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखो।

यह तो इन्द्रिय निग्रह के व्यापक कार्यक्रम का एक छोटा सा अंग है। ईश्वर की भक्ति का श्रेष्ठ मार्ग है इन्द्रिय निग्रह क्योंकि इन्द्रियां सदा क्षण भंगुर आकर्षणों की ओर दौड़ती हैं और हृदय को दूषित कर देती हैं। मैं आप से कोई भेंट नहीं चाहता, कोई मूल्यवान वस्तु का चढ़ावा या उपहार नहीं चाहता सिवा उस हृदय के जो मैंने तुम्हें दिया है। मुझे वही हृदय दो, वैसा ही निर्मल, शुद्ध और पवित्र जैसा कि मैंने तुम्हें दिया था, प्रेम के अमृत से पूर्ण।

इसलिए खुशियां मत मनाओ कि ४३ वर्ष पूर्व आज के दिन इस शरीर ने जन्म लिया था। जन्म और मरण तो सभी भौतिक शरीरों का अनिवार्य रूप से होता ही है। देखने योग्य तो है कि बीच की अवधि में क्या होता है। उस पर ही खुशियां मनायी जानी चाहियें। इस जीवन अवधि को आत्मिक उन्नति में लगाओ।

इसके लिए तीन आधारों पर प्रयास किये जाने की आवश्यकता है (क) आध्यात्मिक साधना और अनुशासन (ख) वैराग्य उत्पन्न करना (ग) आत्म विश्वास उत्पन्न करना। इन तीनों के बिना जीवन तप्त रेगिस्तान में थका देने वाली विनाशकारी व्यर्थ की यात्रा है। त्याग, वैराग्य यही वह गुण हैं जिसे जीवन में आध्यात्मिक प्रगति के लिए अपनाये जाने की आवश्यकता है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप क्या त्यागते हैं, उसका आर्थिक मूल क्या है, महत्वपूर्ण तो यह है कि उस त्याग के पीछे प्रेरक भाव की महानता और दिव्यता कितनी है और कैसी है।

किसी के जीवन में जब तक उसकी इन्द्रिय वासनाओं का अधिकार है, उसकी तृप्ती के लिए ही उसके प्रयत्न केन्द्रित हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि उसका आध्यात्मिक जीवन आरम्भ हो गया है। बहुत हैं जो आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करने के लिए अपनी बड़ी इच्छा व्यक्त करते हैं और जिज्ञासा दिखाते हैं किन्तु बहुत थोड़े होते हैं जो उसे प्राप्त कर पाते हैं क्योंकि अधिकाँश लोग अपनी इन्द्रियों की माँगों की उपेक्षा नहीं कर सकते, उनको पूरा करना ही उनका धर्म बन गया है। यदि आप थोड़ी जिज्ञासा करें जानने का प्रयत्न तो स्पष्ट हो जाएगा कि इन्द्रियों का स्वामित्व कितना भयंकर है और अज्ञान से पूर्ण है; उनके माध्यम से प्राप्त होने वाला सुख अस्थायी, मिथ्या और अन्त में शोककारक है। केवल यह ज्ञान लेने मात्र से ही तो आप के हृदय में आनन्द स्रोत नहीं पैदा हो जाएगा; आनन्द का स्रोत तो इस समस्त सृष्टि के कण-कण में व्याप्त उस भगवान की दिव्यता और महानता के चिन्तन से ही, उसमें समरस हो जाने से ही प्राप्त हो सकता है। किसी एक विषय पर दो लोग एक मत नहीं हो सकते, चाहे वे खास भाई हों या बहिन, जीवन साथी हों या पिता-पुत्र हों। ये तो आध्यात्म पक्ष के तीर्थ यात्री ही हृदय से एक मत हो जाते हैं और प्रेम पूर्वक सहयोग करते और आगे बढ़ते हैं।

अपने दैनिक कार्यों में व्यस्त रहते हुये भी आप अपनी तीर्थ यात्रा जारी रख सकते हैं, बस आपको प्रतिक्षण यह अनुभव करते रहने की आवश्यकता है कि प्रत्येक पल जो बीतता जा रहा है उसके साथ-साथ आपके चरण उस परम लक्ष्य की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं जहां आपको प्रभु के दर्शन प्राप्त होंगे, उनका साक्षात्कार का लाभ होगा। प्रत्येक कार्य उनको समर्पित करके करो, उनके लिए करो, उनके निमित्त करो, उनकी पूजा के लिए करो, उनकी सन्तान की सेवा के लिए करो। अपने प्रत्येक कार्य को, प्रत्येक शब्द को और प्रत्येक विचार को इस कसौटी पर परख कर देखो क्या

यह भगवान को मंजूर होगा ? क्या भगवान इसको अपना अनुमोदन प्रदान करेंगे ? क्या यह उनकी गौरव गरिमा के अनुकूल होगा ?

रामायण में आप देखेंगे कि राजा दशरथ अपनी रानी से इतने अनुरक्त[1] और मोहित थे कि उसको दिए अपने वचनों के कारण अपने पुत्र राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास में भेज दिया। किन्तु वही राम सत्य के इतने पालन करने वाले थे कि उन्होंने अपनी प्रजा के एक वर्ग विशेष में कानाफूसी के कारण अपनी प्रिय पत्नी को वनवास दे दिया था। अन्तर इतना ही था कि पिता अपनी इन्द्रियों और कामनाओं के वशीभूत था तो पुत्र अपनी इन्द्रियों और कामनाओं का स्वामी, मर्यादा पुरुषोत्तम था। जिन्हें भगवान के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं है कि वे तो सभी मानवीय परम्पराओं और रूढ़ियों, प्रचलन और रीति-नीतियों से परे और ऊपर हैं। श्रीकृष्ण के कुछ कार्यों, उनकी कुछ गतिविधियों, लीलाओं और क्रीड़ाओं की जिन्हें वे नहीं समझ पाते हैं निन्दा करते हैं, उन पर आक्षेप लगाते हैं, किन्तु जो उनके दैवत्व को समझते हैं वे ही उनके महत्व और महिमा को समझ सकते हैं।

जब आप अपने आपको भगवान के यशोगान, गुण-कीर्तन में तल्लीन कर देते हैं तो फिर आप शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, कर्म, ज्ञान, उपासना, ध्यान, चिन्तन, मनन सबको भगवान के कार्य के लिए अति आवश्यक समझते हैं साधना के उपकरण के रूप में। जहां अन्य लोग अभिमान के कारण मदमस्त हो जाते हैं, वहाँ भक्त भगवान के निर्मल प्रेम में दीवाना हो जाता है। आपने सुना होगा कि गोपाल कृष्ण अपनी बांसुरी की तान छेड़ देते थे तो वृन्दावन के सब ग्वाल-बाल, गोप-गोपियाँ, अन्य स्त्री-पुरुष सभी अपनी सुध-बुध भूल कर उनके चारों ओर एकत्रित हो जाते थे, एक दैविक आकर्षण से खिचे चले आते थे, ऐसा था कि उनकी वंशी का मधुर-मोहक जादू सा आकर्षण जिससे व्यग्रता और मलिनता की सभी लहरें जिन्हें हम सुख, दुःख, शोक आदि नामों से पुकारते हैं, शान्त हो जाती थीं। जो भी कार्य वे कर रहे होते थे उसे ज्यों का त्यों छोड़ कर चल देते थे, बस एक लालसा रहती थी कैसे शीघ्रता से भगवान के सान्निध्य में पहुंचें और अपने आपको दिव्य संगीत की स्वर लहरी में विलीन कर दें। गाय चरना बन्द कर देती थीं, बछड़े दूध पीना छोड़ देते थे, पशु और पक्षी भी मन्त्र-मुग्ध हुये सुनते थे वह वंशीवादन। कृष्ण, गोप-गोपियों और ग्वाल-बालों की इस कथा का गहन आन्तरिक अर्थ है। वृन्दावन नक्शे में कोई एक निश्चित स्थान नहीं है, समस्त सृष्टि ही वृन्दावन है। सभी मनुष्य और स्त्रियां, ग्वाल-बाल और गोप-गोपियां हैं; सारे पशु गायें हैं। प्रत्येक हृदय में भगवान के दर्शन की इच्छा है; वंशी की मधुर ध्वनि उनका आह्वान है। रास-क्रीड़ा—जिसमें

---

१ आसक्त, लीन

कृष्ण चांदनी रात में प्रत्येक गोपी के साथ उसका हाथ अपने हाथ में लिये वाल-कृष्ण के रूप (जितनी गोपियां-उतने ही कृष्ण) नृत्य करते हैं—एक प्रतीक है भक्तों के हृदय की उस तड़प और अभिलाषा का जो उनकी उपस्थिति में पहुंचने के लिये अपने अंतर में संजोये रखते हैं। भगवान ऐसी कृपा प्रकट करते हैं कि आप यह अनुभव करें कि भगवान केवल आपके हैं, और आपके लिये हैं, और आपके साथ हैं। आप यह नहीं कह सकते कि जब भगवान दूसरों के साथ हैं और उन पर कृपा करते हैं तो आप पर कैसे कृपा करेंगे। भगवान तो सदा आपके हृदय मंदिर में विराजते हैं।

अपने आपको, सम्पूर्ण रूप से, अपने सम्पूर्ण जीवन को समर्पित कर दो, उनके शरणागत हो जाओ; फिर आपकी भक्ति आपको सम्पूर्ण रूप से ऐसा परिवर्तित कर रूपान्तरित कर देगी कि आप भगवान में लीन और विलीन हो सकते हैं। वह वही सोचते, विचारते और करते हैं जो आप। आप वही सोचते, विचारते और करते हैं जो वह। आप उसी प्रकार रूपान्तरित हो जायेंगे जिस प्रकार कि एक चट्टान, शिल्पकार के हथौड़े और छैनी की चोटों से एक सुन्दर आकर्षक भगवान की मूर्ति बन जाती है और भगवान के रूप में ही जिसकी पूजा होने लगती है और भगवान के भक्त उनकी संन्तति दर सन्तति पूजा करते चले जाते हैं। इसी प्रकार वह रूप प्राप्त करने के लिये आपको छैनी और हथौड़े की चोटें खानी होंगी, वह रूप पाने के लिये अवान्छित अंश उन आघातों के द्वारा अपने से कटवा कर निकलवाने होंगे और उस शिल्पकार के हाथों अपने आपको पूर्ण रूप से सौंप देना होगा। समय मत खोओ, अवसर मत चूको, इस मानव देह का दुरुपयोग मत करो। लक्ष्य तक पहुंचने की यात्रा बड़ी लम्बी है, मरने पर यह यात्रा समाप्त नहीं होगी, जन्म-मरण का चक्र जब तक चलता रहेगा, जब तक गन्तव्य तक नहीं पहुंच पाओगे, और तब तक यातनायें सहते रहना होगा। यह मत भूलो। जैसे कि एक तीर्थयात्री को विनम्र, सावधान और सतर्क अपने लक्ष्य के प्रति सजग और गतिशील रहना चाहिए वैसे रहो। जो शुभ और सत्य देखो और सुनो उससे अनुभव प्राप्त करो। उनका अपनी यात्रा के अगले चरणों में उपयोग करो।

केवल इतना कह देने और स्वीकार कर देने मात्र से कार्य पूरा होगा नहीं कि भगवान का अवतार हो गया है जब तक कि आपके हृदय में लगन और तड़प नहीं है, पूर्ण लाभान्वित होने की। पूर्व युगों में अर्थात् कृत, त्रेता और द्वापर युगों में भी भगवान के अवतार को बहुतों ने स्वीकार नहीं किया जैसा कि आजकल कलियुग में बहुत से नहीं मानते हैं। यहां तक कि उनके माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्ब-परिवार के लोग, मित्र और साथी भी उन्हें उस रूप में मानने और सम्मान करने में संकोच करते थे। कुछ ऋषि-मुनि जन ही जिन्होंने साधना के द्वारा वह आन्तरिक दृष्टि प्राप्त कर ली थी उनकी वास्तविकता और सत्य को जानते थे। किन्तु आज जब

पारस्परिक विरोध और वैमनस्य की धारायें वह रही हैं तथा ईश्वर में श्रद्धा, भक्ति और विश्वास के नाश की ज्वालायें उठ रही हैं, यह आप लोगों के अनेकों जन्मों के पुण्य का फल है, परम सौभाग्य है कि आज आप मेरे सम्मुख हैं, आमने-सामने हैं। यह कोई सामान्य सौभाग्य नहीं है यह अवतार आपके बीच में घूमते-फिरते, बात करते, गाते आप लोगों की हंसी-खुशी, शोक-ग़म में सम्मिलित होते हुए आपको साहस, सन्तोष प्रदान करने और आपका मार्ग-दर्शन करने में रत हैं। यह सम्बन्ध अपने आप में अद्वितीय है, उसे सदा बनाये रखने की आवश्यकता है जब तक कि आप लक्ष्य तक नहीं पहुंच जायें।

जो मेरे भक्त हैं उन पर एक विशेष उत्तरदायित्व है। उप-कुलपति डाक्टर गोकक ने अपने भाषण में मेरे निदेशों की ओर आपका ध्यान दिलाया था कि मेरे नाम पर मेरे नाम से सम्बन्धित किसी कार्य पर कोई धन एकत्रित नहीं किया जायगा। मैं चाहता हूं कि आप लोगों के हृदय में धन के स्थान पर धर्म की प्राप्ति के लिए लगन हो। अपना हाथ दूसरों के सामने कुछ प्राप्त करने के लिए मत फैलाओ, जो कुछ मांगना है भगवान से मांगो, वह अमूल्य रत्नों से आपके भंडार भर देगा। श्रद्धा और विश्वास बनाये रखो और उस पर दृढ़ रहो।

मैं यहाँ आप लोगों को डाक्टर के० एम० मुन्शी ने मुझे जो पत्र लिखा है उसके बारे में बता दूं (डा० मुन्शी गांधी जी के अनुयायी, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, भारतीय संविधान के निर्माताओं में से एक प्रमुख विधि-विज्ञ, गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध लेखक, भारतीय विद्या भवन के संस्थापक और भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान कार्य में सक्रिय रूप से सलग्न एक अग्रणी व्यक्ति)। उन्होंने लिखा है, "मैं आया, मैंने दर्शन किए और मैं जीत लिया गया।" वास्तव में यह सही है, उनका प्रेम मेरे प्रेम में लीन हो गया, उनका आनन्द मेरे में मिल गया और वह आनन्दित हैं असीम रूप से। उन्होंने अपने पत्र में लिखा है कि जिस प्रकार अन्य पर्व मनाये जाते है इसी प्रकार मेरा जन्म दिवस सारे संसार में विश्व पर्व के रूप में मनाया जाना चाहिए। उन्होंने मुझ से प्रार्थना की है कि मैं उनकी इस योजना को आशीर्वाद दूं कि यह दिवस विश्व में सत्यनारायण पूजा दिवस के रूप में मनाया जाये। मैं उनके इस भक्ति भाव की सराहना करता हूं किन्तु मैं केवल किसी एक नाम या रूप विशेष की पूजा को प्रोत्साहन नहीं देता और वह भी अपने इस वर्तमान रूप की। लोग मेरे जिस किसी भी नाम और रूप की पूजा करते हैं उससे उन्हें अलग हटाकर इस नाम और रूप की पूजा में नहीं लगाना चाहता। लोग कहते हैं कि मैं अपने चमत्कारों से आप लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता हूं और अपने साथ सम्बन्धित कर लेता हूं, और आप केवल मेरी ही पूजा करने लगते हैं। किन्तु मेरे वे कार्य जिन्हें लोग चमत्कार कहते हैं, उनका उद्देश्य यह नहीं है कि मैं अपना कोई प्रदर्शन और प्रचार करूं। वे तो मेरा स्वभाव है, मेरी दिव्यता के प्रतीक हैं, मैं तुम्हारा हूं, तुम

मेरे हो, सदा सदा के लिए, सदा सदा से । फिर क्या आवश्यकता है आकर्षित करने और प्रभावित करने की, आपके प्रेम प्रदर्शन की और मेरी कृपा प्रकट करने की ? मैं तुम में हूं, तुम मुझ में हो । न कोई अन्तर है न कोई भेद ।

अब मैं प्रशान्ति निलयम् पर प्रशान्ति ध्वज का ध्वजारोहण करने जा रहा हूं । ध्वज आपमें से प्रत्येक के लिए एक प्रेरणादायक प्रतीक है । यह आपको आपके कर्त्तव्य की याद दिलाता है, इसलिए जब मैं प्रशान्ति निलयम् पर ध्वजारोहण करूं तो आप अपने हृदय में भी प्रशान्ति ध्वज फहरायें । यह आपको स्मरण दिलाता है कि आपको अपने अन्तर के, सभी तुच्छ विचारों, दोषों और दुर्बलताओं का नाश करना है, दुर्जय शत्रु काम, क्रोध, मोह, लोभ, घृणा, द्वेष पर विजय प्राप्त करनी है, हृदय को इतना विशाल बनाना है कि उसके दायरे में सम्पूर्ण मानवता, सम्पूर्ण प्राणी, सम्पूर्ण सृष्टि आ जाये । यह आपको अन्तर्मुखी होकर आत्म सत्य के चिन्तन, मनन और ध्यान करते हुए उसके साक्षात्कार के लिए प्रेरित करता है । यह आपको इस बात का भी आश्वासन देता है कि यदि आप इस साधना में लगे रहेंगे तो आपका हृदय-कमल निश्चित रूप से विकसित होगा और उसके बीच से वह दिव्य ज्योति प्रकाशित होगी जो प्रशान्तिदायक है ।

मैं आपको कुछ प्रारम्भिक अनुशासन सम्बन्धी बातों की ओर संकेत कर दूं । आप लोग जब तक यहाँ है तीन बातों का सतत् अभ्यास करते रहें, शान्ति, स्वच्छता और सहिष्णुता । शान्ति में ही आप भगवान की वाणी, उनकी आवाज सुन सकते हैं न कि शोर-गुल में । स्वच्छता से, शुचिता से पवित्रता प्राप्त होती है । सहिष्णुता से प्रेम उत्पन्न होता है ।

आज आप अपने ही घर में आये हुए हैं आप लोगों का घर है न कि मेरा । कि मेरा निवास तो आपका हृदय है । इसलिए अपना भोजन कहीं और जगह न करें अपने घर में ही करें जहाँ आज आपको भोजन, मेरे द्वारा पावन किया हुआ, मेरे प्रसाद के रूप में प्राप्त होगा ।

प्रशान्ति निलयम्

२३-११-१९६८